☐ सम्पादकमण्डल
अनुयोगप्रवर्त्तक मुनि श्री कन्हैयालालजी 'कमल'
श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री
श्री रतनमुनि
पण्डित श्री शोभाचन्द्रजी भारिल्ल

☐ प्रबन्धसम्पादक
श्रीचन्द सुराणा 'सरस'

☐ सम्प्रेरक
मुनि श्री विनयकुमार 'भीम'
श्री महेन्द्रमुनि 'दिनकर'

☐ प्रकाशनतिथि
वीरनिर्वाणसंवत् २५०९
विक्रम स. २०३९
ई. सन् १९८२

☐ प्रकाशक
श्री आगमप्रकाशनसमिति
जैनस्थानक, पीपलिया बाजार, ब्यावर (राजस्थान)
ब्यावर—३०५९०१

☐ मुद्रक
सतीशचन्द्र शुक्ल
वैदिक यंत्रालय, केसरगंज, अजमेर—३०५००१

☐ मूल्य [redacted]

संशोधित परिवर्धित मू

Published at the Holy Remembrance occasion
of
Rev. Guru Sri Joravarmalji Maharaj

SECOND UPĀNGA

RĀJAPRASHNIYA SŪTRAM

[Original Text, Hindi Version Notes, Annotations and Appendices etc]

Proximity
Up-pravartaka Shasansevi Rev Swami Sri Brijlalji Maharaj

Convener & Chief Editor
Yuvacharya Sri Mishrimalji Maharaj 'Madhukar'

Translator & Annotators
Shri Ratan muni

Publishers
Sri Agam Prakashan Samiti
Beawar (Raj.)

☐ **Board of Editors**

Anuyoga-pravartaka Munisri Kanhaiyalal 'Kamal'
Sri Devendra Muni Shastri
Sri Ratan Muni
Pt. Shobhachandra Bharill

☐ **Managing Editor**

Srichand Surana 'Saras'

☐ **Promotor**

Munisri Vinayakumar 'Bhima'
Sri Mahendramuni 'Dinakar'

☐ **Date of Publication**

Vir-nirvana Samvat 2509
Vikram Samvat 2039, Nov 1982

☐ **Publishers**

Sri Agam Prakashan Samiti
Jain Sthanak, Pipaliya Bazar, Beawar (Raj.)
Pin 305901

☐ **Printer**

Satishchandra Shukla
Vedic Yantralaya
Kesarganj, Ajmer—305001

☐ **Price** Rs. 30/-

[illegible]

समर्पण

जिन्होंने अन्धकारपूर्ण युग मे
दिव्यज्योतिस्तम्भ का कार्य किया,
जो सम्यग्ज्ञान और चारित्र के परमाराधक थे,
जिनमार्ग के प्रचार-प्रसार के लिए जिन्होने
अपने जीवन की आहुति दी,
उन परम पुनीत सयतात्मा आचार्य
श्री लवजीऋषिजी महाराज
के कर-कमलो मे।

—मधुकर मुनि

प्रकाशकीय

औपपातिक नामक प्रथम उपाग के पश्चात् द्वितीय उपाग राजप्रश्नीय पाठको के कर-कमलो मे समर्पित किया जा रहा है। यह जिनागम ग्रन्थमाला का पन्द्रहवा ग्रन्थ है।

प्रस्तुत सूत्र सूत्रकृताग का उपाग माना गया है। अनेक दृष्टियो से यह एक महत्त्वपूर्ण आगम है, जिसमे सूर्याभदेव सवधी विस्तृत विवेचन है। सूर्याभदेव, राजा प्रदेशी का जीव था जो विशिष्ट धर्माराधना करके देवरूप मे उत्पन्न हुआ और देवलोक से च्युत होकर महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर सिद्धि प्राप्त करेगा।

राजा प्रदेशी पहले अनात्मवादी नास्तिक था। वह भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के महामुनि केशी कुमारश्रमण द्वारा प्रतिबुद्ध हुआ। दोनो का आत्मा सवधी सवाद अत्यन्त वोधप्रद है। आज के जिज्ञासुओ के लिए भी वह अतीव उपकारक है।

भगवतीसूत्र का प्रथम भाग मुद्रित हो चुका है और द्वितीय भाग मुद्रित हो रहा है। प्रज्ञापना सूत्र का मुद्रण शीघ्र प्रारभ होने वाला है।

प्रस्तुत आगम का अनुवाद वाणीभूपण प. र मुनिश्री रतनमुनिजी म ने किया है, जो ग्रन्थमाला के सम्पादकमण्डल मे हैं। आपके इस उदार सहयोग के लिए समिति अत्यन्त आभारी है। श्री देवकुमारजी शास्त्री, साहित्यरत्न ने इसके सम्पादन-परिमार्जन आदि मे जो मूल्यवान् योग दिया है, वह भी स्मरणीय है।

श्रमणसघ के युवाचार्य प्र प्र श्री मधुकर मुनिजी म सा. की प्रवल आगमभक्ति एव उत्कट लगन तथा श्रम के फलस्वरूप ही समिति इस पुनीत कार्य मे अग्रसर हो रही है। उनका आभार व्यक्त करने के लिए शब्द पर्याप्त नही हैं।

समस्त अर्थसहयोगी महानुभावो के प्रति भी हम कृतज्ञ हैं, जिनकी उदारतापूर्ण सहायता से हम निश्चिन्त होकर इस प्रकाशन को आगे वढा रहे हैं। आशा है आगमप्रेमी पाठक इससे लाभ उठाकर आत्मकल्याण के भागी वनेंगे।

रतनचंद मोदी
कार्यवाहक अध्यक्ष

जतनराज मेहता
प्रधानमत्री

चांदमल विनायकिया
मत्री

श्री आगम-प्रकाशन समिति, ब्यावर

आदि वचन

विश्व के जिन दार्शनिको—दृष्टाओ/चिन्तको ने "आत्मसत्ता" पर चिन्तन किया है, या आत्म-साक्षात्कार किया है, उन्होने पर-हितार्थ आत्म-विकास के साधनो तथा पद्धतियो पर भी पर्याप्त चिन्तन-मनन किया है। आत्मा तथा तत्सम्वन्धित उनका चिन्तन-प्रवचन आज आगम/पिटक/वेद/उपनिषद् आदि विभिन्न नामो से विश्रुत है।

जैनदर्शन की यह धारणा है कि आत्मा के विकारो—राग-द्वेष आदि को साधना के द्वारा दूर किया जा-सकता है, और विकार जव पूर्णत निरस्त हो जाते हैं तो आत्मा की शक्तिया ज्ञान/सुख/वीर्य आदि सम्पूर्ण रूप मे उद्घाटित-उद्भासित हो जाती हैं। शक्तियो का सम्पूर्ण प्रकाश-विकास ही सर्वज्ञता है और सर्वज्ञ/आप्त-पुरुष की वाणी, वचन/कथन/प्ररूपणा—"आगम" के नाम से अभिहित होती है। आगम अर्थात् तत्त्वज्ञान, आत्म-ज्ञान तथा आचार-व्यवहार का सम्यक् परिवोध देने वाला शास्त्र/सूत्र/आप्तवचन।

सामान्यत सर्वज्ञ के वचनो/वाणी का सकलन नही किया जाता, वह विखरे सुमनो की तरह होती है, किन्तु विशिष्ट अतिशयसम्पन्न सर्वज्ञ पुरुष, जो धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करते हैं, सघीय जीवन पद्धति मे धर्म-साधना को स्थापित करते हैं, वे धर्मप्रवर्तक/अरिहत या तीर्थंकर कहलाते है। तीर्थंकर देव की जनकल्याणकारिणी वाणी को उन्ही के अतिशयसम्पन्न विद्वान् शिष्य गणधर सकलित कर "आगम" या शास्त्र का रूप देते है अर्थात् जिन-वचनरूप सुमनो की मुक्त वृष्टि जव मालारूप मे ग्रथित होती है तो वह "आगम" का रूप धारण करती है। वही आगम अर्थात् जिन-प्रवचन आज हम सव के लिए आत्म-विद्या या मोक्ष-विद्या का मूल स्रोत है।

"आगम" को प्राचीनतम भाषा मे "गणिपिटक" कहा जाता था। अरिहतो के प्रवचनरूप समग्र शास्त्र-द्वादशाग मे समाहित होते हैं और द्वादशाग/आचाराग-सूत्रकृताग आदि के अग-उपाग आदि अनेक भेदोपभेद विकसित हुए हैं। इस द्वादशागी का अध्ययन प्रत्येक मुमुक्षु के लिए आवश्यक और उपादेय माना गया है। द्वादशागी मे भी वारहवा अग विशाल एव समग्र श्रुतज्ञान का भण्डार माना गया है, उसका अध्ययन वहुत ही विशिष्ट प्रतिभा एव श्रुतसम्पन्न साधक कर पाते थे। इसलिए सामान्यत एकादशाग का अध्ययन साधको के लिए विहित हुआ तथा उसी ओर सबकी गति/मति रही।

जब लिखने की परम्परा नही थी, लिखने के साधनो का विकास भी अल्पतम था, तव आगमो/शास्त्रो/को स्मृति के आधार पर या गुरु-परम्परा से कठस्थ करके सुरक्षित रखा जाता था। सम्भवत इसलिए आगम ज्ञान को श्रुतज्ञान कहा गया और इसीलिए श्रुति/स्मृति जैसे सार्थक शब्दो का व्यवहार किया गया। भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के एक हजार वर्ष वाद तक आगमो का ज्ञान स्मृति/श्रुति परम्परा पर ही आधारित रहा। पश्चात् स्मृतिदौर्बल्य, गुरुपरम्परा का विच्छेद, दुष्काल-प्रभाव आदि अनेक कारणो से धीरे-धीरे आगमज्ञान लुप्त होता चला गया। महासरोवर का जल सूखता-सूखता गोष्पदमात्र रह गया। मुमुक्षु श्रमणो के लिए यह जहाँ चिन्ता का विषय था, वहाँ चिन्तन की तत्परता एव जागरूकता को चुनौती भी थी। वे तत्पर हुए श्रुतज्ञान-निधि के सरक्षण हेतु। तभी महान् श्रुतपारगामी देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने विद्वान् श्रमणो का एक सम्मेलन बुलाया और स्मृति-दोष से लुप्त होते आगम ज्ञान को सुरक्षित एव सजोकर रखने का आह्वान किया। सर्व-सम्मति से आगमो को लिपि-वद्ध किया गया।

जिनवाणी को पुस्तकारूढ करने का यह ऐतिहासिक कार्य वस्तुत आज की समग्र ज्ञान-पिपासु प्रजा के लिए एक अवर्णनीय उपकार सिद्ध हुआ। सस्कृति, दर्शन, धर्म तथा आत्म-विज्ञान की प्राचीनतम ज्ञानधारा को प्रवहमान रखने का यह उपक्रम वीरनिर्वाण के ९८० या ९९३ वर्ष पश्चात् प्राचीन नगरी वलभी (सौराष्ट्र) मे आचार्य श्री देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के नेतृत्व मे सम्पन्न हुआ। वैसे जैन आगमो की यह दूसरी अन्तिम वाचना थी, पर लिपिवद्ध करने का प्रथम प्रयास था। आज प्राप्त जैन सूत्रो का अन्तिम स्वरूप-सस्कार इसी वाचना मे सम्पन्न किया गया था।

पुस्तकारूढ होने के वाद आगमो का स्वरूप मूल रूप मे तो सुरक्षित हो गया, किन्तु काल-दोप, श्रमण-सघो के आन्तरिक मतभेद, स्मृतिदुर्वलता, प्रमाद एव भारतभूमि पर वाहरी आक्रमणो के कारण विपुल ज्ञान-भण्डारो का विध्वस आदि अनेकानेक कारणो से आगमज्ञान की विपुल सम्पत्ति, अर्थवोध की सम्यक् गुरु-परम्परा धीरे-धीरे क्षीण एवं विलुप्त होने मे नही रुकी। आगमो के अनेक महत्त्वपूर्ण पद, सन्दर्भ तथा उनके गूढार्थ का ज्ञान, छिन्न-विच्छिन्न होते चले गए। परिपक्व भापाज्ञान के अभाव मे, जो आगम हाथ से लिखे जाते थे, वे भी शुद्ध पाठ वाले नही होते, उनका सम्यक् अर्थ-ज्ञान देने वाले भी विरले ही मिलते। इस प्रकार अनेक कारणो से आगम की पावन धारा सकुचित होती गयी।

विक्रमीय सोलहवी शताव्दी मे वीर लोकाशाह ने इस दिशा मे क्रान्तिकारी प्रयत्न किया। आगमो के शुद्ध और यथार्थ अर्थज्ञान को निरूपित करने का एक साहसिक उपक्रम पुन चालू हुआ। किन्तु कुछ काल वाद उसमे भी व्यवधान उपस्थित हो गये। साम्प्रदायिक-विद्वेप, सैद्धातिक विग्रह तथा लिपिकारो का अत्यल्प ज्ञान आगमो की उपलब्धि तथा उसके सम्यक् अर्थवोध मे वहुत वडा विघ्न वन गया। आगम-अभ्यासियो को शुद्ध प्रतिया मिलना भी दुर्लभ हो गया।

उन्नीसवी शताव्दी के प्रथम चरण मे जव आगम-मुद्रण की परम्परा चली तो सुधी पाठको को कुछ सुविधा प्राप्त हुई। धीरे-धीरे विद्वत्-प्रयासो से आगमो की प्राचीन चूर्णिया, निर्युक्तिया, टीकायें आदि प्रकाश मे आई और उनके आधार पर आगमो का स्पष्ट-सुगम भाववोध सरल भापा मे प्रकाशित हुआ। इससे आगम-स्वाध्यायी तथा ज्ञान-पिपासु जनो को सुविधा हुई। फलत आगमो के पठन-पाठन की प्रवृत्ति बढी है। मेरा अनुभव है, आज पहले से कही अधिक आगम-स्वाध्याय की प्रवृत्ति वढी है, जनता मे आगमो के प्रति आकर्पण व रुचि जागृत हो रही है। इस रुचि-जागरण मे अनेक विदेशी आगमज्ञ विद्वानो तथा भारतीय जैनेतर विद्वानो की आगम-श्रुत-सेवा का भी प्रभाव व अनुदान है, इसे हम सगौरव स्वीकारते हैं।

आगम-सम्पादन-प्रकाशन का यह सिलसिला लगभग एक शताव्दी से व्यवस्थित चल रहा है। इस महनीय-श्रुत-सेवा मे अनेक समर्थ श्रमणो, पुरुपार्थी विद्वानो का योगदान रहा है। उनकी सेवायें नीव की ईंट की तरह आज भले ही अदृश्य हो, पर विस्मरणीय तो कदापि नही, स्पष्ट व पर्याप्त उल्लेखो के अभाव मे हम अधिक विस्तृत रूप मे उनका उल्लेख करने मे असमर्थ हैं, पर विनीत व कृतज्ञ तो हैं ही। फिर भी स्थानकवासी जैन परम्परा के कुछ विशिष्ट-आगम श्रुत-सेवी मुनिवरो का नामोल्लेख अवश्य करना चाहेंगे।

आज से लगभग साठ वर्प पूर्व पूज्य श्री अमोलकऋपिजी महाराज ने जैन आगमो—३२ सूत्रो का प्राकृत से खडी वोली मे अनुवाद किया था। उन्होने अकेले ही वत्तीस सूत्रो के अनुवाद का कार्य सिर्फ ३ वर्ष व १५ दिन मे पूर्ण कर अद्भुत कार्य किया। उनकी दृढ लगनशीलता, साहस एव आगमज्ञान की गम्भीरता उनके कार्य से ही स्वतः परिलक्षित होती है। वे ३२ ही आगम अल्प समय मे प्रकाशित भी हो गये।

इससे आगमपठन वहुत सुलभ व व्यापक हो गया और स्थानकवासी-तेरापथी समाज तो विशेप उपकृत हुआ।

गुरुदेव श्री जोरावरमल जी महाराज का संकल्प

मैं जब प्रात स्मरणीय गुरुदेव स्वामीजी श्री जोरावरमलजी म० के सान्निध्य मे आगमो का अध्ययन-अनुशीलन करता था तब आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित आचार्य अभयदेव व शीलाक की टीकाओ से युक्त कुछ आगम उपलब्ध थे। उन्ही के आधार पर मैं अध्ययन-वाचन करता था। गुरुदेवश्री ने कई वार अनुभव किया—यद्यपि यह सस्करण काफी श्रमसाध्य व उपयोगी है, अव तक उपलब्ध सस्करणो मे प्राय शुद्ध भी है, फिर भी अनेक स्थल अस्पष्ट हैं, मूलपाठो मे व वृत्ति मे कही-कही अशुद्धता व अन्तर भी है। सामान्य जन के लिये दुरूह तो हैं ही। चू कि गुरुदेवश्री स्वय आगमो के प्रकाण्ड पण्डित थे, उन्हे आगमो के अनेक गूढार्थ गुरु-गम से प्राप्त थे। उनकी मेधा भी व्युत्पन्न व तर्क-प्रवण थी, अत वे इस कमी को अनुभव करते थे और चाहते थे कि आगमो का शुद्ध, सर्वोपयोगी ऐसा प्रकाशन हो, जिससे सामान्य ज्ञानवाले श्रमण-श्रमणी एव जिज्ञासुजन लाभ उठा सकें। उनके मन की यह तडप कई वार व्यक्त होती थी। पर कुछ परिस्थितियो के कारण उनका यह स्वप्न-सकल्प साकार नही हो सका, फिर भी मेरे मन मे प्रेरणा वनकर अवश्य रह गया।

इसी अन्तराल मे आचार्य श्री जवाहरलाल जी महाराज, श्रमणसघ के प्रथम आचार्य जैनधर्मदिवाकर आचार्य श्री आत्माराम जी म०, विद्वद्रत्न श्री घासीलालजी म० आदि मनीपी मुनिवरो ने आगमो की हिन्दी, सस्कृत, गुजराती आदि मे सुन्दर विस्तृत टीकायें लिखकर या अपने तत्त्वावधान मे लिखवा कर कमी को पूरा करने का महनीय प्रयत्न किया है।

श्वेताम्वर मूर्तिपूजक आम्नाय के विद्वान् श्रमण परमश्रुतसेवी स्व० मुनि श्री पुण्यविजयजी ने आगम-सम्पादन की दिशा मे वहुत व्यवस्थित व उच्चकोटि का कार्य प्रारम्भ किया था। विद्वानो ने उसे वहुत ही सराहा। किन्तु उनके स्वर्गवास के पश्चात् उस मे व्यवधान उत्पन्न हो गया। तदपि आगमज्ञ मुनि श्री जम्बूविजयजी आदि के तत्त्वावधान मे आगम-सम्पादन का सुन्दर व उच्चकोटि का कार्य आज भी चल रहा है।

वर्तमान मे तेरापथ सम्प्रदाय मे आचार्य श्री तुलसी एव युवाचार्य महाप्रज्ञजी के नेतृत्व मे आगम-सम्पादन का कार्य चल रहा है और जो आगम प्रकाशित हुए हैं उन्हे देखकर विद्वानो को प्रसन्नता है। यद्यपि उनके पाठ-निर्णय मे काफी मतभेद की गु जाइश है। तथापि उनके श्रम का महत्त्व है। मुनि श्री कन्हैयालाल जी म० "कमल" आगमो की वक्तव्यता को अनुयोगो मे वर्गीकृत करके प्रकाशित कराने की दिशा मे प्रयत्नशील है। उनके द्वारा सम्पादित कुछ आगमो मे उनकी कार्यशैली की विशदता एव मौलिकता स्पष्ट होती है।

आगम साहित्य के वयोवृद्ध विद्वान् प० श्री बेचरदासजी दोशी, विश्रुत-मनीषी श्री दलसुखभाई मालवणिया जैसे चिन्तनशील प्रज्ञापुरुष आगमो के आधुनिक सम्पादन की दिशा मे स्वय भी कार्य कर रहे हैं तथा अनेक विद्वानो का मार्ग-दर्शन कर रहे है। यह प्रसन्नता का विषय है।

इस सब कार्य-शैली पर विहगम अवलोकन करने के पश्चात् मेरे मन मे एक सकल्प उठा। आज प्राय सभी विद्वानो की कार्यशैली काफी भिन्नता लिये हुए है। कही आगमो का मूल पाठ मात्र प्रकाशित किया जा रहा है तो कही विशाल व्याख्याएँ की जा रही हैं। एक पाठक के लिए दुर्वोध है तो दूसरी जटिल। सामान्य पाठक को सरलतापूर्वक आगमज्ञान प्राप्त हो सके एतदर्थ मध्यमार्ग का अनुसरण आवश्यक है। आगमो का ऐसा सस्करण होना चाहिए जो सरल हो, सुबोध हो, सक्षिप्त हो और प्रामाणिक हो। मेरे गुरुदेव ऐसा ही चाहते थे। इसी भावना को लक्ष्य मे रख कर मैंने ५-६ वर्ष पूर्व इस विषय की चर्चा प्रारम्भ की

थी, सुदीर्घ चिन्तन के पश्चात् वि स २०३६ वैशाख शुक्ला दशमी, भगवान् महावीर कैवल्यदिवस को यह दृढ निश्चय घोषित कर दिया और आगमवत्तीसी का सम्पादन-विवेचन कार्य प्रारम्भ भी। इस साहसिक निर्णय मे गुरुभ्राता शासनसेवी स्वामी श्री व्रजलाल जी म की प्रेरणा/प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन मेरा प्रमुख सम्वल बना है। साथ ही अनेक मुनिवरो तथा सद्गृहस्थो का भक्ति-भाव भरा सहयोग प्राप्त हुआ है, जिनका नामोल्लेख किये बिना मन सन्तुष्ट नही होगा। आगम अनुयोग शैली के सम्पादक मुनि श्री कन्हैयालालजी म० "कमल", प्रसिद्ध साहित्यकार श्री देवेन्द्रमुनिजी म० शास्त्री, आचार्य श्री आत्मारामजी म० के प्रशिष्य भण्डारी श्री पदमचन्दजी म० एव प्रवचन-भूषण श्री अमरमुनिजी, विद्वद्रत्न श्री ज्ञानमुनिजी म०, स्व० विदुषी महासती श्री उज्ज्वलकु वरजी म० की सुशिष्याए महासती दिव्यप्रभाजी, एम ए, पी-एच डी, महासती मुक्तिप्रभाजी एम ए, पी-एच डी तथा विदुषी महासती श्री उमरावकु वरजी म० 'अर्चना', विश्रुत विद्वान् श्री दलसुखभाई मालवणिया, सुख्यात विद्वान् प० श्री शोभाचन्द्र जी भारिल्ल, स्व प श्री हीरालालजी शास्त्री, डा० छगनलालजी शास्त्री एव श्रीचन्दजी सुराणा "सरस" आदि मनीषियो का सहयोग आगमसम्पादन के इस दुरूह कार्य को सरल बना सका है। इन सभी के प्रति मन आदर व कृतज्ञ भावना से अभिभूत है। इसी के साथ सेवा-सहयोग की दृष्टि से सेवाभावी शिष्य मुनि विनयकुमार एव महेन्द्र मुनि का साहचर्य-सहयोग, महासती श्री कानकु वरजी, महासती श्री झणकारकु वरजी का सेवाभाव सदा प्रेरणा देता रहा है। इस प्रसग पर इस कार्य के प्रेरणा-स्रोत स्व० श्रावक चिमनसिंहजी लोढा, स्व० श्री पुखराजजी सिसोदिया का स्मरण भी सहजरूप मे हो आता है जिनके अथक प्रेरणा-प्रयत्नो से आगम समिति अपने कार्य मे इतनी शीघ्र सफल हो रही है। दो वर्ष के अल्पकाल मे ही तेरह आगम ग्रन्थो का मुद्रण तथा करीब १५-२० आगमो का अनुवाद-सम्पादन हो जाना हमारे सव सहयोगियो की गहरी लगन का द्योतक है।

मुझे सुदृढ विश्वास है कि परम श्रद्धेय स्वर्गीय स्वामी श्री हजारीमलजी महाराज आदि तपोपूत आत्माओ के शुभाशीर्वाद से तथा हमारे श्रमणसघ के भाग्यशाली नेता राष्ट्र-सत आचार्य श्री आनन्दऋषिजी म० आदि मुनिजनो के सद्भाव-सहकार के बल पर यह सकल्पित जिनवाणी का सम्पादन-प्रकाशन कार्य शीघ्र ही सम्पन्न होगा।

इसी शुभाशा के साथ,

— मुनि मिश्रीमल "मधुकर"
(युवाचार्य)



विषयानुक्रमणिका

शीर्षक	पृष्ठ
आरम्भ	३
चैत्य-वर्णन	६
राजा सेय	८
रानी धारिणी	९
भगवान् का पदार्पण और राजा का दर्शनार्थ गमन	१०
सूर्याभदेव द्वारा जम्बूद्वीपदर्शन	११
सूर्याभदेव द्वारा भगवान् की स्तुति	१३
सूर्याभदेव की आभियोगिक देवो को आज्ञा	१४
आभियोगिक देवो द्वारा आज्ञापालन	१७
सवर्तक वायु की विकुर्वणा	१९
अभ्र-बादलो की विकुर्वणा	२०
पुष्प-मेघो की रचना	२०
आभियोगिक देवो का प्रत्यावर्तन	२१
सूर्याभदेव की उद्घोषणा एव आदेश	२२
सूर्याभदेव की उद्घोषणा की प्रतिक्रिया	२४
सूर्याभदेव द्वारा विमाननिर्माण का आदेश	२४
आभियोगिक देवो द्वारा विमान-रचना	२६
मणियो का वर्ण	२८
मणियो का गध-वर्णन	३०
मणियो का स्पर्श	३१
प्रेक्षागृह-निर्माण	३२
रगमच आदि की रचना	३३
सिंहासन की रचना	३३
सिंहासन की चतुर्दिग्वर्त्ती भद्रासन-रचना	३५
समग्र यान-विमान का सौन्दर्य-वर्णन	३५
आभियोगिक देव द्वारा आज्ञा-पूर्त्ति की सूचना	३६
सूर्याभदेव का आमलकल्पा नगरी की ओर प्रस्थान	३८
सूर्याभदेव का समवसरण मे आगमन	४०
सूर्याभदेव की जिज्ञासा का समाधान	४४
सूर्याभदेव द्वारा मनोभावना का निवेदन	४५
वाद्यो और वाद्यवादको की रचना	४८
सूर्याभदेव द्वारा नृत्य-गान-वादन का आदेश	४९
नृत्य-गान आदि का रूपक	५१

नाट्याभिनयो का प्रदर्शन ५२
भगवान् महावीर के जीवन-प्रसगो का अभिनय ५७
नाट्याभिनय का उपसहार ५८
गौतमस्वामी की जिज्ञासा भगवान का समाधान ६०
सूर्याभदेव के विमान का अवस्थान और वर्णन ६१
सूर्याभविमान के द्वारो का वर्णन ६३
द्वारस्थित पुतलिया ६६
द्वारो के उभय पार्श्ववर्ती तोरण ७०
द्वारस्थ ध्वजाओ का वर्णन ७४
द्वारवर्ती भौमो (विशिष्ट स्थानो) का वर्णन ७४
विमान के वनखण्डो का वर्णन ७५
मणियो और तृणो की ध्वनियाँ ७६
वनखडवर्ती वापिकाओ आदि का वर्णन ७८
उत्पात पर्वतो आदि की शोभा ८०
वनखडवर्ती गृहो का वर्णन ८१
वनखडवर्ती मडपो का वर्णन ८१
वनखण्डनवर्ती प्रासादावतसक ८२
उपकारिकालयन का वर्णन ८५
पद्मवरवेदिका का वर्णन ८५
मुख्य प्रासादावतसक का वर्णन ९०
सुधर्मा सभा का वर्णन ९१
स्तूप-वर्णन ९३
चैत्यवृक्ष ९४
माहेन्द्र-ध्वज ९५
सुधर्मासभावर्ती मनोगुलिकायें, गोमानसिकायें ९६
माणवक चैत्य स्तम्भ ९७
देवशय्या ९८
आयुधगृह-शस्त्रागार ९९
सिद्धायतन ९९
उपपात आदि सभाए १०२
पुस्तकरत्न एव नन्दापुष्करिणी १०३
उपपातानन्तर सूर्याभदेव का चिन्तन १०४
सामानिक देवो द्वारा कृत्य-सकेत १०५
सूर्याभदेव का अभिषेक-महोत्सव १०७
अभिषेककालीन देवोल्लास १११
अभिषेकानतर सूर्याभदेव का अलकरण ११५

सूर्याभदेव द्वारा कार्यनिश्चय ११६
सिद्धायतन का प्रमार्जन ११७
अरिहंत-सिद्ध भगवन्तो की स्तुति ११८
सूर्याभदेव द्वारा सिद्धायतन के देवच्छन्दक आदि की प्रमार्जना ११९
आभियोगिक देवो द्वारा आज्ञापालन १२५
सूर्याभदेव का सभा-वैभव १२६
सूर्याभदेव विषयक गौतम की जिज्ञासा १२७
केकय अर्ध जनपद और प्रदेशी राजा १२८
रानी सूर्यकान्ता और युवराज सूर्यकान्त १३१
चित्त सारथी १३१
कुणाला जनपद, श्रावस्ती नगरी, जितशत्रु राजा १३२
चित्तसारथी का श्रावस्ती की ओर प्रयाण १३३
श्रावस्ती नगरी मे केशी कुमारश्रमण का पदार्पण १३६
दर्शनार्थ परिषदा का गमन और चित्त की जिज्ञासा १३८
चित्त सारथी का दर्शनार्थ गमन १४०
केशी श्रमण की देशना १४१
चित्त की केशी कुमारश्रमण से सेयविया पधारने की प्रार्थना १४५
केशीकुमार श्रमण का उत्तर १४७
चित्त की उद्यानपालको को आज्ञा १४९
केशी कुमारश्रमण का सेयविया मे पदार्पण १५१
चित्त का प्रदेशी राजा को प्रतिबोध देने का निवेदन १५२
केशी कुमारश्रमण का उत्तर १५४
प्रदेशी राजा को लाने हेतु चित्त की युक्ति १५६
केशी कुमारश्रमण को देखकर प्रदेशी का चिन्तन १५८
तज्जीव-तच्छरीरवाद मडन-खडन १६७
प्रदेशी की परपरागत मान्यता का निराकरण १९३
प्रदेशी की प्रतिक्रिया एव श्रावकधर्म-ग्रहण १९७
प्रदेशी द्वारा कृत राज्यव्यवस्था २०१
सूर्यकान्ता रानी का षड्यंत्र २०२
प्रदेशी का सलेखना-मरण २०३
सूर्याभदेव का भावी जन्म २०४
माता-पिता द्वारा कृत जन्मादि सस्कार २०५
दृढप्रतिज्ञ का लालन-पालन २०७
दृढप्रतिज्ञ का कलाशिक्षण २०७
कलाचार्य का सम्मान २०९
दृढप्रतिज्ञ की भोगसमर्थता २०९
दृढप्रतिज्ञ की अनासक्ति २११
उपसहार २१३

प्रस्तावना

राजप्रश्नीयसूत्र : एक समीक्षात्मक अध्ययन

धर्म : विश्लेषण

भारतीय साहित्य मे 'धर्म' शब्द व्यापक रूप से व्यवहृत हुआ है। आध्यात्मिक हो या दार्शनिक साहित्य, आयुर्वेदिक हो या ज्योतिषशास्त्र हो, सर्वत्र 'धर्म' शब्द के सम्बन्ध मे चिन्तन किया गया है। उस सम्बन्ध मे विशालकाय ग्रन्थ निर्मित हुए हैं। विभिन्न व्याख्याएँ और परिभाषाएँ धर्म शब्द को लेकर लिखी गई है। वैदिक युग से लेकर आधुनिक युग तक लाखो चिन्तको ने धर्म शब्द को अपना चिन्तन का विषय बनाया है और धर्म के नाम पर अनेक विवाद भी हुए हैं। पारस्परिक मतभेदो के कारण धर्म के विराट् सागर मे विवाद के तूफान उठे हैं, तर्क-वितर्क के भँवरो ने जनमानस को विक्षुब्ध किया है। तथापि धर्म के स्वरूप की जिज्ञासा प्रत्येक मानव मे आज भी है। हम धर्म शब्द की विभिन्न परिभाषाओ पर चिन्तन न कर सक्षेप मे ही जैन मनीषियो ने धर्म पर जो गहराई से अनुचिन्तन किया है, उसे यहाँ प्रस्तुत कर रहे है।

परमार्थत धर्म वस्तु का स्वभाव है। व्यवहारत क्षमा, निर्लोभता, सरलता आदि सद्गुणो की अपेक्षा से वह दश प्रकार का है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय की दृष्टि से धर्म के तीन प्रकार हैं। जीवो की रक्षा करना भी धर्म है,[1] इसलिए यह स्पष्ट है जो आत्मा के निज गुण हैं, वह धर्म है और जो पुद्गलो का स्वभाव है, वह आत्मा के लिए धर्म नही किन्तु परभाव है, विभाव है और वही अधर्म है। जो स्वभाव है, वह सदा बना रहता है और जो विभाव है वह सदा बना नही रहता है। पानी को गर्म करने पर भी पानी हमेशा गर्म नही रहता, क्योकि पानी का स्वभाव शीतलता है। मात्र आग के कारण उसमे उष्णता आती है। वैसे ही क्रोधादि भाव कर्म के कारण उत्पन्न होते है, वे आत्म-स्वभाव नही, किन्तु विभाव हैं। इसीलिए उन्हे अधर्म कहा गया है।

गणधर गौतम ने भगवान् महावीर के समक्ष जिज्ञासा प्रस्तुत की—आत्मा का स्वरूप क्या है ? कषाय आदि आत्मा का स्वरूप है या समता आदि ? समाधान मे भगवान् ने कहा—समता ही आत्मा का स्वभाव है, न कि कषाय। समत्व को प्राप्त कर लेना ही आत्म-स्वरूप को प्राप्त कर लेना है।[2] श्रमण भगवान् महावीर का ही नही, आधुनिक युग के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक 'फ्रायड' का भी यह मन्तव्य है—"चेत्त-जीवन और स्नायु-जीवन का स्वभाव यह है कि वह विक्षोभ और तनाव को नष्ट कर समत्व की सस्थापना करता है।" विक्षोभ, तनाव और मानसिक द्वन्द्व से ऊपर उठ कर शान्त, निर्द्वन्द्व मन स्थिति को प्राप्त करना ही वस्तुत धर्म है। भगवान् महावीर

---

१ धम्मो वत्थुसहावो, खमादिभावो य दसविहो धम्मो।
  रयणत्तय च धम्मो, जीवाण रक्खण धम्मो॥

२ आया सामाइए।

ने भी आचाराग मे स्पष्ट शब्दो मे कहा—"समियाए धम्मे आरियेहिं पवेइए[3]"—आर्यों ने समत्व भाव को धर्म कहा है।

भाषाशास्त्र की दृष्टि से धर्म शब्द 'धृ' धातु से निर्मित है, जिसका अर्थ है—धारण करना। आत्मा का धर्म है सद्गुणो को धारण करना। ये सद्गुण बाहर से लाये नही जाते, वे विभाव के हटते ही स्वत· प्रकट हो जाते हैं। उदाहरण के रूप मे अग्नि के सयोग के हटते ही पानी स्वत शीतल हो जाता है। धर्म के लिए अधर्म को छोडना होता है, विभाव को दूर करना होता है। जैसे—बादल के हटने पर सूर्य का चमचमाता हुआ प्रकाश प्रकट हो जाता है, वैसे ही अधर्म के बादल छटते ही धर्म का दिव्य आलोक जगमगा पडता है। धर्म ऊपर से आरोपित नही होता और जो आरोपित है, वह अधर्म है। उस अधर्म ने ही मानव मे धर्म के प्रति घृणा पैदा की। धर्म का दम्भ अधार्मिकता से भी अधिक भयावह है। क्योकि इसमे अधर्म को छिपाने के लिए ढोग किया जाता है। यह धर्म के नाम पर आत्म-प्रवञ्चना है। धर्म से आकुलता-व्याकुलता नष्ट होकर निर्मलता प्राप्त होती है।

धर्म के दो प्रकार : श्रुतधर्म और चारित्रधर्म—

धर्म के सम्बन्ध मे चिन्तन करते हुए स्थानाग मे धर्म के दो भेद बताये हैं[4]—श्रुतधर्म और चारित्रधर्म। ये दोनो धर्म मोक्ष रूपी रथ के चक्र हैं। श्रुतधर्म से धर्म का सही स्वरूप समझा जाता है, इसलिए चारित्रधर्म से पूर्व उसका उल्लेख किया गया है। यहाँ हम चारित्रधर्म का विश्लेषण न कर श्रुतधर्म पर चिन्तन करेंगे। श्रुतधर्म पर चिन्तन करने से पूर्व श्रुत शब्द को जानना आवश्यक है। सामान्यत श्रुत का अर्थ है—सुनना। क्योकि 'श्रु' धातु से श्रुत शब्द निष्पन्न हुआ है। पूज्यपाद[5] ने लिखा है—'श्रुत-ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होने पर निरूप्यमान पदार्थ जिसके द्वारा सुना जाता है, जो सुनना या सुनाना मात्र है, वह श्रुत है'। आचार्य अकलक[6] ने भी यही अर्थ 'तत्त्वार्थराजवार्तिक' मे प्रस्तुत किया है। पूज्यपाद ने यह स्पष्ट किया है कि 'श्रुत शब्द' शब्द सुनने रूप अर्थ का मुख्य रूप से प्रतिपादक होने पर भी वह ज्ञानविशेष मे ही रूढ है।[7] केवलमात्र कानो से सुना गया शब्द ही श्रुत नही है।[8] जैन दार्शनिको को मुख्य रूप से श्रुत से ज्ञान अर्थ ही इष्ट है, पर उपचार से श्रुत का शब्दात्मक होना भी उन्हे ग्राह्य है। विस्तार मे न जाकर सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि श्रुतज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होने पर मन और इन्द्रिय की सहायता से अपने मे नियत अर्थ को प्रतिपादन करने मे

---

३ आचाराग—१।८।२

४ दुविहे धम्मे पन्नत्ते, तजहा—सुयधम्मे चेव, चरित्तधम्मे चेव। —स्थानाग स्थान २, उ १

५ तदावरणकर्मक्षयोपशमे सति निरूप्यमाण श्रूयते अनेन शृणोति श्रवणमात्र वा श्रुतम्।

—सर्वा सि (१।९), पृ-६६

६ श्रुतशब्द कर्मसाधनश्च।२। किंच पूर्वोक्तविषयसाधनश्चेति वर्तते। श्रुतावरणक्षयोपशमाद्यन्तरग-वहिरग हेतुसन्निधाने सति श्रूयतेस्मेति श्रुतम्। कर्तरि श्रुतपरिणत आत्मैव शृणोतीति श्रुतम्। भेदविवक्षाया श्रूयतेऽनेनेति श्रुतम्, श्रवणमात्र वा। —(त वा [१।९।२])

७ श्रुतशब्दोऽय श्रवणमुपादाय व्युत्पादितोऽपि रूढिवशात् कस्मिंश्चिज्ज्ञानविशेषे वर्तते।

—सर्वा सि (१।२०), पृष्ठ-८३

८ ज्ञानमित्यनुवर्तनात्।
श्रवण हि श्रुतज्ञान न पुन शब्दमात्रकम्॥ —त श्लो वा व (३।२०।२०), पृष्ठ-५९८

ममर्थ ज्ञान श्रुतज्ञान है ।[9]

प्राकृत 'सुय' शब्द के सस्कृत मे चार रूप होते हैं—श्रुत, सूत्र, सूक्त (सुत्त) और स्यूत। आचार्यों ने इन रूपों के अनुसार इनकी व्याख्या की है। आचार्य अभयदेव ने श्रुत का अर्थ किया है—'द्वादश अगशास्त्र अथवा जीवादि तत्त्वो का परिज्ञान'।[10]

जैसे सूत्र मे माला के मनके पिरोये हुए होते है उसी प्रकार जिसमे अनेक प्रकार के अर्थ ओत-प्रोत होते हैं, वह सूत्र है। जिसके द्वारा अर्थ सूचित होता है वह सूत्र है। जैसे—प्रसुप्त मानव के पास यदि कोई वार्तालाप करता है पर निद्राधीन होने के कारण वह वार्तालाप के भाव से अपरिचित रहता है, वैसे ही विना व्याख्या पढ़े जिसका बोध न हो मके, वह सूत्र है। अपर शब्दो मे यो कह सकते है—जिसके द्वारा अर्थ जाना जाय अथवा जिसके आश्रय से अर्थ का स्मरण किया जाय या अर्थ जिसके साथ अनुस्यूत हो, वह सूत्र है।[11]

इस प्रकार श्रुत या सूत्र का स्वाध्याय करना, श्रुत के द्वारा जीवादि तत्त्वो और पदार्थों का यथार्थ स्वरूप जानना श्रुतधर्म है।

श्रुतधर्म के भेद—

श्रुतधर्म के भी दो प्रकार हैं—सूत्ररूप श्रुतधर्म और अर्थरूप श्रुतधर्म।[12] अनुयोगद्वार सूत्र मे श्रुत के द्रव्यश्रुत और भावश्रुत ये दो प्रकार वताये हैं। जो पत्र या पुस्तक पर लिखा हुआ है वह 'द्रव्यश्रुत' है और जिसे पढने पर साधक उपयोगयुक्त होता है वह 'भावश्रुत' है।

श्रुतज्ञान का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए कहा गया है—जैसे सूत्र—धागा पिरोई हुई सूई गुम हो जाने पर भी पुन मिल जाती है, क्योकि धागा उसके साथ है, वैसे ही सूत्रज्ञान रूप धागे से जुडा हुआ व्यक्ति आत्मज्ञान मे वचित नही होता। आत्मज्ञान युक्त होने से वह समार मे परिभ्रमण नही करता।

नन्दीसूत्र मे श्रुत के दो प्रकार वताये है—सम्यक्श्रुत और मिथ्याश्रुत। वहाँ पर सम्यक्श्रुत और मिथ्याश्रुत की मूची भी दी है और अन्त मे स्पष्ट रूप से लिखा है—"मम्यक्श्रुत कहलाने वाले शास्त्र भी मिथ्यादृष्टि के हाथों मे पडकर मिथ्यात्व वुद्धि से परिगृहीत होने के कारण मिथ्याश्रुत वन जाते हैं। इसके विपरीत मिथ्याश्रुत कहलाने वाले शास्त्र सम्यग्दृष्टि के हाथो मे पडकर सम्यक्त्व से परिगृहीत होने के कारण मम्यक्-श्रुत वन जाते है।"[13]

---

९ इदियमणोणिमित्त ज विण्णाण सुताणुसारेण। णिअयत्थुत्ति समत्थ त भावसुत मती सेस।
—विशे आ भा (भा १), गा ९९

१०. दुर्गतौ प्रपततो जीवान् रुणद्धि, सुगतौ च तान् धारयतीति धर्म। श्रुत द्वादशाग तदेव धर्म श्रुतधर्म।
—स्थानागवृत्ति

११ सूत्र्यन्ते सूच्यन्ते वाऽर्था अनेनेति सूत्रम्। सुस्थिततत्वेन व्यापित्वेन च सुष्ठूक्तत्वाद् वा सूक्त, सुप्तमिव वा सुप्तम्। सिंचति क्षरति यस्मादर्थ तस्मात् सूत्र निरुक्तविधिना वा सूचयति श्रवति श्रूयते, स्मर्यते वा येनार्थ। —स्थानागवृत्ति

१२ सुयधम्मे दुविहे पण्णत्ते तजहा—सुत्तसुयधम्मे चेव अत्थसुयधम्मे चेव। —स्थानाग, स्था २

१३ एआइ मिच्छादिट्ठिस्स मिच्छत्तपरिग्गहियाइ मिच्छासुय।
एआइ चेव सम्मदिट्ठिस्स सम्मत्तपरिग्गहियाइ सम्मसुय॥ —नन्दीसूत्र-श्रुतज्ञान प्रकरण

श्रुत के अक्षरश्रुत और अनक्षरश्रुत, सज्ञीश्रुत और असज्ञीश्रुत आदि चौदह भेद किये गये हैं। उनमे सम्यक्श्रुत वह है जो वीतरागप्ररूपित है। सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तीर्थंकर भगवान् ने अपने आपको देखा एव समूचे लोक को भी हस्तामलकवत् देखा। भगवान् ने सत्य का प्रतिपादन किया। उन्होंने बन्ध, बन्धहेतु, मोक्ष, और मोक्ष-हेतु का स्वरूप प्रकट किया। भगवान् की वह पावन वाणी आगम बन गई। इन्द्रभूति गौतम आदि प्रमुख शिष्यो ने उस वाणी को सूत्र रूप मे गूथा, जिससे आगम के सूत्रागम और अर्थागम ये दो विभाग हुए। भगवान् के प्रकीर्ण उपदेश को 'अर्थागम' और उसके आधार पर की गई सूत्ररचना को 'सूत्रागम' कहा गया। यह आगम-साहित्य आचार्यों के लिए महान् निधि थी। इसलिए वह 'गणिपिटक' कहलाया। उस गुम्फन के १ आचार २ सूत्रकृत ३ स्थान ४ समवाय ५ भगवती ६ ज्ञाताधर्मकथा ७ उपासकदशा ८ अन्तकृद्दशा ९ अनुत्तरौप-पातिकदशा १० प्रश्नव्याकरण ११ विपाक १२ दृष्टिवाद, ये मौलिक बारह भाग हुए, इसलिए उसका दूसरा नाम 'द्वादशागी' है। इस तरह प्रणेता की दृष्टि से आगम-साहित्य 'अगप्रविष्ट' और 'अनगप्रविष्ट' इन दो भागो मे विभक्त हुआ। भगवान् महावीर के प्रधान शिष्य गणधरो ने जिस साहित्य की रचना की, वह 'अगप्रविष्ट' है। स्थविरो ने भगवान् महावीर की वाणी के आधार से जिस साहित्य की सरचना की वह 'अनगप्रविष्ट' है। बारह अगो के अतिरिक्त सारा आगमसाहित्य अनगप्रविष्ट के अन्तर्गत आता है। द्वादशागी का आगम-साहित्य मे प्रमुखतम स्थान रहा है। वह स्वत प्रमाण है। द्वादशागी के अतिरिक्त जो आगम हैं, वे परत प्रमाण हैं, अर्थात् जो द्वादशागी से अविरुद्ध हैं वे प्रमाण हैं, शेष अप्रमाण हैं।

राजप्रश्नीय : नामकरण

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जैनो का आधारभूत प्राचीनतम साहित्य आगम हैं और वह श्रुत भी है। राजप्रश्नीयसूत्र की परिगणना अगबाह्य आगमो मे की गई है। वह द्वितीय उपाग है। आचार्य देववाचक ने इसका नाम 'रायपसेणिय' दिया है।[१४] आचार्य मलयगिरि ने 'रायपसेणीअ' लिखा है। वे इसका सस्कृत रूप 'राज-श्नीयम्' करते है। सिद्धसेनगणी ने तत्त्वार्थवृत्ति मे 'राजप्रसेनकीय' लिखा है। तो मुनिचन्द्र सूरि ने 'राजप्रसेनजित' लिखा है।

अक्रियावाद : एक चिन्तन

आचार्य मलयगिरि ने रायपसेणीय को सूत्रकृताग का उपाग माना है। उनका मन्तव्य है कि सूत्रकृताग मे क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी, विनयवादी प्रभृति पाखण्डियो के तीन सौ तिरेसठ मत प्रतिपादित हैं, उनमे से अक्रियावादी मत को आधार बनाकर राजा प्रदेशी ने केशी श्रमण से प्रश्नोत्तर किये। सूत्रकृताग[१५] और भगवती[१६] मे चार समवसरणो मे एक अक्रियावादी बताया है। वहाँ पर अक्रियावादी का अर्थ अनात्मवादी—क्रिया के अभाव को मानने वाला, केवल चित्तशुद्धि को आवश्यक और क्रिया को अनावश्यक मानने वाला—किया है। स्थानाग सूत्र मे[१७] अक्रियावादी शब्द का प्रयोग अनात्मवादी और एकान्तवादी दोनो अर्थो मे मिलता है। वहाँ अक्रियावादी के एकवादी, अनेकवादी, मितवादी, निर्मितवादी, सातवादी, समुच्छेदवादी, नित्यवादी, असत्

---

१४ नन्दीसूत्र, सूत्र-८३

१५ सूत्रकृताग—१।१२।१

१६, भगवती—३०।१

१७ अट्ठ अकिरियावाई पण्णत्ता तजहा—एगावाई, अणेगावाई, मितवाई, णिम्मितवाई, सायवाई, समुच्छेदवाई, णित्तावाई, णसतपरलोगवाई।—स्थानाग-८।२२

परलोकवादी ये आठ प्रकार बताये है। उनमे से छह वाद एकान्त दृष्टि वाले है। समुच्छेदवाद और नास्ति-मोक्ष-परलोकवाद ये दो अनात्मवाद हैं। नयोपदेश ग्रन्थ मे उपाध्याय यशोविजय जी ने धर्म्यंश की दृष्टि से जैसे—चार्वाक को नास्तिक अक्रियावादी कहा है वैसे ही धर्मांश की दृष्टि से सभी एकान्तवादियो को नास्तिक कहा है।[18]

सूत्रकृतागनिर्युक्ति मे अक्रियावादियो के चौरासी प्रकार बताये है। यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा जा सकता कि उस समय जिन वादो का उल्लेख किया गया है उनकी कौनसी दार्शनिक धारायें थी ? पर वर्त्तमान मे उन धाराओ के सवाहक दार्शनिक इस प्रकार है—

१ एकवादी

१ ब्रह्माद्वैतवादी—वेदान्त।
२ विज्ञानाद्वैतवादी—बौद्ध।
३. शब्दाद्वैतवादी—वैयाकरण।

ब्रह्माद्वैतवादी की दृष्टि से ब्रह्म, विज्ञानाद्वैतवादी की दृष्टि से विज्ञान और शब्दाद्वैतवादी की दृष्टि से शब्द पारमार्थिक तत्त्व है। शेष तत्त्व अपारमार्थिक हैं। अत ये सारे दर्शन एकवादी है। अनेकान्त दृष्टि के आलोक मे सभी पदार्थ सग्रहनय की दृष्टि से एक है और व्यवहारनय की दृष्टि से अनेक है।

अनेकवादी—

वैशेषिक दर्शन अनेकवादी है। उसके अभिमतानुसार धर्म-धर्मी, अवयव-अवयवी पृथक्-पृथक् है।[19]

३. मितवादी

१ जीवो की सख्या परिमित मानने वाले—इनके मन्तव्य पर स्याद्वादमञ्जरी टीका मे चिन्तन किया गया है।[20]

२ आत्मा को अगुष्ठपर्व या श्यामाक तदुल जितना मानने वाले—इस सम्बन्ध मे बृहदारण्यक उपनिषद्,[21] छान्दोग्योपनिषद्,[22] कौपीतकी उपनिषद्,[23] मुण्डक उपनिषद्[24] आदि विविध उपनिषदो का मत है।

३ लोक को केवल सात द्वीप समुद्र का मानने वाले—इस विचारधारा का उल्लेख भगवती आदि मे हुआ है।

---

१८ "धर्म्यंशे नास्तिको ह्येको, बार्हस्पत्य प्रकीर्तित.।
धर्मांशे नास्तिका ज्ञेया, सर्वेऽपि परतीर्थिका ॥" —नयोपदेश, श्लोक-१२६

१९ स्वतोनुवृत्ति-व्यतिभाजो, भावा न भावान्तरनेयरूपा।
परात्मतत्त्वादतथात्मतत्त्वाद्, द्वय वदन्तोऽकुशला स्खलन्ति ॥ अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका, श्लोक-४

२० मुक्तोपि वाऽभ्येतु भव भवो वा भवस्थशून्योस्तु मितात्मवादे।
षड्जीवकाय त्वमनन्तसख्यमाख्यस्तथा नाथ ! यथा न दोष ॥ —अन्ययोग०, श्लोक-२९

२१ अस्थूल मन एव ह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाशमसङ्गमरसमगन्धमचक्षुष्कमश्रोत्रमवागऽमनोऽतेजस्कमप्राणममुखमनन्तरमबाह्यम्। यथा व्रीहिर्वा यवो वा !—बृहदारण्यक उपनिषद्-३।८।८, ५।६।१

२२ प्रदेशमात्रम् ! —छान्दोग्य उपनिषद्—५।१८।१

२३ एष प्रज्ञात्मा इद—शरीरमनुप्रविष्ट । —कौपीतकी उपनिषद्—३५।४।२०

२४. सर्वगत । —मुण्डक-उपनिषद्—१।१।६

४ निर्मितवादी—

नैयायिक, वैशेषिक आदि—जो लोक को ईश्वरकृत मानते हैं।[२५]

५ सातवादी—

आचार्य अभयदेव के[२६] अनुसार 'सातवाद' बौद्धों का मत है। सूत्रकृताग से भी इस कथन की पुष्टि होती है।[२७] चार्वाकदर्शन का साध्य सुख है। तथापि वह सातवादी नही है। क्योकि "सात सातेण विज्जति" सुख का कारण सुख ही है। प्रस्तुत कार्य-कारण का सिद्धान्त चार्वाकदर्शन का नही है। बौद्धदर्शन पुनर्जन्म मे निष्ठा रखता है। उसकी मध्यम प्रतिपदा भी कठिनाइयो से बचकर चलने की है, इसलिए वह सातवादी माना गया है। चूर्णिकार ने भी सातवाद को बौद्ध माना है। "सात सातेण विज्जति"—इस पर चिन्तन करते हुए चूर्णिकार ने लिखा है—'इदानीम् शाक्या परामृश्यन्ते' अर्थात् अब बौद्धो के सम्बन्ध मे हम चिन्तन कर रहे हैं। भगवान् महावीर ने कायक्लेश पर बल दिया। "अत्तहिय खु दुहेण लब्भई"—आत्महित कष्ट से सिद्ध होता है। जैनदर्शन ने बौद्धो के सामने यह सिद्धान्त प्रस्तुत किया। बौद्धो का मन्तव्य है—शारीरिक कष्ट की अपेक्षा मानसिक समाधि का होना आवश्यक है। कार्य-कारण के सिद्धान्तानुसार दुःख, सुख का कारण नही हो सकता। इसलिए सुख, सुख से ही प्राप्त होता है। आचार्य शीलाक ने बौद्धो का सातवाद सिद्धान्त माना ही है साथ ही जो परिषह को सहन करने मे असमर्थ है, ऐसे जैन मुनियो का भी अभिमत माना है।[२८]

६ समुच्छेदवादी—

प्रत्येक पदार्थ क्षणिक है। उत्पत्ति-अनन्तर दूसरे ही क्षण मे उसका उच्छेद हो जाता है, ऐसा बौद्ध मन्तव्य हैं। इसलिए बौद्धदर्शन समुच्छेदवादी माना गया है।

७. नित्यवादी—

साख्यदर्शन के सत्कार्यवाद के अनुसार पदार्थ कूटस्थ नित्य है। कारण रूप मे प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व रहता है। कोई भी पदार्थ नूतन रूप से पैदा नही होता और न वह विनष्ट ही होता है। पदार्थ का आविर्भाव और तिरोभाव मात्र होता है।[२९]

८. असत् परलोकवादी—

चार्वाकदर्शन न मोक्ष को मानता है और न परलोक आदि को स्वीकार करता है।

राजा प्रदेशी : एक परिचय—

राजा प्रदेशी अक्रियावादी था और उसी दृष्टि से उसने अपनी जिज्ञासायें केशीश्रमण के सामने प्रस्तुत की थी। डा विन्टरनीत्ज का मन्तव्य है कि प्रस्तुत आगम मे पहले राजा प्रसेनजित की कथा थी। उसके पश्चात्

---

२५ ईश्वर कारण पुरुषकर्माफल्यदर्शनात्।
न पुरुषकर्माभावे फलानिष्पत्ते ॥
तत्कारितत्वादहेतु। —न्यायसूत्र, ४।१।१९-२१

२६ स्थानागवृत्ति, पत्र ४०४।

२७ सूत्रकृताग—३।४।६

२८. सूत्रकृतागवृत्ति, पत्र ९६ एके शाक्यादय स्वयूथ्या वा लोचादिनोपतप्ता।

२९ साख्यकारिका—९

प्रसेनजित के स्थान पर 'पएस' लगाकर प्रदेशी के साथ इस कथा का सम्बन्ध जोडने का प्रयास किया है। पर प्रबल प्रमाण नही दिया है, अत हमारी दृष्टि से वह कल्पना ही है। प्रसेनजित महावीर और बुद्ध के समसामयिक राजाओ मे एक राजा था। सयुक्तनिकाय[30] के अनुसार उसने एक यज्ञ के लिए ५०० बैल, ५०० बछडे, ५०० बछडिया, ५०० बकरिया, ५०० भेड आदि एकत्रित किये थे। बुद्ध के उपदेश से बिना मारे ही उसने यज्ञ का विसर्जन किया।[31] उसने बुद्ध से छोटे-बडे अनेक प्रश्न पूछे, उसका सकलन सयुक्तनिकाय के 'कौशलसयुत्त' मे हुआ है। दीघनिकाय के अनुसार[32] राजा प्रदेशी प्रसेनजित के अधीन था और राजप्रश्नीयसूत्र के अनुसार जितशत्रु प्रदेशी राजा का आज्ञाकारी सामन्त था। क्योकि जैन आगमसाहित्य मे कही भी प्रसेनजित राजा का नाम प्राप्त नही है। श्रावस्ती के राजा का नाम उपासकदशाग[33] तथा राजप्रश्नीय[34] सूत्र मे 'जितशत्रु' है। यो वाणिज्यग्राम, चम्पा, वाराणसी, आलम्बिया आदि अनेक नगरियो के राजा का नाम जितशत्रु मिलता है।[35] हमारी दृष्टि से यह ऐसा गुणवाचक शब्द है, जिसका प्रयोग प्रत्येक राजा के लिए प्रयुक्त हो सकता है। यह बहुत कुछ सम्भव है कि प्रसेनजित का ही अपरनाम 'जितशत्रु जैन साहित्य मे आया हो। प्रसेनजित पहले वैदिक परम्परा का अनुयायी था। उसके पश्चात् वह तथागत बुद्ध का अनुयायी बना। वह जैनधर्म का अनुयायी नही था, इसलिए उसका जैन साहित्य मे वर्णन न आया हो, यह भी सम्भव है। श्रावस्ती के अनुयायी निर्ग्रन्थ धर्म पर पूर्ण आस्थावान् थे। गणधर गौतम और केशीकुमार का मधुर सवाद भी वही पर हुआ था[36] तथा अन्य अनेक प्रसग भी भगवान् महावीर के जीवन के साथ जुडे हुए हैं।[37]

प्रस्तुत आगम—

प्रस्तुत आगम दो भागो मे विभक्त है। इसमे प्रथम विभाग मे 'सूर्याभ' नामक देव श्रमण भगवान् महावीर के समक्ष उपस्थित होता है और वह विविध प्रकार के नाटको का प्रदर्शन करता है। द्वितीय विभाग मे राजा प्रदेशी का केशी कुमारश्रमण से जीव के अस्तित्व और नास्तित्व को लेकर मधुर सवाद है।

प्रस्तुत आगम का प्रारम्भ 'आमलकप्पा' नगरी के वर्णन से होता है। यह नगरी पश्चिम विदेह मे श्वेताम्बिका के समीप थी। बौद्ध साहित्य मे बुल्लिय राज्य की राजधानी 'अल्लकप्पा' थी। सम्भव है, अल्लकप्पा ही आमलकप्पा हो। यह स्थान शाहाबाद जिले मे 'मसार' और 'वैशाली' के बीच अवस्थित था। आमलकप्पा के बाहर 'अम्बसाल' नामक चैत्य था। वह चैत्य वनखण्ड से वेष्टित था। वहाँ के राजा का नाम 'सेय' और रानी का नाम 'धारिणी' था। भगवान् महावीर का वहाँ पर शुभागमन हुआ और वे अम्बसाल चैत्य मे

---

३० सयुक्तनिकाय—कौशलसयुत्त, यञ्ञसुत्त, ३।१।९

३१ धम्मपद-अट्ठकथा, ५-१, Buddhist Legends, Vol II, P 104 ff

३२ दीघनिकाय—२।१०

३३ उपासकदशाग-अध्ययन-९/१०

३४ राजप्रश्नीयसूत्र

३५ उपासकदशागसूत्र—अध्ययन १/ अ २, अ ३, अ ५

३६ उत्तराध्ययन, अध्ययन-२३ गाथा-३

३७ (क) भगवतीसूत्र, शतक-१५वा।
(ख) भगवतीसूत्र—शतक-२, उद्देशक-१

विराजे। राजा-रानी तथा अन्य नगर-निवासी प्रभु महावीर के पावन प्रवचन को श्रवण करने के लिए पहुँचे। आगमसाहित्य मे राजा 'सेय' का अन्यत्र कही भी विशेष परिचय नही आया है। स्थानागसूत्र के आठवें स्थान मे भगवान् महावीर ने जिन आठ राजाओ को दीक्षित किया, उन मे एक राजा का नाम 'सेय' है। आचार्य अभयदेव के अनुसार यही सेय राजा था, जिसने भगवान् महावीर के पास प्रव्रज्या अगीकार की थी।[38] आचार्य गुणचन्द्र ने लिखा है—एक बार भगवान् महावीर पोतनपुर मे पधारे, तब शख, वीर, शिव, भद्र आदि राजाओ ने एक साथ दीक्षा ग्रहण की थी।[39] इससे विज्ञो का यह अभिमत है कि ये सभी राजा-गण एक ही दिन दीक्षित हुए थे।[40] मलयगिरि ने 'सेय' का सस्कृत रूपान्तर श्वेत किया है। इसी तरह धारिणी नाम अन्य आगमो मे अनेक स्थलो पर आया है। औपपातिक सूत्र मे राजा कूणिक की रानी का नाम भी धारिणी है तथा अन्यत्र भी इस नाम का प्रयोग हुआ है। सम्भव है, गर्भ को धारण करने के कारण 'धारिणी' कहलाती हो। भले ही उसका व्यक्तिगत नाम अन्य कुछ भी रहा हो।

वास्तुकला का उत्कृष्ट रूप : विमान—

सौधर्म स्वर्ग के 'सूर्याभ' नामक देव ने अपने दिव्य ज्ञान मे निहारा—श्रमण भगवान् महावीर आमलकप्पा के अम्बसाल चैत्य मे विराज रहे हैं। उसने वही से भगवान् को वन्दन किया और अपने आभियोगिक देवो को आदेश दिया कि वे शीघ्र ही प्रभु महावीर की सेवा मे पहुँचें और वहाँ की आसपास की भूमि को साफ कर सुगन्धित द्रव्यो से महका दें। तदनुसार आज्ञा का पालन किया गया। सूर्याभ देव ने अपने सेनापति को बुलाकर अत्यन्त कलात्मक विमान की रचना करने की आज्ञा दी। विमान का वर्णन वास्तुकला की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ही नहीं, अपूर्व एव अद्भुत है। विमान के तीन ओर सोपान बनाये गये थे। तीनो सोपानो के सामने मणि-मुक्ताओ और तारिकाओ से रचित तोरण लगाये गये। उन तोरणो पर आठ-मगल स्थापित किये गये। रग-बिरगी ध्वजायें, छत्र, घण्टे और सुन्दर कमलो के गुच्छे लगाये गये। विमान का केवल बाह्य भाग ही सुन्दर नही था अपितु अन्दर के भाग मे इस प्रकार कलात्मक मणिया जडी गई थीं कि दर्शक देखते ही मत्रमुग्ध हो जायें। तथा इस प्रकार के चित्र उट्टकित किये गये थे कि अवलोकन करने वाला ठगा-सा रह जाय। विमान के मध्य मे प्रेक्षागृह का निर्माण किया गया, जिसमे अनेक खम्भे बनाये गये। ऊँची वेदिकायें, तोरण, शाल-भजिकायें स्थापित की गई। ईहामृग, वृषभ, हाथी, घोडे, वनलता प्रभृति के सुन्दर चित्र अकित किये गये। स्वर्णमय और रत्नमय स्तूप स्थापित किये गये। सुगन्धित द्रव्यो से उसे महकाया गया। मण्डप के चारो ओर वाद्यो की सुरीली स्वर-लहरिया झनझनाने लगी। मण्डप के मध्यभाग मे प्रेक्षको के बैठने का स्थान निर्मित किया गया। उसमे एक पीठिका स्थापित की। उस पर सिंहासन रखा, जो कलात्मक था। सिंहासन के आगे मुलायम पादपीठ रखा। सिंहासन श्वेत वर्ण के विजयदूष्य से सुशोभित था। उसके मध्य मे अकुश के आकार की एक खूंटी थी, जिस पर मोतियो की मालायें लटक रही थी। अनेक प्रकार के रत्नो के हार दमक रहे थे। इस विमान मे सूर्याभ देव की मुख्य देवियो तथा अन्य आभ्यन्तर परिषद्, सेनापति आदि के बैठने के लिए भद्रासन बिछे हुए थे। सूर्याभ देव अपने स्थान पर आसीन हुआ और अन्य देवगण भी अपने-अपने आसनो पर अवस्थित हुए। विमान अत्यन्त द्रुत गति से चला। असख्यात द्वीप, समुद्रो को लाघता हुआ

३८ स्थानाङ्ग वृत्ति, पत्र-४०८

३९ "पत्तो पोयणपु र, तहि च सखवीरसिवभद्दपमुहा नरिंदा दिक्खा गाहिया"।

—श्री गुणचन्द महावीरचरित्त, प्रस्ताव ८, पत्र ३३७

४०. ठाण—जैन विश्वभारती, लाडनू , पृष्ठ-८३७

जहाँ भगवान् महावीर विराज रहे थे, वहाँ उतरा। सूर्याभ देव अपने परिवार सहित भगवान् के श्री-चरणो मे पहुँचा।

भगवान् महावीर के त्याग-वैराग्य से छलछलाते हुए उपदेश को श्रवण कर आमलकप्पा के नागरिक यथास्थान लौट गये। सूर्याभ देव ने अपने अन्तर्हृदय की जिज्ञासाए प्रस्तुत की। भगवान् से समाधान पाकर वह परम सतुष्ट हुआ। प्रेक्षामण्डप की सरचना की। विविध प्रकार के चमचमाते हुए वस्त्राभूषणो से सुसज्जित एक सौ आठ देवकुमार तथा एक सौ आठ देवकुमारिया आविर्भूत हुई।

वाद्य: विश्लेषण

उसके पश्चात् सूर्याभ देव ने निम्न प्रकार के वाद्यो की विक्रियाशक्ति से रचना की—शख, शृग, शृगिका, खरमुही [काहाला], पेया [महतीकाला], पिरिपिरिका [कोलिक मुखावनद्ध मुखवाद्य], पणव [लघुपटह], पटह, भभा [ढक्का], होरभा [महाढक्का], भेरी [ढक्काकृति वाद्य], झल्लरी[४१] [चर्मविनद्धा विस्तीर्णवलयाकारा], दुन्दुभि [भेर्याकारा सकटमुखी देवातोद्य[४२]], मुरज [महाप्रमाण मर्दल], मृदग [लघु मर्दल], नदीमृदग [एकत सकीर्ण अन्यत्र विस्तृतो मुरजविशेष], आलिंग [मुरज वाद्यविशेष[४३]] कुस्तुब [चर्मावनद्धपुटो वाद्यविशेष] गोमुखी, मर्दल [उभयत सम[४४]], वीणा, विपची [त्रितत्री वीणा], वल्लकी [सामान्यतो वीणा], महती, कच्छभी [भारती वीणा], चित्रवीणा, बद्धीस, सुघोषा, नदिघोषा, भ्रामरी, षड्भ्रामरी, वरवादनी [सप्ततत्री वीणा], तूणा, तुम्बवीणा [तुबयुक्त वीणा], आमोट, झझा, नकुल, मुकुन्द [मुरज वाद्यविशेष], हुडुक्का[४५], विचिक्की, करटा[४६], डिडिम, किणित, कडब, दर्दर, दर्दरिका [यस्य चतुर्भिश्चरणैखस्थान भुवि स गोधाचर्मावनद्धो, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, १०१], कलशिका, मड्डुया, तल, ताल काम्यताल, रिंगिसिका [रिंगिसिगिका, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति], लत्तिया, मगरिका, शिशुमारिका, वश, वेणु, वाली [तूणविशेष, स हि मुखे दत्वा वाद्यते], परिलि और बद्धक [पिरलीबद्धकौ तृणरूप-वाद्यविशेषौ, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, पृष्ठ—१०१][४७], (५९)।

वाद्यो की सख्या के सम्बन्ध मे पाठभेद है। मूलपाठ मे वाद्यो की सख्या ४९ है और पाठानुसार इनकी सख्या ५९ है। इस पर चिन्तन करते हुए टीकाकार ने इस भिन्नता का समन्वय किया है।[४८] उन्होंने कुछ वाद्यो को एक दूसरे मे मिलाकर उनकी सख्या का स्पष्टीकरण किया है। यो आगमसाहित्य मे अनेक स्थलो पर वाद्यो का उल्लेख है। आचाराग[४९] मे 'किरिकिरिया' वाद्य का वर्णन है, जो बास आदि की लकडी से बना हुआ

---

४१ यह बायें हाथ मे पकडकर दायें हाथ से बजाई जाती है, —शार्गधर, सगीतरत्नाकार—६, १२३७।

४२ मगल और विजय सूचक होती है तथा देवालयो मे बजाई जाती है, —शार्गधर, सगीतरत्नाकर—६,११४६।

४३ गोपुच्छाकृति मृदग जो एक सिरे पर चौडा और दूसरे पर सकडा होता है—वासुदेवशरण अग्रवाल, हर्षचरित, पृष्ठ ६७

४४ सगीतरत्नाकर, १०३४ आदि।

४५ इसे आवज अथवा स्कधावज भी कहा जाता है, —सगीतरत्नाकर १०७५

४६ सगीतरत्नाकर १०७६ आदि।

४७. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—सूत्र, ६४

४८ मूलभेदापेक्षया आतोद्यभेदा एकोनपञ्चाशत्, शेषास्तु एतेषु एव अन्तर्भवन्ति, यथा वशातोद्यविधाने वालीवेणु-पिरिलिबद्धगा इति, राजप्रश्नीय सटीक, पृष्ठ १२८

४९ आचाराग—२, ११, ३९१, पृष्ठ ३७९

होता था। सूत्रकृताग मे 'कुक्कयय' और 'वेणुपलाशिय' बासुरियो का वर्णन है, जो दातो मे बाये हाथ से पकड कर वीणा की भाति दाहिने हाथ से बजाई जाती थी।[५०] भगवतीसूत्र की टीका मे[५१], जीवाभिगम[५२], जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति[५३], निशीथसूत्र[५४], आदि मे भी अनेक वाद्यो का उल्लेख है। वृहत्कल्पभाष्य[५५] मे भभा, मुकुन्द, मद्दल, कडम्ब, झल्लरी, हुडुक्क, कास्यताल, काहल, तलिमा, वश, पणव, शख इन बारह वाद्यो का उल्लेख है। रामायण[५६] व महाभारत[५७] मे मड्डूक, पटह, वश, विपञ्ची, मृदग, पणव, डिंडिम, आडबर और कलशी का उल्लेख है।

भरत के नाट्यशास्त्र मे, ततवाद्यो मे, विपञ्चो और चित्रा को मुख्य और कच्छपी एव घोषका को उनका अगभूत माना है।[५८] चित्रवीणा सात तन्त्रियो वाली होती थी और वे तन्त्रिया अगुलियो से बजाई जाती थी। विपञ्ची मे नौ तन्त्रिया होती थी, जिसका वादन 'कोण' अर्थात् वीणावादन के दण्ड के द्वारा किया जाता था।[५९] यद्यपि भरत ने कच्छपी और घोषका के स्वरूप के सम्बन्ध मे कुछ भी प्रकाश नही डाला है, किन्तु सगीत-रत्नाकर ग्रन्थ के अनुसार घोषका एकतन्त्री वाली वीणा थी[६०] और कच्छपी सम्भव है, सात तन्त्रियो से कम वाली वीणा हो।

'सगीतदामोदर' मे तत के २९ प्रकार बताये हैं—अलावणी, ब्रह्मवीणा, किन्नरी, लघुकिन्नरी, विपञ्ची, वल्लकी, ज्येष्ठा, चित्रा, घोषवती, जया, हस्तिका, कुनजिका, कूर्मी, सारगी, पटिवादिनी, त्रिशवी, शतचन्द्री, नकुलौष्ठी, ढसवी, ऊदवरी, पिनाकी, नि शक, शुष्फल, गदावारणहस्त, रुद्र, स्वरमणमल, कपिलास, मधुस्यदी और घोपा।[६१] आयारचूला[६२] और निशीथ[६३] मे तत के अन्तर्गत वीणा, विपञ्ची, बद्धिसग, तुणय, पवण, तुम्बविणिया, ढकुण, और जोडय ये आठ वाद्य लिये है।

वितत—चर्म से आबद्ध वाद्य वितत है। गीत और वाद्य के साथ ताल एव लय के प्रदर्शन करने हेतु इन वाद्यो का प्रयोग होता था। इनमे मृदग, पवण [तन्त्रीयुक्त अवनद्ध वाद्य], दर्दुर [कलश के आकार वाला चर्म

---

५० सूत्रकृताग—४ २ ७

५१ भगवतीसूत्र टीका—५ ४ पृष्ठ-२१६ अ

५२ जीवाभिगम—३, पृष्ठ—१४५-अ

५३ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—२, पृष्ठ-१००-अ आदि

५४ निशीथसूत्र—१७ १३५-१३८

५५ वृहत्कल्पभाष्यपीठिका—२४ वृत्ति

५६ रामायण—५ १० ३८ आदि

५७ महाभारत—७ ८२ ४

५८ विपची चैव चित्रा च दारवीष्वगसज्ञिते।
कच्छपीघोषकादीनि प्रत्यगानि तथैव च॥ —भरतनाट्य-३३। १५

५९ सप्ततन्त्री भवेत् चित्रा विवची नवतन्त्रिका।
विपची कोणवाद्या स्याच्चित्रा चागुलिवादना॥ —भरतनाट्य-२९। ११४

६०. घोषकश्चैकतन्त्रिका। —सगीतरत्नाकर, वाद्याध्याय, पृष्ठ २४८

६१ प्राचीन भारत के वाद्ययन्त्र—कल्याण (हिन्दुसस्कृति अङ्क) पृष्ठ-७२१-७२२ से उद्धृत

६२ आयारचूला—११। २।

६३ निसीहज्झयण—१७। १३८

से मढा हुआ वाद्य], भेरी, डिंडिम, मृदग आदि हैं। ये वाद्य मानव की कोमल भावनाओ को उद्दीपित करते हैं और वीरोचित उत्साह बढाते हैं। इसलिए धार्मिक उत्सव और युद्ध के प्रसगो पर इनका उपयोग होता था।

विज्ञो का यह भी मानना है कि मुरज, पटह, ढक्का, विश्वक, दर्पवाद्य, घण, पणव, सरुहा, लाव, जाहव, त्रिवली, करट, कमठ, भेरी, कुडुक्का, हुडुक्का, झनसमुरली, झल्ली, ढुक्कली, दौंडी, शान, डमरू, ढमुकी, मड्डू, कु डली, स्तु ग, दु दुभी, अग, मर्दल, अणीकस्थ आदि वाद्य भी वितत के अन्तर्गत आते हैं।[६४]

घन—कास्य आदि धातुओ से बने हुए वाद्य 'घन' कहलाते हैं। करताल, कास्यवन, नयभटा शुक्तिका, कण्ठिका, पटवाद्य, पट्टाघोप, घर्घर, झझताल, मजिर, कर्त्तरी, उण्णकूक, आदि घन के अनेक प्रकार है। निशीथ मे[६५] घन शब्द के अन्तर्गत ताल, कसताल, लत्तिय, गोहिय, मक्करीय, कच्छभी, महत्ती, सणालिया और वालिया आदि वाद्य घन मे सम्मिलित किए गये हैं।

सुषिर—फूंक से वजाये जाने वाले वाद्य 'शुपिर' है। भरतमुनि ने शुपिर के अन्तर्गत वश को अगभूत तथा शख, डिक्किणी आदि वाद्यो को प्रत्यग माना है।

इस प्रकार प्राचीन साहित्य मे वाद्यो के सम्बन्ध मे विविध रूप से चर्चायें है। हमने सक्षेप मे ही यहाँ कुछ उल्लेख किया है।

नाटक : एक चिन्तन :—

सूर्याभ देव ने देव कुमारो और देव कुमारियो को आदेश दिया कि वे नाट्यविधि का प्रदर्शन करें। वे सभी एक साथ नीचे झुके और एक साथ मस्तक ऊपर उठाकर उन्होने अपना नृत्य और गीत प्रारम्भ किया। उसके पश्चात् वत्तीस प्रकार की नाट्यविधिया प्रदर्शित की —

१ स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त, वर्धमानक, भद्रासन, कलश, मत्स्य और दर्पण के दिव्य अभिनय—आचार्य मलयगिरि[६६] के अनुसार इन नाट्यविधियो का उल्लेख चतुर्दश पूर्वों के अन्तर्गत नाट्यविधि नामक प्राभृत मे था, पर वह प्राभृत वर्तमान मे विच्छिन्न हो गया है। महाभारत मे[६७] स्वस्तिक, वर्धमान और नन्द्यावर्त का उल्लेख है। अगुत्तरनिकाय मे नन्द्यावर्त का अर्थ मछली किया है।[६८] भरत के नाट्यशास्त्र मे स्वस्तिक को चतुर्थ और वर्धमानक को तेरहवा नाट्य वताया है। प्रस्तुत अभिनय मे भरत के नाट्यशास्त्र मे उल्लखित आगिक अभिनय के द्वारा नाटक करने वाले, स्वस्तिक आदि आठ मगलो का आकार वनाकर खडे हो जाते और फिर हाथ आदि के द्वारा उस आकार का प्रदर्शन करते तथा वाचिक अभिनय के द्वारा मगल शब्द का उच्चारण करते। जिससे दर्शको के अन्तर्हृदय मे उस मगल के प्रति रतिभाव समुत्पन्न होता।[६९]

२ आवर्त,[७०] प्रत्यावर्त, श्रेणी, प्रश्रेणी, स्वस्तिक, सौवस्तिक, पुष्यमानव, वर्धमानक, [कधे पर बैठे

६४ प्राचीन भारत के वाद्ययन्त्र—कल्याण (हिन्दुसस्कृति अक) पृष्ठ—७२१-७२२

६५ निसीहज्झयण—१७। १३९

६६ राजप्रश्नीय टीका, पृष्ठ-१३६

६७ महाभारत—७, ८२, २०

६८. डिक्शनरी ऑफ पालि प्रॉपर नेम्स, भाग-२, पृष्ठ-२९ —मलालसेकर

६९. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति टीका ५, पृष्ठ-४१४

७०. भ्रमद्भ्रमरिकादानैर्नर्त्तनम् आवर्त , तद्विपरीत. प्रत्यावर्त । —जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति टीका ५, पृष्ठ-४१४

हुए पुरुष का अभिनय] मत्स्याण्डक, मकराण्डक[७१] जार, मार[७२], पुष्पावली, पद्मपत्र, सागरतरग, वसन्तलता, पद्मलता[७३], के चित्रो का अभिनय।

३ ईहामृग, वृषभ, घोडा, नर, मगर, पक्षी, सर्प, किन्नर, रुरु, शरभ, चमर, कुजर,[७४] वनलता, पद्मलता के चित्रो का अभिनय।

४ एकतोवक्र[७५], द्विघावक्र, एकतश्चक्रवाल, द्विघाचक्रवाल, चक्रार्ध, चक्रवाल का अभिनय।

५ चन्द्रावलिका-प्रविभक्ति[७६], सूर्यावलिका-प्रविभक्ति, वलयावलिका-प्रविभक्ति, हसावलिका-प्रविभक्ति[७७], एकावलिका-प्रविभक्ति, तारावलिका-प्रविभक्ति, मुक्तावलिका-प्रविभक्ति, कनकावलिका-प्रविभक्ति, और रत्नावलिका-प्रविभक्ति का अभिनय।

६ चन्द्रोद्‌गमनदर्शन और सूर्योद्‌गमनदर्शन का अभिनय।

७, चन्द्रागमदर्शन, सूर्यागमदर्शन का अभिनय।

८ चन्द्रावरणदर्शन, सूर्यावरणदर्शन का अभिनय।

९ चन्द्रास्तदर्शन, सूर्यास्तदर्शन का अभिनय।

१० चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल, नागमण्डल, यक्षमण्डल, भूतमण्डल, राक्षसमण्डल, गन्धर्वमण्डल[७८] के भावो का अभिनय।

११ द्रुतविलम्बित अभिनय—इसमे वृषभ और सिंह तथा घोडे और हाथी की ललित गतियो का अभिनय।

१२. सागर और नागर के आकारो का अभिनय।

१३ नन्दा और चम्पा का अभिनय।

१४ मत्स्याड, मकराड, जार और मार की आकृतियो का अभिनय।

१५ क, ख, ग, घ, ङ की आकृतियो का अभिनय।

१६ च-वर्ग की आकृतियो का अभिनय।

१७. ट-वर्ग की आकृतियो का अभिनय।

---

७१ भरत के नाट्यशास्त्र मे मकर का वर्णन है।

७२. सम्यग्मणिलक्षणवेदिनौ लोकाद्वेदितव्यौ ! —जीवाजीवाभिगम टीका, पृष्ठ-१८९

७३. भरत के नाट्यशास्त्र मे पद्म।

७४ भरत के नाट्यशास्त्र मे गजदत।

७५. एकतो वक्र—नटाना एकस्या दिशि धनुराकारश्रेण्या नर्तन। द्विघातो वक्र—द्वयोः परस्पराभिमुखदिशोः धनुराकारश्रेण्या नर्तन। एकतश्चक्रवाल एकस्या दिशि नटाना मण्डलाकारेण नर्तन।

—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति टीका ५, पृष्ठ-४१४

७६. चन्द्राणा आवलि श्रेणि तस्या प्रविभक्ति —विच्छित्तिरचनाविशेषस्तदभिनयात्मक।

—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति टीका ५, पृष्ठ-४१४

७७ भरत के नाट्यशास्त्र मे हसवक्त्र और हसपक्ष।

७८. नाट्यशास्त्र मे २० प्रकार के मण्डल बताये गये हैं। यहाँ गन्धर्वनाट्य का उल्लेख है।

१८ त-वर्ग की आकृतियो का अभिनय ।

१९. प-वर्ग की आकृतियो का अभिनय ।

२० अशोक, आम्र, जवू, कोशम्ब के पल्लवो का अभिनय ।

२१ पद्म, नाग, अशोक, चम्पक, आम्र, वन, वासन्ती, कुन्द, अतिमुक्तक और श्याम लता का अभिनय ।

२२ द्रुतनाट्य[७९] ।

२३. विलवित नाट्य ।

२४ द्रुतविलवित नाट्य ।

२५ अचित[८०] ।

२६ रिभित ।

२७ अचितरिभित ।

२८ आरभट[८१] ।

२९ भसोल (अथवा भसल)[८२] ।

३० आरभटभसोल ।

३१ उत्पात, निपात, सकुचित, प्रसारित, रयारइय[८३], भ्रात और सभ्रात क्रियाओ से सम्वन्धित अभिनय ।

३२ महावीर के च्यवन, गर्भसहरण, जन्म, अभिषेक, वालक्रीडा, यौवनदशा, कामभोगलीला,[८४] निष्क्रमण, तपश्चरण, ज्ञानप्राप्ति, तीर्थप्रवर्तन और परिनिर्वाण सम्वन्धी घटनाओ का अभिनय [६६-८४] ।

अन्य आगमो मे अनेक स्थलो पर नाट्यविधियो का उल्लेख हुआ है । उत्तराध्ययन की वृत्ति के अनुसार जव ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती पद पर आसीन हुआ तो उसके सामने एक नट 'मधुकरीगीत' नामक नाट्यविधि प्रदर्शित करता है ।[८५] सौधर्म इन्द्र के सामने सुधर्मा सभा मे 'सौदामिनी' नाटक करने का भी उल्लेख है ।[८६]

स्थानागसूत्र मे चार प्रकार के नाट्यो का वर्णन है—अचित, रिभित, आरभट, भसोल ।[८७] भरत-नाट्यशास्त्र मे एक सौ आठ कर्ण माने हैं । कर्ण का अर्थ है—अग और प्रत्यग की क्रियाओ को एक साथ करना ।

---

७९ नाट्यशास्त्र मे द्रुत नामक लय का वर्णन है ।

८० नाट्यशास्त्र मे उल्लेख है ।

८१ नाट्यशास्त्र मे 'आरभटी' एक वृत्ति का नाम वताया गया है ।

८२ नाट्यशास्त्र मे भ्रमर ।

८३ नाट्यशास्त्र मे रेचित । जम्वूद्वीपप्रज्ञप्ति मे रेचकरेचित पाठ है । आरभटी शैली से नाचने वाले नट मडलाकार रूप में रेचक अर्थात् कमर, हाथ, ग्रीवा को मटकाते हुए रास नृत्य करते थे ।
—वासुदेवशरण अग्रवाल, हर्षचरित, पृष्ठ-३३

८४ इससे महावीर की गृहस्थावस्था का सूचन होता है ।

८५ उत्तराध्ययन टीका-१३, पृष्ठ-१९६

८६ उत्तराध्ययन टीका-१८, पृष्ठ-२४० अ

८७ चउव्विहे णट्टे पण्णत्ते, त जहा—अचिए, रिभिए, आरभडे, भसोले —स्थानाङ्ग ४ । ६३३

अचित को तेईसवा कर्ण माना है। प्रस्तुत अभिनय मे पैरो को स्वस्तिक के आकार में रखा जाता है। दाहिने हाथ को कटिहस्त [नृत हस्त की एक मुद्रा] और वाये हाथ को व्यावृत तथा परिवृत कर नाक के पास अचित करने से यह मुद्रा वनती है।[८८] चिन्तातुर व्यक्ति हाथ पर ठोडी टिका कर सिर को नीचा रखता है, वह मुद्रा 'अचित' है। राजप्रश्नीय मे यह पच्चीसवा नाट्यभेद माना गया है। "रिभित" के सम्बन्ध मे विशेष जानकारी ग्रन्थो मे नही है। "आरभट"—माया, इन्द्रजाल, सग्राम, क्रोध, उद्भ्रान्त प्रभृति चेष्टाओं मे युक्त तथा वध, वन्धन आदि से उद्धत नाटक 'आरभटी' है।[८९] 'साहित्यदर्पण'[९०] मे इसके चार प्रकार बताये गये है। आरभट को राजप्रश्नीय मे नाट्यभेद का अठारहवाँ प्रकार माना है। "भसोल"—स्थानाग वृत्ति मे इस सम्बन्ध मे कोई विशेष विवरण नही दिया है।[९१] राजप्रश्नीय मे इसे उनतीसवाँ प्रकार माना है।

सूर्याभदेव विविध प्रकार के गीत और नाट्य प्रदर्शित करने के पश्चात् भगवान् महावीर को नमस्कार कर स्वस्थान को प्रस्थित हो गया। गणधर गौतम ने सूर्याभदेव के विमान के सम्बन्ध मे जिज्ञासा प्रस्तुत की। भगवान् ने विस्तार से विमान का वर्णन सुनाया। साथ ही गौतम ने पुन यह जिज्ञासा प्रस्तुत की कि यह दिव्य देवऋद्धि सूर्याभदेव को किन शुभ कर्मों के कारण प्राप्त हुई है? प्रभु महावीर ने समाधान करते हुए उसका पूर्वभव सुनाया, जो प्रस्तुत आगम का द्वितीय विभाग है।

केकयार्ध जनपद

'केकय अर्ध' जनपद था। जैन साहित्य मे साढे पच्चीस आर्य क्षेत्रो की परिगणना की गई है। उन देशो और राजधानियो का उल्लेख वृहत्कल्पभाष्यवृत्ति[९२] प्रज्ञापना[९३] और प्रवचनसारोद्धार[९४] मे हुआ है। इन देशो मे तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वलदेव और वासुदेव पैदा हुए। इसलिए इन्हे आर्य जनपद कहा है।[९५] जिन देशो मे तीर्थंकर, प्रभृति महापुरुष पैदा होते है, वह आर्य हैं।[९६] आर्य और अनार्य जनपदो की व्यवस्था के सम्बन्ध मे आवश्यकचूर्णि[९७], तत्त्वार्थभाष्य[९८], तत्त्वार्थराजवार्तिक[९९] आदि मे चर्चाएँ हैं। हम यहाँ विस्तार से चर्चा मे न जाकर यह वताना चाहेगे कि 'केकयार्ध' की परिगणना अर्धजनपद मे की गई थी। यो केकय नाम के दो प्रदेश थे। एक की

---

८८ भारतीय सगीत का इतिहास, पृष्ठ-४२५

८९ आप्टे डिक्शनरी मे आरभट शब्द के अन्तर्गत उद्धृत—
मायेन्द्रजालसग्रामक्रोधोद्भ्रान्तादिचेष्टितै।
सयुक्ता वधवन्धाद्यैरुद्धतारभटी मता॥

९० साहित्यदर्पण-४२०।

९१ नाट्यगेयाभिनयसूत्राणि सम्प्रदायाभावान्न विवृतानि। —स्थानागवृत्ति, पत्र-२७२

९२ वृहत्कल्पभाष्यवृत्ति—१ ३२६३,

९३ प्रज्ञापनासूत्र—१ ६६ पृष्ठ १७३,

९४ प्रवचनसारोद्धार, पृष्ठ ४४६

९५ 'इत्थुप्पत्ति जिणाण, चक्कीण रामकण्हाण।' —प्रज्ञापना-१

९६ 'यत्र तीर्थंकरादीनामुत्पत्तिस्तदार्यं, शेषमनार्यम्।' —प्रवचनसारोद्धार, पृष्ठ-४४६

९७ आवश्यकचूर्णि

९८ तत्त्वार्थभाष्य—३।१५

९९ तत्त्वार्थराजवार्तिक—३।३६, पृष्ठ-२००

अवस्थिति खिवाडा—नमक की पहाडी अथवा शाहपुर झेलम-गुजरात मे थी। दूसरे की अवस्थिति श्रावस्ती के उत्तरपूर्व मे नेपाल की तराई मे थी । सम्भवत यही केकय साढे पच्चीस देशो मे अभिहित है। उसकी राजधानी श्वेताम्बिका थी। यह श्रावस्ती और कपिलवस्तु के मध्य मे नेपालगज के पास मे होनी चाहिए। इस देश के आधे भाग को आर्य देश स्वीकार किया है और आधे भाग को अनार्य देश। आधे भाग मे आदिमवासी जाति निवास करती होगी। बौद्ध साहित्य मे सेयविया [श्वेताम्बिका] को 'सेतव्या' लिखा है। भगवान् महावीर का भी वहाँ पर विचरण हुआ था। यह स्थान श्रावस्ती [सहेट-महेट] से १७ मील और बलरामपुर से ६ मील की दूरी पर अवस्थित था। इसके उत्तरपूर्व मे 'मृगवन' नामक उद्यान था। इस नगरी का अधिपति राजा प्रदेशी था। दीघनिकाय मे राजा का नाम 'पायासि' दिया गया है। वह राजा अत्यन्त अधार्मिक, प्रचण्ड क्रोधी और महान् तार्किक था। गुरुजनो का सन्मान करना उसने सीखा ही नही था और न वह श्रमणो और ब्राह्मणो पर निष्ठा ही रखता था। उसकी पत्नी का नाम 'सूर्यकान्ता' था और पुत्र का नाम 'सूर्यकान्त' था, जो राज्य, राष्ट्र, बल, वाहन, कोश, कोष्ठागार और अन्त पुर की पूर्ण निगरानी रखता था।

राजा प्रदेशी के चित्त नामक एक सारथी था। दीघनिकाय मे चित्त के स्थान पर 'खत्ते' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'खत्ते' का पर्यायवाची सस्कृत मे क्षत-क्षता है, जिसका अर्थ सारथी है। वह सारथी साम, दाम, दण्ड, भेद, प्रभृति नीतियो मे बहुत ही कुशल था। प्रबल प्रतिभा का धनी होने के कारण समय-समय पर राजा प्रदेशी उससे परामर्श किया करता था।

कुणाला जनपद मे श्रावस्ती नगरी का अधिपति 'जितशत्रु' था। जितशत्रु के सम्बन्ध मे हम पूर्व मे लिख चुके है—वह राजा प्रदेशी का आज्ञाकारी सामन्त था। राजा प्रदेशी के आदेश को स्वीकार कर चित्त सारथी उपहार लेकर श्रावस्ती पहुँचता है और वहाँ रहकर शासन की देखभाल भी करता है।

केशी श्रमण : एक चर्चा

उस समय चतुर्दशपूर्वधारी पार्श्वापत्य केशी कुमारश्रमण वहाँ पधारते हैं। ऐतिहासिक विज्ञो का अभिमत है कि सम्राट् प्रदेशीप्रतिबोधक केशी कुमारश्रमण भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के चतुर्थ पट्टधर थे। प्रथम पट्टधर आचार्य शुभदत्त थे, जो प्रथम गणधर थे। उनकी जन्मस्थली 'क्षेमपुरी' थी। उन्होने 'सम्भूत' मुनि के पास श्रावक-धर्म ग्रहण किया था। माता-पिता के परलोकवासी होने पर उन्हे ससार से विरक्ति हुई। भगवान् पार्श्वनाथ के प्रथम उपदेश को सुनकर दीक्षा ली और पहले गणधर बने। उनके उत्तराधिकारी आचार्य हरिदत्तसूरि हुए, जिन्होने वेदान्त दर्शन के प्रसिद्ध आचार्य 'लोहिय' को शास्त्रार्थ मे पराजित कर प्रतिबोध दिया और लोहिय को ५०० शिष्यो के साथ दीक्षित किया। उन नवदीक्षित श्रमणो ने सौराष्ट्र, तैलग, प्रभृति प्रान्तो मे विचरण कर जैन शासन की प्रबल प्रभावना की। तृतीय पट्टधर आचार्य 'समुद्रसूरि' थे। उन्ही के समय 'विदेशी' नामक महान् प्रभावशाली आचार्य ने उज्जयिनी नगरी के अधिपति महाराज 'जयसेन', महारानी 'अनगसुन्दरी' और राजकुमार 'केशी' को दीक्षित किया।[१००]

आगमसाहित्य मे केशीश्रमण का राजप्रश्नीय और उत्तराध्ययन, इन दो आगमो मे उल्लेख हुआ। राजप्रश्नीय और उत्तराध्ययन मे उल्लिखित केशी एक ही व्यक्ति रहे हैं या पृथक्-पृथक्? प्रज्ञाचक्षु प सुखलाल

---

१०० केशिनामा तद्विनेय य प्रदेशीनरेश्वरम्।
प्रबोध्य नास्तिकाद् धर्माद् जैनधर्मेऽध्यरोपयत्॥ —नाभिनन्दोद्धार प्रबध-१३६

जी सघवी[१०१], डा जगदीशचन्द्र जैन[१०२], डा० मोहनलाल मेहता [१०३], प मुनि नथमल जी[१०४] [युवाचार्य महाप्रज्ञ] आदि अनेक विज्ञो ने राजा प्रदेशी के प्रतिबोधक केशी कुमारश्रमण को और गणधर गौतम के साथ सवाद करने वाले केशी कुमारश्रमण को एक माना है, पर हमारी दृष्टि से दोनो पृथक्-पृथक् व्यक्ति हैं। क्योंकि सम्राट् प्रदेशी को प्रतिबोध देने वाले चतुर्दशपूर्वी और चार ज्ञान के धारक थे।[१०५] गणधर गौतम के साथ चर्चा करने वाले केशीकुमार तीन ज्ञान के धारक थे।[१०६] यदि हम यह मान ले कि जिस समय केशीकुमार ने गणधर गौतम के साथ चर्चा की थी, उस समय वे तीन ज्ञान के धारक थे और बाद मे चार ज्ञान के धारक हो गये होगे। पर यह तर्क भी उचित नही है, क्योकि यदि वे चार ज्ञान के धारक बाद मे बने तो श्रावस्ती मे चित्त सारथी को चातुर्याम का उपदेश किस प्रकार देते ? उनके नाम के साथ 'पार्श्वापत्यीय' विशेषण किस प्रकार लगता ? इसलिए स्पष्ट है कि दोनो पृथक्-पृथक् व्यक्ति है। किन्तु नामसाम्य होने से अनेक मनीषियो को भ्रम हो गया है और उन्होने दोनो को एक माना है।

विविध, उत्सव

केशीकुमार के आगमन के समाचारो ने जन-जन के अन्तर्मानस मे एक अपूर्व उल्लास का सचार किया। वे नदी के प्रवाह की तरह धर्मदेशना श्रवण करने के लिए प्रस्थित हुए। उनके तीव्र कोलाहल को सुनकर चित्त सारथी सोचने लगा—क्या आज इस नगर मे कोई इन्द्र, स्कन्द, रुद्र, मुकुन्द, शिव, वैश्रमण, नाग, यक्ष, भूत, स्तूप, चैत्य, वृक्ष, गिरि, गुफा, कूप, नदी, सागर, और सरोवर का उत्सव मनाया जा रहा है ? जिससे सभी लोग उत्साह के साथ जा रहे है। यहाँ पर जिन इन्द्र, स्कन्द आदि के उत्सवो का वर्णन है, उसका उल्लेख ज्ञाताधर्मकथा[१०७] व्याख्याप्रज्ञप्ति[१०८] भगवती[१०९] निशीथ[११०] आदि अन्य आगमो मे भी आया है। इन्द्र वैदिक साहित्य का बहुत ही लब्धप्रतिष्ठ देव रहा है। वह समस्त देवो मे अग्रणी था। प्राचीन युग मे 'इन्द्रमह' उत्सव सभी

---

१०१ 'दर्शन और चिन्तन'—भ० पार्श्वनाथ का विरासत लेख, पृ ५

१०२ जैन साहित्य का बृहद् इतिहास—भाग-२, पृष्ठ-५४-५५

१०३ जैन साहित्य का बृहद् इतिहास—भाग-२, पृष्ठ-५४-५५. —डा० मोहनलाल मेहता

१०४ उत्तरज्झयणाणि—भाग-१, पृष्ठ-२०१

१०५ 'पासावच्चिज्जे केसीणाम कुमारसमणे जाइसपण्णे चउद्दसपुव्वी चउणाणोवगए पचहि अणगारसएहि सद्धि सपरिवुडे।' —रायपसेणइय, पृष्ठ-२८३ प बेचरदास जी सपादित

१०६ 'तस्स लोगपईवस्स आसि सीसे महायसे।
केशी कुमारसमणे विज्जाचरणपारगे ॥
ओहिनाणसुए बुद्धे, सीससघसमाउले।
गामाणुगाम रीयन्ते, सावत्थि नगरिमागए ॥ —उत्तराध्ययन-२३।२-३

१०७ ज्ञाताधर्मकथा ८, पृष्ठ-१००।

१०८ व्याख्याप्रज्ञप्ति-३ १।

१०९ भगवती-३ १।

११० निशीथसूत्र-८ १४।

उत्सवो मे श्रेष्ठ उत्सव माना जाता था और सभी लोग बडे उत्साह से इसे मनाते थे।[111] निशीथसूत्र मे इन्द्र, स्कन्द, यक्ष, और भूत नामक महामहो का वर्णन है। जो क्रमश आषाढ, आसौज, कार्तिक और चैत्र की पूर्णिमाओ को मनाया जाता था। इन्द्रमह आदि उत्सवो मे लोग मनपसन्द खाते-पीते, नाचते,गाते हुए आमोद-प्रमोद मे तल्लीन रहते थे।[112] इन उत्सवो मे अत्यधिक शोरगुल होता था, जिससे श्रमणो को स्वाध्याय की मनाई की गई थी। जो खाद्य पदार्थ उत्सव के दिन तैयार किया जाता था, यदि वह अवशेष रह जाता तो प्रतिपदा के दिन उसका उपयोग करते। अपने सम्बन्धियो को भी उस अवसर पर बुलाते।[113] 'इन्द्रमह' के दिन धोबी से धुले हुए स्वच्छ वस्त्र लोग पहनते थे।[114]

दूसरा उत्सव 'स्कन्दमह' का था। ब्राह्मण पौराणिक अनुश्रुतियो से अनुसार स्कन्द अथवा कार्तिकेय महादेव के पुत्र और युद्ध के देवता माने गये हैं। तारक, राक्षस और देवताओ के युद्ध मे 'स्कन्द' देवताओ के सेनापति के रूप मे नियुक्त हुए थे। उनका वाहन 'मयूर' था। 'स्कन्दमह' उत्सव आसौज की पूर्णिमा को मनाया जाता था।[115]

'रुद्रमह' तृतीय उत्सव था। वैदिक दृष्टि से रुद्र ग्यारह थे। वे इन्द्र के साथी शिव और उसके पुत्रो के अनुचर तथा यम के रक्षक थे। व्यवहारभाष्य के अनुसार रुद्र-आयतनो के नीचे ताजी हड्डिया गाडी जाती थी।[116]

'मुकुन्दमह' चतुर्थ उत्सव था। महाभारत मे मुकुन्द यानि वलदेव को लागुली-हलधर कहा है।[117] हल उसका अस्त्र है। भगवान् महावीर छद्मस्थ अवस्था मे गोशालक के साथ 'आवत्त' ग्राम मे पधारे थे। वहाँ पर वे वलदेवगृह मे विराजे[118], जहाँ पर वलदेव की अर्चना होती थी।

'शिवमह' पाचवा उत्सव था। हिन्दू साहित्य के अनुसार शिव भूतो के अधिपति, कामदेव के दहनकर्ता और स्कन्द के पिता थे। उन्होने विप का पान किया तथा आकाश से गिरती हुई गगा को धारण किया। उनके

---

१११ (क) आवश्यकचूर्णि-पृष्ठ-२१३
(ख) इपिक माइथोलॉजी, स्ट्रासवर्ग १९१५। —डा हॉपकिन्स ई, पृ १२५
(ग) भास—ए स्टडी, लाहौर-१९४०-पुलासकर ए डी, पृ ४४०
(घ) कथासरित्सागर, जिल्द-८, पृष्ठ-१४४-१५३
(ङ) महाभारत-१ ६४ ३३
(च) रगस्वामी ऐयगर कमैमोरेशन वॉल्युम, पृष्ठ-४८०
११२ (क) निशीथ-१९।६०३५
(ख) रामायण-४।१६।३६
(ग) डा० हॉपकिन्स ई० डब्ल्यू०, पृ १२५
११३ निशीथचूर्णि-१६ ६०६८।
११४ आवश्यकचूर्णि-२, पृष्ठ-१८१
११५ आवश्यकचूर्णि, पृष्ठ-३१५
११६. व्यवहारभाष्य-७।३१३, पृष्ठ-५५ अ।
११७. महाभारत—देखिए, वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलिजियस सिस्टम, पृष्ठ-१०२ आदि।
११८ (क) आवश्यकनिर्युक्ति-४८१,
(ख) आवश्यकचूर्णि, पृष्ठ-२९४

सम्मान मे वैशाख मास मे उत्सव मनाया जाता है। भगवान् महावीर के समय शिव की अर्चा प्रचलित थी। ढोढसिवा अचितशिव माना जाता था, उसकी भी उपासना शिव के रूप मे ही होती थी।[११९]

'वैश्रमणमह' छठा उत्सव था। वैश्रमण उत्तर दिशा का लोकपाल और समस्त निधियो का अधिपति था। जीवाजीवाभिगम मे वैश्रमण को यक्षो का अधिपति और उत्तर दिशा का लोकपाल कहा है।[१२०] हॉपकिन्स ने वैश्रमण को राक्षस और गुह्यको का अधिपति कहा है।[१२१]

'नागमह' सातवा उत्सव था। वैदिक पुराणो के अनुसार सर्पदेवता सामान्य रूप से पृथ्वी के अध स्थल में निवास करते हैं, जहाँ पर शेषनाग अपने सहस्र फन मे पृथ्वी के अपार भार को सम्हाले हुए हैं।[१२२] जैन दृष्टि से सगर चक्रवर्ती के जण्हुकुमार आदि साठ हजार पुत्र थे। उन्होने दण्डरत्न से अष्टापद पर्वत के चारो ओर एक खाई खोदी और गगा के नीर से उस खाई को भरने लगे। पर खाई का पानी नागभवनो मे जाने से नागराज क्रुद्ध हुआ। उसने नयन-विष महासर्प प्रेषित किये, जिन्हे देखते ही सगरपुत्र भस्म हो गये। महाभारत मे नाग तक्षक का उल्लेख है, जिसने अपने भयकर विष से वटवृक्ष को और राजा परीक्षित के भव्य भवन को जलाकर नष्ट कर दिया था। कालियनाग ने यमुना नदी के नीर को विषयुक्त कर दिया था।[१२३] साकेत मे एक महान् नागगृह था।[१२४] ज्ञाताधर्मकथा के अनुसार रानी पद्मावती ने नागदेव की अर्चा की थी।[१२५] नागकुमार धरणेन्द्र ने भगवान् पार्श्व की जल से छत्र बनाकर रक्षा की थी।[१२६] 'मुचिलिंद' नाम के सर्पराज ने तथागत बुद्ध की हवा और पानी से रक्षा की थी।[१२७] इस तरह नाग की चर्चा अनेक स्थलो पर है और उसके भय से लोग उसकी उपासना करते थे। आज भी भारत मे लोग 'नागपचमी' का पर्व मनाते हैं, जो एक प्रकार से नागमह का ही रूप है।

'यक्षमह' आठवा उत्सव था। नगरो और गाँवो के बाहर यक्षायतन होते थे। लोगो की यह धारणा थी कि यक्ष की पूजा करने से कोई भी सक्रामक रोग हमारे ऊपर आक्रमण नही कर सकेगा। यक्ष इन रोगो से हमारी रक्षा करेगा।[१२८] अभिधान-राजेन्द्रकोप मे पूर्णभद्र, मणिभद्र आदि तेरह यक्षो का उल्लेख हुआ है।[१२९] जो ब्रह्मचारी हैं, उनको यक्ष, देव, दानव और गन्धर्व नमन करते हैं।[१३०]

---

११९. (क) वृहत्कल्पभाष्य-५ ५९२८
(ख) आवश्यक चूर्णि, पृष्ठ-३१२.

१२०. जीवाजीवाभिगम, ३ पृष्ठ-२८१

१२१ डा हॉपकिन्स ई डब्ल्यू —इपिक माइथॉलोजी, स्ट्रासवर्ग १९१५

१२२ इपिक माइथॉलोजी, स्ट्रासवर्ग १९१५ —डा हॉपकिन्स ई डवल्यू

१२३ इण्डियन सर्पेण्ट लोर, लदन-१९२६, फोगल जे

१२४ (क) अर्थशास्त्र-५ २ ९० ४९ पृष्ठ-१७६
(ख) इण्डियन सर्पेण्ट लोर, लदन-१९२६, फोगल जे

१२५ ज्ञाताधर्मकथा-८, पृष्ठ-९५

१२६ आचारागनिर्युक्ति-३३५ टीका, पृष्ठ-३८५

१२७. इण्डियन सर्पेण्ट लोर, लदन, पृष्ठ-४१,—फोगेल जे०

१२८ डिस्ट्रिक्ट गजेटियर आव मु गेर, पृष्ठ-५५

१२९ अभिधानराजेन्द्र कोष—'जक्ख शब्द'

१३० 'देव-दाणव-गधव्वा, जक्ख-रक्खस-किन्नरा।
बभयारिं नमसति, दुक्कर जे करेंति त' ॥ —उत्तराध्ययन-अध्ययन-१६, गा १६

महाभारत[131] मे और संयुक्तनिकाय[132] मे मणिभद्र यक्ष का उल्लेख है। मत्स्यपुराण मे पूर्णभद्र के पुत्र का नाम हरिकेश यक्ष बताया है।[133] औपपातिक मे चम्पानगरी के बाहर पूर्णभद्र चैत्य का उल्लेख है।[134] आवश्यकनिर्युक्ति के अनुसार भगवान् महावीर जब छद्मस्थ अवस्था मे ध्यानमुद्रा मे खडे थे तब 'बिभेलक' यक्ष ने उपद्रव मे उनकी रक्षा की थी।[135] ज्ञाताधर्मकथा के अनुसार शैलक यक्ष चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन लोगो की सहायता के लिए तत्पर रहता था। उसने चम्पानगरी के जिनपाल और जिनरक्षित की रत्नादेवी से रक्षा की थी।[136] सन्तानोत्पत्ति के लिए हरिणैगमैपी देव की उपासना की जाती थी।[137] वैदिक ग्रन्थो मे 'हरिणैगमैपी' हरिण के सिर वाला और इन्द्र का सेनापति था। महाभारत मे उसको अजामुख बताया है।[138] जैन साहित्य की दृष्टि से 'हरिणैगमैपी' सौधर्म देवलोक का देव था, न कि यक्ष। आगम के व्याख्यासाहित्य मे अनेक स्थलो पर यक्ष के उपद्रवो का उल्लेख है। यक्षो से अपने आपको सुरक्षित रखने के लिए यह उत्सव होता था।[139]

'भूतमह' नवम उत्सव था। हिन्दू पुराणो मे भूतो को भयकर प्रकृति के धनी और मास-भक्षी कहा है। भूतो को बलि देकर प्रसन्न किया जाता था। 'भूतमह' चैत्री पूर्णिमा को मनाया जाता था। महाभारत मे तीन प्रकार के भूतो का उल्लेख है—उदासी, प्रतिकूल और दयालु।[140] रात्रि मे परिभ्रमण करने वाले भूत 'प्रतिकूल' माने गये हैं।[141] भूतगृह से पीडित मानवो की चिकित्सा भूतविद्या के द्वारा की जाती थी। कहा जाता है—'कुत्तियावण' मे सभी वस्तुएँ मिलती थी। वहाँ पर भूत भी मिलते थे। राजा प्रद्योत के समय उज्जयिनी मे इस प्रकार की दुकाने थी, जहाँ पर मनोवाञ्छित वस्तुएँ मिलती थी। भृगुकच्छ का एक व्यापारी उज्जयिनी मे भूत को खरीदने के लिए आया था। दुकानदार ने उसे बताया—आपको भूत तो मिल जायेगा पर आपने यदि उस भूत को कोई काम न बताया तो वह आपको समाप्त कर देगा। व्यापारी भूत को लेकर वहाँ से प्रस्थित हुआ। वह उसे जो भी कार्य बताता चुटकियो मे सम्पन्न कर देता था। अन्त मे भूत से तग आकर उस व्यापारी ने एक खम्भा

---

१३१ (क) 'द ज्योग्रफिकल कन्टेन्ट्स ऑव महाभारत' लेखक—डा सिल्वन लेवी
 (ख) महाभारत—२।१०।१०

१३२ संयुक्तनिकाय—१ १०, पृष्ठ-२०९

१३३ मत्स्यपुराण, अध्याय-१८०

१३४ औपपातिक, चम्पावर्णन, पूर्णभद्र चैत्य—पृष्ठ ४ युवाचार्य मधुकर मुनि

१३५ आवश्यकनिर्युक्ति-४८७

१३६ (क) ज्ञातृधर्मकथा ९, पृष्ठ १२७
 (ख) तुलना कीजिए—वलाहस्स जातक (१९६), २, पृष्ठ २९२

१३७ अन्तगडदशा-२, पृष्ठ-१५

१३८ द यक्षाज, वाशिंगटन, १९२८, १९३९ ले कुमारस्वामी ए के

१३९ (क) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति २४, पृष्ठ-१२०
 (ख) बृहत्कल्पसूत्र-६ १२ तथा भाष्य।

१४०. (क) देखिए—इपिक माइथॉलीजी, स्ट्रासवर्ग १९१५ —डा हॉपकिन्स ई डवल्यू
 (ख) कथासरित्सागर, सोमदेव, सम्पादक—पेंजर, भाग १, परि १ १४२४-२८ प्रका लन्दन

१४१. इपिक माइथॉलीजी, स्ट्रासवर्ग १९१५, पृष्ठ-३६ —डा हॉपकिन्स ई डवल्यू

गाड दिया और भूत से कहा—मैं जब तक तुम्हे नया काम नही बताऊँ जब तक तुम इस खम्भे पर चढते-उतरते रहो।[१४२]

साराश यह है कि इन उत्सवो की बहुत अधिक धूमधाम होती थी, जिससे कोई भी धूमधाम को देख कर प्राय यही समझा जाता था कि आज कोई इसी तरह का उत्सव होगा। चित्त सारथी के अन्तर्मानस मे भी यही जिज्ञासा हुई थी—जनमेदिनी को जाते हुए देखकर। वस्तुत ये उत्सव किसी धर्म और सम्प्रदायविशेष मे सम्बन्धित न होकर लोकजीवन से सम्बन्धित थे। इन उत्सवो के पीछे लौकिक कामनाये थी। जनमानस मे समाया भय भी इन उत्सवो को मनाने के लिए बाध्य करता था।

श्वेताम्बिका मे केशी श्रमण

चित्त सारथी को जब यह परिज्ञात हुआ कि केशी कुमारश्रमण पधारे हैं तो वह दर्शन और प्रवचन-श्रवण करने के लिए पहुँचा। प्रवचन को श्रवण कर वह इतना भावविभोर हो गया कि उसने श्रमणोपासक के द्वादश व्रत ग्रहण कर अपनी अनन्त श्रद्धा उनके चरणो मे समर्पित की। जब चित्त सारथी श्वेताम्बिका लौटने लगा तो उसने केशी कुमारश्रमण से अभ्यर्थना की—आप श्वेताम्बिका अवश्य पधारें। पुन-पुन निवेदन करने पर केशीश्रमण ने कहा कि वहाँ का राजा प्रदेशी अधार्मिक है, इसलिए मैं वहाँ कैसे आ सकता हूँ?

चित्त ने निवेदन किया—भगवन्! प्रदेशी के अतिरिक्त वहाँ पर अनेक भावुक आत्माएँ रहती हैं, जो अपने बीच आपको पाकर धन्यता अनुभव करेगी। सम्भव है, आपके पावन प्रवचनो से प्रदेशी के जीवन का भी काया-कल्प हो जाये। केशी कुमारश्रमण को लगा कि चित्त सारथी के तर्क मे वजन है। वहाँ जाने मे धर्म की प्रभावना हो सकती है। चित्त सारथी ने केशीकुमार की मुद्रा मे समझ लिया कि मेरी प्रार्थना अवश्य ही मूर्त्त रूप लेगी। उसने श्वेताम्बिका पहुँच कर सर्वप्रथम उद्यानपाल को सूचित किया कि केशीश्रमण अपने ५०० शिष्यो के साथ यहाँ पर पधारेंगे, अत उनके ठहरने के लिए योग्य व्यवस्था का ध्यान रखना।

कुछ दिनो के पश्चात् केशीश्रमण श्वेताम्बिका नगरी मे पधारे। उद्यानपालक ने उनके ठहरने की समुचित व्यवस्था की और चित्त सारथी को उनके आगमन की सूचना दी। चित्त सारथी समाचार पाकर प्रसन्नता से झूम उठा। वह दर्शन के लिए पहुँचा। उसने निवेदन किया—मैं किसी बहाने से राजा प्रदेशी को यहाँ लाऊँगा। आप डटकर उसका पथ-प्रदर्शन करना।

दूसरे दिन चित्त सारथी अभिनव शिक्षित घोडो की परीक्षा के बहाने राजा प्रदेशी को उद्यान मे ले गया, जहाँ केशी कुमारश्रमण विराज रहे थे। चित्त सारथी ने राजा को बताया—ये चार ज्ञान के धारक कुमारश्रमण केशी हैं। हम यह पूर्व मे ही बता चुके है कि राजा प्रदेशी अक्रियावादी था। उसे आत्मा के स्वतन्त्र अस्तित्व पर विश्वास नही था। वह आत्मा और शरीर को एक ही मानता था।

आत्मा : एक अनुचिन्तन

भारतीय दर्शन का विकास और विस्तार आत्मतत्त्व को केन्द्र मानकर ही हुआ है। आत्मवादी दर्शन हो या अनात्मवादी, सभी मे आत्मा के विषय मे चिन्तन किया है। किन्तु उस चिन्तन मे एकरूपता नही है। आत्मा विश्व के समस्त पदार्थों से विलक्षण है। प्रत्येक व्यक्ति आत्मा का अनुभव तो करता है, किन्तु उसे अभिव्यक्त नही कर

---

१४२ बृहत्कल्पभाष्यवृत्ति—३ ४२१४-२२

पाता। यही कारण है कि किसी ने आत्मा को शरीर माना, किसी ने बुद्धि कहा, किसी ने इन्द्रिय और मन को ही आत्मा समझा तो कितनो ने इन सवसे पृथक् आत्मा के स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार किया। आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि स्वसवेदन से होती है। इस ससार मे जितने भी प्राणी है, वे अपने आपको सुखी-दुखी, धनवान्-निर्धन अनुभव करते हैं। यह अनुभूति चेतन आत्मा को ही होती है, जड को नही। आत्मा अमूर्त है। किन्तु अनात्मवादियो की धारणा है कि घट-पट आदि पदार्थ जैसे प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं, उसी तरह आत्मा प्रत्यक्ष दिखाई नही देता और जो प्रत्यक्ष से सिद्ध नही है, उसकी सिद्धि अनुमान प्रमाण से भी नही हो सकती, क्योकि अनुमान का हेतु प्रत्यक्षगम्य होना चाहिए, जैसे अग्नि का अविनाभावी हेतु धूम प्रत्यक्षगम्य है। हम भोजनशाला मे उसे प्रत्यक्ष देखते हैं, इसलिए दूसरे स्थान पर भी धुएँ को देखकर स्मरण के वल पर परोक्ष अग्नि को अनुमान से जान लेते हैं। किन्तु आत्मा का इस प्रकार का कोई अविनाभावी पदार्थ पहले नही देखा। इसीलिए आत्मा का अस्तित्व प्रत्यक्ष और अनुमान से सिद्ध नही है। प्रत्यक्ष से सिद्ध न होने के कारण चार्वाक दर्शन ने आत्मा को स्वतन्त्र द्रव्य नही माना। भूतसमुदाय से विज्ञानघन उत्पन्न होता है और भूतो के नष्ट होने पर वह भी नष्ट हो जाता है। परलोक या पुनर्जन्म नही है।

किसी-किसी का यह मन्तव्य था कि शरीर ही आत्मा है। शरीर से भिन्न कोई आत्मा नामक तत्त्व नही है। यदि शरीर से भिन्न आत्मा हो तो मृत्यु के पश्चात् स्वजन और परिजनो के स्नेह से पुन लौटकर क्यो नही आता? इसलिए इन्द्रियातीत कोई आत्मा नही है, शरीर ही आत्मा है।

इसके उत्तर मे आत्मवादियो का कथन है कि आत्मा है या नही, यह सशय जड को नही होता। यह चेतन तत्त्व को ही हो सकता है। यह मेरा शरीर है, इसमे जो 'मेरा' शब्द है वह सिद्ध करता है कि 'मैं' शरीर से पृथक् हूँ। जो शरीर से पृथक् है, वह आत्मा है।

जड पदार्थ मे किसी का विधान या निषेध करने का सामर्थ्य नही होता। यदि जड शरीर से भिन्न चैतन्यमय आत्मा का अस्तित्व न हो तो आत्मा का निषेध कौन करता है? स्पष्ट है कि आत्मा का निषेध करने वाला स्वय आत्मा ही है।

आचार्य देवसेन ने आत्मा के ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, चेतनत्व, अमूर्त्तत्व ये छह गुण बताये है।[१४३] आचार्य नेमिचन्द्र ने जीव को उपयोगमय, अमूर्त्तिक, कर्त्ता, स्वदेहपरिमाण, भोक्ता, ऊर्ध्वगमनशील कहा है।[१४४] जहाँ पर उपयोग है, वहाँ पर जीवत्व है। उपयोग के अभाव मे जीवत्व रह नही सकता। उपयोग या ज्ञान जीव का ऐसा लक्षण है जो सासारिक और मुक्त सभी मे पाया जाता है।

छान्दोग्योपनिषद् मे एक सुन्दर प्रसग है[१४५]—असुरो मे से 'विरोचन' और देवो मे से 'इन्द्र' ये दोनो आत्म-स्वरूप को जानने के लिए प्रजापति के पास पहुँचे। प्रजापति ने एक शान्त सरोवर मे उन्हे देखने को कहा और पूछा—क्या देख रहे हो? विरोचन और इन्द्र ने कहा—हम अपना प्रतिविम्व देख रहे है। प्रजापति ने बताया—बस यही आत्मा है। विरोचन को समाधान हो गया और वह चल दिया। पर इन्द्र चिन्तन के महासागर मे गहराई मे डुबकी लगाने लगे। इन्द्रिय और शरीर का सचालक मन है, अत उन्होने पहले मन को आत्मा माना, उसके बाद सोचा—मन भी जब तक प्राण हैं तभी तक रहता है। प्राण पखेरू उडने पर मन का

---

१४३ आलापपद्धति, प्रथम गुच्छक, पृष्ठ-१६५-६६

१४४. द्रव्यसग्रह-१।२

१४५. छान्दोग्योपनिषद्-८-८

चिन्तन वन्द हो जाता है, अत. मन नही, प्राण आत्मा है। चिन्तन आगे बढा और उन्हे यह भी मालूम हुआ कि प्राण नाशवान् है, परन्तु आत्मा तो शाश्वत है। शरीर, इन्द्रिय, मन और प्राण ये भौतिक है, किन्तु आत्मा अभौतिक है।

चार्वाकदर्शन को छोडकर भारत के सभी दर्शन आत्मा के अस्तित्व मे विश्वास करते है। न्याय और वैशेषिक दर्शन का मन्तव्य है—आत्मा अविनश्वर और नित्य है। इच्छा, द्वेप, प्रयत्न, सुख, दु ख और ज्ञान उसके विशेष गुण हैं। आत्मा ज्ञाता, कर्त्ता और भोक्ता है। ज्ञान, अनुभूति और सकल्प आत्मा के धर्म हैं। चैतन्य आत्मा का स्वरूप है। मीमासा दर्शन का भी यही अभिमत है। वह आत्मा को नित्य और विभु मानता है। चैतन्य को आत्मा का निजगुण नही किन्तु आगन्तुक गुण मानता है। स्वप्नरहित गाढ निद्रा मे तथा मोक्ष की अवस्था मे आत्मा चैतन्य गुणो से रहित होता है। साख्य दर्शन ने पुरुप को नित्य, विभु तथा चैतन्य स्वरूप माना है। साख्य दृष्टि से चैतन्य आत्मा का आगन्तुक गुण नही है, वह निजगुण है। पुरुप अकर्त्ता है। वह स्वय सुख-दु ख की अनुभूतियो से रहित है। बुद्धि कर्त्ता है और वही सुख-दु ख का अनुभव करती है। बुद्धि का उपादान कारण प्रकृति है। प्रकृति प्रतिपल-प्रतिक्षण क्रियाशील है। इसके विपरीत पुरुप विशुद्ध चैतन्य स्वरूप है। अद्वैत वेदान्त आत्मा को विशुद्ध सत्, चित् और आनन्द स्वरूप मानता है। साख्य दर्शन ने अनेक पुरुपो (आत्माओं) को माना है, पर ईश्वर को नही माना। जबकि वेदान्त दर्शन केवल एक ही आत्मा को सत्य मानता है। बौद्ध दर्शन की दृष्टि से आत्मा ज्ञान, अनुभूति और सकल्पो की प्रतिक्षण परिवर्तन होने वाली सन्तति है। इसके विपरीत जैन दर्शन का वज्र आघोप है—आत्मा नित्य, अजर और अमर है। ज्ञान आत्मा का मुख्य गुण है। आत्मा स्वभाव मे अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त शक्ति से सम्पन्न है।

राजा प्रदेशी जीव और शरीर को एक मानता था। उसकी मान्यता के पीछे अपना अनुभव था। उसने अनेको वार परीक्षण कर देखा—तस्करो और अपराधियो को सन्दूक मे वन्द कर या उनके शरीर के टुकडे-टुकडे कर जीव को देखने का प्रयत्न किया कि कही आत्मा का दर्शन हो, पर आत्मा अरूपी होने के कारण उसे दिखाई कैसे दे सकता था? जव आत्मा दिखाई नही दिया तो उसे अपना मत सही ज्ञात हुआ कि जीव और शरीर अभिन्न हैं। किन्तु उसके सभी तर्को का केशी कुमारश्रमण ने इस प्रकार रूपको के माध्यम से निरसन किया कि राजा प्रदेशी को आत्मा और शरीर पृथक्-पृथक् स्वीकार करने पडे।

स्वर्ग और नरक से जीव क्यो नही आकर कहते हैं कि हमने प्रवल पुण्य की आराधना की जिसके फल-स्वरूप मैं देव बना हूँ, मैंने पापकृत्य किया जिसके कारण मैं नरक मे दारुण वेदनाओ को भोग रहा हूं, इसलिए मैं तुम्हे कहता हूँ कि तुम पाप से वचो और पुण्य उपार्जन की ओर लगो। यदि स्वर्ग और नरक होता तो मेरे पिता, प्रपितामह वहाँ गये होगे, वे अवश्य ही आकर मुझे चेतावनी देते। प्रत्युत्तर मे केशी श्रमण ने कहा—एक कामुक व्यक्ति हो, जिसने तुम्हारी पत्नी के साथ दुराचार किया हो, और तुमने उसे प्राणदण्ड की सजा दी हो, वह अपने पारिवारिक जनो को सूचना देने के लिए जाना चाहे तो क्या तुम उसे मुक्त करोगे? नही, वैसे ही नरक से जीव मुक्त नही हो पाते, जो आकर तुम्हे सूचना दें और स्वर्ग के जीव इसलिए नही आते कि यहाँ पर गन्दगी है। कल्पना करो अपने शरीर को स्वच्छ वनाकर और सुगन्धित द्रव्यो को लेकर तुम देवालय की ओर जा रहे हो, उस समय शौचालय मे वैठा हुआ कोई व्यक्ति तुम्हे वहाँ बुलाए तो क्या तुम उस गन्दे स्थान मे जाना पसन्द करोगे? नही। वैसे ही देव भी यहाँ आना पसन्द नही करते है।

राजा प्रदेशी और केशी का यह सवाद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। केशी श्रमण की युक्तियाँ इतनी गजव की हैं कि आज भी पाठको के लिए प्रेरणादायी ही नही अपितु आत्म-स्वरूप को समझने के लिए सर्चलाइट की तरह

उपयोगी हैं। वास्तविक रूप से देखा जाय तो यही संवाद राजप्रश्नीय की आत्मा है। जिस तरह से राजप्रश्नीय में प्रश्नोत्तर हैं, उसी तरह दीघ-निकाय के 'पायासिसुत्त में राजा 'पायासि' के प्रश्नोत्तर है। जो इन प्रश्नों से मिलते-जुलते हैं। यह भी सम्भव है कि जनमानस में आत्मा और शरीर की अभिन्नता को लेकर जो चिन्तन चल रहा था, उसका प्रतिनिधित्व राजा प्रदेशी ने किया हो और जैन दृष्टि से उसका समाधान केशी श्रमण ने किया हो।

राजा प्रदेशी का जीवन अत्यन्त उग्र रहा है। उसके हाथ रक्त से सने हुए रहते थे पर केशी श्रमण के सान्निध्य ने उसके जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन कर दिया। महारानी के द्वारा जहर देने पर भी उसके मन में किंचित् मात्र भी रोष पैदा नहीं हुआ। जिस जीवन में पहले क्रोध की ज्वाला धधक रही थी, वही जीवन क्षमा-सागर के रूप में परिवर्तित हो गया। इसलिए सत्संग की महिमा और गरिमा का यत्र-तत्र उल्लेख हुआ है।

व्याख्या-साहित्य

राजप्रश्नीय कथाप्रधान आगम होने से इस पर न निर्युक्ति लिखी गई, न भाष्य की रचना हुई और न चूर्णि का निर्माण ही हुआ। इस पर सर्वप्रथम आचार्य मलयगिरि ने संस्कृत भाषा में टीकानिर्माण किया। संस्कृत टीकाकारों में आचार्य मलयगिरि का स्थान विशिष्ट है। जिस प्रकार वैदिक परम्परा में वाचस्पति मिश्र ने षट्दर्शनों पर महत्वपूर्ण टीकाएँ लिखकर एक भव्य आदर्श उपस्थित किया, वैसे ही जैन साहित्य पर आचार्य मलयगिरि ने प्राञ्जल भाषा और प्रवाहपूर्ण शैली में भावपूर्ण टीकाएँ लिखकर एक आदर्श उपस्थित किया। वे दर्शनशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे। उनमें आगमों के गम्भीर रहस्यों को तर्कपूर्ण शैली से व्यक्त करने की अद्भुत कला और क्षमता थी। आगमप्रभावक मुनि पुण्यविजय जी महाराज के शब्दों में कहा जाय तो 'व्याख्याकारों में उनका स्थान सर्वोत्कृष्ट है।'

मलयगिरि अपनी वृत्तियों में सर्वप्रथम मूलसूत्र, गाथा या श्लोक के शब्दार्थ की व्याख्या कर उसके अर्थ का स्पष्ट निर्देश करते हैं और उसकी विस्तृत विवेचना करते हैं, जिससे उसका अभाष्टार्थ पूर्णरूप से स्पष्ट हो जाता है। विषय से सम्बन्धित अन्य प्रासंगिक विषयों पर विचार करना तथा प्राचीन ग्रन्थों के प्रमाण प्रस्तुत करना आचार्यश्री की अपनी विशेषता है।

टीकाकार ने सर्वप्रथम श्रमण भगवान् महावीर को नमस्कार किया है। उसके पश्चात् राजप्रश्नीय पर विवरण लिखने की प्रतिज्ञा की।[१४६] साथ ही इस बात पर भी प्रकाश डाला है कि प्रस्तुत आगम का नाम राजप्रश्नीय क्यों रखा गया है। इस सम्बन्ध में लिखा है—यह आगम राजा के प्रश्नों से सम्बन्धित है, इसीलिए इसका नाम 'राजप्रश्नीय' है। टीकाकार ने यह भी बताया है कि यह आगम सूत्रकृतांग का उपांग है। टीका में, आगम में आये हुए विशिष्ट शब्दों की मीमांसा भी की है। मीमांसा में टीकाकार का गम्भीर पाण्डित्य उजागर हुआ है। टीका का ग्रन्थ-प्रमाण तीन हजार सात सौ श्लोक प्रमाण है। टीका में अनेक स्थलों पर जीवाजीवाभिगम के उद्धरण दिये हैं। कहीं-कहीं पर पाठभेद का भी निर्देश किया है। देशीनाममाला के उद्धरण भी दिये गये हैं।[१४७]

---

१४६ प्रणमत वीरजिनेश्वरचरणयुगं परमपाटलच्छायम्।
अधरीकृतनतवासवमुकुटस्थितरत्नरुचिचक्रम्॥ १॥
राजप्रश्नीयमहं विवृणोमि यथाऽऽगमं गुरुनियोगात्।
तत्र च शक्तिमशक्तिं गुरवो जानन्ति का चिन्ता॥ २॥

१४७ पहकरा संघाता—पहकर-ओरोह-संघाया इति देशीनाममालावचनात्। —राजप्रश्नीयवृत्ति, पृष्ठ ३

प्रस्तुत आगम और उसकी टीका मे जडवाद और आत्मवाद का सुन्दर विश्लेपण हुआ है। स्थापत्य, सगीत और नाट्यकला के अनेक तथ्यो का इसमे समावेश है। लेखन सम्बन्धी सामग्री का भी उसमे निर्देश है। साम, दाम, दण्ड, नीति के अनेक सिद्धान्त इसमे समाविष्ट है। वहत्तर कलायें, चार परिषद्, कलाचार्य, शिल्पाचार्य का भी इसमे निरूपण हुआ है। भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा से सम्बन्धित अनेक तथ्य इसमे आये है। राजा प्रदेशी और केशी श्रमण का जो सवाद है, साहित्यिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह सवाद कथा के विकास के लिए एक आदर्श लिए हुए है। इस सवाद मे जो रूपक दिये गये है, वे आत्मा के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए परम उपयोगी हैं। इनका उपयोग वाद मे अन्य साहित्यकारो ने भी किया है। जैसे—आचार्य हरिभद्र ने समरा-इच्चकहा मे 'पिंगल' और 'विजयसिंह' के सवाद मे वन्द कमरे मे से भी स्वरलहरियाँ वाहर आती है, इस रूपक को प्रस्तुत किया है।

राजप्रश्नीय सूत्र का सर्वप्रथम सन् १८८० मे वावू धनपतसिंहजी ने मलयगिरि वृत्ति के साथ प्रकाशन किया। उसके वाद सन् १९२५ मे आगमोदय समिति वम्बई और वि० स० १९९४ मे गुर्जर ग्रन्थरत्न कार्यालय — अहमदावाद से सटीक प्रकाशित हुआ। वी० स० २४४५ मे पूज्य अमोलकऋषि जी म० के द्वारा हिन्दी अनुवाद सहित सस्करण निकला। सन् १९६५ मे पूज्य श्री घासीलाल जी म० ने स्वनिर्मित सस्कृत व्याख्या व हिन्दी-गुजराती अनुवाद के साथ जैन शास्त्रोद्धार समिति—राजकोट से प्रकाशित किया। सन् १९३५ मे प० बेचरदास जीवराज दोशी ने इसका गुजराती अनुवाद लाधाजी स्वामी पुस्तकालय—लीमडी से और वि० स० १९९४ मे गुर्जर ग्रन्थरत्न कार्यालय—अहमदावाद से प्रकाशित करवाया। इस प्रकार आज दिन तक राजप्रश्नीय के विविध सस्करण अनेक स्थलो से प्रकाशित हुए हैं।

प्रस्तुत सम्पादन

राजप्रश्नीय का यह अभिनव सस्करण आगम प्रकाशन समिति व्यावर [राज०] द्वारा प्रकाशित हो रहा है। इस के सयोजक और प्रधान सम्पादक हैं—युवाचार्य श्री मधुकर मुनिजी म०। वे श्रमणसघ के भावी आचार्य हैं। आगमो को अधुनातन भाषा मे प्रकाशित करने का उनका दृढ सकल्प प्रशसनीय है। उन्होंने आगमो का कार्य हाथ मे लिया पर इतने स्वल्प समय मे प्रश्नव्याकरण को छोडकर शेष दश अग प्राय प्रकाशित हो गये हैं। भगवती का भी प्रथम भाग प्रकाशित हो चुका है। अन्य भाग भी प्रकाशन के पथ पर द्रुत गति से कदम वढा रहे हैं। औपपातिक और नन्दीसूत्र के वाद राजप्रश्नीय का प्रकाशन हो रहा है। अन्य आगम भी प्रेस के चक्के पर चढ चुके हैं। आगम प्रकाशन का यह कार्य राकेट की गति से हो रहा है। यदि यही गति रही तो एक-डेढ वर्ष मे वत्तीस आगमो का प्रकाशन समिति के द्वारा पूर्ण रूप से सम्पन्न हो जायेगा। वस्तुत यह भगीरथ कार्य युवाचार्य श्री की कीर्ति को अमर वनाने वाला है।

राजप्रश्नीय के इस सस्करण की अपनी मौलिक विशेषता है—शुद्ध मूलपाठ, भावार्थ और सक्षिप्त विवेचन। विषय गम्भीर होने पर भी प्रस्तुतीकरण सरल है। पूर्व के अन्य सस्करणो की अपेक्षा यह सस्करण अधिक आकर्षक है। इसके सम्पादक हैं—वाणीभूषण प० श्री रतनमुनिजी म०, जिन्होंने निष्ठा के साथ इसका सम्पादन किया है। साथ ही प० शोभाचन्द्र जी भारिल्ल का अथक श्रम भी इसमे जुडा हुआ है। वृद्धावस्था होने पर भी वे जो श्रम कर रहे हैं, वह श्रम नीव की ईंट के रूप मे आगममाला के साथ जुडा हुआ है। यदि वे तन, मन के साथ श्रुतसेवा के इस महायज्ञ मे जुटे नही होते तो यह कार्य इस रूप मे सम्पन्न शायद ही हो पाता।

राजप्रश्नीय पर मैं बहुत विस्तार के साथ प्रस्तावना लिखना चाहता था। आत्मवाद के गम्भीर विषय को विभिन्न दर्शनो के आलोक मे प्रस्तुत करना चाहता था पर मेरा स्वास्थ्य लम्बे समय से अस्वस्थ-सा रहा, जिसके

कारण चाहते हुए भी लिख नही पाया। तथापि संक्षेप मे मैंने आगमगत विषयो पर चिन्तन किया है। तुलनात्मक और समन्वयात्मक चिन्तन करने की दृष्टि मुझे अपने श्रद्धेय सद्गुरुवर्य, राजस्थानकेसरी अध्यात्मयोगी, उपाध्याय श्री पुष्करमुनि जी म० से प्राप्त हुई, जो युवाचार्य श्री के स्नेही साथी हैं। उनकी अपार कृपा से ही मैं प्रस्तावना लिखने मे सक्षम हो सका हूँ।

वर्त्तमान युग मे मानव भौतिकता की ओर अपने कदम बढा रहा है, जिससे उसे शान्ति के स्थान पर अशान्ति प्राप्त हो रही है। ऐसी विषम स्थिति मे यह आगम अध्यात्मवाद की पवित्र प्रेरणा देगा, उसे शान्ति की सच्ची राह बतायेगा। उसकी तनावपूर्ण स्थिति को समाप्त कर जीवन मे धर्म की सुरीली स्वर-लहरियाँ झकृत करेगा, इसी आशा के साथ विरमामि।

—देवेन्द्रमुनि शास्त्री

धन तेरस
दि० १३ नवम्बर, '८२
जैन स्थानक,
सिंहपोल—जोधपुर (राज०)

□□

श्रीआगम प्रकाशन समिति ब्यावर

(कार्यकारिणी समिति)

१	श्रीमान् सेठ मोहनमलजी चोरडिया	अध्यक्ष	मद्रास
२	श्रीमान् सेठ रतनचन्दजी मोदी	कार्यवाहक अध्यक्ष	ब्यावर
३	श्रीमान् कँवरलालजी बैताला	उपाध्यक्ष	गोहाटी
४	श्रीमान् दौलतराजजी पारख	उपाध्यक्ष	जोधपुर
५	श्रीमान् रतनचन्दजी चोरडिया	उपाध्यक्ष	मद्रास
६	श्रीमान् खूबचन्दजी गादिया	उपाध्यक्ष	ब्यावर
७	श्रीमान् जतनराजजी मेहता	महामन्त्री	मेड़ता सिटी
८	श्रीमान् चाँदमलजी विनायकिया	मन्त्री	ब्यावर
९	श्रीमान् ज्ञानराजजी मूथा	मन्त्री	पाली
१०	श्रीमान् चाँदमलजी चौपड़ा	सहमन्त्री	ब्यावर
११	श्रीमान् जौहरीलालजी शीशोदिया	कोषाध्यक्ष	ब्यावर
१२	श्रीमान् गुमानमलजी चोरडिया	कोषाध्यक्ष	मद्रास
१३	श्रीमान् मूलचन्दजी सुराणा	सदस्य	नागौर
१४	श्रीमान् जी सायरमलजी चोरडिया	सदस्य	मद्रास
१५	श्रीमान् जेठमलजी चोरडिया	सदस्य	बैंगलौर
१६	श्रीमान् मोहनसिंहजी लोढा	सदस्य	ब्यावर
१७	श्रीमान् बादलचन्दजी मेहता	सदस्य	इन्दौर
१८	श्रीमान् मागीलालजी सुराणा	सदस्य	सिकन्दराबाद
१९	श्रीमान् माणकचन्दजी बैताला	सदस्य	बागलकोट
२०	श्रीमान् भवरलालजी गोठी	सदस्य	मद्रास
२१	श्रीमान् भवरलालजी श्रीश्रीमाल	सदस्य	दुर्ग
२२	श्रीमान् सुगनचन्दजी चोरडिया	सदस्य	मद्रास
२३	श्रीमान् दुलीचन्दजी चोरडिया	सदस्य	मद्रास
२४	श्रीमान् खीवराजजी चोरडिया	सदस्य	मद्रास
२५	श्रीमान् प्रकाशचन्दजी जैन	सदस्य	भरतपुर
२६	श्रीमान् भवरलालजी मूथा	सदस्य	जयपुर
२७	श्रीमान् जालमसिंहजी मेडतवाल	(परामर्शदाता)	ब्यावर

राजप्रश्नीयसूत्रम्

राजप्रश्नीयसूत्रम्

आरम्भ

(१) तेण कालेण तेणं समएणं आमलकप्पा नाम नयरी होत्था-रिद्ध-त्थिमिय-समिद्धा जाव [पमुइयजण-जाणवया आइण्णजणमणूसा हलसयसहस्ससकिट्ठविगिट्ठलट्ठपण्णत्तसेउसीमा कुक्कुडसंडेयगामपउरा उच्छु-जव-सालिकलिआ गो-महिस-गवेलगप्पभूया आयारवंत-चेइय-जुवइविसिट्ठसन्निविट्ठबहुला उक्कोडिय-गाय-गठिभेद-तक्कर-खंडरक्खरहिया खेमा निरुवद्दवा सुभिक्खा वीसत्थसुहावासा अणेगकोडिकोडु बियाइण्णणिव्वुत्तसुहा नड-नट्ट-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिय-वेलंबग-कहग-पवग-लासग-आइक्खग-लख-मख तूणइल्ल-तु ववीणिय-अणेगतालाचराणुचरिया आराम-उज्जाण-अगड-तलाग-दीहिय-वाप्पिणगुणोववेया उव्विद्धविउलगंभीरखात-फलिहा चक्क-गय-भुसु ढि-ओरोह-सयग्घि-जमलकवाडघणदुप्पवेसा धणुकुडिलवक-पागारपरिक्खित्ता कविसीसयवट्टरइय-सठियविरायमाणा अट्टालय-चरिय दार-गोपुरतोरण-उन्नय-सुविभत्तरायमग्गा छेयायरियरइयदढफलिहइदकीला विवणि-वणिच्छित्त-सिप्पि-आइण्णनिव्वुयसुहा सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-पणियापणविविहवसुपरिमडिया सुरम्मा नरवइ-पविइण्णमहिवइपहा अणेग-वरतुरग-मत्तकु जर-रहपहकर-सीय-संदमाणीआइण्णजाणजोग्गा विमउलनवनलिणसोभियजला पडुरवर-भवणपतिमहिया उत्ताणयनयणपिच्छणिज्जा] पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ।

उस काल और उस समय मे अर्थात् वर्तमान अवसर्पिणी काल के चौथे आरे के उत्तरवर्ती समय मे आमलकप्पा [आमलकल्पा] नाम की नगरी थी ।

वह आमलकल्पा नगरी भवनादि वैभव-विलास से सपन्न थी, स्वचक्र और परचक्र के भय से मुक्त—रहित थी । धन-धान्य आदि की समृद्धि से परिपूर्ण थी यावत् (इसके मूल निवासी और जानपद—दूसरे देशवासी जन—यहा आनन्द से रहते थे । जन-समूहो से सदा आकीर्ण—भरी रहती थी ।

सैकडो-हजारो अथवा लाखो हलो से बार-बार जुतने, अच्छी तरह से जुतने के कारण वहाँ के खेतो की मिट्टी भुरभुरी—नरम और मनोज्ञ दिखती थी । उनमे प्राज्ञ-कृषि-विद्या मे निपुण व्यक्तियो द्वारा जलसिंचन के लिए नालिया एव क्यारिया और सीमाबदी के लिये मेडे बनी हुई थी ।

नगरी के चारो ओर गाव इतने पास-पास बसे हुए थे कि एक गाव के मुर्गो और साडो की आवाज दूसरे गाव मे सुनाई देती थी । वहा के खलिहानो मे गन्ने, जौ और धान के ढेर लगे रहते थे, अथवा खेतो मे गन्ने जौ और धान की फसले सदा लहलहाती रहती थी । गायो भैसो और भेडो के टोले के टोले वहा पलते थे ।

आकर्षक आकार-प्रकार वाले कलात्मक चैत्यो और पण्यतरुणियो (गणिकाओ) के बहुत से सुन्दर सन्निवेशो से नगरी शोभायमान थी ।

लाच—रिश्वत लेने वालो-घूसखोरो, घातको, गु डो, गाठ काटने वालो—जेबकतरो, डाकुओ, चोरो और जबरन जकात (राजकर, चु गी, टैक्स) वसूल करने वालो के न होने से नगरी क्षेम रूप

थी, अनिष्ट-उपद्रवो से रहित थी, सुभिक्ष होने से भिक्षुओ को सरलता से भिक्षा मिल जाती थी। लोग यहाँ विश्वासपूर्वक सरलता से रहते थे और दूसरे-दूसरे अनेक सैकडो प्रकार के[1] कुटुम्ब परिवारो के भी बसने से नगरी साताकारी समझी जाती थी।

नट—नाटक करने वालो, नर्तक—नृत्य-नाच करने वालो, जल्ल—रस्सी पर चढकर कलाबाजिया दिखाने वालो, मल्ल—पहलवानो, मौष्टिक—पजा लडाने वालो, विदूषको, बहुरूपियो, कथक—कथा कहानी कहने वालो, प्लवक—पानी मे तैरने वालो, उछल-कूद करने वालो, लासक—रास रचने वालो, स्वाग धरने वालो, आख्यायिक—शुभ-अशुभ शकुन बताने वालो, लख—ऊंचे बास पर चढकर कलाबाजी, खेल करने वालो, मख—चित्र दिखाकर भीख मागने वालो, शहनाई बजाने वालो, तम्बूरा बजाने वालो और खडताल बजाने वालो से नगरी अनुचरित – व्याप्त थी।

आरामो—लताकु जो, उद्यानो—बाग बगीचो, कूपो, जलाशयो, दीर्घिकाओ—लम्बे आकार की बावडियो और सामान्य बावडियो आदि से युक्त होने के कारण वह नगरी रमणीय थी।

सुरक्षा के लिये नगरी को चारो ओर से घेरती हुई गोलाकार खात (खाई) थी, जो विस्तृत, तल न दिखे ऐसी गहरी और ऊपर चौडी एव नीचे सकडी थी और खात के बाहर ऊपर नीचे समान रूप से खुदी हुई परिखा थी।

खाई के बाद नगरी को चारो ओर से घेरता हुआ धनुष जैसा वक्राकार परकोटा था। जो चक्र, गदा, भुसु डि (शस्त्र विशेष) अवरोध, शतघ्नी और मजबूत, सम-युगल किवाडो सहित था। जिससे नगरी मे शत्रुओ का प्रवेश करना कठिन था। इस परकोटे का ऊपरी भाग गोल-गोल कगूरो से शोभायमान था और वहा पहरेदारो के लिये ऊची-ऊची अटारिया-मीनारे बनी हुई थी। किले और नगरी के बीच आने-जाने का रास्ता आठ-हाथ चौडा था। प्रवेश-द्वार पर तोरण बध हुए थे।

नगरी के राजमार्ग सम, सुन्दर और आकर्षक थे और द्वारो मे निपुण शिल्पियो द्वारा बनायी गई अर्गलाओ एव इन्द्रकीलियो वाले किवाड लगे हुए थे।

नगरी के बाजार भाति-भाति की क्रय-विक्रय करने योग्य वस्तुओ और व्यापारियो से व्याप्त रहते थे और व्यापार के केन्द्र—मडी थे। जिससे अलग-अलग कामो के जानकार शिल्पियो, कारीगरो, मजदूरो का वहा सुखपूर्वक निर्वाह होता था।

नगरी मे कितने ही मार्ग सिंघाडे जैसे त्रिकोण और कितने ही त्रिको (तिराहो), चतुष्को (चौराहो) और चत्वरो (चार से भी अधिक मार्ग) आदि वाले थे और दुकाने बिक्री करने योग्य अनेक प्रकार की रमणीय वस्तुओ से भरी रहती थी।

नगरी के राजमार्ग देश-देश के राजा-महाराजाओ आदि के आवागमन से और साधारण

---

१ मूल मे इसके लिये 'अणेगकोडि' शब्द है। आचार्य मलयगिरि सूरि ने इसका अर्थ अनेककोटिभि अनेक कोटिसख्याकै अर्थात् अनेक कोटि यानि अनेक करोड सख्या किया है। परन्तु इस अर्थ की बजाय अनेक कोटि—अनेक प्रकार ऐसा अर्थ करना यहा विशेष उचित लगता है। क्योकि कोटि शब्द का प्रकार अर्थ जैन आगमो मे सुप्रतीत है।

मार्ग अनेक सुन्दर अश्वो, मदोन्मत्त हाथियो, रथो, पालखियो, और म्यानो के आने-जाने से व्याप्त रहते थे ।

वहा के जलाशय, तालाब आदि विकसित कमल-कमलिनियो से सुशोभित थे और मकान, भवन आदि सफेद मिट्टी-चूने आदि से पुते हुए होने से बडे सुन्दर दिखते थे । जिससे नगरी की शोभा अनिमेष दृष्टि से देखने लायक थी । वह मन को प्रसन्न करने वाली थी, बार-बार देखने योग्य थी, मनोहर रूप वाली थी और असाधारण सौन्दर्य वाली थी ।

विवेचन—यहा औपपातिक सूत्र का आधार लेकर आमलकप्पा नगरी की समृद्धि का वर्णन किया है ।

आमलकप्पा—भगवान् महावीर ने जिन नगरो मे चातुर्मास किये है, उनमे तथा सूत्रो मे बताई गई आर्य देश की राजधानियो मे इसका उल्लेख नही है । इसी प्रकार भगवान् के विहार स्थानो मे भी आमलकप्पा के नाम का सकेत नही है । किन्तु इस राजप्रश्नीय सूत्र के उल्लेख से इतना कहा जा सकता है कि केवलज्ञानी होने के अनन्तर भगवान् ने जिन स्थानो पर विहार किया, सभवत उनमे इसका नाम हो । किन्तु वर्तमान मे वह नगरी कहा है और उसका क्या नाम है ? यह अभी भी अज्ञात है ।

हलसय-सहस्स-सकिट्ठ—विशेषण से यह स्पष्ट किया है कि हमारा देश कृषिप्रधान है और कृषि अहिंसक सस्कृति की आधार है । प्राचीन समय मे अन्यान्य विषयो की तरह कृषि-विद्या से सम्बन्धित प्रभूत साहित्य था । जिसमे कृषि से साक्षात सम्बन्ध रखने वाले—भूमिपरीक्षा, भूमि-सुधारविधि, बीजरक्षणविधि, वृक्षो के रोग और उनके निरोध के लिये औषधोपचार आदि अनेक विषयो की विस्तृत चर्चा रहती थी ।

आज के कृषक को चाहे कोई मूढ-अज्ञ कह दे, परन्तु उस समय का कृषक मूढ नही किन्तु प्राज्ञ माना जाता था । जो 'पण्णत्तसेउसीमा' पद के उल्लेख से स्पष्ट है ।

कुक्कुडसडेयगामपउरा—व्याकरण महाभाष्य मे ग्रामो की समीपता सूचित करने के लिये ग्रामो के विशेषण के रूप मे 'कुक्कुटसपात्या ग्रामा' उदाहरण रखा है । उपर्युक्त वर्णन से यह निश्चित ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल के ग्राम अवश्य ही कुक्कुटसपात्य ही थे अर्थात् एक ग्राम का मुर्गा दूसरे ग्राम मे पहुँच सके ऐसा निकटवर्ती गाव । आज भी सुदूर क्षेत्र मे कृषिप्रधान गाव इसी प्रकार के कुक्कुट-सपात्य है ।

जुवइ—अर्थात् पण्य तरुणी । यद्यपि आज इस शब्द का प्रयोग वेश्या के लिये रूढ हो गया है और उसे समाज बहिष्कृत मानकर तिरस्कार, घृणा और हेयदृष्टि से देखता है । लेकिन यह शब्द तत्कालीन समाज की एक सस्थाविशेष का बोध कराता है । जो अपने कला, गुण और रूपसौन्दर्य के कारण राजा द्वारा सम्मानित की जाती थी । गुणी-जन प्रशसा करते थे । कला के अर्थी कला सीखने के लिये उससे प्रार्थना करते थे और उसका आदर करते थे । सम्भवत इसी कारण उसका यहा उल्लेख किया हो ।

नगरी मे रिश्वतखोर आदि कोई नही था इत्यादि कथन मे उसके उज्ज्वल पक्ष का ही उल्लेख किया गया है । यह साहित्यकारो की प्रणाली प्राचीनकाल से चली आ रही है । परन्तु

मानवस्वभाव को देखते यह पूर्णत: सम्भव जैसा प्रतीत नही होता है। तथापि नगरी के इस वर्णन से यह विदित होता है कि इसमे रहने वाले अपेक्षाकृत सभ्य, शिष्ट, सुसस्कृत एव प्रामाणिक थे।

खायफलिहा—खात और परिखा। वैसे तो ये दोनो शब्द प्राय समानार्थक माने जाते हैं। लेकिन आचार्य मलयगिरि ने इनका अन्तर स्पष्ट किया है कि खात तो ऊपर चौडी और नीचे-नीचे सकडी होती जाती है। जबकि परिखा (खाई) ऊपर से लेकर नीचे तक एक जैसी सम—सीधी खुदी हुई होती है। प्राचीनकाल मे नगर की रक्षा के लिये परकोटे से पहले खाई होती थी, जिसमे पानी भरा रहता था और खाई से पहले खात। खात मे अगारे अथवा अलसी आदि चिकना धानविशेष भर देते थे कि जिस पर पैर रखते ही मनुष्य तल मे चला जाता है। इस प्रकार खात भी नगर-रक्षा का एक साधन था।

चैत्य-वर्णन

२—तीसे णं आमलकप्पाए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए अंबसालवणे नाम चेइए होत्था—[चिरातीते पुव्वपुरिसपण्णत्ते पोराणे सद्दिए कित्तिए नाए सच्छत्ते सज्झए सघटे सपडागे पडागाइपडागमडिए सलोमहत्थे कयवेयड्डिए लाइय-उल्लोइयमहिए गोसीससरसरत्तचदणदद्दर-दिण्णपचगुलितले उवचियचदणकलसे चदणघडसुकय-तोरणपडिदुवारदेसभाए आसित्तोसित्तविउलवट्ट-वग्घारियमल्लदामकलावे पचवण्णसरससुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिए कालागुरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्क-धूवमघमघतगंधुद्धुयाभिरामे सुगधवरगधिए गधवट्टिभूए णड-णट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिय-वेलबग-पवग-कहग-लासग-आइक्खग-लख-मख-तूणइल्ल तुंबवीणिय-भुयग-मागहपरिगए बहुजण-जाणवयस्स विस्सुयकित्तिए बहुजणस्स आहुस्स आहुणिज्जे पाहुणिज्जे अच्चणिज्जे वदणिज्जे नमसणिज्जे पूयणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे कल्लाण मगल देवय चेइयं विणएणं पज्जुवासणिज्जे दिव्वे सच्चे सच्चोवाए जागसहस्सभागपडिच्छए, बहुजणो अच्चेइ आगम्म अवसालवणचेइय अंबसाल-वणचेइय।]

उस आमलकप्पा नगरी के बाहर उत्तरपूर्व दिक्कोण अर्थात् ईशान दिशा मे आम्रशालवन नामक चैत्य था। वह चैत्य बहुत प्राचीन था। पूर्व पुरुष—पूर्वज, बडे-बूढे भी उसको इसी प्रकार का कहते आ रहे थे। पुराना था। प्रसिद्ध था। अथवा अनेक परिवारो की आजीविका का साधन था। विख्यात था। दूर-दूर तक उसकी कीर्ति फैली हुई थी, उसके नाम से सभी परिचित थे। छत्र, ध्वजा, घटा, पताकाओ से मडित था। उसके शिखर पर अनेक छोटी बडी पताकाये लहराती रहती थी। मोर पखो की पीछियो से युक्त था। उसके बीच वेदिका बनी हुई थी। आगन गोबर से लिपा रहता था और दीवाले सफेद मिट्टी से पुती हुई थी। दीवालो पर गोरोचन और सरस रक्त चदन के थापे—हाथे लगे हुए थे। जगह-जगह चदन चर्चित कलश रखे थे। द्वार-द्वार पर चदन के बने घट रखे थे और अच्छी तरह से बनाये हुए तोरणो के द्वारा दरवाजो के ऊपरी भाग सुशोभित थे। ऊपर से लेकर नीचे तक लटकती हुई गोलाकार मे गुंथी हुई मालाओ से दीवाले मडित थी। स्थान-स्थान पर रग बिरगे सरस, सुगधित पुष्प-पुञ्जो से अनेक प्रकार के माडने मडे हुए थे। धूपदानो मे कृष्णागुरु-सुगधित काष्ठ-विशेष, श्रेष्ठ कुंदरू, तुरुष्क—लोबान और धूप आदि के जलने से महकता रहता था और उस महक के उडने से बडा सुहावना लगता था। श्रेष्ठ सुगध से सुवासित होने के कारण गध-

वर्तिका जैसा मालूम होता था। नट, नृत्यकार, रस्सी पर खेल दिखाने वालो, मल्ल, पजा लडाने वालो, बहुरूपिया, तैरने वालो, कथा कहानी कहने वालो, रास रचने वालो, शुभ-अशुभ शकुन बताने वालो ऊचे वास पर खेल दिखाने वालो, चित्र दिखाकर भीख मागने वालो, शहनाई बजाने वालो, तंबूरा बजाने वालो, भोजक—गाने वालो, मागध—चारण, भाट आदि से वह चैत्य सदा व्याप्त—घिरा रहता था। नगरवासियो और दूर-देशवासियो मे इसकी प्रसिद्धि—कीर्ति फैली हुई थी जिससे बहुत से लोग वहाँ आहुति-जात देने आते रहते थे। वे उसे दक्षिणा-पात्र दान देने योग्य स्थान, अर्चनीय, वदनीय, नमस्करणीय, पूजनीय, सत्कारणीय, सम्माननीय मानते थे तथा कल्याणरूप मगलरूप, देवरूप और चैत्यरूप मानकर विनयपूर्वक उपासना—सेवा करने योग्य मानते थे। दिव्य, सत्य और कामना सफल करने वाला समझते थे। यज्ञ मे इसके नाम पर हजारो लोग दान देते थे और बहुत से लोग आ आकर इस आम्रशालवन चैत्य की जय जयकार करते हुए अर्चना भक्ति करते थे।

विवेचन—आम्रशालवन चैत्य के उपर्युक्त वर्णन से हमे तत्कालीन लोक-सस्कृति एव जन मानस का ठीक-ठीक परिचय मिलता है कि चैत्य जन सामान्य के लिये मनोरजन, क्रीडा आदि के स्थान होने के साथ साथ अपनी कामनाओ की पूर्त्ति हेतु आहुति—जात देने आदि के भी केन्द्र थे।

३—असोगवर पायवे, पुढवी सिलापट्टए, वत्तव्वया उववाइयगमेण णेया।

३—उस चैत्यवर्ती श्रेष्ठ अशोकवृक्ष और पृथ्वीशिलापट्टक का वर्णन उववाईसूत्र के अनुसार जानना चाहिये।

विवेचन—अशोक वृक्ष के उल्लेख से ऐसा प्रतीत होता है कि वृक्षपूजा की परपरा प्राचीन काल मे चली आ रही है। इसके पीछे वृक्षो की उपयोगिता, अथवा किसी पुण्य पुरुष का स्मरण अथवा वहम कारण है, यह विचारणीय और शोध का विषय है।

उववाई सूत्र मे अशोक वृक्ष, पृथ्वीशिलापट्टक का विस्तार से वर्णन किया है। वही सब वर्णन यहाँ समझ लेने की सूत्र मे सूचना की है। उसका साराश इस प्रकार है—

चैत्य को चारो ओर से घेरे हुए वन खण्ड के बीचोबीच एक विशाल, ऊचा दर्शनीय और असाधारण रूपसौन्दर्य-सम्पन्न अशोक वृक्ष था।

वह अशोकवृक्ष भी और दूसरे लकुच, शिरीष, धव, चन्दन, अर्जुन, कदम्ब, अनार, शाल, आदि वृक्षो से घिरा हुआ था। ये सभी वृक्ष मूल, कद, स्कन्ध, छाल, शाखा, प्रवाल-पत्र, पुष्प, फल और बीज से युक्त थे। इनकी शाखा-प्रशाखायें चारो ओर फैली हुई थी और पत्र, पल्लव, फल-फूलो आदि से सुशोभित थी। इन वृक्षो पर मोर, मैना, कोयल, कलहस, सारस आदि पक्षी इधर उधर उडते और मधुर कलरव करते रहते थे। भ्रमर-समूह के गुजारव से व्याप्त थे।

इस वृक्षघटा की शोभा मे विशेष वृद्धि करने के लिये कही जाली झरोखो वाली चौकोर बावडियाँ, कही गोल बावडियाँ, कही पुष्करणिया, आदि बनी हुई थी।

पद्मवेल, नागरवेल, अशोकवेल, चपावेल, माधवीवेल, आदि वेलें इस वृक्षराजि से लिपटी हुई थी और ये सभी वेले फूलो के भार से नमी रहती थी।

उक्त वनराजि से विराजित उस उत्तम अशोकवृक्ष पर रत्नो से बने हुए, देदीप्यमान, दर्शनीय

स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्दावर्त, वर्धमानक, भद्रासन, कलश, मत्स्य-युगल और दर्पण—ये आठ मगल एव वज्र रत्न, की डाडी वाले, कमल जैसे सुगधित, काले, नीले, लाल, पीले और सफेद चामर लटके हुए थे।

इस अशोक वृक्ष के नीचे एक चौकोर शिलापट्ट था, जो जामुन, नेत्रगोलक, अजन वृक्ष, सघन मेघमाला, भ्रमरसमूह, काजल, नील गुटिका, भैसे के सीग आदि से भी अधिक कृष्ण वर्ण का था। दर्पण की तरह इसमे देखने वालो के प्रतिविम्ब पडते थे। पाट की मोटाई मे चारो ओर हीरा, पन्ना, मणि, माणक, मोती आदि से चित्र वने हुए थे और उस का स्पर्श रुई, मक्खन, आक की रुई आदि से भी अधिक सुकोमल था।

इस प्रकार का रत्नमय रम्य शिला पाट उस अशोकवृक्ष के नीचे रखा था।

राजा सेय

४—[तत्थ ण आमलकप्पाए नयरीए।] सेओ राया [होत्था, महया-हिमवंत-महंतमलय-मदरमहिंदसारे अच्चंतविसुद्धरायकुलवसप्पसूए निरंतर रायलक्खणविराइयंगमगे बहुजण-बहुमाणपूइए सव्वगुणसमिद्धे खत्तिए मुद्धाभिसित्ते माउपिउसुजाए दयपत्ते सीमंकरे सीमंधरे खेमकरे खेमधरे मणुस्सिदे जणवयपिया जणवयपाले जणवय-पुरोहिए सेउकरे केउकरे नरपवरे पुरिसवरे पुरिससीहे पुरिसवग्घे पुरिसआसीविसे पुरिसवरपोंडरीए पुरिसवरगधहत्थी अड्ढे दित्ते वित्ते वित्थिन्नविपुलभवण-सयण-आसण-जाण-वाहणाइण्णे बहुधणबहुजायरूव-रजए आओग-पओगसंपउत्ते विच्छड्डियपउरभत्तपाणे बहुदासी-दास-गो-महिस-गवेलगप्पभूए पडिपुन्नजंत-कोस-कोट्ठागार-आउहघरे बलवं दुब्बलपच्चामित्ते, ओहयकटयं मलियकंटय उद्धियकटयं अप्पडिकटय ओहयसत्तु मलियसत्तु उद्धियसत्तु निज्जयसत्तु पराइयसत्तु ववगयदुब्भिक्खदोसमारि-भयविप्पमुक्क खेम सिव सुभिक्ख पसतडिबडमर रज्ज पसासेमाणे विहरइ।]

उस आमलकप्पा नगरी मे सेय नामक राजा राज्य करता था। वह मनुष्यो मे महा हिमवत पर्वत, महामलय पर्वत, मदर (मेरु) पर्वत और महेन्द्र नामक पर्वत आदि के समान श्रेष्ठ—प्रधान था। अत्यन्त विशुद्ध राजकुल एव वश मे उत्पन्न हुआ था। उसके समस्त अगोपाग राजचिह्नो और लक्षणो से सुशोभित थे। अनेक लोगो द्वारा वह बहुमान-समान और सत्कार प्राप्त करता था अथवा अनेक लोगो द्वारा सम्मानपूर्वक पूजा जाता था। शौर्य आदि सर्वगुणो से समृद्ध था। क्षत्रिय था। मूर्धा-भिषिक्त राजा था। माता-पिता के सुसस्कारो से सम्पन्न था। स्वभाव से दयालु था। कुलमर्यादा का करने वाला और पालक था। क्षेम-कुशल का कर्त्ता और रक्षक होने से मनुष्यो मे इन्द्र के समान, जनपद का पिता, जनपद-देश का पालक, जनपद का पुरोहित—मार्गदर्शक, अद्‌भुत कार्यों को करने वाला और मनुष्यो मे श्रेष्ठ था। पुरुषार्थों का साधक होने से पुरुषो मे प्रधान, निर्भय एव बलिष्ठ होने से पुरुषो मे सिंह, शूरवीर होने से पुरुषो मे व्याघ्र, सफल कोप वाला होने से पुरुषो मे आशी-विष सर्प, दयालु, कोमल हृदय होने से पुरुषो में कमल, शत्रुओ का नाश करने से पुरुषो मे उत्तम गधहस्ती के समान था। समृद्ध, प्रभावशाली अथवा अभिमानियो का मानमर्दक, विख्यात-प्रख्यात था। विस्तीर्ण और विपुल भवन, शैया, आसन, यान, वाहन का स्वामी था। उसके कोष और कोठार सदा धन, स्वर्ण, चाँदी, धान्य से भरे रहते थे। अर्थोपार्जन के उपायो का जानकार था। उसके

यहाँ भोजन करने के बाद शेष रहा भोजन भिखारियो, याचको मे बाँट दिया जाता था। सेवा के लिये बहुत से दास-दासी उसके पास रहते थे। उसकी गोशाला मे गायो, भैसो एव बकरियो की प्रचुरता थी। उसके यन्त्रागार, कोश, कोठार और शस्त्रागार पूरी तरह से भरे रहते थे। वह शारीरिक और मानसिक बल से बलवान् था अथवा उसकी सेना बल-विक्रमशाली थी। दुर्बलो का मित्र-हितैषी था।

प्रजा को पीडित करने वाले काटे रूप चोर और डाकू आदि न होने से उसका राज्य प्रजा-कटको से रहित था। देश मे उपद्रव, दगाफिसाद करने वालो को दड देकर शात कर दिये जाने से मर्दितकटक था। गु डो बदमाशो को देश-निकाला दे देने से उद्धृतकटक था। विरोधियो का विनाश कर देने से अपहृतकटक था। इसी प्रकार उसका राज्य अपहतशत्रु था, निहतशत्रु था, मथितशत्रु था, उद्धृतशत्रु था, निर्जितशत्रु था, पराजितशत्रु था एव दुर्भिक्ष दुर्गु ण दुर्व्यसन, महामारी से रहित था। शत्रुभय से मुक्त था। जिससे वह क्षेम-कुशल, सुभिक्ष युक्त तथा विघ्नो एव राजकुमार आदि राजपुरुषो द्वारा कृत विडम्बनाओ—राज्यविरुद्ध कार्यो से रहित था। ऐसे राज्य का प्रशासन करते हुए राजा अपना समय बिताता था।

विवेचन—राजा सेय का विशेष वृत्तान्त अन्यत्र देखने को नही मिलता है। स्थानागसूत्र के आठवे ठाणा मे श्रमण भगवान् महावीर के पास दीक्षित आठ राजाओ मे एक नाम 'सेय' भी है किन्तु यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता है कि यह 'सेय' राजप्रश्नीयसूत्र गत राजा है अथवा अन्य कोई। टीकाकार अभयदेवसूरि ने इसी सेय को आठ दीक्षित राजाओ मे माना है।

सेय के सस्कृत रूपान्तर श्वेत और श्रेय दोनो होते है। आचार्य मलयगिरिसूरि ने अपनी टीका मे 'श्वेत' का प्रयोग किया है।

रानी धारिणी

४—[तस्स ण सेयरण्णो] धारिणी [नाम] देवी [होत्था सुकुमालपाणिपादा अहीण-पडिपुण्ण-पचिदियसरीरा लक्खण-वजण-गुणोववेया माण-उम्माण-पमाणपडिपुण्णसुजायसव्वग-सु दरगी ससि-सोमागार-कतपियदसणा सुरूवा, करयलपरिमियपसत्यतिवलिवलियमज्झा, कुडलुल्लिहियगडलेहा कोमुइरयणियर-विमलपडिपुण्णसोमवयणा सिंगारागारचारुवेसा सगयगय-हसिय-भणिय-चिट्ठिय-विलास-ललिय-सलावनिउणजुत्तोवयारकुसला सु दर-थण-जघण-वयण-कर-चरण-नयण-लायण्ण-विलासकलिया सेएण रण्णा सद्धि अणुरत्ता अविरत्ता इट्ठे सद्द-फरिस-रस-रूव-गधे पचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणा विहरइ]

(उस सेय राजा की) धारिणी (नाम की) देवी—पटरानी (थी)। (वह सुकुमाल-अतिकोमल हाथ पैर वाली थी। शरीर और पाचो इन्द्रिया अहीन शुभ लक्षणो मे सपन्न एव प्रमाणयुक्त थी। वह शख, चक्र आदि शुभ लक्षणो तथा तिल, मसा आदि व्यजनो और सौभाग्य आदि स्त्रियोचित गुणो से युक्त थी, मान-माप उन्मान-तोल और प्रमाण-नाप से परिपूर्ण-बराबर थी, सभी अग परिपूर्ण और सुगठित होने से सर्वांग सुन्दरी थी, चन्द्रमा के समान सौम्य आकृति वाली, कमनीय, प्रियदर्शना और सुरूपवती थी। उसका मध्य भाग—कटि भाग मुट्ठी मे आ जाये, इतना पतला और प्रशस्त था, त्रिवली से युक्त था और उसमे बल पडे हुए थे। उसकी गडलेखा—कपोलो पर बनाई हुए पत्रलेखा

कु डलो से घर्षित होती रहती थी। उसका मुखमडल चद्रिका के समान निर्मल और सौम्य था, अथवा कार्तिकी पूर्णिमा के चन्द्र के समान विमल परिपूर्ण और सौम्य था। उसका सुन्दर वेष मानो शृ गार रस का स्थान था। उसकी चाल, हासपरिहास, सलाप-बोलचाल, भाषण, शारीरिक और नेत्रो की चेष्टाये आदि सभी सगत थी। वह पारस्परिक वार्तालाप करने मे निपुण थी, कुशल थी, उचित आदर, सेवा शुश्रूषा आदि करने मे कुशल थी। उसके सुन्दर जघन—कमर से नीचे का भाग, स्तन मुख, हाथ, पैर, लावण्य-विलास से युक्त थे। और दर्शको के चित्त मे प्रसन्नता उत्पन्न करने वाली, दर्शनीय रूपवती और अतीव रूपवती थी। और वह सेय राजा मे अनुरक्ता, अविरिक्ता होकर पाँचो इन्द्रियो के इष्ट शब्द, स्पर्श, रस, वर्ण, एव गध रूप मनुष्योचित काम-भोगो का अनुभव करती हुई समय व्यतीत करती थी।

विवेचन—पानी से लबालब भरे हुए कु ड मे पुरुष या स्त्री के विठाने पर एक द्रोण (प्राचीन नाप) प्रमाण पानी छलककर बाहर निकले तो वह बैठने वाली स्त्री अथवा पुरुष मान-सगत कहलाता है। तराजू पर तोलने पर यदि अर्धभार प्रमाण तुले तो वह उन्मान-सगत और अपने अगुल से एक सौ आठ अगुल ऊचाई हो तो वह प्रमाण-सगत कहलाता है।

जैन परिभाषा के अनुसार शब्द और रूप ये दो काम मे और गध, रस एव स्पर्श भोग मे ग्रहण किये जाते हैं। दोनो का समावेश करने के लिये 'काम भोग' शब्द का उपयोग किया जाता है।

भगवान् का पदार्पण और राजा का दर्शनार्थ गमन :

६—सामी समोसढे। परिसा निग्गया। राया जाव [नयणमालासहस्सेहिं पेच्छिज्जमाणे पेच्छिज्जमाणे हियमाला-सहस्सेहिं अभिणदिज्जमाणे-अभिणदिज्जमाणे, मणोरहमालासहस्सेहि विच्छिप्पमाणे विच्छिप्पमाणे, वयणमालासहस्सेहिं अभिथुव्वमाणे अभिथुव्वमाणे, कति-दिव्व-सोहग्ग-गुणेहि पत्थिज्जमाणे पत्थिज्जमाणे बहूण नरनारीसहस्साण दाहिणहत्थेण अजलिमालासहस्साइ-पडिच्छमाणे-पडिच्छमाणे, मजुमजुणा घोसेण पडिवुज्झमाणे-पडिवुज्झमाणे, भवणपतिसहस्साइ समइच्छमाणे समइच्छमाणे आमलकप्पाए नयरीए मज्भमज्भेण निग्गच्छइ, निग्गच्छिता जेणेव अबसालवणचेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छिता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूर-सामते छत्ताईए तित्थयराइसेसे पासइ, पासित्ता आभिसेक्कं हत्थिरयण ठवेइ, ठवित्ता आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता अवहट्टु पच रायकउहाइ तजहा-खग्ग छत्त उप्फेस वाहणाओ वालवीयणं; जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छिता समण भगवं महावीर पचविहेण अभिगमेण अभिगच्छइ, तजहा—

(१) सचित्ताण दव्वाण विओसरणयाए,
(२) अचित्ताण दव्वाण अविओसरणयाए,
(३) एगसाडिय उत्तरासगकरणेण,
(४) चक्खुप्फासे अजलिपग्गहेण,
(५) मणसो एगत्तभावकरणेण।

समणं भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करित्ता वदइ नमसइ, वदित्ता नमसित्ता तिविहाए पज्जुवासणयाए] पज्जुवासइ।

६—आमलकल्पा के बाहर स्थित आम्रशालवन चैत्य मे स्वामी-श्रमण भगवान महावीर पधारे। वदना करने परिषद् निकली। राजा भी यावत् (हजारो दर्शको की सहस्रो नेत्रमालाओ द्वारा बार-बार निरीक्षित होता हुआ, हजारो मनुष्यो के हृदयसहस्रो द्वारा पुन पुन अभिनदित होता हुआ, हजारो जनो की मनोरथो रूपी मालासहस्रो द्वारा स्पर्शित-स्पृष्ट होता हुआ, सुन्दर और उदार वचनावली-सहस्रो द्वारा वारबार स्तुत—स्तुतिगान किया जाता हुआ, शारीरिक ओज—सौन्दर्य, लावण्य दिव्य सौभाग्य और गुणो के कारण जनपद के द्वारा प्रार्थित होता हुआ, हजारो नर-नारियो की अजलि रूप मालासहस्रो को दाहिने हाथ से स्वीकार करता हुआ, मजुल मधुर स्वरो द्वारा किये गये जय-जय घोषो से प्रतिबोधित-सबोधित होता हुआ एव हजारो भवन-पक्तियो को पार करता हुआ आमलकल्पा नगरी के बीचोबीच से होकर निकला, निकल कर आम्रशालवन चैत्य की ओर चला और श्रमण भगवान् महावीर से न अतिदूर और न अति समीप किन्तु यथायोग्य स्थान से तीर्थंकरो के अतिशय रूप छत्र-पर-छत्र और पताकाओ-पर-पताका आदि को देखा, देखकर आभिषेक्य हस्ति-रत्न को रुकवाया। रोक कर आभिषेक्य हस्तिरत्न से नीचे उतरा। उतर कर (१) खड्ग-तलवार, (२) छत्र, (३) मुकुट, (४) उपानह-जूता और (५) चामर इन पाँच राजचिह्नो का परित्याग किया, परित्याग करके जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे, वहाँ आया। आकर पाँच अभिगम करके श्रमण भगवान् महावीर के सन्मुख पहुँचा। वे पाँच अभिगम इस प्रकार हैं—

(१) पुष्प माला आदि सचित्त द्रव्यो का त्याग,
(१) वस्त्र आदि अचित्त द्रव्यो का अत्याग—त्याग नही करना,
(३) एक शाटिका (अखड वस्त्र—दुपट्टा) का उत्तरासग,
(४) भगवान् पर दृष्टि पडते ही अजलि करना—दोनो हाथ जोडना,
(५) मन को एकाग्र करना।

इन पाँचो अभिगमपूर्वक सम्मुख आकर श्रमण भगवान् महावीर की आदक्षिण—दक्षिण दिशा से आरभ करके तीन बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वदन नमस्कार किया। वन्दन, नमस्कार करके त्रिविध—तीन प्रकार की पर्युपासना से प्रभु की उपासना करने लगा।)

विवेचन—'तिविहाए पज्जुवासणयाए पज्जुवासइ' तीन प्रकार को पर्युपासना से उपासना करने लगा। सेवा, भक्ति करने को पर्युपासना करते है। सेवाभक्ति श्रद्धा प्रधान है और श्रद्धा की अभिव्यक्ति के तीन साधन हैं—मन, वचन और काय। अतएव श्रद्धा की परम स्थिति को प्राप्त करने के लिए इन तीनों मे तादात्म्य—एकरूपता होना आवश्यक है। इसी दृष्टि से सूत्र मे 'तिविहाए' तीनो प्रकार से उपासना करने का उल्लेख किया है। कायिक अग प्रत्यगो की सम्मान प्रगट करने वाली चेष्टा कायिक उपासना, वक्ता के कथन का समर्थन करना वाचिक उपासना तथा मन को केन्द्रित करके कथन को सुनना और अनुमोदन करते हुए स्वीकार करना मानसिक उपासना कहलाती है।

सूर्याभदेव द्वारा जम्बूद्वीप दर्शन :

७—तेणं कालेण तेणं समएण सूरियाभे देवे सोहम्मे कप्पे सूरियाभे विमाणे सभाए सुहम्माए सूरियाभसि सिंहासणसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं, चउहिं अग्गमहिसीहिं सपरिवाराहिं, तिहिं परिसाहिं, सत्तहिं अणिएहिं, सत्तहिं अणियाहिवईहिं, सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं, अन्नेहिं

वहूहिं सूरियाभविमाणवासीहिं वेमाणिएहिं देवेहि य देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे महयाहय नट्ट-गीय-वाइय-तती-तल-ताल-तुडिय-घणमुइगपडुप्पवादियरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुञ्जमाणे विहरति।

इमं च णं केवलकप्पं जम्बुद्दीवं दीवं विउलेण ओहिणा आभोएमाणे-आभोएमाणे पासति।

उस काल मे अर्थात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के विहरण काल मे और उस समय मे अर्थात् भगवान् के आमलकल्पा नगरी के आम्रशालवन चैत्य मे विराजने के समय मे सूर्याभ नामक देव सौधर्म स्वर्ग मे सूर्याभ नामक विमान की सुधर्मा सभा मे सूर्याभ सिंहासन पर बैठकर चार हजार सामानिक देवो, सपरिवार चार अग्रमहिषियो, तीन परिषदाओ, सात अनीको-सेनाओ, सात अनीकाधिपतियो, सोलह हजार आत्मरक्षक देवो तथा और दूसरे बहुत से सूर्याभ विमानवासी वैमानिक देव-देवियो सहित अव्याहत निरन्तर नाटच एव निपुण पुरुषो द्वारा वादित—बजाये जा रहे तत्री-वीणा हस्तताल, कास्यताल और अन्यान्य वादित्रो—वाद्यो तथा घनमृदग—मेघ के समान ध्वनि करने वाले मृदगो की ध्वनि (आवाज) के साथ दिव्य भोगने योग्य भोगो को भोगता हुआ विचर रहा था। उस समय उसने अपने विपुल अवधिज्ञानोपयोग द्वारा निरखते हुए इस सम्पूर्ण जम्बूद्वीपनामक द्वीप को देखा।

विवेचन—सूत्र मे सूर्याभदेव के सभावैभव का वर्णन है। सभा मे उपस्थित देव-देवियो का निर्देश इन शब्दो मे किया है—

सामानिक देव—आज्ञा और ऐश्वर्य के अतिरिक्त ये सभी देव विमानाधिपति देव के समान द्युति, वैभव आदि से संपन्न होते हैं और इनको भाई आदि के तुल्य आदर-समान योग्य माना जाता है।

अग्रमहिषी—कृताभिषेका राजा की पत्नी महिषी और शेष अकृताभिषेका अन्य स्त्रिया भोगिनी कहलाती हैं (या कृताभिषेका नृपस्त्री सा महिषी, अन्या अकृताभिषेका नृपस्त्रियो भोगिन्य इत्युच्यन्ते—अमरकोश द्वितीय काड, मनुष्यवर्ग, श्लोक ५)। अपनी परिवारभूत अन्य सभी पत्नियो मे उसकी अग्रता—प्रधानता, मुख्यता—बताने के लिये महिषी के साथ अग्र विशेषण का प्रयोग किया जाता है।

तीन परिषदा—सभी विमानाधिपति देवो की—१ अभ्यन्तर, २ मध्यम और ३ बाह्य ये तीन परिषदायें होती है। जिनसे अपने अतरग, गुप्त गूढ रहस्यो के लिये विचार किया जाता है, ऐसे परमविश्वसनीय समवयस्क मित्र समुदाय को अभ्यन्तर परिषद, अभ्यन्तर परिषद मे चर्चित एव निर्णीत विचारो के लिये जिससे सम्मति, राय ली जाती है, उसे मध्यमपरिषद और अभ्यन्तर तथा मध्यम परिषद द्वारा विचारित, निर्णीत एव सम्मत कार्य को क्रियान्वित करने का दायित्व जिसे दिया जाता है, उसे बाह्यपरिषद कहते हैं।

सात सेनायें—अश्व, गज, रथ, पदाति, वृषभ (बैल), गधर्व और नाटच ये सेनाओ के सात प्रकार है। इनमे से आदि की पाच का युद्धार्थ और अतिम दो का आमोद-प्रमोद के लिये उपयोग किया जाता है और ये अपने अपने अधिपति के नेतृत्व मे कार्य संपादित करने मे सक्षम होने से इनके सात सेनापति होते हैं।

आत्मरक्षक देव—शिरस्त्राण जैसे प्राणरक्षक होता है, उसी प्रकार ये देव भी अस्त्र-शस्त्रो से सुसज्जित होकर अपने अधिपतिदेव की रक्षा करने मे तत्पर रहने से आत्मरक्षक कहलाते हैं। यद्यपि

इन्द्र आदि देवो को किसी का भय नही होता कि आत्मरक्षको की आवश्यकता हो, मगर यह भी इन्द्र का एक वैभव है।

सूर्याभ देव द्वारा भगवान की स्तुति :

८—तत्थ समण भगव महावीर जबुद्दीवे भारहे वासे आमलकप्पाए नगरीए बहिया अबसालवणे चेइए अहापडिरूवं उग्गह उग्गिण्हित्ता सजमेणं तवसा अप्पाण भावेमाण पासति, पासित्ता हट्ठतुट्ठ चित्तमाणदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए विकसियवरकमलणयणे पयलियवरकडग-तुडिय-केऊर-मउड-कु डलहारविरायतरइयवच्छे, पालबपलबमाणघोलतभूसणधरे ससभमं तुरियं चवल सुरवरे सीहासणाओ अब्भुट्ठे इ, अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहति, पच्चोरुहित्ता पाउयाओ ओमुयइ, ओमुयइत्ता एगसाडिय उत्तरासग करेति, करित्ता तित्थयराभिमुहे सत्तट्ठपयाइ अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता वाम जाणु अचेइ, दाहिण जाणु धरणि-तलसि निहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाण धरणितलंसि निमेइ, निमित्ता ईसिं पच्चुन्नमइ पच्चुन्नमित्ता कडय-तुडियथभियाओ साहरइ साहरित्ता करयलपरिग्गहिय दसणह सिरसावत्त मत्थए अजलि कट्टु एव वयासी—

उस समय अर्थात् विपुल अवधि ज्ञानोपयोग द्वारा जम्बूद्वीप के दर्शन मे प्रवर्तमान होने के समय उसने जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र मे आमलकल्पा नगरी के बाहर आम्रशालवन चैत्य मे यथा प्रतिरूप अवग्रह ग्रहण कर-साधु के लिये उचित स्थान की याचना करके सयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए श्रमण भगवान् महावीर को देखा। देखकर वह हर्षित और अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ, उसका चित्त आनदित हो उठा। मन मे प्रीति उत्पन्न हुई, अतीव सौमनस्य को प्राप्त हुआ, हर्षातिरेक से उसका हृदय—वक्षस्थल फूल गया, नेत्र और मुख विकसित श्रेष्ठ कमल जैसे हो गये। अपार हर्ष के कारण पहने हुए श्रेष्ठ कटक, त्रुटित, केयूर, मुकुट और कुण्डल चचल हो उठे, वक्षस्थल हार से चमचमाने लगा, पैरो तक लटकते प्रालव—आभूषण विशेष—झूमके विशेष चचल हो उठे और उत्सुकता, तीव्र अभिलाषा से प्रेरित हो वह देवश्रेष्ठ सूर्याभ देव शीघ्र ही सिंहासन से उठा। उठकर पादपीठ पर पैर रखकर नीचे उतरा। नीचे उतर कर पादुकाये उतारी। पादुकाये उतार कर एकशाटिक उत्तरासग किया। उत्तरासग करके तीर्थंकर के अभिमुख सात-आठ डग चला, अभिमुख चलकर बाया घुटना ऊँचा रखा और दाहिने घुटने को नीचे भूमि पर टेक कर तीन बार मस्तक को पृथ्वी पर नमाया-झुकाया, फिर मस्तक कुछ ऊँचा उठाया। तत्पश्चात् कटक त्रुटित—बाजूबद से स्तभित दोनो भुजाओ को मिलाया। मिला कर दोनो हाथ जोड आवर्त्तपूर्वक मस्तक पर अजलि करके उसने इस प्रकार कहा—

विवेचन—आन्तरिक हर्ष का उद्रेक होने पर शरीर पर उसका जो असर-प्रभाव दिखता है, उसका इस सूत्र मे सुन्दर वर्णन किया है।

९—नमोऽत्थु णं अरिहंताण भगवताण आदिगराण तित्थगराण सयसबुद्धाण पुरिसुत्तमाण पुरिससीहाणं पुरिसवरपुण्डरीयाण पुरिसवरगंधहत्थीण लोगुत्तमाणं लोगनाहाण लोगहिआणं लोगपईवाण लोगपज्जोयगराणं अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं जीवदयाणं सरणदयाणं दीवो ताणं (सरणं गई पइट्ठा) बोहिदयाणं धम्मदयाणं धम्मदेसयाण धम्मनायगाण धम्मसारहीण धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं अप्पडिहयवरनाण दंसणधराणं वियट्टछउमाण जिणाणं जावयाणं तिण्णाण तारयाणं बद्धाणं

बोहयाण मुत्ताण मोयगाण सव्वन्नूणं सव्वदरिसीण सिव अयलं अरुय अणंत अक्खय अव्वाबाहं अपुणरावत्तिय सिद्धिगइनामधेय ठाण सपत्ताण ।

नमोऽत्थु ण समणस्स भगवओ महावीरस्स आदिगरस्स तित्थयरस्स जाव[1] सपाविउकामस्स, वदामि णं भगवत तत्थगय इहगते. पासइ मे भगव तत्थगते इहगतं ति कट्टु वंदति णमसति, वंदित्ता णमसित्ता सीहासणवरगए पुव्वाभिमुह सण्णिसण्णे ।

९—अरिहत भगवन्तो को नमस्कार हो, श्रुत-चारित्र धर्म की आदि करने वाले, तीर्थ की स्थापना करने वाले, अन्य के उपदेश के बिना स्वय ही बोध को प्राप्त, पुरुपो मे उत्तम, कर्म-शत्रुओ का विनाश करने मे पराक्रमी होने के कारण पुरुषो मे सिंह के समान, सौम्य होने से पुरुषो मे श्रेष्ठ कमल के समान, पुरुपो मे उत्तम गधहस्ती के समान (जैसे गधहस्ती की गंध से अन्य हाथी भाग जाते हैं उसी प्रकार जिनके पुण्य प्रभाव से ही ईति भीति आदि का विनाश हो जाता है, ऐसे) लोक मे उत्तम, लोक के नाथ, लोक का हित करने वाले, लोक मे प्रदीप के समान, लोक मे विशेप उद्योत करने वाले अथवा लोक स्वरूप को प्रकाशित करने वाले—वताने वाले, अभय देने वाले, श्रद्धा-ज्ञान-रूप नेत्र के दाता, धर्म (चारित्र) मार्ग के दाता, जीवो पर दया रखने का उपदेश देने वाले, शरणदाता, बोधिदाता देशविरति, सर्वविरति रूप धर्म के दाता, धर्म के उपदेशक, धर्म के नायक, धर्म के सारथी, चतुर्गति रूप ससार का अत करने वाले धर्म के चक्रवर्ती, अव्याघात (प्रतिहत न होने वाले) केवल-ज्ञान-दर्शन के धारक, घाति कर्म रूपी छद्म के नाशक, रागादि आत्मशत्रुओ को जीतने वाले, कर्मशत्रुओ को जीतने के लिये अन्य जीवो को प्रेरित करने वाले, ससार-सागर से स्वय तिरे हुए और दूसरो को तिरने का उपदेश देने वाले, वोध (केवल-ज्ञान) को प्राप्त करने वाले और उपदेश द्वारा दूसरो को बोध प्राप्त कराने वाले, स्वय कर्म-वधन से मुक्त और उपदेश द्वारा दूसरो को मुक्त करनेवाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी शिव—उपद्रव रहित, कल्याण रूप, अचल—अचल स्थान (सिद्धिस्थान) को प्राप्त हुए, अरुज-शारीरिक व्याधि वेदना से रहित, अनन्त, अक्षय, अव्याबाध, अपुनरावृत्ति—जिसको प्राप्त कर लेने पर पुन ससार मे जन्म नही होता, ऐसे पुनरागमन से रहित—सिद्धि गति नामक स्थान मे स्थित सिद्ध भगवन्तो को नमस्कार हो ।

धर्म की आदि करने वाले, तीर्थंकर—(साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका रूप) चतुर्विध सघ-तीर्थ की स्थापना करने वाले, यावत् सिद्धि गति नामक स्थान को प्राप्त करने की ओर अग्रसर श्रमण भगवान् महावीर को मेरा नमस्कार हो।

तत्रस्थ अर्थात् जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरत क्षेत्र मे स्थित आमलकल्पा नगरी के आम्रशाल-वन चैत्य मे विराजमान भगवान् को अत्रस्थ—यहाँ रहा हुआ मै वदना करता हूँ । वहाँ पर रहे हुए वे भगवान यहाँ रहे हुए मुझे देखते है । इस प्रकार स्तुति करके वन्दन-नमस्कार किया । वदन-नमस्कार करके फिर पूर्व दिशा की ओर मुख करके श्रेष्ठ सिंहासन पर वैठ गया ।

सूर्याभदेव की आभियोगिक देवों को आज्ञा—

१०—तए ण तस्स सूरियाभस्स इमे एतारूवे अज्झत्थिते चिंतिते पत्थिते मणोगते संकप्पे समुप्पज्जित्था ।

---

१ देखें सूत्र सख्या ९ (सय सवुद्धाण ठाण पद तक)

१०—तत्पश्चात् उस सूर्याभ देव के मन मे इस प्रकार का यह आध्यात्मिक अर्थात् आन्तरिक, चिन्तित, प्राथित—प्राप्त करने योग्य, इष्ट और मनोगत—मन मे रहा हुआ (मानसिक) सकल्प उत्पन्न हुआ।

११—सेय खलु मे समणे भगव महावीरे जम्बुद्दीवे दीवे भारहे वासे आमलकप्पाए णयरीए बहिया अम्बसालवणे चेइए अहापडिरूव उग्गह उग्गिण्हित्ता सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरति, तं महाफल खलु तहारूवाण भगवन्ताण णाम-गोयस्स वि सवणयाए किमङ्ग पुण अभिगमण-वन्दण णमसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए ? एगस्सवि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए किमङ्ग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए ? त गच्छामि ण समणं भगव महावीर वन्दामि णमसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाण मङ्गलं देवय चेतिय पज्जुवासामि, एय मे पेच्चा हियाए सुहाए खमाए णिस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सति त्ति कट्टु एव सपेहेइ, एवं सपेहित्ता आभिओगे देवे सद्दावेइ सद्दावित्ता एव वयासी—

११—जम्बूद्वीप के भारतवर्ष मे स्थित आमलकल्पा नगरी के बाहर आम्रशालवन चैत्य मे यथाप्रतिरूप—साधु के योग्य—अवग्रह को लेकर सयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए श्रमण भगवान् महावीर विराजमान है। मेरे लिये श्रेय रूप हैं। जब तथारूप भगवन्तो के मात्र नाम और गोत्र के श्रवण करने का ही महाफल होता है तो फिर उनके समक्ष जाने का, उनको वदन करने का, नमस्कार करने का, उनसे प्रश्न पूछने का और उनकी उपासना करने का प्रसग मिले तो उसके विषय मे कहना ही क्या है ?

आर्य पुरुष के एक भी धार्मिक सुवचन सुनने का ही जब महाफल प्राप्त होता है तब उनके पास से विपुल अर्थ-उपदेश ग्रहण करने के महान् फल की तो बात ही क्या है !

इसलिए मै जाऊँ और श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन करू, नमस्कार करूँ, उनका सत्कार-सम्मान करूँ और कल्याणकारी होने से कल्याण रूप, सब अनिष्टो का उपशमन करने वाले होने से मगलरूप, त्रैलोक्याधिपति होने से देवरूप और सुप्रशस्त ज्ञान—केवलज्ञान वाले होने से चैत्य स्वरूप उन भगवान् की पर्युपासना करूँ।

ये (श्रमण भगवान महावीर की पर्युपासना) मेरे लिये अनुगामी रूप से परलोक मे हितकर, सुखकर, क्षेमकर—शातिकर, निश्रेयस्कर—कल्याणकर—मोक्ष प्राप्त कराने वाली होगी, ऐसा उसने (सूर्याभदेव ने) विचार किया। विचार करके अपने आभियोगिक देवो को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा।

विवेचन—टीकाकार खम-क्षम का अर्थ सगति बताते है—क्षमाय सगतत्वाय (रायपसेणइय पृ. १०२ आगमोदय समिति)। क्रोध की उपशाति को क्षमा कहते हैं और क्रोध की उपशाति सुख-शाति—कल्याण करने वाली होने से यहाँ खमाए का क्षेमकर, शान्तिकर यह अर्थ लिया है।

आभियोगिक देव—जैसे हमारे यहाँ घरेलू काम करने के लिये वेतनभोगी भृत्य—नौकर होते है, उसी प्रकार की स्थिति देवलोक मे आभियोगिक देवो की है। वे अपने स्वामी देव की आज्ञा का पालन करने के लिये नियुक्त रहते हैं। अर्थात् अपने स्वामी देव की आज्ञा का पालन करने वाले भृत्य—सेवक स्थानीय देवो को आभियोगिक देव कहा जाता है।

१२—एव खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगव महावीरे जवुद्दीवे दीवे भारहे वासे आमलकप्पाए नगरीए वहिया अवसालवणे चेइए अहापडिरूव उग्गहं उग्गिण्हित्ता सजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

त गच्छह ण तुम्हे देवाणुप्पिया ! जवुद्दीव दीवं भारहं वास आमलकप्प णयरिं अंवसालवणं चेइय समण भगव महावीर तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेह, करेत्ता वंदह णमंसह, वदित्ता णमंसित्ता साइ साइ नामगोयाइ साहेह, साहित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स सव्वओ समता जोयणपरिमडलं ज किंचि तण वा पत्त वा कट्ठं वा सक्कर वा असुइ वा अचोक्खं वा पूइअं दुब्भिगन्ध त सव्व आहुणिय आहुणिय एगते एडेह, एडेत्ता—णच्चोदग णाइमट्टिय पविरलपप्फुसिय रयरेणुविणासण दिव्व सुरभिगंधोदयवास वासह, वासिता णिहयरय णट्ठरयं भट्ठरय उवसतरय पसंतरय करेह, करित्ता कुसुमस्स जाणुस्सेहपमाणमित्त ओहिं वास वासह, वासित्ता जलयथलयभासुरप्पभूयस्स बिंटट्ठाइस्स दसद्धवण्णस्स कालागुरु-पवरकुन्दुरुक्क-तुरुक्क-धूव-मघमघत-गधुद्धयाभिराम सुगधवरगधिय गधवट्टिभूत दिव्वं सुरवराभिगमणजोग्ग करेह, कारवेह, करित्ता य कारवेत्ता य खिप्पामेव एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह ।

१२—हे देवानुप्रियो ! वात यह है कि यथाप्रतिरूप अवग्रह को ग्रहण करके सयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए श्रमण भगवान् महावीर जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरत क्षेत्रवर्ती आमलकल्पा नगरी के बाहर आम्रशालवन चैत्य मे विराजमान है ।

अतएव हे देवानुप्रियो ! तुम जाओ और जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरतक्षेत्र मे स्थित आमलकल्पा नगरी के वाहर आम्रशालवन चैत्य मे विराजमान श्रमण भगवान् महावीर की दक्षिण दिशा से प्रारभ करके तीन वार प्रदक्षिणा करो । प्रदिक्षणा करके वदना, नमस्कार करो । वदना, नमस्कार करके तुम अपने-अपने नाम और गोत्र उन्हे कह सुनाओ । तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर के विराजने के आसपास चारो ओर एक योजन प्रमाण गोलाकार भूमि मे घास, पत्ते, काष्ठ, ककड-पत्थर, अपवित्र, मलिन, सडी-गली दुर्गन्धित वस्तुओ को अच्छी तरह से साफ कर दूर एकान्त स्थान मे ले जाकर फेंक दो । इसके अनन्तर उस भूमि को पूरी तरह से साफ स्वच्छ करके इस प्रकार से दिव्य सुरभि-सुगधित गधोदक की वर्षा करो कि जिसमे जल अधिक न वरसे, कीचड न हो । रिमझिम-रिमझिम विरल रूप मे नन्ही-नही वूदे वरसे और धूल मिट्टी नष्ट हो जाये । इस प्रकार की वर्षा करके उस स्थान को निहितरज, नष्टरज, भ्रष्टरज, उपशातरज, प्रशातरज वाला वना दो ।

जलवर्षा करने के अनन्तर उस स्थान पर सर्वत्र एक हाथ उत्सेध—ऊँचाई प्रमाण भास्वर चमकीले जलज और स्थलज पचरगे—रग-विरगे सुगधित पुष्पो की प्रचुर परिमाण मे इस प्रकार से वरसा करो कि उनके वृन्त (डडियाँ) नीचे की ओर और पखुडियाँ चित्त—ऊपर की ओर रहे ।

पुष्पवर्षा करने के वाद उस स्थान पर अपनी सुगध से मन को आकृष्ट करने वाले काले अगर, श्रेष्ठ कुन्दुरुष्क तुरुष्क (लोभान) और धूप को जलाओ कि जिसकी सुगध से सारा वातावरण मघमघा जाये—महक जाये, श्रेष्ठ सुगध-समूह के कारण वह स्थान गधवट्टिका—गध की गोली के समान वन जाये, दिव्य सुरवरो—उत्तम देवो के अभिगमन योग्य हो जाये, ऐसा तुम स्वय करो और दूसरो से करवाओ । यह करके और करवा कर शीघ्र मेरी आज्ञा वापस मुझे लौटाओ अर्थात् आज्ञानुसार कार्य हो जाने की मुझे सूचना दो ।

विवेचन—प्राचीन काल मे भृत्यवर्ग का समाज मे सम्मानपूर्ण स्थान था, यह बात जैन शास्त्रों के वर्णन से स्पष्ट है। उन्हे कौटुम्बिक पुरुष—परिवार का सदस्य समझा जाता था और सम्राट से लेकर सामान्य जन तक उन्हे 'देवानुप्रिय' जैसे शिष्टजनोचित शब्दो से सबोधित करते थे। ऐसे शब्द-प्रयोगो से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय अपने स्तर से भी कम स्तर वाले व्यक्तियो के प्रति शिष्ट सभ्य, सुसस्कृतजनोचित वचन व्यवहार की परपरा थी।

आभियोगिक देवों द्वारा आज्ञापालन :

१३—तए णं ते आभियोगिका देवा सूरियाभेणं देवेणं एव वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ जाव [चित्त-माणंदिया, पीइमणा, परमसोमणस्सिया, हरिसवसविसप्पमाण] हियया करयलपरिग्गहियं दसनह सिर-सावत्तं मत्थए अञ्जलिं कट्टु 'एवं देवो ! तहत्ति' आणाए विणएणं वयण पडिसुणति, 'एव देवो तहत्ति' आणाए विणएण वयणं पडिसुणेत्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसिभाग अवक्कमति, उत्तरपुरत्थिम दिसिभाग अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएण समोहण्णंति, समोहणित्ता सखेज्जाइ जोयणाइ दण्डं निस्सिरति, त जहा—रयणाण वयराण वेरुलियाणं लोहियक्खाणं मसारगल्लाण हसगब्भाण पुलगाण सोगधियाणं जोईरसाणं अंजणाणं अंजणपुलगाण रययाणं जायरूवाणं अङ्काण फलिहाण रिट्ठाण अहाबायरे पुग्गले परिसाडति, परिसाडित्ता अहासुहमे पुग्गले परियायति, परियाइत्ता दोच्चं पि वेउव्विय-समुग्घाएणं समोहण्णति, समोहणित्ता उत्तरवेउव्वियाइं रूवाइं विउव्वंति, विउव्वित्ता ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चडाए जवणाए सिग्घाए उद्धूयाए दिव्वाए देवगईए तिरियं असखेज्जाण दीवसमुद्दाणं मज्झमज्झेण वीईवयमाणे जेणेव जबुद्दीवे दीवे, जेणेव भारहे वासे, जेणेव आमलकप्पा णयरी, जेणेव अवसालवणे चेतिए, जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छति, तेणेव उवागच्छित्ता समण भगवं महावीर तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण करेंति, वंदति नमसंति, वदित्ता नमसित्ता एव वदासि—'अम्हे ण भंते ! सूरियाभस्स देवस्स आभियोगा देवा देवाणुप्पियाण वदामो णमसामो सक्कारेमो सम्माणेमो कल्लाण मगल देवयं चेइयं पज्जुवासामो।

१३—तत्पश्चात् वे आभियोगिक देव सूर्याभदेव की इस आज्ञा को सुन कर हर्षित हुए, सन्तुष्ट हुए, यावत् (आनदित चित्त वाले हुए, उनके मन मे प्रीति उत्पन्न हुई, परम प्रसन्न हुए और हर्षातिरेक से उनका) हृदय विकसित हो गया। उन्होने दोनो हाथो को जोड मुकलित दस नखो के द्वारा किये गये सिरसावर्तपूर्वक मस्तक पर अजलि करके 'हे देव-स्वामिन् ! आपकी आज्ञा प्रमाण' कहकर विनयपूर्वक आज्ञा स्वीकार की। 'हे देव ! ऐसा ही करेंगे' इस प्रकार से सविनय आज्ञा स्वीकार करके उत्तर-पूर्व दिग्भाग (ईशान कोण) मे गये। ईशान कोण मे जाकर वैक्रिय समुद्घात किया। वैक्रिय समुद्घात करके सख्यात योजन का रत्नमय दड बनाया। रत्नो के नाम इस प्रकार हैं—(१) कर्केतन रत्न (२) वज्र-रत्न (३) वैडूर्यरत्न (४) लोहिताक्ष रत्न (५) मसारगल्ल रत्न (६) हसगर्भ रत्न (७) पुलक रत्न (८) सौगन्धिक रत्न (९) ज्योति रत्न (१०) अजनरत्न (११) अजनपुलक रत्न (१२) रजत रत्न (१३) जातरूप रत्न (१४) अक रत्न (१५) स्फटिक रत्न (१६) रिष्ट रत्न। इन रत्नो के यथा बादर (असार-अयोग्य) पुद्गलो को अलग किया और फिर यथासूक्ष्म (सारभूत) पुद्गलो को ग्रहण किया, ग्रहण करके पुनः दूसरी बार वैक्रिय समुद्घात करके उत्तर वैक्रिय रूपो की विकुर्वणा की।

उत्तर वैक्रिय रूपो की विकुर्वणा करके अर्थात् अपना-अपना वैक्रियलब्धिजन्य उत्तर वैक्रिय शरीर बनाकर वे उत्कृष्ट त्वरा वाली, चपल, अत्यन्त तीव्र होने के कारण चंड, जवन-वेगशील, आँधी जैसी तेज दिव्य गति से तिरछे-तिरछे स्थित असख्यात द्वीप समुद्रो को पार करते हुए जहाँ जम्बूद्वीपवर्ती भारतवर्ष की आमलकल्पा नगरी थी, आम्रशालवन चैत्य था और उसमे भी जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ आये ।

वहाँ आकर श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिण—दक्षिण दिशा से प्रारम्भ करके प्रदक्षिणा की, उनको वदन-नमस्कार किया और वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

हे भदन्त । हम सूर्याभदेव के अभियोगिक देव आप देवानुप्रिय को वदन करते हैं, नमस्कार करते हैं, आप का सत्कार-समान करते हैं एव कल्याणरूप, मगलरूप, देवरूप और चैत्यरूप आप देवानुप्रिय की पर्यु पासना करते हैं ।

विवेचन—मूल शरीर को न छोडकर अर्थात् मूल शरीर मे रहते हुए जीवप्रदेशो को शरीर से बाहर निकलने को समुद्घात कहते है । वेदना आदि सात कारणो से जीव-प्रदेशो के शरीर से बाहर निकलने के कारण समुद्घात के सात भेद है । उनमे से यहाँ वैक्रिय समुद्घात का उल्लेख है । यह वैक्रियशरीरनामकर्म के आश्रित है । वैक्रियलब्धि वाला जीव विक्रिया करते समय अपने आत्म-प्रदेशो को विष्कभ और मोटाई मे शरीर परिमाण और ऊँचाई मे सख्यात योजन प्रमाण दडाकार रूप मे शरीर से बाहर निकालता है ।

वैक्रियलब्धि से पृथक् विक्रिया भी होती है और अपृथक् भी । आभियोगिक देवो ने पहले पृथक् विक्रिया द्वारा दड और उसके पश्चात् दूसरी बार अपने-अपने उत्तर रूप की विकुर्वणा की । इसीलिए यहाँ दो बार वैक्रिय समुद्घात करने का उल्लेख किया है ।

गति की तीव्रता बताने के लिए यहाँ उक्किट्ठाए आदि समान भाव वाले अनेक पर्यायवाची शब्दो का प्रयोग किया है । इसी प्रकार की वाक्यपद्धति प्राचीन वैदिक व बौद्ध ग्र थो मे भी देखने को मिलती है । समानार्थक विभिन्न शब्दो का प्रयोग विवक्षित भाव पर विशेष भार डालने के लिये किया जाता है । आज भी इस पद्धति के प्रयोग देखने मे आते हैं ।

१४—'देवा' इ समणे भगवं महावीरे ते देवे एवं वदासी—पोराणमेय देवा ! जीयमेय देवा ! किच्चमेय देवा ! करणिज्जमेयं देवा ! आचिन्नमेय देवा ! अब्भणुण्णायमेयं देवा ! ज ण भवणवइ-वाणमतर-जोइसिय-वेमाणिया देवा अरहते भगव ते वद ति नमंसति, वंदित्ता नमसित्ता तओ साइ साइ णाम-गोयाइं साहिंति, त पोराणमेयं देवा ! जाव अब्भणुण्णायमेयं देवा !

'हे देवो !' इस प्रकार से सूर्याभदेव के आभियोगिक देवो को सम्बोधित कर श्रमण भगवान् महावीर ने उन देवो से कहा—हे देवो ! यह पुरातन है अर्थात् प्राचीनकाल से देवो मे परम्परा से चला आ रहा है । हे देवो ! यह देवो का जीतकल्प है अर्थात् देवो की आचारपरम्परा है । हे देवो ! यह देवो के लिये कृत्य—करने योग्य कार्य है । हे देवो ! यह करणीय है अर्थात् देवो को करना ही चाहिये । हे देवो ! यह आचीर्ण है अर्थात् देवो द्वारा पहले भी इसी प्रकार से आचरण किया जाता रहा है । हे देवो ! यह अनुज्ञात है अर्थात् पूर्व के सव देवेन्द्रो ने सगत माना है कि भवनवासी,

वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव अरिहंत भगवन्तो को वन्दन-नमस्कार करते हैं। और वन्दन-नमस्कार करके अपने-अपने नाम-गोत्र कहते है, यह पुरातन है यावत् हे देवो! यह अभ्यनुज्ञात है।

संवर्तक वायु की विकुर्वणा—

१५—तए णं ते आभिओगिया देवा समणेण भगवया महावीरेण एव वुत्ता समाणा हट्ठ जाव[1] हियया समणं भगवं महावीरं वंदंति णमंसंति, वंदित्ता णमंसित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति, अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णंति, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निस्सिरंति। तं जहा—रयणाणं जाव[2] रिट्ठाणं अहाबायरे पोग्गले परिसाडंति, अहाबायरे पोग्गले परिसाडित्ता दोच्चं पि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णंति, समोहणित्ता संवट्टयवाए विउव्वंति। से जहा नामए भइयदारए सिया तरुणे बलवं जुगवं जुवाणे अप्पायंके थिरग्गहत्थे दढपाणिपायपिट्ठंतरोरुपरिणए, घणनिचियवट्टवलियखंधे, चम्मेट्ठगदुघणमुट्ठिसमाहयगत्ते, उरस्स बलसमन्नागए, तलजमलजुयलबाहू लंघण-पवण-जवण-पमद्दणसमत्थे छेए दक्खे पट्ठे कुसले मेधावी णिउणसिप्पोवगए एगं महं सलागाहत्थगं वा दंडसंपुच्छणिं वा वेणुसलागिगं वा गहाय रायङ्गणं वा रायंतेपुरं वा देवकुलं वा सभं वा पवं वा आरामं वा उज्जाणं वा अतुरियं अचवलं असंभंतं निरंतरं सुनिउणं सव्वतो समंता सपमज्जेज्जा, एवामेव तेऽवि सूरियाभस्स देवस्स आभिओगिया देवा संवट्टयवाए विउव्वंति, विउव्वित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स सव्वतो समंता जोयणपरिमंडलं जं किंचि तणं वा पत्तं वा तहेव सव्वं आहुणिय आहुणिय एगंते एडेंति, एडित्ता खिप्पामेव उवसमंति।

तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर के इस कथन को सुनकर उन आभियोगिक देवो ने हर्षित यावत् विकसितहृदय होकर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके वे उत्तर-पूर्व दिग्भाग मे गये। वहाँ जाकर उन्होने वैक्रिय समुद्घात किया और वैक्रिय समुद्घात करके सख्यात योजन का दड बनाया जो कर्केतन यावत् रिष्टरत्नमय था और उन रत्नो के यथाबादर (असारभूत) पुद्गलो को अलग किया। यथाबादर पुद्गलो को हटाकर दुबारा वैक्रिय समुद्घात करके, जैसे—

कोई तरुण, बलवान, युगवान्-कालकृत उपद्रवो से रहित, युवा-युवावस्था वाला, जवान, रोग रहित—नीरोग, स्थिर पजे वाला—जिसके हाथ का अग्रभाग कापता न हो, पूर्णरूप से दृढ पुष्ट हाथ पैर पृष्ठान्तर—पीठ एव पसलियो और जघाओ वाला, अतिशय निचित परिपुष्ट मासल गोल कधोवाला, चर्मेष्टक (चमडे से वेष्टित पत्थर से बना अस्त्र विशेष), मुद्गर और मुक्को की मार से सघन, पुष्ट सुगठित शरीर वाला, आत्मशक्ति सम्पन्न, युगपत् उत्पन्न तालवृक्षयुगल के समान सीधी लम्बी और पुष्ट भुजाओ वाला, लाघने-कूदने-वेगपूर्वक गमन एव मर्दन करने मे समर्थ, कलाविज्ञ, दक्ष, पटु, कुशल, मेधावी एव कार्यनिपुण भृत्यदारक सीको से बनी अथवा मूठ वाली अथवा वास की सीको से बनी बुहारी को लेकर राजप्रागण, अन्त पुर, देवकुल, सभा, प्याऊ, आराम अथवा उद्यान को बिना किसी घबराहट चपलता सम्भ्रम और आकुलता के निपुणतापूर्वक चारो तरफ से प्रमार्जित

१ सूत्र सख्या १३
२ सूत्र सख्या १३

करता है—बुहारता है, वैसे ही सूर्याभदेव के उन आभियोगिक देवो ने भी सवर्तक वायु की विकुर्वणा की। विकुर्वणा करके श्रमण भगवान् महावीर के आस-पास चारो ओर एक योजन—चार कोस के इर्दगिर्द भूभाग मे जो कुछ भी घास पत्ते आदि थे उन सभी को चुन-चुनकर एकान्त स्थान मे ले जाकर फेंक दिया और फेंक कर शीघ्र ही अपने कार्य से निवृत्त हुए।

अभ्र-बादलों की विकुर्वणा—

१६—दोच्च पि वेउव्वियसमुग्घाएण समोहण्णति, समोहणित्ता अब्भवद्दलए विउव्वंति। से जहाणामए भइगदारगे सिया तरुणे जाव[1] सिप्पोवगए एग महं दगवारगं वा, दगकुम्भग वा, दगथालग वा, दगकलसग वा, गहाय आरामं वा जाव[2] पव वा अतुरिय जाव सव्वतो समता आवरिसेज्जा, एवामेव तेऽवि सूरियाभस्स देवस्स आभियोगिया देवा अब्भवद्दलए विउव्वंति, विउव्वित्ता खिप्पामेव पतणतणायंति, पतणतणाइत्ता खिप्पामेव विज्जुयायंति, विज्जुयाइत्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स सव्वओ समता जोयणपरिमडल णच्चोदग णातिमट्टिय त पविरलपप्फुसियं रयरेणुविणासण दिव्वं सुरभिगधोदगं वास वासंति, वासेत्ता णिहयरय, णट्ठरयं, भट्ठरय, उवसंतरय, पसतरयं, करेंति, करित्ता खिप्पामेव उवसामंति।

इसके पश्चात् उन आभियोगिक देवो ने दुवारा वैक्रिय समुद्घात किया। वैक्रिय समुद्घात करके जैसे कोई तरुण यावत् कार्यकुशल भृत्यदारक—सीचने वाला नौकर जल से भरे एक वडे घडे, वारक (मिट्टी से बने पात्र विशेष—चाडे) अथवा जलकुभ (मिट्टी के घडे) अथवा जल-स्थालक (कासे के घडे) अथवा जल-कलश को लेकर आराम-फुलवारी यावत् परव (प्याऊ) को विना किसी उतावली के यावत् सब तरफ से सीचता है, इसी प्रकार से सूर्याभदेव के उन आभियोगिक देवो ने आकाश मे घुमड-घुमडकर गरजने वाले और विजलियो की चमचमाहट से युक्त मेघो की विक्रिया की और विक्रिया करके श्रमण भगवान् महावीर के विराजने के स्थान के आस-पास चारो ओर एक योजन प्रमाण गोलाकार भूमि मे इस प्रकार से सुगन्धित गधोदक वरसाया कि जिससे न भूमि जल-बहुल हुई, न कीचड हुआ किन्तु रिमझिम-रिमझिम विरल रूप से बूदावादी होने से उडते हुए रजकण दब गये। इस प्रकार की मेघ वर्षा करके उस स्थान को निहितरज, नष्टरज, भ्रष्टरज, उपशातरज, प्रशात रज वाला बना दिया। ऐसा करके वे अपने कार्य से विरत हुए।

विवेचन—देवो द्वारा की गई उक्त मेघबादलो की विकुर्वणा से ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीनकाल मे जल वर्षा के लिये कृत्रिम मेघो की रचना होती होगी। आज के वैज्ञानिको द्वारा भी इस प्रकार के प्रयोग किये जा रहे है और उनमे कुछ सफलता भी मिली है।

पुष्प-मेघो की रचना—

१७—तच्च पि वेउव्वियसमुग्घाएण समोहण्णति पुप्फवद्दलए विउव्वंति, से जहाणामए मालागारदारए सिया तरुणे जाव[3] सिप्पोवगए एगं मह पुप्फछज्जिय वा पुप्फपडलगं वा पुप्फचगेरिय वा गहाय रायङ्गण वा जाव[4] सव्वतो समंता कयग्गहगहियकरयलपब्भट्ठविप्पमुक्केण

---

१ सूत्र सख्या १५
२ सूत्र सख्या १५
३ देखें सूत्र सख्या १५
४ देखे सूत्र सख्या १५

दसद्धवन्नेणं कुसुमेण मुक्कपुप्फपुंजोवयारकलितं करेज्जा, एवामेव ते सूरियाभस्स देवस्स आभिओगिया देवा पुप्फवद्दलए विउव्वति खिप्पामेव पतणतणायंति जाव[1] जोयणपरिमंडलं जलयथलयभासुरप्पभूयस्स विंटट्ठाइस्स दसद्धवन्नकुसुमस्स जाणुस्सेहपमाणमेत्तिं ओहिं वासंति वासित्ता कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवमघमघतगंधुद्धुयाभिरामं सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूतं दिव्वं सुरवराभिगमणजोग्गं करेंति य कारवेंति य, करेत्ता य कारवेत्ता य खिप्पामेव उवसामंति ।

१७—तदनन्तर उन आभियोगिक देवो ने तीसरी बार वैक्रिय समुद्‌घात करके जैसे कोई तरुण यावत् कार्यकुशल मालाकारपुत्र एक बडी पुष्पछादिका (फूलो से भरी टोकरी) पुष्पपटलक (फूलो की पोटली) अथवा पुष्पचगेरिका (फूलो से भरी डलिया) से कचग्रहवत् (कामुकता से हाथो मे ली गई कामिनी की केश-राशि के तुल्य) फूलो को हाथ मे लेकर छोडे गये पचरगे पुष्पपु जो को बिखेर कर राज-प्रागण यावत् परव (प्याऊ) को सब तरफ से समलकृत कर देता है, उसी प्रकार से पुष्पवर्षक बादलो की विकुर्वणा की । वे अभ्र-बादलो की तरह गरजने लगे, यावत् योजन प्रमाण गोलाकार भूभाग मे दीप्तिमान् जलज और स्थलज पचरगे पुष्पो को प्रभूत मात्रा मे इस तरह बरसाया कि सर्वत्र उनकी ऊँचाई एक हाथ प्रमाण हो गई एव डडिया नीचे और पखुडियाँ ऊपर रही ।

पुष्पवर्षा करने के पश्चात् मनमोहक सुगन्ध वाले काले अगर, श्रेष्ठ कुन्दुरुष्क, तुरुष्क-लोभान और धूप को जलाया । उनकी मनमोहक सुगन्ध से सारा प्रदेश महकने लगा, श्रेष्ठ सुगन्ध के कारण सुगन्ध की गुटिका जैसा बन गया । दिव्य एव श्रेष्ठ देवो के अभिगमन योग्य हो गया । इस प्रकार से स्वय करके और दूसरो से करवा करके उन्होने अपने कार्य को पूर्ण किया ।

आभियोगिक देवो का प्रत्यावर्तन—

१८—जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता समण भगव महावीर तिक्खुत्तो जाव[2] वंदित्ता नमंसित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियातो अंबसालवणातो चेइयातो पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता ताए उक्किट्ठाए जाव[3] वीइवयमाणा वीइवयमाणा जेणेव सोहम्मे कप्पे जेणेव सूरियाभे विमाणे जेणेव सभा सुहम्मा जेणेव सूरियाभे देवे तेणेव उवागच्छंति सूरियाभं देवं करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अञ्जलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति वद्धावेत्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

१८—इसके पश्चात् वे आभियोगिक देव श्रमण भगवान् महावीर के पास आये । वहाँ आकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार यावत् वदन नमस्कार करके श्रमण भगवान् महावीर के पास से, आम्रशालवन चैत्य से निकले, निकलकर उत्कृष्ट गति से यावत् चलते-चलते जहाँ सौधर्म स्वर्ग था, जहाँ सूर्याभ विमान था, जहाँ सुधर्मा सभा थी और उसमे भी जहाँ सूर्याभदेव था वहाँ आये और दोनो हाथ जोड आवर्त पूर्वक मस्तक पर अजलि करके जय विजय घोष से सूर्याभदेव का अभिनन्दन करके आज्ञा को वापस लौटाया अर्थात् आज्ञानुसार कार्य पूरा करने की सूचना दी ।

---

१ देखें सूत्र सख्या १६

२ देखें सूत्र सख्या १३,

३ देखें सूत्र सख्या १३,

सूर्याभदेव की उद्घोषणा एवं आदेश—

१९—तए ण सूरियाभे देवे तेसिं आभियोगियाण देवाण अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव[1] हियए पायत्ताणियाहिवइ देवं सद्दावेति, सद्दावेत्ता एवं वदासी—

खिप्पामेव भो ! देवाणुप्पिया ! सूरियाभे विमाणे सभाए सुहम्माए मेघोघरसियगंभीरमहुर-सद्दं जोयणपरिमडलं सूसरं घंटं तिक्खुत्तो उल्लालेमाणे उल्लालेमाणे महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणे उग्घोसेमाणे एवं वयाहि—आणवेति ण भो ! सूरियाभे देवे, गच्छति ण भो ! सूरियाभे देवे जबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आमलकप्पाए णयरीए अंबसालवणे चेतिते समणं भगवं महावीरं अभिवंदए, तुब्भेऽवि णं भो ! देवाणुप्पिया ! सव्विड्ढीए जाव [सव्वज्जुईए सव्वबलेण सव्वसमुदएणं सव्वादरेण सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेण सव्व-पुप्फ-गंध-मल्लालंकारेणं सव्व-तुडिय-सद्द-सण्णिणाएणं महया इड्ढीए, महया जुईए, महया बलेणं महया समुदएणं महया वर-तुडिय-जमगसमग-प्पवाइएणं संख-पणव-पडह-भेरि-झल्लरि-खरमुहि-हुडुक्क-मुरय-मुइंग-दुंदुहि-णिग्घोस] नाइतरवेण णियगपरिवालसद्धिं सपरिवुडा साति साति जाणविमाणाइं दुरूढा समाणा अकालपरिहीण चेव सूरियाभस्स देवस्स अंतिए पाउब्भवह ।

१९—आभियोगिक देवो से इस अर्थ को सुनने के पश्चात् सूर्याभ देव ने हर्षित, सन्तुष्ट यावत् हर्षातिरेक से प्रफुल्ल-हृदय हो पदाति-अनीकाधिपति (स्थलसेनापति) को बुलाया और बुलाकर उससे कहा—

हे देवानुप्रिय ! तुम शीघ्र ही सूर्याभ विमान की सुधर्मा सभा मे स्थित मेघसमूह जैसी गभीर मधुर शब्द करने वाली एक योजन प्रमाण गोलाकार सुस्वर घंटा को तीन बार बजा-बजाकर उन्नाति-उच्च स्वर मे घोषणा-उद्घोषणा करते हुए यह कहो कि—

हे सूर्याभ विमान मे रहने वाले देवो और देवियो ! सूर्याभविमानाधिपति के हितकर और सुखप्रद वचनो को सुनो—सूर्याभ देव आज्ञा देता है कि देवो ! जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र मे स्थित आमलकल्पा नगरी के आम्रशालवन चैत्य मे विराजमान श्रमण भगवान् महावीर की वदना करने के लिए सूर्याभ देव जा रहा है । अतएव हे देवानुप्रियो ! आप लोग समस्त ऋद्धि यावत् (आभूषण) आदि की काति, बल (सेना) समुदय-अभ्युदय दिखावे अथवा अपने अपने आभियोगिक देवो के समुदाय, आदर-सम्मान, विभूति, विभूषा, एव भक्तिजन्य उत्सुकतापूर्वक सर्व प्रकार के पुष्पो, वेश-भूषाओ, सुगन्धित पदार्थों, एक साथ बजाये जा रहे समस्त दिव्य वाद्यो—शख, प्रणव, (ढोलक) पटह (नगाडा) भेरी, झालर खरमुखी, हुडुक्क, मुरज (तबला), मृदग एव दुन्दुभि आदि के निर्घोष के साथ) अपने-अपने परिवार सहित अपने-अपने यान-विमानो मे बैठकर बिना विलब के-अविलब, तत्काल सूर्याभ देव के समक्ष उपस्थित हो जाओ ।

२०—तए ण से पायत्ताणियाहिवती देवे सूरियाभेण देवेण एव वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ जाव[2] हियए एवं देवो ! तहत्ति आणाए विणएणं वयण पडिसुणेति, पडिसुणित्ता जेणेव सूरियाभे विमाणे जेणेव सभा सुहम्मा, जेणेव मेघोघरसियगम्भीरमहुरसद्दा जोयणपरिमडला सुस्सरा घंटा तेणेव

१ देखें सूत्र सख्या १३

२ देखें सूत्र सख्या ८

उवागच्छति, उवागच्छित्ता तं मेघोघरसितगंभीरमहुरसद्द जोयणपरिमंडल सुस्सरं घट तिक्खुत्तो उल्लालेति ।

तए णं तीसे मेघोघरसितगंभीरमहुरसद्दाए जोयणपरिमडलाए सुस्सराए घटाए तिक्खुत्तो उल्लालियाए समाणीए से सूरियाभे विमाणे पासायविमाणणिक्खुडावडियसद्दघटापडिसुयासयसहस्स-सकुले जाए याऽवि होत्था ।

२०—तदनन्तर सूर्याभदेव द्वारा इस प्रकार से आज्ञापित हुआ वह पदात्यनीकाधिपति देव सूर्याभदेव की इस आज्ञा को सुनकर हृष्ट-तुष्ट यावत् प्रफुल्ल-हृदय हुआ और 'हे देव ! ऐसा ही होगा' कहकर विनयपूर्वक आज्ञावचनो को स्वीकार करके सूर्याभ विमान मे जहाँ सुधर्मा सभा थी और उसमे भी जहाँ मेघमालावत् गम्भीर मधुर ध्वनि करने वाली योजन प्रमाण गोल सुस्वर घटा थी, वहाँ आकर मेघमाला जैसी गम्भीर और मधुरध्वनि करने वाली उस एक योजन प्रमाण गोल सुस्वर घटा को तीन बार बजाया ।

तब उस मेघमालासदृश गम्भीर मधुर ध्वनि करने वालो योजन प्रमाण गोल सुस्वर घटा के तीन बार बजाये जाने पर उसकी ध्वनि से सूर्याभ विमान के प्रासादविमान आदि से लेकर कोने-कोने तक के एकान्तशात स्थान लाखो प्रतिध्वनियो से गूँज उठे ।

विवेचन—अधिक से अधिक बारह योजन की दूरी से आया हुआ शब्द ही श्रोत्रेन्द्रिय द्वारा ग्रहण किया जा सकता है । मगर सूर्याभ विमान तो एक लाख योजन विस्तार वाला है । ऐसी स्थिति मे घण्टा का शब्द सर्वत्र कैसे सुनाई दिया ? इस प्रश्न का समाधान मूलपाठ के अनुसार ही यह है कि घटा के ताडन करने पर उत्पन्न हुए शब्द-पुद्गलो के इधर-उधर टकराने से तथा दैवी प्रभाव से, लाखो प्रतिध्वनियाँ उत्पन्न हो गईं । उनसे समग्र सूर्याभ विमान व्याप्त हो गया और विमानवासी सब देवो-देवियो ने शब्द श्रवण कर लिया ।

२१—तए णं तेसिं सूरियाभविमाणवासिण बहूण वेमाणियाण देवाण य देवीण य एगतरइ-पसत्तनिच्चप्पमत्तविसयसुहमुच्छियाणं सूसरघंटारवविउलबोलतुरियचवलपडिबोहणे कए समाणे घोसण-कोउहल-दिन्नकन्नएगग्गचित्त-उवउत्तमाणसाण से पायत्ताणीयाहिवई देवे तसि घटारवसि णिसत-पसतसि महया महया सद्देण उग्घोसेमाणे उग्घोसेमाणे एवं वदासी—

हद ! सुणंतु भवतो सूरियाभविमाणवासिणो बहवे वेमाणिया देवा य देवीओ य सूरियाभ-भविमाणवइणो वयणं हियसुहत्थं—

आणवेइ णं भो ! सूरियाभे देवे, गच्छइ णं भो ! सूरियाभे देवे जबुद्दीवं दीवं भारह वास आमलकप्पं नगरिं अवसालवणं चेइयं समणं भगवं महावीरं अभिवंदए; त तुब्भेऽवि ण देवाणुप्पिया ! सव्विड्ढीए अकालपरिहीणा चेव सूरियाभस्स देवस्स अंतिय पाउब्भवह ।

२१—तब उस सुस्वर घटा की गम्भीर प्रतिध्वनि से एकान्त रूप से अर्थात् सदा सर्वदा रति-क्रिया (काम भोगो) मे आसक्त, नित्य प्रमत्त, एव विषयसुख मे मूर्च्छित सूर्याभविमानवासी देवो और देवियो ने घटानाद से शीघ्रातिशीघ्र प्रतिबोधित-सावधान-जाग्रत होकर घोषणा के विषय मे उत्पन्न कौतूहल की शाति के लिए कान और मन को केन्द्रित किया तथा घटारव के शात-

प्रशात (बिल्कुल शात) हो जाने पर उस पदात्यानीकाधिपति देव ने जोर-जोर से उच्च शब्दो मे उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहा—

आप सभी सूर्याभविमानवासी वैमानिक देव और देविया सूर्याभ विमानाधिपति की इस हितकारी सुखप्रद घोषणा को हर्षपूर्वक सुनिये—

हे देवानुप्रियो ! सूर्याभ देव ने आप सबको आज्ञा दी है कि सूर्याभ देव जम्बूद्वीप नामक द्वीप मे वर्तमान भरतक्षेत्र मे स्थित आमलकल्पा नगरी के आम्रशालवन चैत्य मे विराजमान श्रमण भगवान् महावीर की वन्दना करने के लिए जा रहे हैं । अतएव हे देवानुप्रियो ! आप सभी समस्त ऋद्धि से युक्त होकर अविलम्ब—तत्काल सूर्याभ देव के समक्ष उपस्थित हो जाये ।

सूर्याभ देव की घोषणा की प्रतिक्रिया—

२२—तए णं ते सूरियाभविमाणवासिणो बहवे वेमाणिया देवा देवीओ य पायत्ताणियाहिवइस्स देवस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ जाव[1] हियया अप्पेगइया वंदणवत्तियाए, अप्पेगइया पूयणवत्तियाए, अप्पेगइया सक्कारवत्तियाए अप्पेगइया संमाणवत्तियाए, अप्पेगइया कोऊहलजिणभत्तिरागेण, अप्पेगइया सूरियाभस्स देवस्स वयणमणुयत्तेमाणा, अप्पेगइया अस्सुयाइं सुणेस्सामो, अप्पेगइया सुयाइ निस्सकियाइ करिस्सामो, अप्पेगतिया अन्नमन्नमणुयत्तमाणा, अप्पेगइया जिणभत्तिरागेण, अप्पेगइया 'धम्मो' त्ति, अप्पेगइया 'जीयमेयं' ति कट्टु सव्विड्ढीए जाव[1] अकालपरिहीणा चेव सूरियाभस्स देवस्स अंतियं पाउब्भवति ।

२२—तदनन्तर पदात्यनीकाधिपति देव से इस बात (सूर्याभदेव की आज्ञा) को सुनकर सूर्याभविमानवासी सभी वैमानिक देव और देविया हर्षित, सन्तुष्ट यावत् विकसितहृदय हो, कितने ही वन्दना करने के विचार से, कितने ही पर्युपासना करने की आकाक्षा से, कितने ही सत्कार करने की भावना से, कितने ही सम्मान करने की इच्छा से, कितने ही जिनेन्द्र भगवान् के प्रति कुतूहलजनित भक्ति-अनुराग से, कितने ही सूर्याभ देव की आज्ञा पालन करने के लिए, कितने ही अश्रुतपूर्व (जिसको पहले नही सुना) को सुनने की उत्सुकता से, कितने ही सुने हुए अर्थविषयक शकाओ का समाधान करके नि शक होने के अभिप्राय से, कितने ही एक दूसरे का अनुसरण करते हुए, कितने ही जिन-भक्ति के अनुराग से, कितने ही अपना धर्म (कर्त्तव्य) मानकर और कितने ही अपना परम्परागत व्यवहार समझकर सर्व ऋद्धि के साथ यावत् बिना किसी विलम्ब के तत्काल सूर्याभदेव के समक्ष उपस्थित हो गये ।

विवेचन—यहाँ मानवीय रुचि की विविधरूपता का चित्रण किया गया है कि कार्य के एक समान होने पर भी प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार उसमे प्रवृत्त होता है। इसीलिए लोक को विभिन्न रुचि वाला बताया गया है । जैनसिद्धान्त के अनुसार इस प्रकृति—स्वभावजन्य विविधता का कारण कर्म है—'कर्मज लोकवैचित्र्य तत्स्वभावानुकारणम् ।'

सूर्याभदेव द्वारा विमाननिर्माण का आदेश

२३—तए ण से सूरियाभे देवे ते सूरियाभविमाणवासिणो बहवे वेमाणिया देवा य देवीओ य

---

१ देखें सूत्र सख्या १९

अकालपरिहीणा चेव अन्तिय पाउब्भवमाणे पासति, पासित्ता हट्ठतुट्ठ जाव[1] हियए आभिओगिय देवं सद्दावेति, सद्दावित्ता एव वयासी—

खिप्पामेव भो ! देवाणुप्पिया । अणेगखम्भसयसनिविट्ठ लीलट्ठियसालभजियाग, ईहामिय-उसभ-तुरग-नर-मगर-विहग-वालग-किनर-रुरु-सरभ-चमर-कुञ्जर-वणलय-पउमलय-भत्तिचित्त खभुग्ग-यवइरवेइयापरिगयाभिराम विज्जाहरजमलजुयलजंतजुत्तपिव अच्चीसहस्समालणीयं रूवगसहस्सकलिय भिसमाणं भिब्भिसमाण चक्खुल्लोयणलेस सुहफास सस्सिरीयरूव घण्टावलिचलियमहुरमणहरसर सुह कन्त दरिसणिज्ज णिउणउचियभिसिभिसितमणिरयणघण्टियाजालपरिक्खित्त जोयणसयसहस्सवित्थिण्णं दिव्व गमणसज्ज सिग्घगमणं णाम जाणविमाण विउव्वाहि, विउव्वित्ता खिप्पामेव एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि ।

२३—इसके पश्चात् विलम्ब किये विना उन सभी सूर्याभविमानवासी देवो और देवियो को अपने सामने उपस्थित देखकर हृष्ट-तुष्ट यावत् प्रफुल्लहृदय हो सूर्याभ देव ने अपने आभियोगिक देव को बुलाया और बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिय ! तुम शीघ्र ही अनेक सैकडो स्तम्भो पर सनिविष्ट—बने हुए एक यान-विमान की विकुर्वणा-रचना करो । जिसमे स्थान-स्थान पर हाव-भाव-विलास लीलायुक्त अनेक पुतलिया स्थापित हो । ईहामृग, वृषभ, तुरग, नर (मनुष्य), मगर, विहग (पक्षी), सर्प, किन्नर, रुरु (मृगो की एक जाति विशेप-वारह सिंगा अथवा कस्तूरीमृग), सरभ (अष्टापद) चमरी गाय, हाथी वनलता, पद्मलता आदि के चित्राम चित्रित हो । जो स्तम्भो पर वनी वज्र रत्नो की वेदिका से युक्त होने के कारण रमणीय दिखलाई दे । समश्रेणी मे स्थित विद्याधरो के युगल यत्रचालित-जैसे दिखलाई दें । हजारो किरणो मे व्याप्त एव हजारो रूपको—चित्रो से युक्त होने से जो देदीप्यमान और अतीव देदीप्यमान जैसा प्रतीत हो । देखते ही दर्शको के नयन जिसमे चिपक जाये । जिसका स्पर्श सुखप्रद और रूप शोभा-सम्पन्न हो । हिलने डुलने पर जिसमे लगी हुई घटावलि से मधुर और मनोहर शब्द-ध्वनि हो रही हो । जो वास्तुकला से युक्त होने के कारण शुभ कान्त—कमनीय और दर्शनीय हो । निपुण शिल्पियो द्वारा निर्मित, देदीप्यमान मणियो और रत्नो के घु घरुओ से व्याप्त हो, एक लाख योजन विस्तार वाला हो । दिव्य तीव्रगति से चलने की शक्ति-सामर्थ्य सम्पन्न एव शीघ्रगामी हो ।

इस प्रकार के यान-विमान की विकुर्वणा-रचना करके हमे शीघ्र ही इसकी सूचना दो ।

२४—तए ण से आभिओगिए देवे सूरियाभेण देवेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठ जाव[2] हियए करयल-परिग्गहिय जाव[3] पडिसुणेइ जाव[4] पडिसुणेत्ता उत्तरपुरत्थिम दिसीभाग अवक्कमति, अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ समोहणित्ता संखेज्जाइ जोयणाइ जाव[5] अहाबायरे पोग्गले परिसाडति परिसाडित्ता अहासुहुमे पोग्गले परियाएइ परियाइत्ता दोच्च पि वेउव्विय समुग्घाएणं समोहणित्ता अणेगखम्भसयसन्निविट्ठ जाव[6] दिव्व जाणविमाण विउव्विउ पवत्ते यावि होत्था ।

---

१ देखे सूत्र सख्या ८
२ देखें सूत्र सख्या १३
३ देखें सूत्र सख्या १३
४ देखे सूत्र सख्या १३
५ देखे सूत्र सख्या १३
६ देखें सूत्र सख्या २३

१४—तदनन्तर वह आभियोगिक देव सूर्याभदेव द्वारा इस प्रकार का आदेश दिये जाने पर हर्षित एव सन्तुष्ट हुआ यावत् प्रफुल्ल हृदय हो दोनो हाथ जोड यावत् आज्ञा को सुना यावत् उसे स्वीकार करके वह उत्तर-पूर्व दिशा—ईशानकोण मे आया। वहाँ आकर वैक्रिय समुद्घात किया और समुद्घात करके सख्यात योजन ऊपर-नीचे लबा दण्ड बनाया यावत् यथाबादर (स्थूल-असार) पुद्गलो को अलग हटाकर सारभूत सूक्ष्म पुद्गलो को ग्रहण किया, ग्रहण करके दूसरी बार पुन. वैक्रिय समुद्घात करके अनेक सैकडो स्तम्भो पर सन्निविष्ट यावत् दिव्ययान-विमान की विकुर्वणा (रचना) करने मे प्रवृत्त हो गया।

आभियोगिक देवों द्वारा विमानरचना—

२५—तए ण से आभिओगिए देवे तस्स दिव्वस्स जाणविमाणस्स तिदिसि तिसोवाणपडिरूवए विउव्वति, तजहा-पुरत्थिमेण, दाहिणेणं, उत्तरेण, तेसिं तिसोवाणपडिरूवगाणं इमे एयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तजहा—

वइरामया णिम्मा, रिट्ठामया पतिट्ठाणा, वेरुलियामया खभा, सुवण्ण-रुप्पमया फलगा, लोहितक्खमइयाओ सूईओ, वयरामया सधी, णाणामणिमया अवलवणा, अवलवणबाहाओ य, पासादीया जाव[1] पडिरूवा।

२५—इसके अनन्तर (विमान रचना के लिए प्रवृत्त होने के अनन्तर) सर्व प्रथम आभियोगिक देवो ने उस दिव्ययान-विमान की तीन दिशाओ—पूर्व, दक्षिण और उत्तर मे विशिष्ट रूप-शोभासपन्न तीन सोपानो (सीढियो) वाली तीन सोपान पक्तियो की रचना की। वे रूपशोभा सपन्न सोपान पंक्तिया इस प्रकार की थी—

इनकी नेम (भूमि से ऊपर निकला प्रदेश, वेदिका) वज्ररत्नो से वनी हुई थी। रिष्ट रत्नमय इनके प्रतिष्ठान (पैर रखने को स्थान) और वैडूर्य रत्नमय स्तम्भ थे। स्वर्ण-रजत मय फलक (पाटिये) थे। लोहिताक्ष रत्नमयी इनमे सूचिया—कीले लगी थी। वज्ररत्नो से इनकी सधिया (साधें) भरी हुई थी, चढने-उतरने मे अवलबन के लिये अनेक प्रकार के मणिरत्नो से बनी इनकी अवलवनवाहा थी तथा ये त्रिसोपान पक्तिया मन को प्रसन्न करने वाली यावत् असाधारण सुन्दर थी।

२६—तेसि ण तिसोवाणपडिरूवगाण पुरओ पत्तेयं पत्तेयं तोरण पण्णत्त, तेसि णं तोरणाण इमे एयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तजहा-तोरणा णाणामणिमया णाणामणिमएसु थम्भेसु उवनिविट्ठसनिविट्ठा विविहमुत्तन्तरारूवोवचिया विविहतारारूवोवचिया जाव पासाइया दरिसणिज्जा, अभिरूवा पडिरूवा।

२६—इन दर्शनीय मनमोहक प्रत्येक त्रिसोपान-पक्तियो के आगे तोरण वधे हुए थे। उन तोरणो का वर्णन इस प्रकार का है—

वे तोरण मणियो से बने हुए थे। गिर न सके, इस विचार से विविध प्रकार के मणिमय स्तभो के ऊपर भली-भाति निश्चल रूप से वाधे गये थे। बीच के अन्तराल विविध प्रकार के मोतियो से निर्मित रूपको से उपशोभित थे और सलमा सितारो आदि से बने हुए तारा-रूपको—वेल कूटो से व्याप्त यावत् (मन को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप-मनाकर्षक और) अतीव मनोहर थे।

१ देखें सूत्र सख्या १

२७—तेसि ण तोरणाण उप्पि अट्ठट्ठ मङ्गलगा पण्णत्ता, तजहा—सोत्थिय-सिरिवच्छ-णन्दियावत्त-वद्धमाणग-भद्दासण-कलस-मच्छ-दप्पणा जाव (सव्वरयणमया अच्छा, सण्हा, लण्हा, घट्ठा, मट्ठा, णीरया निम्मला, निप्पका, निक्कंकडच्छाया सप्पभा समिरीया सउज्जोया पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा) पडिरूवा।

२७—उन तोरणो के ऊपरी भाग मे स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्दिकावर्त, वर्द्धमानक, भद्रासन, कलश, मत्स्ययुगल और दर्पण, इन आठ-आठ मागलिको की रचना की। जो (सर्वात्मना रत्नो से निर्मित अतीव स्वच्छ, चिकने, घर्षित, मृष्ट, नीरज, निर्मल निष्कलक, दीप्त प्रकाशमान चम की ले शीतल प्रभायुक्त मनाह्लादक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप थे।

२८—तेसि च णं तोरणाण उप्पि बहवे किण्हचामरज्झया जाव (नीलचामरज्झया, लोहियचामरज्झया, हालिद्दचामरज्झया) सुक्किल्लचामरज्झया अच्छा सण्हा रुप्पपट्टा वइरदण्डा जलयामलगन्धिया सुरम्मा पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा विउव्वति।

२८—उन तोरणो के ऊपर स्वच्छ, निर्मल, सलोनी, रजतमय पट्ट से शोभित वज्रनिर्मित डडियो वाली, कमलो जैसी सुरभि गध से सुगधित, रमणीय, आह्लादकारी, दर्शनीय मनोहर अतीव मनोहर बहुत सी कृष्ण चामर ध्वजाओ यावत् (नील चामर ध्वजाओ, लाल चामर ध्वजाओ, पीली चामर ध्वजाओ और) श्वेत चामर ध्वजाओ की रचना की।

२९—तेसि णं तोरणाणं उप्पि बहवे छत्तातिछत्ते, पडागाइपडागे, घंटाजुगले, उप्पलहत्थए, कुमुद-णलिण-सुभग-सोगधिय-पोडरीय-महापोडरीय-सतपत्त-सहस्सपत्तहत्थए, सव्वरयणामए अच्छे जाव पडिरूवे विउव्वति।

२९—उन तोरणो के शिरोभाग मे निर्मल यावत् अत्यन्त शोभनीय रत्नो से बने हुए अनेक छत्रातिछत्रो (एक छत्र के ऊपर दूसरा छत्र) पताकातिपताकाओ घटायुगल, उत्पन्न (श्वेतकमल) कुमुद, नलिन, सुभग, सौगन्धिक, पु डरीक, महापु डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र कमलो के झूमको को लटकाया।

३०—तए ण से आभिओगिए देवे तस्स दिव्वस्स जाणविमाणस्स अतो बहुसमरमणिज्ज भूमिभाग विउव्वति। से जहाणामए आलिंगपुक्खरे ति वा, मुइगपुक्खरे इ वा, परिपुण्णे सरतले इ वा, करतले इ वा, चदमंडले इ वा, सूरमण्डले इ वा, आयसमंडले इ वा, उरब्भचम्मे इ वा, वसहचम्मे इ वा, वराहचम्मे इ वा, वग्घचम्मे इ वा, छगलचम्मे इ वा, दीवियचम्मे इ वा, अणेग-संकुकीलगसहस्सवितते, णाणाविहपचवन्नेहिं मणीहिं उवसोभिते आवड-पच्चावड-सेढि-पसेढि-सोत्थिय-सोवत्थिय-पूसमाणव-वद्धमाणग-मच्छडग-मगरडग-जार-मार-फुल्लावलि-पउमपत्त-सागर-तरग-वसंतलय-पउमलय-भत्तिचित्तेहिं सच्छाएहिं सप्पभेहिं समरीइएहिं सउज्जोएहिं णाणाविह-पचवण्णेहिं मणीहिं उवसोभिए त जहा—किण्हेहिं णीलेहिं लोहिएहिं हालिद्देहिं सुक्किल्लेहिं।

३०—सोपानो आदि की रचना करने के अनन्तर उस आभियोगिक देव ने उस दिव्ययान-विमान के अन्दर एकदम समतल भूमिभाग—स्थान की विक्रिया की। वह भूभाग आलिंगपुष्कर

(मुरज का ऊपरी भाग) मृदग पुष्कर, पूर्ण रूप से भरे हुए सरोवर के ऊपरी भाग, करतल (हथेली), चन्द्रमडल, सूर्यमडल, दर्पण मडल अथवा शकु जैसे वडे-वडे खीलो को ठोक और खीचकर चारो ओर से सम किये गये भेड, बैल, सुअर, सिंह, व्याघ्र, वकरी और भेड़िये के चमडे के समान अत्यन्त रमणीय एव सम था ।

वह सम भूमिभाग अनेक प्रकार के आवर्त, प्रत्यावर्त्त, श्रेणि, प्रश्रेणि, स्वस्तिक, पुष्यमाणव, शराबसपुट, मत्स्याड, मकराण्ड जार, मार आदि शुभलक्षणो और कृष्ण, नील, लाल, पीले और श्वेत इन पाच वर्णों की मणियो से उपशोभित था और उनमे कितनी ही मणियो मे पुष्पलताओ, कमल-पत्रो, समुद्रतरगो, वसतलताओ, पद्मलताओ आदि के चित्राम वने हुए थे तथा वे सभी मणिया निर्मल, चमकदार किरणो वाली उद्योत-शीतल प्रकाश वाली थी ।

मणियों का वर्ण—

३१—तत्थ ण जे ते किण्हा मणी तेसिं णं मणीणं इमे एतारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहा-नामए जीमूतए इ वा, खजणे इ वा, अजणे इ वा, कज्जले इ वा, मसी इ वा, मसीगुलिया इ वा, गवले इ वा, गवलगुलिया इ वा, भमरे इ वा, भमरावलिया इ वा, भमरपतंगसारे ति वा, जबूफले ति वा, अद्दारिट्ठे इ वा, परपुट्ठे इ वा, गए इ वा गयकलभे इ वा, किण्हसप्पे इ वा, किण्हकेसरे इ वा, आगास-थिग्गले इ वा, किण्हासोए इ वा, किण्हकणवीरे इ वा, किण्हबंधुजीवे इ वा, एयारूवे सिया ?

३१—उन मणियो मे की कृष्ण वर्ण वाली मणिया क्या सचमुच मे सघन मेघ घटाओ, अजन—सुरमा, खजन (गाडी के पहिये की कीच) काजल, काली स्याही, काली स्याही की गोली, भैंसे के सीग की गोली, भ्रमर, भ्रमर पक्ति, भ्रमर पख, जामुन, कच्चे अरीठे के वीज अथवा कौए के वच्चे, कोयल, हाथी, हाथी के वच्चे, कृष्ण सर्प, कृष्ण वकुल शरद ऋतु के मेघरहित आकाश, कृष्ण अशोक वृक्ष, कृष्ण कनेर, कृष्ण वधुजीवक (दोपहर मे फूलने वाला वृक्ष-विशेष) जैसी काली थी ?

३२—णो इणट्ठे समट्ठे, ओवम्मं समणाउओ ! ते णं किण्हा मणी इत्तो इट्ठतराए चेव कंततराए चेव, मणुण्णतराए चेव, मणामतराए चेव वण्णेण पण्णत्ता ।

३२—हे आयुष्मन् श्रमणो ! यह अर्थ समर्थ नही है—ऐसा नही है । ये सभी तो उपमाये हैं । वे काली मणिया तो इन सभी उपमाओ से भी अधिक इष्टतर काततर (काति-प्रभाववाली) मनोज्ञतर और अतीव मनोहर कृष्ण वर्ण वाली थी ।

३३—तत्थ ण जे ते नीला मणी तेसिं ण मणीणं इमे एयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहानामए भिंगे इ वा, भिंगपत्ते इ वा, सुए इ वा, सुयपिच्छे इ वा, चासे इ वा, चासपिच्छे इ वा, णीली इ वा, णीलीभेदे इ वा, णीलीगुलिया इ वा, सामाए इ वा, उच्चन्तगे इ वा, वणराती इ वा, हलधरवसणे इ वा, मोरग्गीवा इ वा, पारेवयग्गीवा इ वा, अयसिकुसुमे इ वा, बाणकुसुमे इ वा, अंजणकेसियाकुसुमे इ वा, नीलुप्पले इ वा, नीलासोगे इ वा, णीलकणवीरे इ वा, णीलबधुजीवे इ वा, भवे एयारूवे सिया ?

३३—उनमे की नील वर्ण की मणियाँ क्या भृगकीट, भृग के पख, शुक (तोता), शुकपख, चाष पक्षी (चातक), चाष पख, नील, नील के अदर का भाग, नील गुटिका, सावा (धान्य),उच्चन्तक

(दातो को नीला रगने का चूर्ण), वनराजि, वलदेव के पहनने के वस्त्र, मोर की गर्दन, कबूतर की गर्दन, अलसी के फूल, बाणपुष्प, अजनकेशी के फूल, नीलकमल, नीले अशोक, नीले कनेर, और नीले वधुजीवक जैसी नीली थी ?

३४—णो इणट्ठे समट्ठे, ते ण णीला मणी एत्तो इट्ठतराए चेव जाव[1] वण्णेण पण्णत्ता ।

३४—यह अर्थ समर्थ नही है—यह ऐसा नही है । वे नीली मणिया तो इन उपमेय पदार्थो से भी अधिक इष्टतर यावत् अतीव मनोहर नील वर्ण वाली थी ।

३५—तत्थ णं जे ते लोहियगा मणी तेसि ण मणीण इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहाणामए ससरुहिरे इ वा, उरब्भरुहिरे इ वा, वराहरुहिरे इ वा, मणुस्सरुहिरे इ वा, महिसरुहिरे इ वा, बालिंद-गोवे इ वा, बालदिवाकरे इ वा, सब्भब्भरागे इ वा, गुंजद्धरागे इ वा, जासुअणकुसुमे इ वा, किंसुय-कुसुमे इ वा, पालियायकुसुमे इ वा, जाईहिंगुलए ति वा, सिलप्पवाले ति वा, पवालअकुरे इ वा, लोहियक्खमणी इ वा, लक्खारसगे ति वा, किमिरागकंबले ति वा, चीणपिट्ठरासी ति वा, रत्तुप्पले इ वा, रत्तासोगे ति वा, रत्तकणवीरे ति वा, रत्तबधुजीवे ति वा, भवे एयारूवे सिया ?

३५—उन मणियो मे की लोहित (लाल) रग की मणियो का रग सचमुच मे क्या शशक (खरगोश) के खून, भेड के रक्त, सुअर के रक्त, मनुष्य के रक्त, भैस के रक्त, बाल इन्द्रगोप, प्रात -कालीन सूर्य, सध्या राग (सध्या के समय होने वाली लालिमा), गु जाफल (घु घची) के आधे भाग, जपापुष्प, किंशुक पुष्प (केसूडा के फूल), परिजातकुसुम, शुद्ध हिंगलुक (खनिजपदार्थ-विशेष), प्रवाल (मू गा) प्रवाल के अकुर, लोहिताक्ष मणि, लाख के रग, कृमिराग (अत्यन्त गहरे लाल रग) से रगे कवल, चीणा (धान्य-विशेष) के आटे, लाल कमल, लाल अशोक, लाल कनेर अथवा रक्त वधुजीवक जैसा लाल था ?

३६—णो इणट्ठे समट्ठे, ते ण लोहिया मणी इत्तो इट्ठतराए चेव जाव[2] वण्णेण पण्णत्ता ।

३६—ये पदार्थ उनकी लालिमा का बोध कराने मे समर्थ नही हैं । वे मणिया तो इनसे भी अधिक इष्ट यावत् अत्यन्त मनोहर रक्त (लाल) वर्ण की थी ।

३७—तत्थ ण जे ते हालिद्दा मणी तेसि ण मणीण इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते—से जहा-णामए चपए ति वा, चंपछल्ली ति वा, चपगभेए इ वा, हलिद्दा इ वा, हलिद्दाभेदे ति वा, हलिद्दा-गुलिया ति वा, हरियालिया वा, हरियालभेदे ति वा, हरियालगुलिया ति वा, चिउरे इ वा, चिउरग-राते ति वा, वरकणगनिघसे इ वा, वरपुरिसवसणे ति वा, अल्लकीकुसुमे ति वा, चपाकुसुमे इ वा, कुहडियाकुसुमे इ वा, कोरंटकमल्लदामे ति वा, तडवडाकुसुमे इ वा, घोसेडियाकुसुमे इ वा, सुवण्ण-जूहियाकुसुमे इ वा, सुहिरण्णकुसुमे ति वा, बीययकुसुमे इ वा, पीयासोगे ति वा, पीयकणवीरे ति वा, पीयबधुजीवे ति वा, भवे एयारूवे सिया ?

---

१ देखें सूत्र सख्या ३२

२ देखें सूत्र सख्या ३२

३७—उन मणियो मे की पीले रग की मणियो का पीतरग क्या सचमुच मे स्वर्ण चपा, स्वर्ण चपा की छाल, स्वर्ण चपा के अदर का भाग, हल्दी—हल्दी के अदर का भाग, हल्दी की गोली, हरताल (खनिज-विशेष), हरताल के अदर का भाग, हरताल की गोली, चिकुर (गधद्रव्य-विशेष), चिकुर के रग से रगे वस्त्र, शुद्ध स्वर्ण की कसौटी पर खीची गई रेखा, वासुदेव के वस्त्रो, अल्लकी (वृक्ष-विशेष) के फूल, चपाकुसुम, कूष्माड (कद्दू—कोला) के फूल, कोरटक पुष्प की माला, तडवडा (आवला) के फूल, घोषातिकी पुष्प, सुवर्णयूथिका—जूही के फूल, सुहिरण्य के फूल, बीजक के फूल, पीले अशोक, पीली कनेर अथवा पीले बधुजीवक जैसा पीला था ?

३८—णो इणट्ठे समट्ठे, ते ण हालिद्दा मणी एत्तो इट्ठतराए चेव जाव[1] वण्णेणं पण्णत्ता ।

३८—आयुष्मन् श्रमणो ! ये पदार्थ उनकी उपमा के लिये समर्थ नही हैं । वे पीली मणिया तो इन से भी इष्टतर यावत् पीले वर्ण वाली थी ।

३९—तत्थ ण जे ते सुक्किलला मणी तेसि ण मणीण इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते—से जहानामए अंकेति वा, संखे ति वा, चदेति वा, कुमुद-उदक-दयरय-दहि-घणक्खीर-क्खीरपूरे ति वा, कोचावली ति वा, हारावली ति वा, हसावली इ वा, बलागावली ति वा, सारतियबलाहए ति वा, धंतधोयरुप्पपट्टे इ वा, सालीपिट्ठरासी ति वा, कु दपुप्फरासी ति वा, कुमुदरासी ति वा, सुक्कच्छिवाडी ति वा, पिहुणमिंजिया ति वा, भिसे ति वा, मुणालिया ति वा, गयदते ति वा, लवङ्गदलए ति वा, पोडरियदलए ति वा, सेयासोगे ति वा, सेयकणवीरे ति वा, सेयबधुजीवे ति वा, भवे एयारूवे सिया ?

३९—हे भगवन् ! उन मणियो मे जो श्वेत वर्ण की मणियाँ थी क्या वे अंक रत्न, गख, चन्द्रमा, कुमुद, शुद्ध जल, ओस विन्दु, दही, दूध, दूध के फेन, क्रोच पक्षी की पक्ति, मोतियो के हार, हस पक्ति, बलाका पक्ति, चन्द्रमा की पक्ति (जाल के मध्य मे प्रतिविम्बित चन्द्रपक्ति), शरद ऋतु के मेघ, अग्नि मे तपाकर धोये गये चादी के पतरे, चावल के आटे, कुन्दपुष्प-समूह, कुमुद पुष्प के समूह, सूखी सिम्बा फली (सेम की फली), मयूरपिच्छ का सफेद मध्य भाग, विस-मृणाल, मृणालिका, हाथी के दाँत, लोग के फूल, पु डरीककमल (श्वेत कमल), श्वेत अशोक, श्वेत कनेर अथवा श्वेत वधुजीवक जैसी श्वेत वर्ण की थी ?

४०—णो इणट्ठे समट्ठे, ते ण सुक्किला मणी एत्तो इट्ठतराए चेव जाव[2] वन्नेण पण्णत्ता ।

४०—आयुष्मन् श्रमणो ! ऐसा नही है । वे श्वेत माणिया तो इनसे भी अधिक इष्टतर, यावत् सरस, मनोहर आदि मनोज्ञ श्वेत वर्ण वाली थी ।

मणियो का गन्ध-वर्णन—

४१—तेसि णं मणीणं इमेयारूवे गधे पण्णत्ते, से जहानामए कोट्ठपुडाण वा, तगरपुडाण वा, एलापुडाण वा, चोयपुडाण वा, चपापुडाण वा, दमणापुडाण वा, कु कुमपुडाण वा, चदणपुडाण वा,

---

१ देखें सूत्र सख्या ३२

२ देखे सूत्र सख्या ३२

उसीरपुडाण वा, मरुआपुडाण वा, जातिपुडाण वा, जूहियापुडाण वा, मल्लियापुडाण वा, ण्हाण-मल्लियापुडाण वा, केतगिपुडाण वा, पाडलिपुडाण वा, णोमालियापुडाण वा, अगुरुपुडाण वा, लवग-पुडाण वा, वासपुडाण वा, कप्पूरपुडाण वा, अणुवायंसि वा, ओभिज्जमाणाण वा, कुट्टिज्जमाणाण वा, भजिज्जमाणाण वा, उक्किरिज्जमाणाण वा, विक्किरिज्जमाणाण वा, परिभुज्जमाणाण वा, परि-भाइज्जमाणाण वा, भण्डाओ वा भड साहरिज्जमाणाण वा, ओराला मणुण्णा मणहरा घाणमण-निव्वुतिकरा सव्वतो समंता गधा अभिनिस्सरंति, भवे एयारूवे सिया ?

४१—उस दिव्य यान विमान के अन्तर्वर्ती सम भूभाग मे खचित मणिया क्या वैसी ही सुरभिगध वाली थी जैसी कोष्ठ (गन्धद्रव्य-विशेष) तगर, इलाइची, चोया, चपा, दमनक, कु कुम, चदन, उशीर (खश), मरुआ (सुगधित पौधा विशेष) जाई पुष्प, जुही, मल्लिका, स्नान-मल्लिका, केतकी, पाटल, नवमल्लिका, अगर, लवग, वास, कपूर और कपूर के पुडो को अनुकूल वायु मे खोलने पर, कूटने पर, तोडने पर, उत्कीर्ण करने पर, विखेरने पर, उपभोग करने पर, दूसरो को देने पर, एक पात्र से दूसरे पात्र मे रखने पर, (उडेलने पर) उदार, आकर्षक, मनोज्ञ, मनहर घ्राण और मन को शातिदायक गध सभी दिशाओ मे मघमघाती हुई फैलती है, महकती है ?

विवेचन—हीरा, पन्ना, माणिक आदि मणिरत्नो मे प्रकाश, चमचमाहट और अमुक प्रकार का रग आदि तो दिखता है परन्तु इनके पार्थिव होने और पृथ्वी के गंधवती होने पर भी मणियो मे अमुक प्रकार की उत्कट गध नही होती है। किन्तु देव-विक्रियाजन्य होने की विशेषता बतलाने के लिए मणियो की गध का वर्णन किया गया है।

४२—णो इणट्ठे समट्ठे, तेण मणी एत्तो इट्ठतराए चेव, [कततराए चेव, मणुण्णतराए चेव, मणामतराए चेव] गधेण पन्नत्ता।

४२—हे आयुष्मन् श्रमणो! यह अर्थ समर्थ नही है। ये तो मात्र उपमाये है। वे मणिया तो इनसे भी अधिक इष्टतर यावत् मनमोहक, मनहर, मनोज्ञ-सुरभि गध वाली थी।

मणियो का स्पर्श—

४३—तेसि ण मणीण इमेयारूवे फासे पण्णत्ते, से जहानामए आइणे ति वा, रूए ति वा बूरे इ वा णवणीए इ वा हसगब्भतूलिया इ वा सिरीसकुसुमनिचये इ वा बालकुमुदपत्तरासी ति वा भवे एयारूवे सिया ?

४३—उन मणियो का स्पर्श क्या अजिनक (चर्म का वस्त्र अथवा मृगछाला) रुई, बूर (वनस्पति विशेष), मक्खन, हसगर्भ नामक रुई विशेष, शिरीष पुष्पो के समूह अथवा नवजात कमल-पत्रो की राशि जैसा कोमल था ?

४४—णो इणट्ठे समट्ठे, तेण मणी एत्तो इट्ठतराए चेव जाव[1] फासेणं पन्नत्ता।

४४—आयुष्मन् श्रमणो! यह अर्थ समर्थ नही है। वे मणिया तो इनसे भी अधिक इष्टतर यावत् (सरस, मनोहर और मनोज्ञ कोमल) स्पर्शवाली थी।

१ देखें सूत्र सख्या ४३

प्रेक्षागृह-निर्माण—

४५—तए णं से आभियोगिए देवे तस्स दिव्वस्स जाणविमाणस्स बहुमज्झदेसभागे एत्थ ण मह पिच्छाघरमडव विउव्वइ, अणेगखंभसय-सनिविट्ठ अब्भुग्गयसुकयवरवेइयातोरणवररइयसाल-भजियाग सुसिलिट्ठविसिट्ठलट्ठसठियपसत्थवेरुलियविमलखम्भं णाणामणिखचिय-उज्जलबहुसम-सुविभत्तभूमिभाग, ईहामिय-उसभ-तुरग-नर-मगर-विहग-वालग-किंनर-रुरु-सरभ-चमर-कुञ्जर-वणलय-पउमलय-भत्तिचित्त, खभुग्गयवइरवेइयापरिगयाभिराम विज्जाहरजमलजुयलजतजुत्त पिव अच्चीसहस्स-मालणीय, रूवगसहस्सकलिय, भिसमाणं भिब्भिसमाण चक्खुल्लोयणलेसं सुहफास सस्सिरीयरूवं कंचणमणिरयणथूभियाग णाणाविहपचवण्णघटापडागपरिमडियग्गसिहरं चवलं मरीइकवय विणिम्मुयत, लाइय-उल्लोइयमहिय, गोसीस-सरसरत्तचदण-दद्दरदिन्नपचंगुलितल, उवचियचदण-कलस, चदणघड-सुकयतोरणपडिदुवारदेसभाग, आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलाव, पच-वण्णसरससुरभिमुक्कपुप्फपु जोवयारकलिय, कालागुरुपवरकु दरुक्कतुरुक्कधूवमघमघतगधुद्धुयाभिरामं सुगधवरगधिय गधवट्टिभूत अच्छरगणसघसविकिण्ण दिव्वतुडियसद्दसपणाइय अच्छं जाव [सण्हं अभिरूव] पडिरूव ।

तस्स ण पिच्छाघरमण्डवस्स अतो बहुसमरमणिज्जभूमिभाग विउव्वति जाव[1] मणीण फासो ।

तस्स ण पेच्छाघरमण्डवस्स उल्लोय विउव्वति पउमलयभत्ति-चित्त जाव [अच्छ सण्हं लण्हं घट्ठ णीरयं निम्मल निप्पक निक्ककडच्छायं सप्पभ समिरीयं सउज्जोयं पासादीय दरिसणिज्ज, अभिरूव] पडिरूव ।

४५—तदनन्तर आभियोगिक देवो ने उस दिव्य यान विमान के अदर बीचो-बीच एक विशाल प्रेक्षागृह मडप की रचना की ।

वह प्रेक्षागृह मडप अनेक सैकडो स्तम्भो पर सनिविष्ट (स्थित) था। अभ्युन्नत—ऊची एव सुरचित वेदिकाओ, तोरणो तथा सुन्दर पुतलियो से सजाया गया था। सुन्दर विशिष्ट रमणीय सस्थान—आकार-वाली प्रशस्त और विमल वैडूर्य मणियो से निर्मित स्तम्भो से उपशोभित था। उसका भूमिभाग विविध प्रकार की उज्ज्वल मणियो से खचित, सुविभक्त एव अत्यन्त सम था। उसमे ईहामृग (भेडिया) वृषभ, तुरग—घोडा, नर, मगर, विहग—पक्षी, सर्प, किंनर, रुरु (कस्तूरी मृग), सरभ (अष्टापद), चमरी गाय, कु जर (हाथी) वनलता पद्मलता आदि के चित्राम चित्रित थे। स्तम्भो के शिरोभाग मे वज्र रत्नो से बनी हुई वेदिकाओ से मनोहर दिखता था। यत्रचालित—जैसे विद्याधर युगलो से शोभित था। सूर्य के सदृश हजारो किरणो से सुशोभित एव हजारो सुन्दर घटाओ से युक्त था। देदीप्यमान और अतीव देदीप्यमान होने से दर्शको के नेत्रो को आकृष्ट करने वाला, सुखप्रद स्पर्श और रूप-शोभा से सम्पन्न था। उस पर स्वर्ण, मणि एव रत्नमय स्तूप बने हुए थे। उसके शिखर का अग्र भाग नाना प्रकार की घटियो और पचरगी पताकाओ से परिमडित—सुशोभित था। और अपनी चमचमाहट एव सभी ओर फैल रही किरणो के कारण चचल-सा दिखता था। उसका प्रागण गोबर से लिपा था और दिवारे सफेद मिट्टी से पुती थी। स्थान-स्थान पर सरस गोशीर्ष रक्तचंदन के हाथे लगे हुए थे और चदनर्चाचित कलश रखे थे। प्रत्येक द्वार तोरणो और चन्दन-कलशो से शोभित थे। दीवालो पर ऊपर से लेकर नीचे तक सुगधित

१ देखें सूत्र सख्या ३१, ३३, ३५, ३७, ३९, ४१, ४३

गोल मालाये लटक रही थी । सरस सुगन्धित पचरगे पुष्पो के माडने बने हुए थे । उत्तम कृष्ण अगर, कुन्दरुष्क, तुरुष्क और धूप की मोहक सुगध से महक रहा था और उस उत्तम सुरभि गध से गध की वर्तिका (अगरवत्ती, धूपवत्ती) प्रतीत होता था । अप्सराओ के समुदायो के गमनागमन से व्याप्त था । दिव्य वाद्यो के निनाद से गू ज रहा था । वह स्वच्छ यावत् (सलौना, अभिरूप) था ।

उस प्रेक्षागृह मडप के अदर अतीव सम रमणीय भू-भाग की रचना की । उस भूमि-भाग मे खचित मणियो के रूप-रग, गध आदि की समस्त वक्तव्यता पूर्ववत् समझना चाहिये ।

उस सम और रमणीय प्रेक्षागृह मडप की छत मे पद्मलता आदि के चित्रामो से युक्त यावत् (स्वच्छ, सलौना, चिकना, घृष्ट, नीरज, निर्मल, निष्पक, अप्रतिहतदीप्ति, प्रभा, किरणो वाला, उद्योत वाला, मन को प्रसन्न करने वाला, दर्शनीय, अभिरूप) अतीव मनोहर चदेवा बाधा ।

रंगमंच आदि की रचना—

४६—तस्स ण बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ ण एग मह वइरामय अक्खाडग विउव्वति ।

४६—उस सम रमणीय भूमिभाग के भी मध्यभाग मे वज्ररत्नो से निर्मित एक विशाल अक्षपाट (अखाडे—क्रीडामच) की रचना की ।

४७ - तस्स ण अक्खाडयस्स बहुमज्झदेसभागे एत्थ ण महेगं मणिपेढिय विउव्वति—अट्ठ जोयणाइ आयाम-विक्खम्भेण चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेण सव्वमणिमयं अच्छ सण्ह जाव[1] पडिरूवं ।

४७—उस क्रीडामच के ठीक बीचोबीच आठ योजन लबी-चौडी और चार योजन मोटी पूर्णतया वज्ररत्नो मे बनी हुई निर्मल, चिकनी यावत् प्रतिरूप एक विशाल मणिपीठिका की विकुर्वणा की ।

सिंहासन की रचना—

४८—तीसे णं मणिपेढियाए उवरि एत्थ ण महेगं सीहासण विउव्वइ, तस्स ण सीहासणस्स इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते—

तवणिज्जमया चक्कला, रययामया सीहा, सोवण्णिया पाया, णाणामणिमयाइं पायसीसगाइं, जंबूणयमयाइ गत्ताइ, वइरामया सधी, णाणामणिमये वेच्चे, से ण सीहासणे ईहामिय-उसम-तुरग-नर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-कुञ्जर-वणलय-पउमलयभत्तिचित्त, ससारसारोवचियमणि-रयणपायपीढे, अत्थरगमिउमसूरगणवतयकुसंतलिवकेसर-पच्चत्थुयाभिरामे, आईणग-रुय-बूर-तूलफासमउए सुविरइय-रयत्ताणे, उवचियखोमदुगुल्लपट्टपडिच्छायणे रत्तंसुअसंवुडे सुरम्मे पासाइए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे ।

४८—उस मणिपीठिका के ऊपर एक महान् सिंहासन बनाया । उस सिंहासन के चक्कला (पायों के नीचे के गोल भाग) सोने के, सिंहाकृति वाले हत्थे रत्नो के, पाये सोने के, पादशीर्षक अनेक प्रकार को मणियो के और बीच के गाते जाम्बूनद (विशिष्ट स्वर्ण) के थे । उसकी सधिया (सावें) वज्ररत्नो मे भरी हुई थी और मध्य भाग की बुनाई का वेत बाण (निवार) मणिमय था ।

---

१ देखें सूत्र सख्या ४५

उस सिंहासन पर ईहामृग, वृषभ, तुरग—अश्व, नर, मगर, विहग—पक्षी, सर्प, किन्नर, रुरु सरभ (अष्टापद), चमर अथवा चमरी गाय, हाथी, वनलता, पद्मलता आदि के चित्र बने हुए थे। सिंहासन के सामने स्थापित पाद-पीठ सर्वश्रेष्ठ मूल्यवान् मणियो और रत्नो का बना हुआ था। उस पादपीठ पर पैर रखने के लिए बिछा हुआ मसूरक (गोल आसन) नवतृण कुशाग्र और केसर ततुओ जैसे अत्यन्त सुकोमल सुन्दर आस्तारक से ढका हुआ था। उसका स्पर्श आजिनक (चर्म का वस्त्र) (मृग छाला) रुई, बूर, मक्खन और आक की रुई जैसा मृदु-कोमल था। वह सुन्दर सुरचित रजस्त्राण से आच्छादित था। उसपर कसीदा काढे क्षौम दुकूल (रुई से बने वस्त्र) का चद्दर बिछा हुआ था और अत्यन्त रमणीय लाल वस्त्र से आच्छादित था। जिससे वह सिंहासन अत्यन्त रमणीय, मन को प्रसन्न करने वाला, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप—अतीव मनोहर दिखता था।

४९—तस्स ण सीहासणस्स उवरि एत्थ ण महेग विजयदूस विउव्वति, संख-कुंद-दगरय-अमय-महियफेणपु ज-सनिगास सव्वरयणामयं अच्छं सण्हं पासादीयं दरिसणिज्ज अभिरूव पडिरूवं।

४९—उस सिंहासन के ऊपरी भाग मे शख, कु दपुष्प, जलकण, मथे हुए क्षीरोदधि के फेनपु ज के सदृश प्रभावाले रत्नो से बने हुए, स्वच्छ, निर्मल, स्निग्ध प्रासादिक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप एक विजयदूष्य (वस्त्र विशेष, छत्राकार जैसे चदेवे) को बाधा।

५०—तस्स ण सीहासणस्स उवरिं विजयदूसस्स य बहुमज्झदेसभागे एत्थ णं मह एग वयरामय अंकुसं विउव्वति।

५०—उस सिंहासन के ऊपरी भाग मे बधे हुए विजयदूष्य के बीचो-बीच वज्ररत्नमय एक अकुश (अकुडिया) लगाया।

५१—तंसि च ण वयरामयसि अकुसंमि कु भिक्क मुत्तादाम विउव्वति।

से ण कुंभिक्के मुत्तादामे अन्नेहिं चउहिं अद्धकुंभिक्केहिं मुत्तादामेहिं तदद्धुच्चपमाणेहिं सव्वओ समता सपरिक्खित्ते।

ते ण दामा तवणिज्जलबूसगा णाणामणिरयणविविह-हारद्धहारउवसोभियसमुदाया ईसिं अण्णमण्णमसपत्ता वाएहिं पुव्वावरदाहिणुत्तरागएहिं मदायं मदाय एज्जमाणाणि एज्जमाणाणि पलंब-माणाणि पलबमाणाणि वदमाणाणि वदमाणाणि उरालेण मणुन्नेण मणहरेण कण्ण-मण-णिव्वुति-करेणं सद्देण ते पएसे सव्वओ समता आपूरेमाणा आपूरेमाणा सिरीए अतीव अतीव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठ ति।

५१—उस वज्र रत्नमयी अकुश मे (मगध देश मे प्रसिद्ध) कु भ परिणाम जैसे एक बडे मुक्ता-दाम (मोतियो के झूमर—फानूस) को लटकाया और वह कु भपरिमाण वाला मुक्तादाम भी चारो दिशाओ मे उसके परिमाण से आधे अर्थात् अर्धकु भ परिमाण वाले और दूसरे चार मुक्तादामो से परिवेष्टित था।

वे सभी दाम (झूमर) सोने के लबूसको (गेद जैसे आकार वाले आभूषणो), विविध प्रकार की मणियो, रत्नो अथवा विविध प्रकार के मणिरत्नो से बने हुए हारो, अर्ध हारो के समुदायो से शोभित हो रहे थे और पास-पास टगे होने से लटकने से जब पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर की

मन्द-मन्द हवा के झोको से हिलते-डुलते तो एक दूसरे से टकराने पर विशिष्ट, मनोज्ञ, मनहर, कर्ण एव मन को शाति प्रदान करने वाली रुनझुन रुनझुन शब्द-ध्वनि से समीपवर्ती समस्त प्रदेश को व्याप्त करते हुए अपनी श्री-शोभा से अतीव-अतीव शोभित होते थे।

सिहासन की चतुर्दिग्वर्त्ती भद्रासन-रचना—

५२—तए णं से आभिओगिए देवे तस्स सीहासणस्स अवरुत्तरेणं उत्तरेण उत्तरपुरत्थिमेण एत्थ णं सूरियाभस्स देवस्स चउण्ह सामाणियसाहस्सीण चत्तारि भद्दासणसाहस्सीओ विउव्वइ।

तस्स ण सीहासणस्स पुरत्थिमेण एत्थ णं सूरियाभस्स देवस्स चउण्हं अग्गमहिसीण सपरिवाराणं चत्तारि भद्दासणसाहस्सीओ विउव्वइ।

तस्स णं सीहासणस्स दाहिणपुरत्थिमेण एत्थ ण सूरियाभस्स देवस्स अब्भितरपरिसाए अट्ठण्ह द वसाहस्सीण अट्ठ भद्दासणसाहस्सीओ विउव्वइ, एव दाहिणेण मज्झिमपरिसाए दसण्ह देवसाहस्सीण दस भद्दासणसाहस्सीओ विउव्वति, दाहिणपच्चत्थिमेण बाहिरपरिसाए बारसण्ह देवसाहस्सीण बारस भद्दासणसाहस्सीओ विउव्वति।

पच्चत्थिमेण सत्तण्ह अणियाहिवतीण सत्त भद्दासणे विउव्वति।

तस्स ण सीहासणस्स चउदिसिं एत्थ णं सूरियाभस्स देवस्स सोलसण्ह आयरक्खदेवसाहस्सीण सोलस भद्दासणसाहस्सीओ विउव्वति, त जहा—पुरत्थिमेण चत्तारि साहस्सीओ, दाहिणेण चत्तारि साहस्सीओ, पच्चत्थिमेणं चत्तारि साहस्सीओ, उत्तरेण चत्तारि साहस्सीओ।

५२—तदनन्तर (प्रेक्षागृह मंडप आदि की रचना करने के अनन्तर) आभियोगिक देव ने उस सिंहासन के पश्चिमोत्तर (वायव्य कोण), उत्तर और उत्तर पूर्व दिग्भाग (ईशान कोण) मे सूर्याभदेव के चार हजार सामानिक देवो के वैठने के लिए चार हजार भद्रासनो की रचना की।

पूर्व दिशा मे सूर्याभ देव की परिवार सहित चार अग्र महिषियो के लिए चार हजार भद्रासनो की रचना की।

दक्षिणपूर्व दिशा मे सूर्याभ देव की आभ्यन्तर परिषद् के आठ हजार देवो के लिये आठ हजार भद्रासनो की रचना की। दक्षिण दिशा मे मध्यम परिषद् के देवो के लिए दस हजार भद्रासनो की, दक्षिण-पश्चिम दिग्भाग मे बाह्य परिषदा के बारह हजार देवो के लिए बारह हजार भद्रासनो की और पश्चिम दिशा मे सप्त अनीकाधिपतियो के लिए सात भद्रासनो की रचना की।

तत्पश्चात् सूर्याभदेव के सोलह हजार आत्मरक्षक देवो के लिए क्रमश पूर्व दिशा मे चार हजार, दक्षिण दिशा मे चार हजार, पश्चिम दिशा मे चार हजार और उत्तर दिशा मे चार हजार, इस प्रकार कुल मिलाकर सोलह हजार भद्रासनो को स्थापित किया।

समग्र यान-विमान का सौन्दर्य-वर्णन—

५३—तस्स दिव्वस्स जाणविमाणस्स इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहानामए अइरुग्गयस्स वा, हेमतिय-बालियसूरियस्स वा, खयरिंगालाण वा रत्ति पज्जलियाण वा, जवाकुसुमवणस्स वा, किंसुयवणस्स वा, पारियायवणस्स वा, सव्वतो समंता सकुसुमियस्स भवे एयारूवे सिया?

५३—उस दिव्य यान-विमान का रूप-सौन्दर्य क्या तत्काल उदित हेमन्त ऋतु के बाल सूर्य अथवा रात्रि मे प्रज्वलित खदिर (खैर की लकडी) के अगारो अथवा पूरी तरह से कुसुमित—फूले हुए जपापुष्पवन अथवा पलाशवन अथवा परिजातवन जैसा लाल था ?

५४—णो इणट्ठे समट्ठे, तस्स ण दिव्वस्स जाणविमाणस्स एत्तो इट्ठतराए चेव जाव[1] वण्णेण पण्णत्ते। गंधो य फासो य जहा मणीण[2]।

५४—यह अर्थ समर्थ नही है। हे आयुष्मन् श्रमणो ! वह यान-विमान तो इन सभी उपमाओ से भी अधिक इष्टतर यावत् रक्तवर्ण वाला था। इसी प्रकार उसका गध और स्पर्श भी पूर्व मे किये गये मणियो के वर्णन से भी अधिक इष्टतर यावत् रमणीय था।

आभियोगिक देव द्वारा आज्ञा-पूर्त्ति की सूचना—

५५—तए णं से आभिओगिए देवे दिव्व जाणविमाण विउव्वइ विउव्वित्ता जेणेव सूरियाभे देवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सूरियाभ देव करयलपरिग्गहिय जाव[1] पच्चप्पिणति।

५५—दिव्य यान-विमान की रचना करने के अनन्तर आभियोगिक देव सूर्याभदेव के पास आया। आकर सूर्याभदेव को दोनो हाथ जोड कर यावत् आज्ञा वापस लौटाई अर्थात् यान-विमान बन जाने की सूचना दी।

५६—तए णं से सूरियाभे देवे आभिओगस्स देवस्स अतिए एयमट्ठ सोच्चा निसम्म हट्ठ जाव हियए दिव्व जिणिदाभिगमणजोग्ग उत्तरवेउव्वियरूव विउव्वति, विउव्वित्ता चर्जाह अग्गमहिसीहिं सपरिवाराहिं, दोहिं अणीएहिं, त जहा—गधव्वाणीएण य णट्टाणीएण य सद्धि सपरिवुडे, तं दिव्वं जाणविमाणं अणुपयाहिणीकरेमाणे पुरत्थिमिल्लेण तिसोपाणपडिरूवएण दुरूहति दुरूहित्ता जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे।

५६—आभियोगिक देव से दिव्य यान विमान के निर्माण होने के समाचार सुनने के पश्चात् उस सूर्याभ देव ने हर्षित, सतुष्ट यावत् प्रफुल्लहृदय हो, जिनेन्द्र भगवान् के सम्मुख गमन करने योग्य दिव्य उत्तरवैक्रिय रूप की विकुर्वणा की। विकुर्वणा करके उनके अपने परिवार सहित चार अग्र महिषियो एव गधर्व तथा नाट्य इन दो अनीको को साथ लेकर उस दिव्य यान-विमान की अनुप्रदक्षिणा करके पूर्व दिशावर्ती अतीव मनोहर त्रिसोपानो से दिव्य यान-विमान पर आरूढ हुआ और सिंहासन के समीप आकर पूर्व की ओर मुख करके उस पर बैठ गया।

५७—तए ण तस्स सूरिआभस्स देवस्स चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ त दिव्व जाणविमाण अणुपयाहिणीकरेमाणा उत्तरिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएण दुरूहति दुरूहित्ता पत्तेयं पत्तेय पुव्वण्णत्थेहिं

---

१ देखें सूत्र सख्या ३१, ३३, ३५, ३७, ३९

२ देखें सूत्र सख्या ४१, ४३

३ देखें सूत्र सख्या १८

भद्दासणेहिं णिसीयति। अवसेसा देवा य देवीओ य त दिव्व जाणविमाण जाव (अणुपयाहिणी करेमाणा) दाहिणिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएण दुरूहति, दूरूहित्ता पत्तेय पत्तेय पुव्वणत्थेहिं भद्दासणेहिं निसीयति।

५७—तत्पश्चात् सूर्याभ देव के चार हजार सामानिक देव उस यान विमान की प्रदक्षिणा करते हुए उत्तर दिग्वर्ती त्रिसोपान प्रतिरूपक द्वारा उस पर चढे और अपने लिये पहले से ही स्थापित भद्रासनो पर बैठे तथा इनसे शेष रहे और दूसरे देव एव देविया भी प्रदक्षिणापूर्वक दक्षिण दिशा के सोपानो द्वारा उस दिव्य-यान विमान पर चढकर प्रत्येक अपने-अपने लिये पहले से ही निश्चित भद्रासनो पर बैठें।

५८—तए ण तस्स सूरियाभस्स देवस्स तं दिव्व जाणविमाण दुरूढस्स समाणस्स अट्ठ-मङ्गलगा पुरतो अहाणुपुव्वीए सपत्थिता, त जहा—सोत्थिय-सिरिवच्छ-जाव (नन्दियावत्त-वद्धमाणग-भद्दासन-कलस-मच्छ) दप्पणा।

५८—उस दिव्य यान विमान पर सूर्याभ देव आदि देव-देवियो के आरूढ हो जाने के पश्चात् अनुक्रम से आठ मगल-द्रव्य उसके सामने चले। वे आठ मगल-द्रव्य इस प्रकार हैं—१ स्वस्तिक २ श्रीवत्स यावत् (३ नन्दावर्त ४ वर्धमानक—शरावसम्पुट—सिकोरे का सपुट ५. भद्रासन, ६ कलश, ७ मत्स्ययुगल और) ८ दर्पण।

५९—तयणंतर च ण पुण्णकलसभिंगार दिव्वा य छत्तपडागा सचामरा दसणरतिया-आलोयद-रिसणिज्जा वाउद्धुयविजयवेजयंतीपडागा ऊसिया गगण-तलमणुलिहती पुरतो अहाणुपुव्वीए संपत्थिया।

५९—आठ मगल द्रव्यो के अनन्तर पूर्ण कलश, भृंगार—झारी, चामर सहित दिव्य छत्र, पताका तथा इनके साथ गगन तल का स्पर्श करती हुई अतिशय सुन्दर, आलोकदर्शनीय (प्रस्थान करते समय मागलिक होने के कारण दर्शनीय) और वायु से फरफराती हुई एक बहुत ऊची विजय वैजयती पताका अनुक्रम से उसके आगे चली।

६०—तयणतरं च ण वेरुलियभिसंतविमलदण्ड पलम्बकोरटमल्लदामोवसोभित चदमडलनिभ समुस्सिय विमलमायवत्त पवरसीहासण च मणिरयणभत्तिचित्त सपायपीढ सपाउयाजोयसमाउत्त बहु-किंकरामरपरिग्गहिय पुरतो अहाणुपुव्वीए सपत्थियं।

६०—विजय वैजयती पताका के अनन्तर वैडूर्यरत्नो से निर्मित दीप्यमान, निर्मल दडवाले लटकती हुई कोरट पुष्पो की मालाओ मे सुशोभित, चद्रमडल के समान निर्मल, श्वेत-धवल ऊचा आतपत्र-छत्र और अनेक किंकर देवो द्वारा वहन किया जा रहा, मणिरत्नो से बने हुए वेलबूटो से उपशोभित, पादुकाद्वय युक्त पादपीठ सहित प्रवर—उत्तम सिंहासन अनुक्रम से उसके आगे चला।

६१—तयणंतर च ण वइरामयवट्टलट्ठसठियसुसिलिट्ठपरिघट्ठमट्ठसुपतिट्ठए विसिट्ठे अणेगवरपच-वण्ण-कुडभीसहस्सुस्सिए परिमडियाभिरामे वाउद्धुयविजय-वेजयती पडागच्छत्तातिच्छत्तकलिते तुगे गगणतलमणुलिहंतसिहरे जोअणसहस्समूसिए महतिमहालए महिंद-ज्झए अहाणुपुव्वीए सपत्थिए।

६१— तत्पश्चात् वज्ररत्नो से निर्मित गोलाकार कमनीय-मनोज, (गोल) दाडे वाला, शेप ध्वजाओ मे विशिष्ट एवं और दूसरी वहुत सी मनोरम छोटी वडी अनेक प्रकार की रगविरगी पचरंगी ध्वजाओं से परिमडित, वायु वेग से फहराती हुई विजयवैजयती पताका, छत्रातिछत्र मे युक्त, आकाश-मडल को स्पर्श करने वाला हजार योजन ऊचा एक वहुत वडा इन्द्रध्वज नामक ध्वज अनुक्रम से उसके आगे चला ।

६२—तयणंतरं च ण सुरूवणेवत्थपरिकच्छिया सुसज्जा सव्वालकारभूसिया महया भडचडगर-पहकारेण पच अणीयाहिवईओ पुरतो अहाणुपुव्वीए संपत्थिया ।

६२—इन्द्र ध्वज के अनन्तर मुन्दर वेप भूपा मे सुसज्जित, समस्त आभूपण-अलकारो मे विभूपित और अत्यन्त प्रभावशाली सुभटो के समुदायो को साथ लेकर पाच मेनापति[1] अनुक्रम मे आगे चले ।

६३—तयणंतरं च ण वहवे आभिओगिया देवा देवीओ य सएहिं सएहिं रूवेहिं, सएहिं सएहिं विसेसेहिं सएहिं सएहिं विदेहिं, सएहिं सएहिं णेज्जाएहिं, सएहिं सएहिं णेवत्थेहिं पुरतो अहाणुपुव्वीए संपत्थिया ।

६३—तदनन्तर वहुत से आभियोगिक देव और देवियाँ अपनी-अपनी योग्य-विशिष्ट वेश-भूपाओ और विशेषतादर्शक अपने-अपने प्रतीक चिह्नो से सजधजकर अपने-अपने परिकर, अपने-अपने नेजा और अपने-अपने कार्यो के लिये कार्योपयोगी उपकरणो-साधनो को साथ लेकर अनुक्रम से आगे चले ।

६४—तयणंतर च णं सूरियाभविमाणवासिणो वहवे वेमाणिया देवा य देवीओ य सव्वड्ढीए जाव (सव्वजुईए, सव्ववलेणं, सव्वसमुदएणं सव्वादरेणं सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्व-पुप्फ-गंध-मल्लालकारेण सव्व-तुडिय-सद्द-सण्णिणाएण महया इड्ढीए, महया जुईए, महया वलेणं, महया समुदएण महया वर-तुडिय-जमगसमग-प्पवाइएण संख-पणव-पटह-भेरि-झल्लरि-खरमुहि-हुडुक्क-मुरय-मुइंग-दुन्दुभिनिग्घोसनाइय) रवेणं सूरियाभ देव पुरतो पासतो य मग्गतो य समणुगच्छंति ।

६४—तत्पश्चात् सवसे अत मे उस सूर्याभ विमान मे रहने वाले वहुत से वैमानिक देव और देविया अपनी अपनी समस्त ऋद्धि मे, यावत् (सर्व द्युति, वल-सेना, परिवार रूप समुदाय, आदर-समान, शृ गार-विभूषा, विभूति-ऐश्वर्य, सम्भ्रम (भक्तिजन्य उत्सुकता) सर्वप्रकार के पुष्पो, गध, माला, अलकारो, सर्व प्रकार के वाद्यो की मधुर ध्वनि, तथा अपनी विशिष्ट ऋद्धि, महान् द्युति, महान् सेना, महान् समुदाय तथा एक साथ वजते हुए अनेक वाद्यो की मधुर ध्वनि एव शख, पणव, पटह-ढोल, भेरी, झल्लरी, खरमुखी, हुडुक्क, मुरज-मृदग और दुन्दुभिनिनाद की) प्रतिध्वनि से शोभित होते हुए उस सूर्याभदेव के आगे-पीछे, आजू-वाजू मे साथ-साथ चले ।

सूर्याभ देव का आमलकल्पा नगरी की ओर प्रस्थान

६५—तए ण से सूरियाभे देवे तेणं पचाणीयपरिक्खित्तेण वइरामयवट्टलट्ठसंठिएण जाव[2] जोयण-

१ अश्व, गज, रथ, पदाति और वृपभ मेनाओ के अधिपति ।   २ देखें सूत्र सख्या ६१ ।

सहस्समूसिएणं महतिमहालतेणं महिंदज्झएण पुरतो कड्डिज्जमाणेण चउहिं सामाणियसहस्सेहिं जाव[1] सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अन्नेहि य बहूहिं सूरियाभविमाणवासिहिं वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि य सद्धि सपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव[2] रवेण सोधम्मस्स कप्पस्स मज्झमज्झेण त दिव्व देविड्ढि दिव्व देवजुति दिव्व देवाणुभाव उवलालेमाणे उवलालेमाणे उवदसेमाणे उवदसेमाणे पडिजागरेमाणे पडिजागरेमाणे जेणेव सोहम्मस्स कप्पस्स उत्तरिल्ले णिज्जाणमग्गे तेणेव उवागच्छति, जोयणसयसाहस्सितेहिं विग्गहेहिं ओवयमाणे वीईवयमाणे ताए उक्किट्ठाए जाव[3] तिरियं असखिज्जाण दीवसमुद्दाण मज्झमज्झेण वीइवयमाणे वीइवयमाणे जेणेव नदीसरवरे दीवे, जेणेव दाहिणपुरत्थिमिल्ले रतिकरपव्वते, तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता त दिव्व देविड्ढि जाव दिव्व देवाणुभाव पडिसाहरेमाणे पडिसाहरेमाणे पडिसखेवेमाणे पडिसंखेवेमाणे जेणेव जबुद्दीवे दीवे जेणेव भारहे वासे जेणेव आमलकप्पा नयरी जेणेव अवसालवणे चेइए जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समण भगव महावीर तेण दिव्वेण जाणविमाणेणं तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेइ, करित्ता समणस्स भगवतो महावीरस्स उत्तरपुरित्थिमे दिसिभागे त दिव्व जाणविमाण ईसि चउरगुलमसपत्त धरणितलसि ठवेइ, ठवित्ता चउहिं अग्गमहिसीहिं सपरिवाराहिं, दोहिं अणीयाहिं, त जहा—गधव्वाणिएण य णट्टाणिएण य-सद्धि सपरिवुडे ताओ दिव्वाओ, जाणविमाणाओ पुरत्थिमिल्लेण तिसोवाणपडिरूवएण पच्चोरुहति ।

तए ण तस्स सूरियाभस्स देवस्स चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ ताओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ उत्तरिल्लेण तिसोवाणपडिरूवएण पच्चोरुहति अवसेसा देवा य देवीओ य ताओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ दाहिणिल्लेण तिसोवाणपडिरूवएण पच्चोरुहति ।

६५—तत्पश्चात् पाच अनीकाधिपतियो द्वारा परिरक्षित वज्ररत्नमयी गोल मनोज्ञ सस्थान—आकारवाले यावत् एक हजार योजन लम्वे अत्यत ऊचे महेन्द्रध्वज को आगे करके वह सूर्याभदेव चार हजार सामानिक देवो यावत् सोलह हजार आत्मरक्षक देवो एव सूर्याभविमानवासी और दूसरे वैमानिक देव-देवियो के साथ समस्त ऋद्धि यावत् वाद्यनिनादो सहित दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव-प्रभाव का अनुभव, प्रदर्शन और अवलोकन करते हुए सौधर्मकल्प के मध्य भाग मे से निकलकर सौधर्मकल्प के उत्तरदिग्वर्ती निर्याण मार्ग—निकलने के मार्ग के पास आया और एक लाख योजन प्रमाण वेग वाली यावत् उत्कृष्ट दिव्य देवगति से नीचे उतर कर गमन करते हुए तिर्छे, असख्यातद्वीप समुद्रो के वीचोवीच से होता हुआ नन्दीश्वरद्वीप और उसकी दक्षिणपूर्व दिशा (आग्नेय कोण) मे स्थित रतिकर पर्वत पर आया । वहा आकर उस दिव्य देव ऋद्धि यावत् दिव्य देवानुभाव को धीरे धीरे सकुचित और सक्षिप्त करके जहा जम्बूद्वीप नामक द्वीप और उसका भरत क्षेत्र था एव उस भरत क्षेत्र मे भी जहा आमलकल्पा नगरी तथा आम्रशालवन चैत्य था और उस चैत्य में भी जहा श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहा आया, वहा आकर उस दिव्य-यान—विमान के साथ श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा करके श्रमण भगवान् महावीर की अपेक्षा उत्तरपूर्व—दिग्भाग-ईशानकोण—मे ले जाकर भूमि से चार अगुल ऊपर अधर रखकर उस दिव्य-यान विमान को खडा किया ।

---

१ देखें सूत्र सख्या ७ । २ देखें सूत्र सख्या ६४

३ देखें सूत्र सख्या १३

उस दिव्य यानविमान को खडा करके वह सपरिवार चारो अग्रमहिषियो, गधर्व और नाट्य इन दोनो अनीको—सेनाओ को साथ लेकर पूर्व दिशावर्ती त्रिसोपान-प्रतिरूपक द्वारा उस दिव्ययान विमान से नीचे उतरा।

तत्पश्चात् सूर्याभ देव के चार सामानिक देव उत्तरदिग्वर्ती त्रिसोपान प्रतिरूपक द्वारा उस दिव्य-यान—विमान से नीचे उतरे। तथा इनके अतिरिक्त शेष दूसरे देव और देवियाँ दक्षिण दिशा के त्रिसोपान प्रतिरूपक द्वारा उस दिव्य-यान—विमान से उतरे।

सूर्याभदेव का समवसरण में आगमन

६६—तए णं से सूरियाभे देवे चउहिं अग्गमहिसीहिं जाव[1] सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अण्णेहि य बहूहिं सूरियाभविमाणवासीहिं वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव[2] णादितरवेण जेणेव समणे भगव महावीरे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता समण भगवतं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेति, करित्ता वंदति नमंसति वंदित्ता नमसित्ता एव वयासी—

'अह णं भंते! सूरियाभे देवे देवाणुप्पियाणं वदामि नमसामि जाव (सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाण मगलं देवय चेइय) पज्जुवासामि'।

६६—तदनन्तर वह सूर्याभदेव सपरिवार चार अग्रमहिषियो यावत् सोलह हजार आत्म-रक्षक देवो तथा अन्यान्य बहुत से सूर्याभविमानवासी देव-देवियो के साथ समस्त ऋद्धि-वैभव यावत् वाद्य निनादो सहित चलता हुआ श्रमण भगवान् महावीर के समीप आया। आकर श्रमण भगवान् की दाहिनी ओर से प्रारम्भ कर तीन वार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया और वन्दन-नमस्कार करके—सविनय नम्र होकर बोला—

'हे भदन्त! मैं सूर्याभदेव आप देवानुप्रिय को वन्दन करता हू, नमन करता हू यावत् आपका (सत्कार-सन्मान करता हू और कल्याणरूप, मगलरूप, देवरूप एव चैत्यरूप आपकी) पर्युपासना करता हू।

६७—'सूरियाभा' इ समणे भगवं महावीरे सूरियाभं देवं एवं वयासी—

पोराणमेय सूरियाभा! जीयमेय सूरियाभा! किच्चमेयं सूरियाभा! करणिज्जमेयं सूरियाभा! आइण्णमेय सूरियाभा! अब्भणुण्णायमेयं सूरियाभा! ज णं भवणवइ-वाणमंतर-जोइस-वेमाणिया देवा अरहंते भगवते वंदंति नमंसंति, वदित्ता नमंसित्ता तओ पच्छा साइं साइ नाम-गोत्ताइं साहिंति, त पोराणमेयं सूरियाभा! जाव[3] अब्भणुण्णायमेय सूरियाभा!'

६७—'हे सूर्याभ!' इस प्रकार से सूर्याभदेव को सबोधित कर श्रमण भगवान् महावीर ने उस सूर्याभदेव से इस प्रकार कहा—'हे सूर्याभ! यह पुरातन है। हे सूर्याभ! यह जीत-परम्परागत व्यवहार है। हे सूर्याभ! यह कृत्य है।, हे सूर्याभ! यह करणीय है।, हे सूर्याभ! यह पूर्व परम्परा से

---

१ देखें सूत्र सख्या ७ २ देखें सूत्र सख्या १९
३ देखें सूत्र सख्या १४

आचरित है। हे सूर्याभ! यह अभ्यनुज्ञात-सम्मत है कि भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव अरिहत भगवन्तो को वन्दन करते है, नमन करते हैं और वन्दन-नमस्कार करने के पश्चात् वे अपने-अपने नाम और गोत्र का उच्चारण करते हैं। अतएव हे सूर्याभ! तुम्हारी यह सारी प्रवृत्ति पुरातन है यावत् हे सूर्याभ! समत है।

६८—तए ण से सूरियाभे देवे समणेण भगवया महावीरेण एवं वुत्ते समाणे हट्ठ जाव तुट्ठ-चित्तमाणदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिस-वस-विसप्पमाणहियए समण भगव महावीरं वदति नमंसति, वदित्ता नमसित्ता नच्चासण्णे नातिदूरे सुस्सूसमाणे णमसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासति।

६८—तव वह सूर्याभ देव श्रमण भगवान् महावीर के इस कथन को सुनकर अतीव हर्षित हुआ यावत् (सतुष्ट हुआ, मन मे अति आनदित हुआ, मन मे प्रीति हुई, अत्यन्त अनुरागपूर्ण मनवाला हुआ, हर्षातिरेक से विकसित हृदयवाला हुआ) और श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करके न तो उनसे अधिक निकट और न अधिक दूर किन्तु यथोचित स्थान पर स्थित होकर शुश्रूषा करता हुआ, नमस्कार करता हुआ, अभिमुख विनयपूर्वक दोनो हाथ जोडकर अजलि करके पर्युपासना करने लगा।

६९—तए ण समणे भगव महावीरे सूरियाभस्स देवस्स तीसे य महतिमहालिताए परिसाए जाव (इसिपरिसाए मुणिपरिसाए जइपरिसाए देवपरिसाए अणेगसयाए अणेगसयवदाए अणेगसयवंद-परिवाराए) धम्म परिकहेइ। परिसा जामेव दिसिं पाउब्भूता तामेव दिसिं पडिगया।

६९—तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने सूर्याभदेव को, और उस उपस्थित विशाल परिषद् को यावत् (ऋषियो की सभा को, मुनियो की सभा को, यतियो की सभा को, देवो की सभा को, अनेक सौ सख्यावाली अनेक शत (सैकडो के) समूह वाली अनेकशतसमूह युक्त परिवार वाली सभा को) धर्मदेशना सुनाई। देशना सुनकर परिषद् जिस दिशा से आई थी वापस उसी ओर लौट गई।

विवेचन—'महतिमहालिताए' यह परिषद् का विशेषण है जिसका अर्थ यह है कि भगवान् की देशना सुनने के लिये सूर्याभदेव, सेयराजा, धारिणी आदि रानियो के सिवाय ऋषिपरिषदा, मुनिपरिषदा, यतिपरिषदा देवपरिषदा, के साथ हजारो नर नारी, उनके समूह और उन समूहो मे भी वहुत से अपने-अपने सभी पारिवारिक जनो सहित उपस्थित थे।

भगवान के समवसरण मे उपस्थित विशाल परिषदा और धर्मदेशना आदि का औपपातिक सूत्र मे विस्तार से वर्णन किया गया है। सक्षेप मे जिसका साराश इस प्रकार है—

अप्रतिवद्ध वलशाली, अतिशय वलवान, प्रशस्त, अपरिमित बल, वीर्य, तेज, माहात्म्य एव कातियुक्त श्रमण भगवान् महावीर ने शरदकालीन नूतन मेघ की गर्जना जैसी गभीर, क्रोच पक्षी के निर्घोष तथा दुन्दुभिनाद के समान मधुर, वक्षस्थल मे विस्तृत होती हुई, कठ मे अवस्थित होती हुई तथा मूर्धा मे व्याप्त होती हुई, सुव्यक्त—स्पष्ट, वर्ण-पद की विकलता—हकलाहट आदि से रहित, सर्व-अक्षर सन्निपात-समस्त वर्णों के सुव्यवस्थित सयोग से युक्त, पूर्ण तथा माधुर्य गुणयुक्त स्वर से समन्वित, श्रोताओ की अपनी-अपनी भाषा मे परिणत होने के स्वभाव वाली वाणी द्वारा राजा, रानी

तथा सैकडो हजारो ऋषियो, मुनियो, यतिओ देवो आदि श्रोताओ के समूह वाली उस महती परिषदा को एक योजन तक पहुचने वाले स्वर से अर्धमागधी भाषा मे धर्मदेशना दी ।

भगवान् द्वारा उद्गीर्ण वह अर्धमागधी भाषा उन सभी आर्य-अनार्य श्रोताओ की भाषाओ मे परिणत हो गई ।

भगवान द्वारा दी गई धर्मदेशना इस प्रकार है—

'लोक' का अस्तित्व है अलोक का अस्तित्व है । इसी प्रकार जीव, अजीव, बन्ध, मोक्ष, पुण्य, पाप, आस्रव, सवर, वेदना, निर्जरा, अर्हंत, चक्रवर्ती, वलदेव, वासुदेव, नरक, नारक, तिर्यंचयोनि, तिर्यंचयोनिज जीव, माता, पिता, ऋषि, देव, देवलोक, सिद्धि, सिद्ध, परिनिर्वाण-कर्मजनित आवरण से रहित जीवो का अस्तित्व है ।

प्राणातिपात—हिंसा, मृषावाद—असत्य, अदत्तादान—चोरी, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, कलह, अभ्याख्यान पैशून्य परपरिवाद—निन्दा, रति, अरति, मायामृषा, मिथ्यादर्शन-शल्य आदि वैभाविक भावो का अस्तित्व है ।

प्राणातिपातविरमण—हिंसाविरति, मृषवादविरमण, अदत्तादानविरमण, मैथुनविरमण, परिग्रहविरमण, मिथ्यादर्शनशल्यविरमण आदि आत्मा की विशुद्धि करने वाले भावो का अस्तित्व है ।

सभी अस्तिभाव स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा अस्तिरूप है और सभी नास्तिभाव परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा नास्तिरूप है ।

सुआचरित—शुद्धभावो से आचरण किये गये दान शील आदि कर्म-कार्य उत्तम फल देनेवाले हैं और दुराचरित—पापकारी कार्य दुखकारी फल देने वाले हैं । श्रेष्ठ उत्तम कार्यो से जीव पुण्य का और पाप कार्यों से पाप का उपार्जन करता है । ससारी जीव जन्म-मरण करते रहते है । शुभ और अशुभ कर्म-कार्य फल युक्त हैं—निष्फल नही हैं ।

यह निर्ग्रन्थ प्रवचन—वीतराग भगवन्तो द्वारा उपदिष्ट धर्म, सत्य, अनुत्तर, अद्वितीय, सर्वात्मना शुद्ध, परिपूर्ण है, प्रमाण से अबाधित है, माया, मिथ्यात्व आदि शल्यो का निवारक है । सिद्धिमार्ग-सिद्धावस्था प्राप्त करने का उपाय है,मुक्तिमार्ग-कर्मरहित अवस्था प्राप्त करने का कारण है, निर्वाणमार्ग —सकल सताप रहित आत्मदशा प्राप्त करने का हेतु है, निर्याणमार्ग—पुन जन्म-मरण रूप ससार से पार होने का मार्ग है, अवितथ—यथार्थ, अविसन्धि-विच्छेदरहित—समस्त दुखो को सर्वथा क्षय करनेवाला है । इसमे स्थित जीव सिद्धि प्राप्त करते है, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाण दशा को प्राप्त करते है, और समस्त सासारिक दुःखो का अन्त करते हैं ।

एकार्च्चा—जिनके एक ही मनुष्यभव धारण करना शेष रह गया है, ऐसे एक भवावतारी पूर्व-कर्मो के शेष रहने से किन्ही महर्द्धिक देवलोको मे देव रूप मे उत्पन्न होते हैं और वहा महान ऋद्धि-सम्पन्न दीर्घ आयु स्थिति वाले होते है । उनके वक्ष स्थल हार-मालाओ से सुशोभित होते हैं, और अपनी दिव्य प्रभा से सभी दिशाओ को प्रभासित करते हैं । वे कल्पोपपन्न या कल्पातीत देवो मे उत्पन्न होते है । वे वर्तमान मे भी उत्तमगति, स्थिति को प्राप्त करते है और भविष्य मे कल्याणप्रद स्थान को प्राप्त करनेवाले और असाधारण रूप से सम्पन्न होते है ।

जीव महारम्भ, महापरिग्रह, पचेन्द्रय जीवो का वध और मांसाहार इन चार कारणो से नरकयोग्य कर्मो का उपार्जन करता है और नारक रूप मे उत्पन्न होता है।

इन चार कारणो से जीव तिर्यंचगति को प्राप्त करता है और तिर्यंचयोनि मे उत्पन्न होता है—१ मायाचार, २ असत्यभाषण, ३ उत्कचनता—खुशामद या धूर्तता, ४ वचनता—धोखा देना, ठगना।

इन कारणो से जीव मनुष्ययोनि मे उत्पन्न होते है—१. प्रकृतिभद्रता २ प्रकृतिविनीतता ३ सानुक्रोशता—दयावृत्ति ४ अमत्सरता—ईर्ष्या का अभाव।

इन कारणो से जीव देवो मे उत्पन्न होते है—१ सरागसयम, २ संयमासयम, ३ अकाम-निर्जरा, ४ वालतप—अज्ञान अवस्था मे तप करना।

धर्म दो प्रकार का है—१ अगारधर्म २ अनगारधर्म। अनगार धर्म का पालन वह जीव करता है जो सर्व प्रकार से मु डित होकर गृहस्थ अवस्था—घर का त्याग कर श्रमण-प्रव्रज्या को अगीकार कर अनगार बनता है। सर्वप्राणातिपातविरमण, मृषावादविरमण, अदत्तादानविरमण, मैथुनविरमण, परिग्रहविरमण और रात्रिभोजनविरमण व्रत को स्वीकार करता है। इस धर्म के पालन करने मे जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी (साधु, साध्वी) प्रयत्नशील हो अथवा पालन करता हो वह आज्ञा का आराधक होता है।

अगारधर्म वारह प्रकार का वताया है—पाच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत। पाच अणुव्रत इस प्रकार हैं—स्थूल प्राणातिपातविरमण, स्थूल मृषावादविरमण, स्थूल अदत्तादानविरमण, स्वदारसतोप, इच्छा-परिग्रह की मर्यादा वाधना।

तीन गुणव्रत इस प्रकार है—अनर्थदडविरमण, दिग्व्रत, उपभोग-परिभोगपरिमाणव्रत।

चार शिक्षाव्रत इस प्रकार है—सामायिक, देशावकाशिक पौषधोपवास, अतिथि-सविभागव्रत और जीवनान्त के समय जो धारण किया जाता है एव मरण निकट हो तब कषाय और काया को कृश करके प्रीतिपूर्वक जिसकी आराधना की जाती है ऐसा सलेखनाव्रत। यह बारह प्रकार का अगार-सामायिक धर्म है।

इस धर्म की शिक्षा मे उपस्थित श्रावक या श्राविका आज्ञा के आराधक होते है।

भगवान की इस देशना को सुनकर उस महती सभा मे उपस्थित मनुष्यो मे से अनेको ने श्रमण दीक्षा ली, अनेको ने पाँच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का गृहीधर्म अगीकार किया।

शेप परिपदा ने अपने प्रमोदभाव को प्रकट करते हुए श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, और फिर कहा—हे भदन्त! आप द्वारा सुआख्यात, सुप्रज्ञप्त, सुभाषित, सुविनीत, सुभावित निर्ग्रन्थप्रवचन अनुत्तर है। धर्म की व्याख्या करते हुए आपने उपशम—क्रोधादि की शाति का उपदेश दिया है, उपशम के उपदेश के प्रसग मे आपने विवेक का व्याख्यान किया है, विवेक की व्याख्या करते हुए आपने प्राणातिपात आदि से विरत होने का निरूपण किया है, विरमण का उपदेश

देने के प्रसग मे आपने पापकर्म नही करने का विवेचन किया है। आपसे भिन्न दूसरा कोई श्रमण या ब्राह्मण इस प्रकार का उपदेश नही कर सकता है, तो फिर इससे श्रेष्ठ धर्म के उपदेश की बात कहाँ ?

इस प्रकार से कह कर वह परिषदा जिस दिशा से आई थी, वापस उसी ओर लौट गई।

सूर्याभ देव की जिज्ञासा का समाधान—

७०—तए ण से सूरियाभे देवे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्म सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव हयहियए उट्ठाए उट्ठेति उट्ठित्ता समण भगवंत महावीरं वदइ नमंसइ, वदित्ता नमंसित्ता एव वयासी—

'अह ण भते ! सूरियाभे देवे कि भवसिद्धिते, अभवसिद्धिते ? सम्मदिट्ठी, मिच्छादिट्ठी ? परित्तससारिते, अणतससारिते ? सुलभबोहिए, दुल्लभबोहिए ? आराहए, विराहए ? चरिमे, अचरिमे ?

७०—तदनन्तर वह सूर्याभदेव श्रमण भगवान् महावीर प्रभु से धर्मश्रवण कर और हृदय मे अवधारित कर हर्षित एव सतुष्ट यावत् आह्लादितहृदय हुआ। अपने आसन से खडे होकर उसने श्रमण भगवान् महावीर को वदन-नमस्कार किया और इस प्रकार प्रश्न किया—

'भगवन् ! मैं सूर्याभदेव क्या भवसिद्धिक—भव्य हूँ अथवा अभवसिद्धिक—अभव्य हूँ ? सम्यग्-दृष्टि हूँ या मिथ्यादृष्टि हूँ ? परित्त ससारी-परमित काल तक ससार मे भ्रमण करने वाला हूँ अथवा अनन्त ससारी—अनन्त काल तक ससार मे भ्रमण करने वाला हूँ ? सुलभबोधि-सरलता से सम्यग्-ज्ञानदर्शन की प्राप्ति करने वाला हूँ अथवा दुर्लभबोधि हूँ ? आराधक-बोधि की आराधना करने वाला हूँ अथवा विराधक हूँ ? चरम शरीरी हूँ अथवा अचरम शरीरी हूँ ?

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे ससारी जीवो की चरम लक्ष्य प्राप्त करने की भावना का दिग्दर्शन कराया है। यद्यपि ससारी जीव अनादि काल से इस जन्म-मरण रूप ससार मे परिभ्रमण करते आ रहे है, परन्तु चाहते यही है कि उस आत्मरमणता स्थिति को प्राप्त कर लू कि जिसके पश्चात् न पुनर्जन्म है और न पुन मरण है तथा न बार-बार के जन्म-मरण के कारण सासारिक आधि-व्याधियाँ हैं। यह आकाक्षा तभी सफल हो पाती है जब उस जीव मे मुक्त होने की योग्यता पाई जाती है। ऐसी योग्यता उसी मे पाई जाती है जो भव्य हो अर्थात् अभी न सही किन्तु कालान्तर मे कभी-न-कभी जिसे मुक्ति अवश्य प्राप्त होगी। इसीलिये सूर्याभदेव ने सर्वप्रथम भगवान् के समक्ष यही जिज्ञासा व्यक्त की कि—हे भगवन् ! मैं मुक्ति प्राप्त करने की योग्यता वाला—भव्य हूँ अथवा नही हूँ ?

योग्यता होने पर मुक्ति तभी प्राप्त हो सकती है जब सम्यक् श्रद्धा, विश्वास, प्रतीति, दृष्टि हो। सम्यक् श्रद्धा के न होने पर जीव चाहे भव्य (मुक्ति योग्य) हो किन्तु वह प्राप्त नही की जा सकती। इस तथ्य को समझने के लिए सूर्याभदेव ने दूसरा प्रश्न पूछा—मैं सम्यग्दृष्टि हूँ अथवा नही हूँ?

सम्यग्दृष्टि हो जाने पर भी यह निश्चित नही है कि सभी जीव शीघ्र मुक्ति प्राप्त करे। ऐसे जीव भी अनन्त काल तक ससार मे परिभ्रमण करने वाले हो सकते है और यह भी सभव है कि सीमित समय मे मुक्ति प्राप्त कर लें। इसी बात को जानने के लिए पूछा—भगवन् ! मैं परिमितकाल तक ससारभ्रमण करने वाला हूँ अथवा अनन्त काल तक मुझे ससार मे भ्रमण करना पडेगा ?

ससारभ्रमण का परिमित काल होने पर भी जीव तभी मुक्त हो सकता है जब तदनुकूल और तदनुरूप सम्यग्ज्ञान-दर्शन और चारित्र का सुयोग-सयोग मिले। इसीलिये सूर्याभदेव ने भगवान् से यह जानना चाहा कि मैं सम्यग्ज्ञानदर्शन-चारित्र की साधना करने मे तत्पर हो सकूँगा ? उनकी साधना करने का अवसर सुलभता से प्राप्त होगा अथवा नही ?

सुलभबोधि होने पर भी सभी जीव सम्यग्ज्ञान आदि की यथाविधि आराधना करने मे समर्थ नही हो पाते है। लोकैपणाओ, परीषह, उपसर्गो आदि के कारण आराधना से विचलित होकर लक्ष्य के निकट पहुँचने पर भी ससार मे भटक जाते हैं। इसी स्थिति को समझने के लिए सूर्याभ देव ने भगवान् से पूछा—मैं आराधक ही रहूँगा अथवा भटक जाऊँगा ? और सबसे अन्त मे अपनी समस्त जिज्ञासाओ का निष्कर्ष जानने के लिये उत्सुकता से पूछा कि भव्य सुलभबोधि, आराधक आदि होने पर भी मुझे क्या मुक्ति प्राप्ति की काल-लब्धि प्राप्त हो चुकी है ? ससार मे रहने का मेरा इसके बाद का भव अतिम है अथवा और दूसरे भी भवान्तर शेष हैं ?

उक्त समग्र कथन का साराश यह है कि योग्यता, निमित्त और उन निमित्तो का सदुपयोग करने के लिये तदनुकूल प्रवृत्ति करने पर ही जीव मुक्ति प्राप्त करता है। अत एव सर्वदा पुरुषार्थ के प्रति समर्पित होकर जीव को प्रयत्नशील रहना चाहिए।

७१—'सूरियाभा' इ समण भगव महावीरे सूरियाभ देव एवं वदासी—सूरियाभा ! तुम णं भवसिद्धिए नो अभवसिद्धिते जाव[1] चरिमे णो अचरिमे।

७१—'सूर्याभ !' इस प्रकार से सूर्याभदेव को सम्बोधित कर श्रमण भगवान् महावीर ने सूर्याभदेव को उत्तर दिया—

हे सूर्याभ ! तुम भवसिद्धिक-भव्य हो, अभवसिद्धिक-अभव्य नही हो, यावत् चरम शरीरी हो अर्थात् इस भव के पश्चात् का तुम्हारा मनुष्यभव अन्तिम होगा, अचरम शरीरी नही हो अर्थात् हे सूर्याभ ! तुम भव्य हो, सम्यग् दृष्टि हो, परमित ससार वाले हो, तुम्हे बोधि की प्राप्ति सुलभ है, तुम आराधक हो और चरम शरीरी हो।

सूर्याभदेव द्वारा मनोभावना का निवेदन

७२—तए णं से सूरिआभे देवे समणेण भगवया महावीरेणं एव वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ चित्तमाणंदिए परमसोमणस्सिए समण भगवतं महावीर वदति नमसति, वंदित्ता नमसित्ता एव वदासी—

तुब्भे ण भते ! सव्व जाणह, सव्व पासह, सव्व काल जाणह सव्व काल पासह, सव्वे भावे जाणह सव्वे भावे पासह।

जाणति णं देवाणुप्पिया ! मम पुव्वि वा पच्छा वा मम एयारूव दिव्व देविड्ढि दिव्वं देवजुइं दिव्व देवाणुभाव लद्ध पत्तं अभिसमण्णागय ति। त इच्छामि ण देवाणुप्पियाण भत्तिपुव्वग गोयमाइयाण समणाण निग्गथाण दिव्व देविड्ढि दिव्वं देवजुइ दिव्व देवाणुभावं दिव्व बत्तीसतिबद्ध नट्टविह उवदसित्तए।

---

१ देखें सूत्र सख्या ७०

७२—तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर के इस कथन को सुनकर उस सूर्याभदेव ने हर्षित सन्तुष्ट चित्त से आनन्दित और परम प्रसन्न होते हुए श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया—

हे भदन्त ! आप सब जानते हैं और सब देखते हैं, सर्वत्र दिशा-विदिशा, लोक-अलोक मे विद्यमान समस्त पदार्थों को जानते हैं और देखते हैं। सर्व काल—अतीत-अनागत-वर्तमान काल को आप जानते और देखते हैं, सर्व भावो को आप जानते और देखते हैं।

अतएव हे देवानुप्रिय ! पहले अथवा पश्चात् लब्ध, प्राप्त एव अधिगत इस प्रकार की मेरी दिव्य देव ऋद्धि, दिव्य देवद्युति तथा दिव्य देवप्रभाव को भी जानते और देखते हैं। इसलिये आप देवानुप्रिय की भक्तिवश होकर मै चाहता हूँ कि गौतम आदि निर्ग्रन्थो के समक्ष इस दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति-काति, दिव्य देवानुभाव-प्रभाव तथा बत्तीस प्रकार की दिव्य नाट्यविधि—नाट्यकला को प्रदर्शित करूँ।

७३—तए णं समणे भगवं महावीरे सूरियाभेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे सूरियाभस्स देवस्स एयमट्ठं णो आढाति, णो परियाणति, तुसिणीए संचिट्ठति।

७३—तब सूर्याभदेव के इस प्रकार निवेदन करने पर श्रमण भगवान् महावीर ने सूर्याभदेव के इस कथन का आदर नही किया, उसकी अनुमोदना नही की, किन्तु वे मौन रहे।

विवेचन—आत्मविज्ञानी भगवान् की स्थितप्रज्ञ दशा को देखते हुए यह स्वाभाविक है कि वे सूर्याभदेव के निवेदन को आदर न दें, उदासीन-मौन रहे, परन्तु सूर्याभदेव की मनोभूमिका को देखते हुए वह उनके सामने नाटक दिखाने के सिवाय और कर भी क्या सकता था ? भक्तो की दो कोटियाँ हैं—पहली मन वचन, काय से अपने भजनीय का अनुसरण करने वालो अथवा अनुसरण करने के लिये प्रयत्नशील रहने वालो की ये बाह्य प्रदर्शनो के बजाय भजनीय के शुद्ध अनुसरण को ही भक्ति समझते हैं। दूसरी कोटि है प्रशसको की, जो भजनीय का अनुसरण करने योग्य पुरुषार्थशाली नही होने से उनके प्रशसक होकर संतोष मानते है। ऐसे प्रशसक बाह्य-प्रदर्शन के सिवाय आतरिक भक्ति तक पहुँच नही सकते हैं। ये प्रशंसक बाह्य—प्रदर्शन के प्रति भजनीय की उदासीनता को समझते हुए भी अपनी प्रसन्नता के लिये बाह्य-प्रदर्शन के अतिरिक्त और कुछ कर सकें, वैसे नही होते हैं। यही औपचारिक भक्ति के आविर्भाव होने का कारण प्रतीत होता है जो सूर्याभदेव के निवेदन से स्पष्ट है। इसके साथ ही यह भी ध्यान मे रखना चाहिये कि भगवान् के मौन रहने मे 'यद् यदाचरति शिष्ट तत् तदेवेतरो जन.' इस उक्ति का तत्त्व भी गर्भित है। टीकाकार ने सूर्याभदेव की इस नाटकविधि को स्वाध्याय आदि कर्त्तव्य का विघातक बताया है—'गौतमादीना च नाट्यविधे: स्वाध्यायादि-विघातकारित्वात्।'

७४—तए णं से सूरियाभे देवे समणं भगवन्तं महावीरं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—तुब्भे ण भते ! सव्व जाणह जाव उवदसित्तए त्ति कट्टु समणं भगवन्तं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदति नमसति, वंदित्ता नमंसित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमति, अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणति, समोहणित्ता संखिज्जाइ जोयणाइं दण्डं निस्सिरति, अहाबायरे०

अहासुहुमे०[1]। दोच्चं पि विउव्वियसमुग्घाएणं जाव बहुसमरमणिज्ज भूमिभाग विउव्वति । से जहानामए आलिंगपुक्खरे इ वा जाव मणीण फासो ।[2]

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागे पिच्छाघरमण्डव विउव्वति अणेग-खंभसयसनिविट्ठं वण्णओ-अन्तो बहुसमरमणिज्जं भूमिभागं उल्लोय अक्खाडगं च मणिपेढिय च विउव्वति । तीसे ण मणिपेढियाए उवरि सीहासणं सपरिवारं जाव दामा चिट्ठन्ति ।[3]

७४—तत्पश्चात् सूर्याभदेव ने दूसरी और तीसरी बार भी पुन इसी प्रकार से श्रमण भगवान् महावीर से निवेदन किया—

हे भगवन् ! आप सब जानते हैं आदि, यावत् नाट्यविधि प्रदर्शित करना चाहता हूँ । इस प्रकार कहकर उसने दाहिनी ओर से प्रारम्भ कर श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार प्रदक्षिणा की । प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया और वन्दन-नमस्कार करके उत्तर पूर्व दिशा मे गया । वहाँ जाकर वैक्रियसमुद्घात करके संख्यात योजन लम्बा दण्ड निकाला । यथाबादर (असार) पुद्गलो को दूर करके यथासूक्ष्म (सारभूत) पुद्गलो का सचय किया । इसके बाद पुन दुबारा वैक्रिय समुद्घात करके यावत् बहुसमरमणीय भूमि भाग की रचना की । जो पूर्ववर्णित आलिंग पुष्कर आदि के समान सर्वप्रकार से समतल यावत् रूप, रस गध और स्पर्श वाले मणियो से सुशोभित था ।

उस अत्यन्त सम और रमणीय भूमिभाग के मध्यातिमध्य भाग मे एक प्रेक्षागृहमडप—नाटकशाला की रचना की । वह अनेक सैकडो स्तम्भो पर सनिविष्ट था इत्यादि वर्णन पूर्व के समान यहाँ कर लेना चाहिए ।

उस प्रेक्षागृह मडप के अन्दर अतीव समतल, रमणीय भूमिभाग, चन्देवा, रगमच और मणिपीठिका की विकुर्वणा की और उस मणिपीठिका के ऊपर फिर उसने पादपीठ, छत्र आदि से युक्त सिंहासन की रचना यावत् उसका ऊपरी भाग मुक्तादामो से शोभित हो रहा था ।

७५—तए णं से सूरियाभे देवे समणस्स भगवतो महावीरस्स आलोए पणाम करेति, करित्ता 'अणुजाणउ मे भगव, ति कट्टु सीहासणवरगए तित्थयराभिमुहे सणिसण्णे ।

तए णं से सूरियाभे देवे तप्पढमयाए नानामणिकणगरयणविमलमहरिहनिउणओवियमिसिमिसितविरइयमहाभरणकडग-तुडियवरभूसणुज्जल पीवर पलम्ब दाहिण भुय पसारेति । तओ ण सरिसयाण सरित्तयाणं सरिव्वयाण सरिसलावण्ण-रूवजोव्वणगुणोववेयाणं एगाभरण-वसणगहिअणिज्जोआणं दुहतो संवेल्लियग्गणियत्थाण उप्पीलियचित्तपट्टपरियरसफेणकावत्तरइयसगयपलववत्थत-चित्तचिल्ललगनियंसणाण एगावलिकण्ठरइयसोभतवच्छपरिहत्थभूसणाण अट्ठसय णट्टसज्जाण देवकुमाराणं णिग्गच्छति ।

७५—तत्पश्चात् उस सूर्याभदेव ने श्रमण भगवान् महावीर की ओर देखकर प्रणाम किया और प्रणाम करके 'हे भगवन् ! मुझे आज्ञा दीजिये' कहकर तीर्थंकर की ओर मुख करके उस श्रेष्ठ सिंहासन—पर सुखपूर्वक बैठ गया ।

---

१ देखे सूत्र सख्या १३ । २ देखें सूत्र सख्या ३०-४४ । ३ देखे सूत्र सख्या ४५-५१

इसके पश्चात् नाट्यविधि प्रारम्भ करने के लिये सबसे पहले उस सूर्याभदेव ने निपुण शिल्पियो द्वारा बनाये गये अनेक प्रकार की विमल मणियो, स्वर्ण और रत्नो से निर्मित भाग्यशालियो के योग्य, देदीप्यमान, कटक त्रुटित आदि श्रेष्ठ आभूषणो से विभूषित उज्ज्वल पुष्ट दीर्घ दाहिनी भुजा को फैलाया—लम्बा किया।

उस दाहिनी भुजा से एक सौ आठ देवकुमार निकले। वे समान शरीर-आकार, समान रग-रूप, समान वय, समान लावण्य, युवोचित गुणो वाले, एक जैसे आभरणो, वस्त्रो और नाट्योपकरणो से सुसज्जित, कन्धो के दोनो ओर लटकते पल्लो वाले उत्तरीय वस्त्र (दुपट्टे) धारण किये हुए, शरीर पर रग-विरगे कचुक वस्त्रो को पहने हुए, हवा का झोका लगने पर विनिर्गत फेन जैसी प्रतीत होने वाली झालर युक्त चित्र-विचित्र देदीप्यमान, लटकते अधोवस्त्रो (चोगा) को धारण किये हुए, एकावली आदि आभूषणो से शोभायमान कण्ठ एव वक्षस्थल वाले और नृत्य करने के लिए तत्पर थे।

७६—तयणंतर च ण नानामणि जाव[1] पीवर पलंब वामं भुयं पसारेति, तओ ण सरिसयाण, सरित्तयाण, सरिव्वयाण, सरिसलावण्ण-रूव-जोव्वणगुणोववेयाण, एगाभरण-वसणगहिअणिज्जोआण दुहतो सवेल्लियग्गणियत्थाणं आविद्धतिलयामेलाण पिणद्धगेवेज्जकचुईणं नानामणि-रयणभूसण विराइयंगमगाण चदाणणाण चंदद्धसमनिलाडाण चंदाहियसोमदसणाण उक्का इव उज्जोवेमाणीणं सिंगारागारचारुवेसाण संगयगय-हसियभणिय-चिट्ठिय विलास-ललिय-संलावनिउणजुत्तोवयारकुसलाण, सु दर-थण-जघण-वयण-कर-चरण-नयण-लायण्णविलासकलियाण गहियाउज्जाणं अट्ठसय नट्टसज्जाण देवकुमारियाणं णिग्गच्छइ।

७६—तदनन्तर सूर्याभदेव ने अनेक प्रकार की मणियो आदि से निर्मित आभूषणो से विभूषित यावत् पीवर-पुष्ट एव लम्बी बायी भुजा को फैलाया। उस भुजा से समान शरीराकृति, समान रग, समान वय, समान लावण्य-रूप-यौवन गुणोवाली, एक जैसे आभूषणो, दोनो ओर लटकते पल्ले वाले उत्तरीय वस्त्रो और नाट्योपकरणो से सुसज्जित, ललाट पर तिलक, मस्तक पर आमेल (फूलो से बने मुकुट जैसे शिरोभूषण) गले मे ग्रैवेयक और कचुकी धारण किये हुए अनेक प्रकार के मणि-रत्नो के आभूषणो से विराजित अग-प्रत्यगो-वाली चन्द्रमुखी, चन्द्रार्ध समान ललाट वाली चन्द्रमा से भी अधिक सौम्य दिखाई देने वाली, उल्का के समान चमकती, शृ गार गृह के तुल्य चारु-सुन्दर वेष से शोभित, हंसने-बोलने, आदि मे पटु, नृत्य करने के लिए तत्पर एक सौ आठ देवकुमारियाँ निकली।

वाद्यों और वाद्यवादकों की रचना—

७७—तए ण से सूरियाभे देवे अट्ठसय सखाणं विउव्वति, अट्ठसयं सखवायाण विउव्वइ अ०[2] सिंगाण वि०[3] अ० सिंगवायाणं वि०, अ० सखियाणं वि०, अ० सखियवायाण वि०, अ० खरमुहीण वि०, अ० खरमुहिवायाण वि०, अ०, पेयाणं वि०, अ० पेयावायगाण वि०, अ० पीरिपीरियाणं वि० अ० पीरिपीरियावायगाणं विउव्वति, एवमाइयाइ एगूणपण्णं आउज्जविहाणाइ विउव्वइ।

१ सूत्र सख्या ७५

२ अ० पद से 'अट्ठसय शब्द का सकेत किया है।

३ वि० पद 'विउव्वति' शब्द का वोधक है।

७७—तत्पश्चात् अर्थात् एक सौ आठ देवकुमारो और देवकुमारियो की विकुर्वणा करने के पश्चात् उस सूर्याभदेव ने एक सौ आठ शखो की और एक सौ आठ शखवादको की विकुर्वणा की। इसी प्रकार से एक सौ आठ-एक सौ आठ शृ गो-रणसिंगो और उनके वादको-बजाने वालो की, शखिकाओ (छोटे शखो) और उनके वादको की, खरमुखियो और उनके वादको की, पेयो और उनके वादको की पिरिपिरिकाओ और उनके वादको की विकुर्वणा की। इस तरह कुल मिलाकर उनपचास प्रकार के वाद्यो और उनके बजाने वालो की विकुर्वणा की।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे पिरिपिरिका पर्यन्त वाद्यो के नामो का उल्लेख है। शेष के नाम यथास्थान आगे के सूत्र मे आये हैं वे इस प्रकार हैं—

१ शंख २ शृ ग (रणसिंगा) ३ शखिका (छोटे शख), ४ खरमुखी ५ पेया ६. पिरिपिरिका ७ पणव—ढोल, ८ पटह—नगाडा, ९. भभा, १० होरम्भ, ११ भेरी, १२ झालर, १३ दुन्दुभि, १४ मुरज, १५ मृदग, १६ नन्दीमृदग, १७ आलिग, १८ कुस्तु बा, १९. गोमुखी, २० मादला २१ वीणा, २२ विपची, २३. वल्लकी, २४ षट्भ्रामरी वीणा, २५. भ्रामरी वीणा, २६ बध्वीसा, २७ परिवादिनी वीणा, २८ सुघोषाघटा, २९ नन्दीघोष घटा, ३० सौतार की वीणा, ३१ काछवी वीणा, ३२ चित्र वीणा, ३३ आमोट, ३४ झझा, ३५ नकुल, ३६ तूण, ३७ तु बवीणा—तम्बूरा, ३८ मुकुन्द—मुरज सरीखा एक वाद्य विशेष, ३९ हुडुक्क, ४० विचिक्की, ४१. करटी, ४२ डिडिम, ४३ किणिक, ४४ कडब, ४५ दर्दर, ४६ दर्दरिका, ४७ कलशिका ४८ मडक्क, ४९ तल, ५० ताल ५१ कास्य ताल, ५२ रिंगरिसिका ५३ लत्तिका, ५४ मकरिका, ५५ शिशुमारिका, ५६ वाली, ५७ वेणु, ५८ परिली, ५९ बद्धक।

यद्यपि मूल सूत्रपाठ के वाद्यो की सख्या उनपचास बताई है, परन्तु गणना करने पर उनकी सख्या उनसठ होती है। टीकाकार ने इसका समाधान इस प्रकार किया है—**मूलभेदापेक्षया आतोद्य-भेदा एकानपञ्चाशत्, शेषास्तु एतेषु एव अन्तर्भवन्ति यथा वशातोद्यविधाने वाली-वेणु-परिली-बद्धगा-इति**—अर्थात् वाद्यो के मूल भेद तो उनपचास ही हैं। शेष उनके अवान्तरभेद है, जैसे कि वशवाद्यो मे वाली, वेणु, परिली, बद्धग आदि का अन्तर्भाव हो जाता है।

ऊपर दिये गये वाद्य नामो मे से कुछ एक के नाम स्पष्ट ज्ञात नही होते हैं कि वर्तमान मे उनकी क्या सज्ञा है ? टीकाकार आचार्य ने भी लोकगम्य कहकर इनकी व्याख्या नही की है—
'अव्याख्यातास्तु भेदा लोकतः प्रत्येतव्याः।'

सूर्याभदेव द्वारा नृत्य-गान-वादन का आदेशः—

७८—तए णं ते बहवे देवकुमारा य देवकुमारियाओ य सद्दावेति।

तए ण ते बहवे देवकुमारा य देवकुमारीओ य सूरियाभेण देवेण सद्दाविया समाणा हट्ठ जाव (तुट्ठ चित्तमाणदिया) जेणेव सूरियाभे देवे तेणेव उवागच्छति, तेणेव उवागच्छित्ता सूरियाभ देव करयलपरिग्गहियं जाव (सिरसावत्त मत्थए अञ्जलिं कट्टु जएण विजएण बद्धावेंति) बद्धावित्ता एवं वयासी—'सदिसंतु ण देवाणुप्पिया! ज अम्हेहिं कायव्वं।'

७८—तत्पश्चात् सूर्याभ देव ने उन देवकुमारो तथा देवकुमारियो को बुलाया।

सूर्याभदेव द्वारा बुलाये जाने पर वे देवकुमार और देवकुमारियाँ हर्षित होकर यावत् (सतुष्ट और चित्त मे आनदित होकर) सूर्याभदेव के पास आये और दोनो हाथ जोडकर यावत् (आवर्त पूर्वक मस्तक पर अजलि करके जय-विजय शब्दो से वधाया और) अभिनन्दन कर सूर्याभदेव से विनयपूर्वक बोले—हे देवानुप्रिय ! हमे जो करना है, उसकी आज्ञा दीजिये ।

७९—तए णं से सूरियाभे देवे ते बहवे देवकुमारा य देवकुमारीओ य एवं वयासी—

गच्छह ण तुब्भे देवाणुप्पिया ! समणं भगवत महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण करेह, करित्ता वदह नमसह, वदित्ता नमसित्ता गोयमाइयाण समणाण निग्गथाण तं दिव्वं देविड्ढि दिव्व देवजुति दिव्व देवाणुभाव, दिव्व बत्तीसइबद्धं णट्टविहिं उवदसेह, उवदसित्ता खिप्पामेव एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।

७९—तब सूर्याभदेव ने उन देवकुमारो और देवकुमारियो से कहा—

हे देवानुप्रियो ! तुम सभी श्रमण भगवान् महावीर के पास जाओ और दक्षिण दिशा से प्रारम्भ करके तीन बार श्रमण भगवान् महावीर की प्रदक्षिणा करो । प्रदक्षिणा करके वन्दन नमस्कार करो । वन्दन-नमस्कार करके गौतमादि श्रमण निर्ग्रन्थो के समक्ष दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव वाली बत्तीस प्रकार की दिव्य नाट्यविधि करके दिखलाओ । दिखलाकर शीघ्र ही मेरी इस आज्ञा को वापस मुझे लौटाओ ।

८०—तए ण ते बहवे देवकुमारा देवकुमारीयो य सूरियाभेणं देवेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठ जाव करयल जाव पडिसुणति, पडिसुणित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समण भगवत महावीरं जाव नमंसित्ता जेणेव गोयमादिया समणा निग्गंथा तेणेव उवागच्छति ।

८०—तदनन्तर वे सभी देवकुमार और देवकुमारिया सूर्याभदेव की इस आज्ञा को सुनकर हर्षित हुए यावत् दोनो हाथ जोडकर यावत् आज्ञा को स्वीकार किया । स्वीकार करके श्रमण भगवान् के पास आये । आकर श्रमण भगवान् महावीर को यावत् नमस्कार करके जहाँ गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थ विराजमान थें, वहाँ आये ।

८१—तए णं ते बहवे देवकुमारा देवकुमारीओ य समामेव समसरणं करेंति, करित्ता[1] समामेव अवणमति अवणमित्ता समामेव उन्नमंति, एव सहितामेव ओनमति एव सहितामेव उन्नमति सहियामेव उण्णमित्ता सगयामेव ओनमंति संगयामेव उन्नमति उन्नमित्ता थिमियामेव ओणमति थिमियामेव उन्नमति, समामेव पसरति पसरित्ता, समामेव आउज्जविहाणाइ गेण्हति समामेव पवाएंसु पगाइसु पणच्चिसु ।

---

१ "समामेव पतिओ वधति बधित्ता समामेव पतिओ नमसति नमसित्ता" यह पाठ किन्ही-किन्ही प्रतियो मे विशेष मिलता है कि एक साथ पक्ति बनाई, पक्तिवद्ध होकर एक साथ नमस्कार किया और नमस्कार करके ।

८१—इसके वाद वे सभी देवकुमार और देवकुमारियाँ पक्तिबद्ध होकर एक साथ मिले। मिलकर सव एक साथ नीचे नमे और एक साथ ही अपना मस्तक ऊपर कर सीधे खडे हुए। इसी क्रम से पुन सभी एक साथ मिलकर नीचे नमे और फिर मस्तक ऊँचा कर सीधे खडे हुए। इसी प्रकार सीधे खडे होकर नीचे नमे और फिर सीधे खडे हुए। खडे होकर धीमे से कुछ नमे और फिर सीधे खडे हुए। खडे होकर एक साथ अलग-अलग फैल गये और फिर यथायोग्य नृत्य-गान आदि के उपकरणो-वाद्यो को लेकर एक साथ ही वजाने लगे, एक साथ ही गाने लगे और एक साथ नृत्य करने लगे।

विवेचन—मूल पाठ मे 'समामेव, सहितामेव तथा सगयामेव' ये तीन शब्द प्रयुक्त किए गए हैं। इनका सस्कृतरूप 'समकमेव, सहितमेव और सगतमेव' होता है। सामान्यतया तीनो शब्द समानार्थक प्रतीत होते हैं, किन्तु इनके अर्थ मे भिन्नता है। टीकाकार ने किसी नाट्यकुशल उपाध्याय से इनका अर्थभेद समझ लेने की सूचना की है।

नृत्य गान आदि का रूपक—

८२—किं ते ? उरेण मद सिरेण तार कठेण वितार तिविह तिसमयरेयगरइय गु जाऽवक-कुहरोवगूढ रत्त तिठाणकरणसुद्ध सकुहरगु जंतवस-तती-तल-ताल-लय-गहसुसंपउत्तं महुरं सम सललिय मणोहरं मिउरिभियपयसंचार सुरइ सुणइ वरचारुरूव दिव्व णट्टसज्ज गेय पगीया वि होत्था।

८२—उनका सगीत इस प्रकार का था कि उर-हृदयस्थल से उद्‌गत होने पर आदि मे मन्द मन्द—धीमा, मूर्छा मे आने पर तार—उच्च स्वर वाला और कठ स्थान मे विशेष तार स्वर (उच्चतर ध्वनि) वाला था। इस तरह त्रिस्थान-समुद्‌गत वह सगीत त्रिसमय रेचक से रचित होने पर त्रिविध रूप था। सगीत की मधुर प्रतिध्वनि-गु जारव से समस्त प्रेक्षागृह मण्डप गू जने लगता था। गेय राग-रागनी के अनुरूप था। त्रिस्थान त्रिकरण से शुद्ध था, अर्थात् उर, शिर एव कण्ठ मे स्वर सचार रूप क्रिया से शुद्ध था। गूँजती हुई वासुरी और वीणा के स्वरो से एक रूप मिला हुआ था। एक-दूसरे की वजती हथेली के स्वर का अनुसरण करता था। मुरज और कशिका आदि वाद्यो की झकारो तथा नर्तको के पादक्षेप—ठुमक से वरावर मेल खाता था। वीणा के लय के अनुरूप था। वीणा आदि वाद्य धुनो का अनुकरण करने वाला था। कोयल की कुहू-कुहू जैसा मधुर तथा सर्व प्रकार से सम, सललित, मनोहर, मृदु, रिभित पदसचार युक्त, श्रोताओ को रतिकर, सुखान्त ऐसा उन नर्तको का नृत्यसज्ज विशिष्ट प्रकार का उत्तमोत्तम सगीत था।

८३—किं ते.? उद्‌धुमताण संखाणं सिंगाणं सखियाण खरमुहीणं पेयाणं पिरिपिरियाणं, आहम्मंताणं पणवाण पडहाणं, अप्फालिज्जमाणाण भभाण होरंभाणं, तालिज्जताण भेरीण झल्लरीण दु दुहीण, आलवंताण मुरयाणं मुइगाणं नदीमुइंगाण, उत्तालिज्जताण आलिंगाणं कुतु बाण गोमुहीण मद्दलाणं, मुच्छिज्जताण वीणाण विपचीणं वल्लकीण कुट्टिज्जंताण महतीण कच्छभीण चित्तवीणाण, सारिज्जंताण बद्धीसाण सुघोसाण नदिघोसाणं, फुट्टिज्जतीण भामरीण छब्भामरीणं परिवायणीण, छिप्पतीण तूणाण तु ववीणाणं, आमोडिज्जताण आमोताण झंझाण नउलाण, अच्छिज्जतीणं मुगु दाण हुडुक्कीणं विचिक्कीणं, वाइज्जंताण करडाण डिंडिमाण किणियाण कडम्बाणं, ताडिज्जताणं दद्दरिगाणं दद्दरगाण कुतु बाणं कलसियाण मड्डयाण, आताडिज्जताणं तलाण तालाण कंसतालाण, घट्टिज्जंताणं रिंगिरिसियाणं लत्तियाण मगरियाणं सु सुमारियाणं, फूमिज्जताण वंसाणं वेलूणं वालीण परिल्लीण बद्धगाण।

८३—मधुर सगीत-गान के साथ-साथ नृत्य करने वाले देवकुमार और कुमारिकाओ मे से शख, शृ ग, शखिका, खरमुखी, पेया पिरिपिरिका के वादक उन्हे उद्धमानित करते—फू कते, पणव और पटह पर आघात करते, भभा और होरभ पर टकार मारते, भेरी झल्लरी और दुन्दुभि को ताड़ित करते, मुरज, मृदग और नन्दीमृदग का आलाप लेते, आलिग कुस्तुम्ब, गोमुखी और मादल पर उत्ताडन करते, वीणा विपची और वल्लकी को मूर्च्छित करते, महती वीणा (सौ तार की वीणा), कच्छपीवीणा और चित्रवीणा को कूटते, बद्धीस, सुघोषा, नन्दीघोष का सारण करते, भ्रामरी-षड् भ्रामरी और परिवादनी वीणा का स्फोटन करते, तूण, तुम्ववीणा का स्पर्श करते, आमोट झाझ कुम्भ और नकुल को आमोटते-परस्पर टकराते-खनखनाते, मृदग-हुडुक्क-विचिक्की को धीमे से छूते, करड डिडिम किणित और कडम्ब को बजाते, दर्दरक, दर्दरिका कुस्तुबुरु, कलशिका मड्ड को जोर-जोर से ताडित करते, तल, ताल कास्यताल को धीरे से ताडित करते, रिंगिरिसका लत्तिका, मकरिका और शिशुमारिका का घट्टन करते तथा वशी, वेणु वाली परिल्ली तथा बद्धको को फू कते थे । इस प्रकार वे सभी अपने-अपने वाद्यो को बजा रहे थे ।

८४—तए णं से दिव्वे गीए, दिव्वे वाइए, दिव्वे नट्टे एवं अब्भुए सिंगारे उराले मणुन्ने मणहरे गीते मणहरे नट्टे मणहरे वातिए उप्पिंजलभूते कहकहभूते दिव्वे देवरमणे पवत्ते या वि होत्था ।

८४—इस प्रकार का वह वाद्य सहचरित दिव्य सगीत दिव्य वादन और दिव्य नृत्य आश्चर्य-कारी होने से अद्भुत, शृ गाररसोपेत होने से शृ गाररूप, परिपूर्ण गुण-युक्त होने से उदार, दर्शको के मनोनुकूल होने से मनोज्ञ था कि जिससे वह मनमोहक गीत, मनोहर नृत्य और मनोहर वाद्यवादन सभी के चित का आक्षेपक (ईर्ष्या-स्पर्धा जनक) था । दर्शको के कहकहो—वाह-वाह के कोलाहल से नाट्यशाला को गू जा रहा था । इस प्रकार से वे देवकुमार और कुमारिकाये दिव्य देवक्रीडा मे प्रवृत्त हो रहे थे ।

नाट्याभिनयों का प्रदर्शन—

८५—तए णं ते बहवे देवकुमारा य देवकुमारीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स सोत्थिय-सिरिवच्छ-नंदियावत्त-वद्धमाणग-भद्दासण-कलस-मच्छ दप्पणमंगल्लभत्तिचित्तं णामं दिव्वं नट्टविधिं उवदसेंति ।

८५—तत्पश्चात् उस दिव्य नृत्य क्रीडा मे प्रवृत्त उन देवकुमारो और कुमारिकाओ ने श्रमण भगवान् महावीर एव गौतमादि श्रमण निर्ग्रन्थो के समक्ष १ स्वस्तिक २ श्रीवत्स ३ नन्दावर्त ४ वर्धमानक ५ भद्रासन ६ कलश ७ मत्स्य और ८ दर्पण, इन आठ मगल द्रव्यो का आकार रूप दिव्य नाट्य-अभिनय करके दिखलाया ।

८६—तए णं ते बहवे देवकुमारा य देवकुमारीओ य सममेव समोसरणं करेंति करित्ता तं चेव भाणियव्व जाव दिव्वे देवरमणे पवत्ते या वि होत्था ।

८६—तत्पश्चात् अर्थात् मगलद्रव्याकार नाट्य-अभिनय सम्पन्न करने के पश्चात् दूसरी

नाट्यविधि दिखाने के लिये वे देवकुमार और देवकुमारिया एकत्रित हुईं और एकत्रित होने से लेकर दिव्य देवरमण मे प्रवृत्त होने पर्यन्त की पूर्वोक्त समस्त वक्तव्यता का यहाँ वर्णन करना चाहिये ।

विवेचन—'त चेव भाणियव्व पद से यहाँ पूर्व मे किये गये वर्णन की पुनरावृत्ति करने का सकेत किया है । उस वर्णन का साराश इस प्रकार है—

सूर्याभदेव द्वारा आज्ञापित वे देवकुमार और कुमारियाँ श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करके गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थो के समक्ष आये, उनके सामने एक साथ नीचे नमे फिर मस्तक ऊँचा कर सीधे खडे हुए । इसी प्रकार सामूहिक रूप मे नमन आदि किया । तत्पश्चात् अपने अपने नृत्य गान के उपकरण और वाद्यो को लेकर वे सभी गाने, नाच एव नाट्य-अभिनय करने मे प्रवृत्त हो गये ।

८७—तए णं बहवे देवकुमारा य देवकुमारीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स आवड-पच्चावड-सेढिपसेढि सोत्थिय-पूसमाणव-वद्धमाणग-मच्छण्डमगरड-जार-मार-फुल्लावलि पउमपत्त-सागर-तरंग-वसंतलता-पउमलयभत्तिचित्त णाम दिव्व णट्टविहिं उवदसेंति ।

८७—तदनन्तर उन देवकुमारो और देवकुमारियो ने श्रमण भगवान् महावीर एव गौतमादि श्रमण निर्ग्रन्थो के सामने आवर्त, प्रत्यावर्त, श्रेणि, प्रश्रेणि, स्वस्तिक, सौवस्तिक, पुष्य, माणवक, वर्धमानक, मत्स्याण्डक, मकराण्डक, जार, मार, पुष्पावलि, पद्मपत्र, सागरतरग, वासन्ती-लता और पद्मलता के आकार की रचनारूप दिव्य नाट्यविधि का अभिनय करके बतलाया ।

८८—एवं च एक्किक्कियाए णट्टविहीए समोसरणादिया एसा वत्तव्वया जाव दिव्वे देवरमणे पवत्ते या वि होत्था ।

८८—इसी प्रकार से प्रत्येक नाट्यविधि को दिखलाने के पश्चात् दूसरी प्रारम्भ करने के अन्तराल मे उन देवकुमारो और देवकुमारियो के एक साथ मिलने से लेकर दिव्य देवक्रीडा मे प्रवृत्त होने तक की समस्त वक्तव्यता [कथन] पूर्ववत् सर्वत्र कह लेना चाहिये ।

८९—तए ण ते बहवे देवकुमारा देवकुमारियाओ य समणस्स भगवतो महावीरस्स ईहामिअ-उसभ-तुरग-नर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय पउमलयभत्तिचित्त णाम दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ।

८९—तदनन्तर उन सभी देवकुमारो और देवकुमारियो ने श्रमण भगवान् के समक्ष ईहामृग, वृषभ, तुरग-अश्व, नर-मानव, मगर, विहग-पक्षी, व्याल-सर्प, किन्नर, रुरु, सरभ, चमर, कुंजर, वनलता और पद्मलता की आकृति-रचना-रूप दिव्य नाट्यविधि का अभिनय दिखाया ।

९०—[1]एगतो वंक एगओ चक्कवाल दुहओ चक्कवाल चक्कद्धचक्कवालं णाम दिव्व णट्टविहिं उवदंसंति ।

---

१ किसी किसी प्रति मे निम्नलिखित पाठ है—
एगतो वक्क दुहओ वक एगतो खह दुहओखह एगओ चक्कवाल दुहओ चक्कवाल चक्कद्धचक्कवाल णाम दिव्व णाट्टविहि उवदसति । अर्थात् तत्पश्चात् एकतोवक्र, द्विघातोवक्र, एक ओर गगनमडलाकृति, दोनो ओर गगनमडलाकृति, एकतश्चक्रवाल द्विघातश्चक्रवाल ऐसी चक्रार्ध और चक्रवाल नामक दिव्य नाट्यविधि का अभिनय दिखाया ।

९०—इसके बाद उन देवकुमारो और देवकुमारियो ने एकतोवक्र (जिस नाटक मे एक ही दिशा मे धनुषाकार श्रेणि बनाई जाती है), एकतश्चक्रवाल (एक ही दिशा मे चक्राकार श्रेणि बने), द्विघातश्चक्रवाल (परस्पर सम्मुख दो दिशाओ मे चक्र बने) ऐसी चक्रार्ध-चक्रवाल नामक दिव्य नाट्य-विधि का अभिनय दिखाया।

९१—चंदावलिपविभत्ति च सूरावलिपविभत्ति च वलयावलिपविभत्ति च हंसावलिप०[1] च एगावलिप० च तारावलिप० मुत्तावलिप० च कणगावलिप० च रयणावलिप० च णाम दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति।

९१—इसी प्रकार अनुक्रम से उन्होने चन्द्रावलि, सूर्यावलि, वलयावलि, हंसावलि, एकावलि, तारावलि, मुक्तावलि, कनकावलि और रत्नावलि की प्रकृष्ट-विशिष्ट रचनाओ से युक्त दिव्य नाट्य-विधि का अभिनय प्रदर्शित किया।

९२—चंदुग्गमणप० च सूरुग्गमणप० च उग्गमणुग्गमणप० च णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति।

९२—तत्पश्चात् उन देवकुमारो और कुमारियो ने उक्त क्रम से चन्द्रोद्गमप्रविभक्ति, सूर्योद्गम प्रविभक्ति युक्त अर्थात् चन्द्रमा और सूर्य के उदय होने की रचना वाले उगद्गमनोद्मन नामक दिव्य नाट्यविधि को दिखाया।

९३—चंदागमणप० च सूरागमणप० च आगमणागमणप० च णाम[2] उवदंसेंति।

९३—इसके अनन्तर उन्होंने चन्द्रागमन, सूर्यागमन की रचना वाली चन्द्र सूर्य आगमन नामक दिव्य नाट्यविधि का अभिनय किया।

९४—चंदावरणप० सूरावरणप० च आवरणावरणप० णाम उवदंसेंति।

९४—तत्पश्चात् चन्द्रावरण सूर्यावरण अर्थात् चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण होने पर जगत् और गगन मण्डल मे होने वाले वातावरण की दर्शक आवरणावरण नामक दिव्य नाट्यविधि को प्रदर्शित किया।

९५—चंदत्थमणप० च सूरत्थमणप० अत्थमणऽत्थमणप० णामं उवदंसेंति।

९५—इसके बाद चन्द्र के अस्त होने, सूर्य के अस्त होने की रचना से युक्त अर्थात् चन्द्र और सूर्य के अस्त होने के समय के दृश्य से युक्त अस्तमयनप्रविभक्ति नामक नाट्यविधि का अभिनय किया।

९६—चंदमंडलप० च सूरमंडलप० च नागमंडलप० च जक्खमंडलप० च भूतमंडलप० च रक्खस-महोरग-गन्धव्वमंडलप० च मंडलमंडलप० नामं उववंसेंति।

---

१ 'प०' अक्षर सर्वत्र 'पविभत्ति' शब्द का सूचक है।
२ 'णम' शब्द से सर्वत्र 'णाम दिव्व णट्टविहं' यह पद ग्रहण करना चाहिये।

९६—तदन्तर चन्द्रमण्डल, सूर्यमण्डल, नागमण्डल, यक्षमण्डल, भूतमण्डल, राक्षसमण्डल, महोरगमण्डल और गन्धर्वमण्डल की रचना से युक्त अर्थात् इन इनके मण्डलों के भावों का दर्शक मण्डलप्रविभक्ति नामक नाट्य अभिनय प्रदर्शित किया।

९७—[1]उसभमंडलप० च सीहमंडलप० च हयविलंबिय गयवि०[2] हयविलसियं गयविलसिय मत्तहयविलसियं मत्तगजविलसियं मत्तहयविलंबियं मत्तगयविलंबिय दुतविलम्बियं णामं णट्टविहं उवदंसेंति।

९७—तत्पश्चात् वृषभमण्डल, सिंहमण्डल की ललित गति अश्व गति, और गज की विलम्बित गति, अश्व और हस्ती की विलसित गति, मत्त अश्व और मत्त गज की विलसित गति, मत्त अश्व की विलम्बित गति, मत्त हस्ती की विलम्बित गति की दर्शक रचना से युक्त द्रुतविलम्बित प्रविभक्ति नामक दिव्य नाट्यविधि का प्रदर्शन किया।

९८—सागरपविभत्तिं च नागरप० च सागर-नागर प० च णामं उवदंसेंति।

९८—इसके बाद सागर प्रविभक्ति, नगर प्रविभक्ति अर्थात् समुद्र और नगर सम्बन्धी रचना से युक्त सागर-नागर-प्रविभक्ति नामक अपूर्व नाट्यविधि का अभिनय दिखाया।

९९—णंदाप० च चंपाप० नन्दा-चंपाप० च णाम उवदंसेंति।

९९—तत्पश्चात् नन्दाप्रविभक्ति—नन्दा पुष्करिणी की सुरचना से युक्त, चम्पा प्रविभक्ति—चम्पक वृक्ष की रचना से युक्त नन्दा-चम्पाप्रविभक्ति नामक दिव्यनाट्य का अभिनय दिखाया।

१००—मच्छंडाप० च मयरंडाप० च जारप० च मारप० च मच्छंडा-मयरंडा-जारा-माराप० च णामं उवदंसेंति।

१००—तत्पश्चात् मत्स्याण्डक, मकराण्डक, जार, मार की आकृतियों की सुरचना से युक्त मत्स्याण्ड-मकराण्ड-जार-मार प्रविभक्ति नामक दिव्यनाट्यविधि दिखलाई।

१०१—'क' त्ति ककारप० च, 'ख' त्ति खकारप० च, 'ग' त्ति गकारप० च, 'घ' त्ति घकारप० च, 'ङ' त्तिङकारप० च, ककार-खकार-गकार-घकार-ङकारप० च णाम उवदंसेंति, एव चकारवग्गो वि टकारवग्गो वि तकारवग्गो वि पकारवग्गो वि।

---

१ किसी-किसी प्रति में निम्न प्रकार का पाठ है—

उसभललियविक्कंत सीहललियविक्कंत हयविलंविय गयवि० हयविलसिय गयविलसिय मत्तहयविलसिय मत्तगजविलसिय मत्तहयवि मत्तगयवि दुयविलम्बिय णाम णट्टविहं उवदंसंति।

इसके बाद वृषभ-बैल की ठुमकती हुई ललित गति, सिंह की ठुमकती हुई ललित गति, अश्व की विलंबित गति, गज की विलंबित गति, मत्त अश्व की विलसित गति, मत्त गज की विलसित गति, मत्त अश्व की विलंबित गति, मत्त गज की विलंबित गति की दर्शक रचनावाली द्रुतविलंबित नामक नाट्यविधि को दिखाया।

२ 'वि' पद से 'विलंबित' पद ग्रहण करना चाहिये।

१०१—तदनन्तर उन देवकुमारो और देवकुमारियो ने क्रमश 'क' अक्षर की आकृति-रचना करके ककारप्रविभक्ति, 'ख' की आकार-रचना करके खकार प्रविभक्ति, 'ग' की आकृति-रचना द्वारा गकारप्रविभक्ति, 'घ' अक्षर के आकार की रचना द्वारा घप्रविभक्ति, और 'ङ' के आकार की रचना द्वारा ङकारप्रविभक्ति, इस प्रकार ककार-खकार-गकार-घकार-ङकारप्रविभक्ति नाम की दिव्य नाट्यविधियो का प्रदर्शन किया।

इसी तरह से चकार-छकार-जकार-झकार-ञकार की रचना करके चकारवर्गप्रविभक्ति नामक दिव्य नाट्यविधि का अभिनय दिखाया।

चकार वर्ग के पश्चात् क्रमश ट-ठ-ड-ढ-ण के आकार की सुरचना द्वारा टकारवर्ग-प्रविभक्ति नामक नाट्यविधि का प्रदर्शन किया।

टकारवर्ग के अनन्तर क्रम प्राप्त तकार-थकार-दकार-धकार-नकार-की रचना करके तकार-वर्गप्रविभक्ति नामक नाट्यविधि को, दिखलाया।

तकारवर्ग के नाट्याभिनय के अनन्तर प, फ, ब, भ, म के आकार की रचना करके पकारवर्ग-प्रविभक्ति नाम की दिव्य नाट्यविधि का अभिनय दिखाया।

विवेचन—यहाँ लिपि सम्बन्धी अभिनयो के उल्लेख मे ककार से पकार पर्यन्त पाँच वर्गों के पच्चीस अक्षरो के अभिनयो का ही सकेत किया है, उसमे स्वरो तथा य, र, ल, व, ष, स, ह, क्ष, त्र, ज्ञ अक्षरो के अभिनयो का उल्लेख नही है। इसका कोई ऐतिहासिक कारण है या अन्य, यह विचारणीय है। अथवा सम्भव है कि देवो की लिपि मे ककार से लेकर पकार तक के अक्षर होते हो जिससे उन्ही का अभिनय प्रदर्शित किया है।

इन लिपि सम्बन्धी अभिनयो मे 'क' वगैरह की जो मूल आकृतियाँ ब्राह्मी लिपि मे बताई हैं, आकृतियो के सदृश अभिनय यहाँ समझना चाहिए। जैसे कि ब्राह्मी लिपि मे क की + ऐसी आकृति है, अतएव इस आकृति के अनुरूप स्थित होकर अभिनय करके बताना 'क' की आकृति का अभिनय कहलायेगा। इसी प्रकार लिपि सम्बन्धी शेष दूसरे सभी अभिनयो के लिए भी समझ लेना चाहिये।

१०२—असोयपल्लवप० च, अंबपल्लवप० च, जंबूपल्लवप० च, कोसंबपल्लवप० च, पल्लवप [1] च णामं उवदंसेंति।

१०२—तत्पश्चात् अशोक पल्लव (अशोकवृक्ष का पत्ता) आम्रपल्लव, जम्बू (जामुन) पल्लव, कोशाम्रपल्लव की आकृति-जैसी रचना से युक्त पल्लवप्रविभक्ति नामक दिव्य नाट्यविधि प्रदर्शित की।

१०३—पउमलयाप० जाव (नागलयाप० असोगलयाप० चंपगलयाप० चयलयाप० वण-लयाप० वासंतियलयाप० अइमुत्तयलयाप० कुंदलयाप०) सामलयाप० चलयाप० [2] च णामं उवदंसेंति।

१०३—तदनन्तर पद्मलता यावत् नागलता, अशोकलता, चपकलता, आम्रलता, वनलता,

१ 'पल्लव पल्लव प' इति पाठान्तरम्।
२ 'लया लया प' इति पाठान्तरम्।

वासतीलता, अतिमुक्तकलता और श्यामलता की सुरचना वाला लताप्रविभक्ति नामक नाट्याभिनय प्रदर्शित किया।

१०४—दुयणामं उवदंसेंति। विलंबियं णाम उव०। दुयविलवियं णाम उव०। अचिय, रिभियं, अचियरिभिय, आरभड, भसोलं आरभडभसोल, उप्पयनिवयपवत्त, संकुचियं पसारियं रयारइयं भंत सभतं णामं दिव्व णट्टविहि उवदंसेंति।

१०४—उनके पश्चात् अनुक्रम से द्रुत, विलवित, द्रुत विलवित, अचित, रिभित, अचित-रिभित, आरभट, भसोल और आरभटभसोल नामक नाट्यविधियो का अभिनय प्रदर्शित किया।

तदनन्तर उत्पात—(ऊपर नीचे उछलने-कूदने) निपात, सकुचित-प्रसारित भय और हर्षवश शरीर के अगोपागो को सिकोडना और फैलाना, रयारइय (?) भ्रान्त और सभ्रान्त सम्बन्धी क्रियाओ विषयक दिव्य नाट्य-अभिनयो को दिखाया।

विवेचन—पूर्वोक्त नाट्यविधियो का स्वरूप-प्रतिपादन नाट्यविधिप्राभृत मे किया गया है। परन्तु पूर्वो के विच्छिन्न होने से इन विधियो का पूर्ण रूप से जैसा का तैसा वर्णन करना सम्भव नही है। वर्तमान मे भरत का नाट्यशास्त्र उपलब्ध है। जिनमे नाट्य, सगीत आदि से सम्बन्धित विषयो की जानकारी दी गई है। यहा देवो ने जिन नाट्यो का प्रदर्शन किया है, उनमे से कुछ एक के नाम तो इस नाट्यशास्त्र मे भी आये हैं, यथा—सकुचित, प्रसारित, द्रुत विलवित, अचित इत्यादि।

सूत्र ९७ से १०४ पर्यन्त सगीत और वाद्यो के वर्णन के साथ नाट्यविधियो के अभिनयो का वर्णन किया गया है। अनेक अभिनय तो ऐसे है जिनके भाव समझ मे आ सकते हैं। इनमे से कतिपय पशुपक्षियो, वनस्पतियो, जगत् के अन्य पदार्थो, प्राकृतिक प्रसगो और उत्पातो एव लिपि-आकारो से सम्बन्धित हैं।

१०५—तए ण ते वहवे देवकुमारा य देवकुमारीओ य समामेव समोसरण करेंति जाव दिव्वे देवरमणे पवत्ते यावि होत्था।

१०५—तदनन्तर अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार की नाट्यविधियो का प्रदर्शन करने के अनन्तर वे देवकुमार और देवकुमारियाँ एक साथ एक स्थान पर एकत्रित हुए यावत् दिव्य देवरमत मे प्रवृत्त हो गये।

भगवान् महावीर के जीवन-प्रसंगो का अभिनय—

१०६—तए ण ते वहवे देवकुमारा य देवकुमारीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स पुव्व-भवचरियणिवद्ध च, चवणचरियणिवद्धं च, सहरणचरियनिवद्ध च, जम्मणचरियनिवद्ध च, अभि-सेअचरियनिवद्धं च, वालभावचरियनिवद्ध च, जोव्वण-चरियनिवद्ध च, कामभोगचरियनिवद्धं च, निक्खमण चरियनिवद्ध च, तवचरणचरियनिवद्ध च, णाणुप्पायचरिय-निवद्ध च, तित्थपवत्तण-चरिय-परिनिव्वाणचरियनिवद्ध च, चरिमचरियनिवद्ध च णाम दिव्व णट्टविहिं उवदसेंति।

१०६—तत्पश्चात् उन सब देवकुमारो एव देवकुमारियो ने श्रमण भगवान् महावीर के पूर्व-भवो संबधी चरित्र से निवद्ध एव वर्तमान जीवन सबधी, च्यवनचरित्रनिवद्ध, गर्भसहरणचरित्र

निवद्ध, जन्मचरित्रनिवद्ध, जन्माभिषेक, वालक्रीडानिवद्ध, यौवन-चरित्रनिवद्ध (गृहस्थावस्था से सबधित) अभिनिष्क्रमण-चरित्रनिवद्ध (दीक्षामहोत्सव से सबन्धित), तपश्चरण-चरित्र निवद्ध (साधनाकालीन दृश्य) ज्ञानोत्पाद चरित्र-निवद्ध (कैवल्य प्राप्त होने की परिस्थिति का चित्रण), तीर्थ-प्रवर्तन चरित्र से सम्बन्धित, परिनिर्वाण चरित्रनिवद्ध (मोक्ष प्राप्त होने के समय का दृश्य) तथा चरम चरित्र निवद्ध (निर्वाण प्राप्त हो जाने के पश्चात् देवो आदि द्वारा किये जाने वाले महोत्सव से सबधित) नामक अतिम दिव्य नाट्य-अभिनय का प्रदर्शन किया।

विवेचन—देवो द्वारा श्रमण भगवान् महावीर एव गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थो के समक्ष प्रदर्शित वत्तीस प्रकार के नाट्य-अभिनयो मे से अतिम (वत्तीसवा अभिनय) श्रमण भगवान् महावीर की जीवन-घटनाओ के मुख्य-मुख्य प्रसगो से सवधित है। यह सव देखकर तत्कालीन अभिनयकला की परम प्रकर्षता का दृश्य उपस्थित हो जाता है और उस-उस अभिनय की उपयोगिता भी परिज्ञात हो जाती है।

नाट्याभिनय का उपसंहार—

१०७—तए ण ते वहवे देवकुमारा य देवकुमारीओ य चउव्विहं वाइत्तं वाएति—तं जहा-तत-विततं-घणं-झुसिर।

१०७—तत्पश्चात् (दिव्य नाट्यविधियो को प्रदर्शित करने के पश्चात्) उन सभी देवकुमारो और देवकुमारियो ने ढोल-नगाडे आदि तत, वीणा आदि वितत, झाझ आदि घन और शख, वासुरी आदि शुषिर इन चतुर्विध वादित्रो—वाजो को वजाया।

१०८—तए ण ते वहवे देवकुमारा य देवकुमारियाओ य चउव्विहं गेयं गायंति तंजहा-उक्खित्त-पायंत-मंदाय-रोइयावसाणं च।

१०८—वादित्रो को वजाने के अनन्तर उन सव देवकुमारो और देवकुमारियो ने उत्क्षिप्त, पादान्त, (पादवृद्ध) मदक और रोचितावसान रूप चार प्रकार का सगीत (गाना) गाया।

१०९—तए ण ते वहवे देवकुमारा य देवकुमारियाओ य चउव्विहं णट्टविहिं उवदंसंति, तंजहा-अचियरिभियं-आरभड-भसोल च।

१०९—तत्पश्चात् उन सभी देवकुमारो और देवकुमारियो ने अचित, रिभित, आरभट एव भसोल इन चार प्रकार की नृत्यविधियो को दिखाया।

११०—तए ण ते वहवे देवकुमारा य देवकुमारियाओ च चउव्विह अभिणय अभिणएति, तजहा—दिट्ठ तिय—पाडितिय (पाडियतिय)-सामन्नाविणिवाइय—अंतो-मज्झावसाणियं च।

११०—तत्पश्चात् उन सभी देवकुमारो और देवकुमारियो ने चार प्रकार के अभिनय प्रदर्शित किये, यथा—दार्ष्टान्तिक, प्रात्यतिक, सामान्यतोविनिपातनिक और अन्तर्मध्यावसानिक, [लोकमध्यावसानिक]।

विवेचन—सूत्र सख्या १०७-११० पर्यन्त नाटको का प्रदर्शन करने के पश्चात् उपसहार रूप चार प्रकार के वाद्यो को वजाने, सगीतो को गाने एव नृत्यो और अभिनयो को करने का उल्लेख किया है।

वाद्यादि अभिनय पर्यन्त चार-चार प्रकारो को बतलाने का कारण यह है कि ये उन-उनके मूल है। अर्थात् वाद्यो, राग-रागनियो आदि के अलग-अलग नाम होने पर भी वे सभी मुख्य-गौण भाव से इन चार प्रकारो के ही विविध रूप है।

प्रस्तुत मे तत आदि शब्दो के वाद्यो के उत्क्षिप्त आदि शब्दो से सगीत के और अचित आदि शब्दो से नृत्य के चार-चार भेद और उनके सामान्य अर्थ तो समझ लिये जा सकते है तथा इसी प्रकार अभिनय के जो चार प्रकार वतलाये है उनमे से दृर्ष्टान्तिक अभिनय—किसी प्रकार के दृष्टान्त का अभिनय। प्रत्यन्त का अर्थ म्लेच्छदेश है ('प्रत्यन्तो म्लेच्छमण्डल'—अभिधान चिन्तामणि कोश ४ श्लोक १८)। भोट (भूटान) आदि देशो की म्लेछ देशो मे गणना है। इन देशो के निवासियो और उनके आचरण अथवा किसी प्रसग आदि का अभिनय प्रात्यतिक अभिनय है। सामान्य प्रकार के अभिनय को सामान्यतोपनिपातनिक और लोक के मध्य या अन्त सम्बन्धी अभिनय को अन्तर्मध्याव-सानिक अभिनय कहते है। यह अभिनय के प्रकारसूचक शब्दो का शब्दार्थमात्र है। परन्तु उन सभी के विशेष अर्थ को समझने के लिए सगीत तथा अभिनय विशारदो एव नाट्यशास्त्र से जानकारी प्राप्त करना चाहिये।

१११—तए ण ते बहवे देवकुमारा य देवकुमारियाओ य गोयमादियाण समणाण निग्गथाण दिव्व देविड्ढि दिव्व देवजुति दिव्व देवाणुभाव दिव्वं बत्तीसइबद्ध नाडय उवदसित्ता समण भगवत महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण करेंति, करित्ता वदति नमसति, वदित्ता नमसिता जेणेव सूरियाभे देवे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता सूरियाभ देव करयलपरिग्गहिय सिरसावत्तं मत्थए अजलि कट्टु जएण विजएण वद्धावेंति वद्धावित्ता एव आणत्तिय पच्चप्पिणति।

१११—तत्पश्चात् उन सभी देवकुमारो और देवकुमारियो ने गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थो को दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव प्रदर्शक बत्तीस प्रकार की दिव्य नाट्यविधियो को दिखाकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन वार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार करने के पश्चात् जहाँ अपना अधिपति सूर्याभदेव था वहाँ आये। वहाँ आकर दोनो हाथ जोडकर सिर पर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अजलि करके सूर्याभदेव को 'जय विजय हो' शब्दोच्चारणो से वधाया और वधाकर आज्ञा वापस सौंपी, अर्थात् निवेदन किया कि आपकी आज्ञा के अनुसार हम श्रमण भगवन् महावीर आदि के पास जाकर बत्तीस प्रकार की दिव्य नाट्यविधि दिखा आये हैं।

११२—तए णं से सूरियाभे देवे तं दिव्व देविड्ढि, दिव्वं देवजुइ, दिव्वं देवाणुभाव पडिसाहरइ, पडिसाहरेत्ता खणेण जाते एगे एगभूए।

तए ण से सूरियाभे देवे समणं भगवतं महावीर तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण करेइ, वदति नमंसति, वंदित्ता नमसित्ता नियगपरिवालसद्धि सपरिवुडे तमेव दिव्व जाणविमाण दुरूहति दुरूहित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

११२—तत्पश्चात् उस सूर्याभदेव ने अपनी सब दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवानुभाव-प्रभाव को समेट लिया—अपने शरीर मे प्रविष्ट कर लिया और शरीर मे प्रविष्ट करके क्षणभर मे अनेक होने से पूर्व जैसा अकेला था वैसा ही एकाकी वन गया।

इसके वाद सूर्याभ देव ने श्रमण भगवान् महावीर को दक्षिण दिशा से प्रारम्भ करके तीन वार प्रदक्षिणा की, वन्दन-नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके अपने पूर्वोक्त परिवार सहित जिस यान-विमान से आया था उसी दिव्य यान-विमान पर आरुढ हुआ। आरुढ होकर जिस दिशा से—जिस ओर से आया था, उसी ओर लौट गया।

गौतमस्वामी की जिज्ञासा: भगवान का समाधान—

११३—'भंते' त्ति भयवं गोयमे समणं भगवंतं महावीरं वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी[1]—सूरियाभस्स णं भंते ! देवस्स एसा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुती दिव्वे देवाणुभावे कहिं गते ? कहिं अणुप्पविट्ठे ?

१ कही कही यह पाठान्तर देखने मे आता है—

'तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जिट्ठे अन्तेवासी इदभूई नामं अणगारे गोयमसगोत्ते सत्तुस्सेहे समचउरससठाणसठिए वज्जरिसहनारायसघयणे कणगपुलगनिघसपम्हगोरे उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे महातवे उराले घोरे घोरगुणे घोरतवस्सी घोरबंभचेरवासी उच्छूढसरीरे सखित्तविपुलतेयलेस्से चउदसपुव्वी चउनाणोवगए सव्वक्खरसन्निवाई समणस्स भगवतो महावीरस्स अदूरसामते उड्ढजाणू अहोसिरे झाणकोट्ठोवगए सजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तए णं से भगवं गोयमे जायसड्ढे जायससए जायकोउहल्ले उप्पन्नसड्ढे उप्पन्नससए उप्पन्नकोउहल्ले सजायसड्ढे सजायससए सजायकोउहल्ले समुप्पण्णसड्ढे समुप्पण्णससए समुप्पण्णकोउहल्ले उट्ठाए उट्ठेइ उट्ठाए उट्ठित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छति, तेणेव उवागच्छित्ता समणं भगवंतं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेति, तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेत्ता वदति नमसति वदित्ता नमसित्ता एवं वयासी—'

'उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी-शिष्य गौतम गोत्रीय, सात हाथ ऊचे, समचौरस सस्थान एव वज्र ऋषभनाराच सहनन वाले, कसौटी पर खीची गई स्वर्ण रेखा तथा कमल की केशर के समान गौरवर्ण वाले, उग्रतपस्वी, कर्मवन को दग्ध करने के लिये अग्निवत् जाज्वल्यमान तप वाले, तप्त तपस्वी—आत्मा को तपानेवाले, महातपस्वी—दीर्घतप करनेवाले, उदार-प्रधान, घोर—कषायादि के उन्मूलन मे कठोर, घोरगुण—दूसरो के द्वारा दुरनुचर मूलोत्तर गुणो से सम्पन्न घोरतपस्वी-वडी वडी तपस्यायें करने वाले, घोर ब्रह्मचर्यवासी-अन्यो के लिये कठिन ब्रह्मचर्य मे लीन, शारीरिक सस्कारो और ममत्व का त्याग करने वाले, विपुल तेजोलेश्या को सक्षिप्त करके शरीर मे समाहित करने वाले, चौदह पूर्वो के ज्ञाता, मति आदि मनपर्याय पर्यन्त चार ज्ञानो से समन्वित, सर्व अक्षरो और उनके सयोगजन्य रूपो को जानने वाले गौतम नामक अनगार श्रमण भगवान महावीर से न अतिदूर और न अति समीप अर्थात् उचित स्थान मे स्थित होकर ऊपर घुटने और नीचा मस्तक रखकर—मस्तक नमाकर ध्यान रूपी कोष्ठ मे विराजमान होकर सयम तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

तत्पश्चात् भगवान् गौतम को तत्त्वविषयक श्रद्धा—जिज्ञासा-हुई, स शय हुआ, कुतूहल हुआ, श्रद्धा उत्पन्न हुई, स शय उत्पन्न हुआ, कुतूहल उत्पन्न हुआ, विशेषरूप से श्रद्धा उत्पन्न हुई, विशेषरूप से स शय उत्पन्न हुआ विशेष रूप से कुतूहल उत्पन्न हुआ, विशेष रूप से श्रद्धा उत्पन्न हुई, विशेष रूप से सशय उत्पन्न हुआ और विशेष रूप मे कुतूहल उत्पन्न हुआ। तव अपने स्थान से उठ खडे हुए, और उठकर जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराज रहे थे, वहा आये, वहा आकर दक्षिण दिशा से प्रारम्भ कर श्रमण भगवान् महावीर की प्रदक्षिणा की। तीन वार आदक्षिण प्रदक्षिणा करके वन्दन और नमस्कार किया, वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार कहा—निवदेन किया—।'

११३—तदनन्तर—सूर्याभदेव के वापस जाने के अनन्तर—'हे भदन्त' इस प्रकार से सबोधित कर भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया। वन्दना-नमस्कार करके विनयपूर्वक इस प्रकार पूछा—

प्रश्न—हे भगवान्! सूर्याभदेव की वह सब पूर्वोक्त दिव्य देवऋद्धि दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव-प्रभाव कहा चल गया? कहाँ प्रविष्ट हो गया-समा गया?

११४—गोयमा! सरीरं गते सरीरं अणुप्पविट्ठे।

११४—उत्तर—हे गौतम! सूर्याभ देव द्वारा रचित वह सब दिव्य देव ऋद्धि आदि उसके शरीर मे चली गई, शरीर मे प्रविष्ट हो गई—समा गई, अन्तर्लीन हो गई।

११५—से केणट्ठेण भते! एव वुच्चइ सरीर गते, सरीर अणुप्पविट्ठे?

११५—प्रश्न—हे भदन्त! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि शरीर मे चली गई, शरीर मे अनुप्रविष्ट—अन्तर्लीन हो गई?

११६—गोयमा! से जहानामए कूडागारसाला सिया-दुहतो लित्ता गुत्ता गुत्तदुवारा णिवाया णिवायगंभीरा, तीसे णं कूडागारसालाए अदूरसामते एत्थ ण महेगे जणसमूहे चिट्ठति, तए ण से जणसमूहे एगं मह अब्भवद्दलग वा वासवद्दलग वा महावाय वा एज्जमाण वा पासति, पासित्ता त कूडागारसालं अंतो अणुप्पविसित्ता णं चिट्ठइ, से तेणट्ठेण गोयमा! एव वुच्चति—'सरीर अणुप्पविट्ठे'।

११६—हे गौतम! जैसे कोई एक भीतर-बाहर गोबर आदि से लिपी-पुती, बाह्य प्राकार—परकोटे—से घिरी हुई, मजबूत किवाडो से युक्त गुप्त द्वार वाली निर्वात—वायु का प्रवेश भी जिसमे दुष्कर है, ऐसी गहरी, विशाल कूटाकार—पर्वत के शिखर के आकार वाली—शाला हो। उस कूटाकार शाला के निकट एक विशाल जनसमूह बैठा हो। उस समय वह जनसमूह आकाश मे एक बहुत बडे मेघपटल को अथवा जलवृष्टि करने योग्य बादल को अथवा प्रचण्ड आधी को आता हुआ देखे तो जैसे वह उस कूटाकार शाला के अदर प्रविष्ट हो जाता है, उसी प्रकार हे गौतम! सूर्याभदेव की वह सब दिव्य देवऋद्धि आदि उसके शरीर मे प्रविष्ट हो गई—अन्तर्लीन हो गई है, ऐसा मैंने कहा है।

सूर्याभ देव के विमान का अवस्थान और वर्णन—

११७—कहि ण भते! सूरियाभस्स देवस्स सूरियाभे नाम विमाणे पन्नत्ते?

११७—हे भगवन्! उस सूर्याभदेव का सूर्याभ नामक विमान कहाँ पर कहा गया है?

११८—गोयमा! जंबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स दाहिणेण इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जातो भूमिभागातो उड्ढं चदिम-सूरिय-गहगण-नक्खत्त-तारारूवाणं बहूइं जोअणसयाइं एवं-सहस्साइ-सयसहस्साइ, बहुईओ जोअणकोडीओ, जोअणसयकोडीओ, जोअणसहस्सकोडीओ, बहुईओ जोअणसयसहस्सकोडीओ बहुईओ जोअण-कोडाकोडीओ उड्ढ दूर वीतीवइत्ता एत्थ ण सोहम्मे नाम कप्पे पन्नत्ते-पाईणपडीणायते उदीणदाहिण-वित्थिण्णे, अद्धचंदसंठाणसठिते, अच्चिमालि-

भासरासिवण्णाभे, असखेज्जाओ जोअणकोडाकोडीओ आयामविक्खभेणं, असखेज्जाओ जोअणकोडाकोडीओ परिक्खेवेण, एत्थ ण सोहम्माण देवाणं बत्तीस विमाणावासयसहस्साइं भवंति इति, मक्खाय। ते ण विमाणा सव्वरयणामया अच्छा जाव (सण्हा लण्हा, घट्ठा मट्ठा, णीरया निम्मला, निप्पंका निक्कडच्छाया सप्पभा समिरीया सउज्जोया पासादीया, दरिसणिज्जा अभिरूवा) पडिरूवा। तेसि ण विमाणाण बहुमज्झदेसभाए पच वडिसया पन्नत्ता, त जहा—असोगवडिसए सत्तवण्णवडिसए चपगवडिसए[1] चूतवडिसए मज्झे सोधम्मवडिसए। ते ण वडिसगा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा।

तस्स ण सोधम्मवडिसगस्स महाविमाणस्स पुरत्थिमेण तिरियं असखेज्जाइ जोयणसयसहस्साइ वीइवइत्ता एत्थ ण सूरियाभस्स देवस्स सूरियाभे विमाणे पण्णत्ते, अद्धतेरस जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खभेण[2], अउणयालीस च सयसहस्साइ बावन्न च सहस्साइं अट्ठ य अडयाल जोयणसते[3] परिक्खेवेण।

११८—हे गौतम! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मन्दर (सुमेरु) पर्वत से दक्षिण दिशा मे इस रत्नप्रभा पृथ्वी के रमणीय समतल भूभाग से ऊपर ऊर्ध्वदिशा मे चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण नक्षत्र और तारामण्डल से आगे भी ऊचाई मे बहुत से सैकडो योजनो, हजारो योजनो, लाखों, करोडो योजनो और सैकडो करोड, हजारो करोड, लाखो करोड योजनो, करोडो करोड योजन को पार करने के बाद प्राप्त स्थान पर सौधर्मकल्प नाम का कल्प है—अर्थात् सौधर्म नामक स्वर्गलोक है।

वह सौधर्मकल्प पूर्व-पश्चिम लम्बा और उत्तर-दक्षिण विस्तृत—चौडा है, अर्धचन्द्र के समान उसका आकार है, सूर्य किरणो की तरह अपनी द्युति—कान्ति से सदैव चमचमाता रहता है। असख्यात कोडाकोडि योजन प्रमाण उसकी लम्बाई-चौडाई तथा असख्यात कोटाकोटि योजन प्रमाण उसकी परिधि है।

उस सौधर्मकल्प मे सौधर्मकल्पवासी- देवो के बत्तीस लाख विमान बताये हैं। वे सभी विमानावास सर्वात्मना रत्नो से बने हुए स्फटिक मणिवत् स्वच्छ यावत् (सलौने, अत्यन्त चिकने, घिसे हुए, मजे हुए, नीरज, निर्मल, निष्कलक, निरावरण, दीप्ति, कान्ति, तेज और उद्योत—प्रकाशयुक्त, मन को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, मनोहर एव) अतीव मनोहर हैं।

उन विमानो के मध्यातिमध्य भाग मे—ठीक बीचोबीच—पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर इन चार दिशाओ मे अनुक्रम से अशोक-अवतसक, सप्तपर्ण-अवतसक, चपक-अवतसक, आम्र-अवतसक तथा मध्य मे सौधर्म-अवतसक, ये पाच अवतसक (मुख्य श्रेष्ठ भवन) है। ये पाचो अवतसक भी रत्नो से निर्मित, निर्मल यावत् प्रतिरूप—अतीव मनोहर है।

उस सौधर्म-अवतसक महाविमान की पूर्व दिशा मे तिरछे असख्यात लाख योजन प्रमाण आगे जाने पर आगत स्थान मे सूर्याभ देव का सूर्याभ नामक विमान है। उसका आयाम-विष्कभ (लम्बाई-चौडाई) साढे बारह लाख योजन और परिधि उनतालीस लाख बावन हजार आठ सौ अडतालीस योजन है।

१ पाठान्तर—भूतवडेंसए, भूयगवडिसते।

२ पाठान्तर—अतो तेरसय सहस्साइ आयामविक्खभेण बायालीम च सयसहस्साइ अट्ठ य अड०।

३ अउणयालीस च सयसहस्साइ अट्ठ य अडयालजोयणसते।

११६ —से णं एगेण पागारेण सव्वओ समता सपरिक्खित्ते। से ण पागारे तिण्णि जोयणसयाइ उड्ढ उच्चत्तेणं, मूले एगं जोयणसय विक्खभेण, मज्झे पन्नास जोयणाइं विक्खंभेणं, उप्पि पणवीसं जोयणाइ विक्खभेण। मूले वित्थिण्णे, मज्झे सखित्ते उप्पि तणुए, गोपुच्छसठाणसठिए सव्वरयणामए अच्छे जाव पडिरूवे।

११६—वह सूर्याभ विमान चारो दिशाओ मे सभी ओर से एक प्राकार—परकोटे से घिरा हुआ है। यह प्राकार तीन सौ योजन ऊँचा है, मूल मे इस प्राकार का विष्कम्भ (चौडाई) एक सौ योजन, मध्य मे पचास योजन और ऊपर पच्चीस योजन है। इस तरह यह प्राकार मूल मे चौडा, मध्य मे सकडा और सबसे ऊपर अल्प—पतला होने मे गोपुच्छ के आकार जैसा है। यह प्राकार सर्वात्मना रत्नो से बना होने से रत्नमय है, स्फटिकमणि के समान निर्मल है यावत् प्रतिरूप-अतिशय मनोहर है।

१२०—से ण पागारे णाणाविहपचवण्णेहिं कविसीसएहिं उपसोभिते, त जहा—कण्हेहिं य नीलेहिं य लोहितेहिं हालिद्देहिं सुक्किल्लेहिं कविसीसएहिं। ते ण कविसीसगा एग जोयण आयामेण, अद्धजोयण विक्खभेण, देसूण जोयणं उड्ढ उच्चत्तेण सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा।

१२०— वह प्राकार अनेक प्रकार के कृष्ण, नील, लोहित—लाल, हारिद्र—पीले और श्वेत इन पांच वर्णो वाले कपिशीर्षको (कगूरो) से शोभित है।

ये प्रत्येक कपिशीर्षक (कगूरे) एक-एक योजन लम्बे, आधे योजन चौडे और कुछ कम एक योजन ऊचे हैं तथा ये सब रत्नो मे बने हुए, निर्मल यावत् बहुत रमणीय है।

सूर्याभविमान के द्वारो का वर्णन—

१२१—सूरियाभस्स णं विमाणस्स एगमेगाए बाहाए दारसहस्स दारसहस्स भवतीति मक्खाय।

ते ण दारा पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेण अड्ढाइज्जाइ जोयणसयाइ विक्खभेण तावइय चेव पवेसेणं, सेया वरकणगथूभियागा ईहामिय-उसभ-तुरग-णर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलयभत्ति-चित्ता, खंभुग्गयवरवयरवेइयापरिगयाभिरामा, विज्जाहरजमलजुयलजतजुत्ता विव, अच्चीसहस्समालणीया रूवगसहस्सकलिया, भिसमाणा भिब्भिसमाणा, चक्खुल्लोयणलेसा, सुहफासा सस्सिरीय रूवा।

वन्नो दाराण तेसिं होइ—त जहा—वइरामया णिम्मा, रिट्ठामया पइट्ठाणा, वेरुलियमया खमा, जायरूवोवचिय-पवरपचवन्न-मणिरयण-कोट्टिमतला, हसगब्भमया एलुया, गोमेज्जमया इदकीला, लोहियक्खमतीतो चेडाओ, जोईरसमया उत्तरगा, लोहियक्खमईओ सूईओ, वयरामया सधी, नाणामणिमया समुग्गया, वयरामया अग्गला-अग्गलपासाया, रययामयाओ आवत्तणपेढियाओ। अकुत्तरपासगा, निरतरियघणकवाडा भित्तीसु चेव भित्तिगुलिता छपन्ना तिण्णि होति गोमाणसिया तत्तिया णाणामणिरयणवालरूवगलीलट्ठिअसाल-भजियागा, वयरामया कूडा, रययामया उस्सेहा, सव्वतवणिज्जमया उल्लोया, णाणामणिरयणजालपजर-मणिवसगलोहियक्खपडिवसगरययभोमा, अकामया पक्खा-पक्खवाहाओ, जोईरसामया वसा-वसकवेल्लुयाओ, रययामईओ पट्टियाओ, जायरूवमईओ ओहाडणीओ, वइरामईओ उवरिपुञ्छणीओ, सव्वसेयरययामये छायणे, अकमयकणगकूडतवणिज्जथूभियागा, सेया संखतलविमलनिम्मलदधिघण-गोखीर-फेणरययणिगरप्पगासा तिलगरयणद्धचद-

चित्ता[1] नाणामणिदामालंकिया, अतो बहिं च सण्हा तवणिज्जवालुया पत्थडा, सुहफासा, सस्सिरीय-रूवा, पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

१२१—सूर्याभदेव के उस विमान की एक-एक बाजू मे एक-एक हजार द्वार कहे गये हैं, अर्थात् उस विमान की पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण इन चारो दिशाओ मे से प्रत्येक मे एक-एक हजार द्वार है।

ये प्रत्येक द्वार पाँच-पाँच सौ योजन ऊँचे है, अढाई सौ योजन चौडे है और इतना ही (अढाई सौ योजन) इनका प्रवेशन—गमनागमन के लिए घुसने का स्थान—है। ये सभी द्वार श्वेत वर्ण के हैं। उत्तम स्वर्णमयी स्तूपिकाओ—शिखरो से सुशोभित है। उन पर ईहामृग, वृषभ, अश्व, नर, मकर विहग, सर्प, किन्नर, रुरु, सरभ-अष्टापद चमर, हाथी, वनलता, पद्मलता आदि के चित्राम चित्रित हैं।

स्तम्भो पर बनी हुई वज्र रत्नो की वेदिका से युक्त होने के कारण रमणीय दिखाई पडते हैं। समश्रेणी मे स्थित विद्याधरो के युगल यन्त्र द्वारा चलते हुए-से दीख पडते हैं। वे द्वार हजारो किरणो से व्याप्त और हजारो रूपको—चित्रो से युक्त होने से दीप्यमान और अतीव देदीप्यमान हैं। देखते ही दर्शको के नयन उनमे चिपक जाते है। उनका स्पर्श सुखप्रद है। रूप शोभासम्पन्न है।

उन द्वारो का वर्ण-स्वरूपवर्णन इस प्रकार है—

उन द्वारो के नेम (भूभाग से ऊपर निकले प्रदेश) वज्ररत्नो से, प्रतिष्ठान (मूल पाये) रिष्ट रत्नो से—स्तम्भवैडूर्य मणियो से तथा तलभाग स्वर्णजडित पचरगे मणि रत्नो से बने हुए हैं। इनकी देहलियाँ हसगर्भ रत्नो की, इन्द्रकीलियाँ गोमेदरत्नो की, द्वारशाखाये लोहिताक्ष रत्नो की, उत्तरग (ओतरग—द्वार के ऊपर पाटने के लिये तिरछा रखा पाटिया) ज्योतिरस रत्नो के, दो पाटियो को जोडने के लिये ठोकी गई कीलियाँ लोहिताक्षरत्नो की हैं और उनकी साधें वज्ररत्नो से भरी हुई है। समुद्गक (कीलियो का ऊपरी हिस्सा—टोपी) विविध मणियो के है। अर्गलायें अर्गलापाशक (कुदा) वज्ररत्नो के है। आवर्तन पीठिकायें (इन्द्रकीली का स्थान) चाँदी की है। उत्तरपार्श्वक (वेनी) अक रत्नो के हैं। इनमे लगे किवाड इतने सटे हुए सघन हैं कि वन्द करने पर थोडा-सा भी अन्तर नही रहता है। प्रत्येक द्वार की दोनो बाजुओ की भीतो मे एक सौ अड़सठ-एक सौ अडसठ सब मिलाकर तीन सौ छप्पन भित्तिगुलिकायें (देखने के लिये गोल-गोल गुप्त झरोखे) हैं और उतनी ही गोमानसिकायें—बैठकें हैं—प्रत्येक द्वार पर अनेक प्रकार के मणि रत्नमयी व्यालरूपो—सर्पो-से क्रीड़ा करती पुतलियाँ बनी हुई हैं। अथवा सर्परूप धारिणी अनेक प्रकार के मणि-रत्नो से निर्मित क्रीडा करती हुई पुतलियाँ इन द्वारो पर बनी हुई हैं। इनके माड वज्ररत्नो के और माड के शिखर चाँदी के हैं और द्वारो के ऊपरी भाग स्वर्ण के हैं। द्वारो के जालीदार झरोखे भाँति-भाँति के मणि-रत्नो से बने हुए है। मणियो के बासो का छप्पर है और बासो को बाँधने की खपच्चियाँ लोहिताक्ष रत्नो की हैं। रजतमयी भूमि है अर्थात् छप्पर पर चाँदी की परत बिछी हुई है। उनकी पाखें और पाखो की बाजुयें अकरत्नो की हैं। छप्पर के नीचे सीधी और आडी लगी हुई वल्लियाँ तथा कवेलू ज्योतिरस—रत्नमयी है। उनकी पाटियाँ चाँदी की हैं। अवघाटनियाँ (कवेलुओ के ढक्कन) स्वर्ण की बनी हुई हैं। ऊपरि

१ पाठान्तर—सङ्खतल-विमल निम्मल-दहिघण-गोखीरफेण-रययनियरप्पगासद्धचन्दचित्ताइ।

प्रोञ्छनियाँ (टाटियाँ) वज्ररत्नो की है। टाटियो के ऊपर और कवेलुओ के नीचे के आच्छादन सर्वात्मना श्वेत-धवल और रजतमय हैं। उनके शिखर अकरत्नो के हैं और उन पर तपनीय—स्वर्ण की स्तूपिकाये बनी हुई हैं। ये द्वार शख के समान विमल, दही एव दुग्धफेन और चाँदी के ढेर जैसी श्वेत प्रभा वाले हैं। उन द्वारो के ऊपरी भाग मे तिलकरत्नो से निर्मित अनेक प्रकार के अर्धचन्द्रो के चित्र बने हुए हैं। अनेक प्रकार की मणियो की मालाओ से अलंकृत है। वे द्वार अन्दर और बाहर अत्यन्त स्निग्ध और सुकोमल हैं। उनमे सोने के समान पीली बालुका बिछी हुई है। सुखद स्पर्श वाले रूप-शोभासम्पन्न, मन को प्रसन्न करने वाले, देखने योग्य, मनोहर और अतीव रमणीय हैं।

१२२—तेसि णं दाराणं उभओ पासे दुहओ निसीहियाए सोलस सोलस चंदणकलस-परिवाडीओ पन्नत्ताओ, ते णं चंदणकलसा वरकमल-पइट्ठाणा सुरभिवरवारिपडिपुण्णा, चदण-कयचच्चागा, आविद्ध कठे गुणा, पउमुप्पलपिहाणा सव्वरयणामया, अच्छा जाव[1] पडिरूवगा महया-महया इंदकुंभसमाणा पन्नत्ता समणाउसो !

१२२—उन द्वारो की दोनो बाजुओ की दोनो निशीधिकाओ (बैठको) मे सोलह-सोलह चन्दन-कलशो की पक्तियाँ है, अर्थात् उन द्वारो की दायी बायी बाजू की एक-एक बैठक मे पक्तिबद्ध सोलह-सोलह चन्दनकलश स्थापित हैं।

ये चन्दनकलश श्रेष्ठ उत्तम कमलो पर प्रतिष्ठित—रखे है, उत्तम सुगन्धित जल से भरे हुए है, चन्दन के लेप से चर्चित-मडित, विभूषित हैं, उनके कठो मे कलावा (रक्तवर्ण सूत) बधा हुआ है और मुख पद्मोत्पल के ढक्कनो से ढके हुए हैं। हे आयुष्मन् श्रमणो ! ये सभी कलश सर्वात्मना रत्नमय हैं, निर्मल यावत् बृहत् इन्द्रकुभ जैसे विशाल एव अतिशय रमणीय है।

१२३—तेसि ण दाराण उभओ पासे दुहओ णिसीहियाए सोलस-सोलस णागदन्तपरिवाडीओ पन्नत्ताओ।

ते ण णागदता मुत्ताजालंतरुसियहेमजाल-गवक्खजाल-खिखिणीघटाजाल-परिक्खित्ता अब्भुग्गया अभिणिसिट्ठा तिरियं सुसपरिग्गहिया अहेपन्नगद्धरूवा, पन्नगद्धसंठाणसठिया, सव्ववय-रामया अच्छा जाव[2] पडिरूवा महया महया गयदतसमाणा पन्नत्ता समणाउसो !

१२३—उन द्वारो की उभय पार्श्ववर्ती दोनो निशीधिकाओ मे सोलह-सोलह नागदन्तो (खूटियो-नकूचो) की पक्तियाँ कही है।

ये नागदन्त मोतियो और सोने की मालाओ मे लटकती हुई गवाक्षाकार (गाय की आँख) जैसी आकृति वाले घु घरुओ से युक्त, छोटी-छोटी घटिकाओ से परिवेष्टित—व्याप्त, घिरे हुए हैं। इनका अग्रभाग ऊपर की ओर उठा और दीवाल से बाहर निकलता हुआ है एव पिछला भाग अन्दर दीवाल मे अच्छी तरह से घुसा हुआ है और आकार सर्प के अधोभाग जैसा है। अग्रभाग का सस्थान सर्पार्ध के समान है। वे वज्ररत्नो से बने हुए हैं। हे आयुष्मन् श्रमणो ! बडे-बडे गजदन्तो जैसे ये नागदन्त अतीव स्वच्छ, निर्मल यावत् प्रतिरूप—अतिशय शोभाजनक है।

१-२. देखें सूत्र सख्या ११८

१२४—तेसु णं णागदंतएसु बहवे किण्हसुत्तबद्धा वग्घारितमल्लदामकलावा णील-लोहित-हालिद्द-सुक्किलसुत्तबद्धा वग्घारितमल्लदामकलावा। ते णं दामा तवणिज्जलबूसगा, सुवन्नपयरग-मंडिया नाणाविहमणिरयणविविहहारउवसोभियसमुदया जाव (ईसिं अण्णमण्णम-संपत्ता, वाएहिं पुव्वावरदाहिणुत्तरागएहिं मदायं मदायं एज्जमाणाणि एज्जमाणाणि पलंबमाणाणि पलंबमाणाणि वदमाणाणि वदमाणाणि उरालेण मणुन्नेण मणहरेणं कण्ण-मणणिव्वुतिकरेण सद्देणं ते पएसे सव्वओ समता आपूरेमाणा आपूरेमाणा) सिरीए अईव अईव उवसोभेमाणा चिट्ठंति।

१२४—इन नागदन्तो पर काले सूत्र से गूंथी हुई तथा नीले, लाल, पीले और सफेद डोरे से गूंथी हुई लंबी-लंबी मालायें लटक रही हैं। वे मालायें सोने के झूमको और सोने के पत्तो से परिमंडित तथा नाना प्रकार के मणि-रत्नो से रचित विविध प्रकार के शोभनीक हारो—अर्धहारो के अभ्युदय यावत् (पास-पास टंगे होने से पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर की हवा के मंद-मंद झोको से हिलने-डुलने और एक दूसरे से टकराने पर विशिष्ट, मनोज्ञ, मनहर, कर्ण और मन को शाति प्रदान करने वाली ध्वनि से समीपवर्ती समस्त प्रदेश को व्याप्त करते हुए) अपनी श्री-शोभा से अतीव-अतीव उपशोभित हैं।

१२५—तेसि णं णागदंताणं उवरिं अन्नाओ सोलस-सोलस नागदंतपरिवाडीओ पन्नत्ता, ते णं णागदंता तं चेव जाव गयदंतसमाणा पन्नत्ता समाणाउसो! तेसु णं णागदंतएसु बहवे रययामया सिक्कगा पन्नत्ता, तेसु णं रययामएसु सिक्कएसु बहवे वेरुलियामईओ धूवघडीओ पण्णत्ताओ, ताओ णं धूवघडीओ कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवमघमघंतगंधुद्धुयाभिरामाओ सुगंधवरगंधियाओ गंधवट्टिभूयाओ ओरालेण मणुण्णेणं मणहरेण घाणमणणिव्वुइकरेणं गंधेणं ते पदेसे सव्वओ समता आपूरेमाणा आपूरेमाणा जाव (सिरीए अतीव अतीव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा) चिट्ठंति।

१२५—इन नागदंतो के भी ऊपर अन्य-दूसरी सोलह-सोलह नागदन्तो की पंक्तियाँ कही हैं। हे आयुष्मन् श्रमणो! पूर्ववर्णित नागदंतो की तरह ये नागदंत भी यावत् विशाल गजदंतो के समान हैं।

इन नागदन्तो पर बहुत से रजतमय शीके (छीके) लटके है। इन प्रत्येक रजतमय शीको मे वैडूर्य-मणियो से बनी हुई धूप-घटिकायें रखी है।

ये धूपघटिकायें काले अगर, श्रेष्ठ कुन्दरुष्क, तुरुष्क (लोभान) और सुगंधित धूप के जलने से उत्पन्न मघमघाती मनमोहक सुगन्ध के उडने एवं उत्तम सुरभि-गंध की अधिकता से गंधवर्तिका के जैसी प्रतीत होती हैं तथा सर्वोत्तम, मनोज्ञ, मनोहर, नासिका और मन को तृप्तिप्रदायक गंध से उस प्रदेश को सब तरफ से अधिवासित करती हुई यावत् अपनी श्री से अतीव-अतीव शोभायमान हो रही हैं।

द्वारस्थित पुतलियां

१२६—तेसि णं दाराणं उभओ पासे दुहओ णिसीहियाए सोलस सोलस सालभंजिया-परिवाडीओ पन्नत्ताओ, ताओ णं सालभंजियाओ लीलट्ठियाओ, सुपइट्ठियाओ, सुअलंकियाओ, णाणा-विहरागवसणाओ, णाणामल्लपिणद्धाओ, मुट्ठिगिज्झसुमज्झाओ, आमेलगजमलजुयल-वट्टिय-अब्भुन्नय

पीणरइयसंठियपीवरपओहराओ, रत्तावगाओ, असियकेसीओ मिउविसयपसत्थ-लक्खणसंवेल्लियग्ग-सिरयाओ ईसिं असोगवरपायवसमुट्ठियाओ वामहत्थग्गहियग्गसालाओ ईसिं अद्धच्छिकडक्ख-चिट्ठिएण लूसमाणीओ विव चक्खुल्लोयणलेसेहि य अन्नमन्नं खिज्जमाणीओ विव पुढविपरिणामाओ, सासयभावमुवगयाओ, चन्दाणणाओ, चन्दविलासिणीओ, चदद्धसमणिडालाओ, चंदाहियसोमदसणाओ, उक्का विव उज्जोवेमाणाओ, विज्जुघणमिरियसूरदिप्पंततेयअहियथरसन्निकासाओ सिंगारागार-चारुवेसाओ पासाइयाओ जाव (दरिसणिज्जाओ अभिरूवाओ पडिरूवाओ) चिट्ठ ति ।

१२६—उन द्वारो की दोनो बाजुओ की निशीधिकाओ (बैठको) मे सोलह-सोलह पुतलियो की पक्तियाँ हैं ।

ये पुतलियाँ विविध प्रकार की लीलाये—(क्रीडायें) करती हुई, सुप्रतिष्ठित-मनोज्ञ रूप से स्थित सब प्रकार के आभूषणो—अलकारो से शृ गारित, अनेक प्रकार के रग-बिरगे परिधानो—वस्त्रो एव मालाओ से शोभायमान, मुट्ठी प्रमाण (मुट्ठी मे समा जाने योग्य) कृश—पतले मध्य भाग (कटि प्रदेश) वाली, शिर पर ऊँचा अवाडा—जूडा बाधे हुए और समश्रेणि मे स्थित है । वे सहवर्ती, अभ्यु-न्नत—ऊँचे, परिपुष्ट-मासल, कठोर, भरावदार—पीवर—स्थूल गोलाकार पयोधरो—स्तनो वाली, लालिमा युक्त नयनान्तभाग वाली, सुकोमल, अतीव निर्मल, शोभनीक सघन घु घराली काली-काली कजरारी केशराशि वाली, उत्तम अशोक वृक्ष का सहारा लेकर खडी हुईं और बाये हाथ से अग्र शाखा को पकडे हुए, अर्ध निमीलित नेत्रो की ईषत् वक्र कटाक्ष-रूप चेष्टाओ द्वारा देवो के मनो को हरण करती हुई-सी और एक दूसरे को देखकर परस्पर खेद-खिन्न होती हुई-सी, पार्थिवपरिणाम (मिट्टी से बनी)होने पर भी शाश्वत—नित्य विद्यमान, चन्द्रार्धतुल्य ललाट वाली, चन्द्र से भी अधिक सौम्य काति वाली, उल्का—खिरते तारे के प्रकाश पु ज की तरह उद्योत वाली—चमकीली विद्युत् (मेघ की बिजली) की चमक एव सूर्य के देदीप्यमान तेज से भी अधिक प्रकाश-प्रभावाली, अपनी सुन्दर वेशभूषा से शृ गार रस के गृह-जैसी और मन को प्रसन्न करने वाली यावत अतीव (दर्शनीय, मनोहर अतीव रमणीय) है ।

१२७—तेसिण दाराण उभओ पासे दुहओ णिसीहियाए सोलस सोलस जालकडगपरिवडीओ पन्नत्ता, ते ण जालकडगा सव्वरयणामया अच्छा जाव[1] पडिरूवा ।

१२७—इन द्वारो की दोनो बाजुओ की दोनो निषीधिकाओ मे सोलह-सोलह जालकटक (जाली झरोखो से बने प्रदेश) है, ये प्रदेश सर्वरत्नमय, निर्मल यावत् अत्यन्त रमणीय हैं ।

१२८—तेसि णं दाराण उभओ पासे दुहओ निसीहियाए सोलस सोलस घटापरिवाडीओ पन्नत्ता, तासि ण घटाणं इमेयारूवे वन्नावासे पन्नत्ते, तं जहा—

जवूणयामईओ घटाओ, वयरामयाओ, लालाओ णाणामणिमया घटापासा, तवणिज्जामइयाओ सखलाओ, रययामयाओ रज्जूओ ।

ताओ ण घटाओ ओहस्सराओ, मेहस्सराओ, हंसस्सराओ कु चस्सराओ, सीहस्सराओ, दु दुहिस्सराओ, णदिघोसाओ, मजुस्सराओ, मजुघोसाओ, सुस्सराओ, सुस्सरघोसाओ उरालेण मणुन्नेण

---

१ देखे सूत्र सख्या, ११८

मणहरेण कन्नमणनिव्वुइकरेणं सद्देणं ते पदेसे सव्वम्रो समंता आपूरेमाणाम्रो आपूरेमाणाम्रो जाव (सिरीए म्रईव अईव उवसोभेमाणा) चिट्ठ ति ।

१२८—इन द्वारो की उभय पार्श्ववर्ती दोनो निषीधिकाम्रो मे सोलह-सोलह घटाओ की पक्तियाँ कही गई है ।

उन घटाम्रो का वर्णन इस प्रकार है—वे प्रत्येक घटे जाम्बूनद स्वर्ण से वने हुए हैं, उनके लोलक वज्ररत्नमय है, भीतर म्रौर वाहर दोनो वाजुम्रो मे विविध प्रकार के मणि जडे हैं, लटकाने के लिये वधी हुई साँकले सोने की म्रौर रस्सियाँ (डोरिया) चाँदी की हैं ।

मेघ की गडगडाहट, हसस्वर, क्रौचस्वर, सिहगर्जना, दुन्दुभिनाद, वाद्यसमूहनिनाद, नन्दि-घोष, मजुस्वर, मजुघोष, सुस्वर, सुस्वरघोष जैसी ध्वनिवाले वे घटे म्रपनी श्रेष्ठ—सुन्दर मनोज्ञ, मनोहर कर्ण म्रौर मन को प्रिय, सुखकारी झनकारो से उस प्रदेश को चारो म्रोर से व्याप्त करते हुए म्रतीव म्रतीव शोभायमान हो रहे है ।

१२९—तेसि ण दाराण उभम्रो पासे दुहम्रो णिसीहियाए सोलस सोलस वणमालापरिवाडीम्रो पन्नत्ताम्रो, ताम्रो ण वणमालाम्रो णाणामणिमयदुमलयकिसलयपल्लवसमाउलाम्रो छप्पयपरिभुज्ज-माणसोहत सस्सिरीयाम्रो पासाईयाओ, दरिसणिज्जाम्रो म्रभिरूवाम्रो पडिरूवाम्रो ।

१२९—उन द्वारो की दोनो वाजुम्रो की दोनो निषीधिकाम्रो मे सोलह-सोलह वनमालाम्रो की परिपाटिया—पक्तियाँ कही है ।

ये वनमालायें म्रनेक प्रकार की मणियो से निर्मित द्रुमो—वृक्षो, पौधो, लताम्रो किसलयो (नवीन कोपलो) म्रौर पल्लवो—पत्तो से व्याप्त हैं । मधुपान के लिये वारवार पटपदो—भ्रमरो के द्वारा स्पर्श किये जाने से सुशोभित ये वनलताये मन को प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय, म्रभिरूप, एव प्रतिरूप है ।

१३०—तेसि ण दाराण उभम्रो पासे दुहम्रो णिसीहियाए सोलस-सोलस पगठगा पन्नत्ता । ते ण पगठगा म्रड्डाइज्जाइ जोयणसयाइं म्रायामविक्खमेण, पणवीस जोयणसय बाहल्लेण, सव्ववयरामया म्रच्छा जाव[1] पडिरूवा ।

१३०—इन द्वारो की उभय पार्श्ववर्ती दोनो निषीधिकाम्रो मे सोलह-सलह प्रकठक(वेदिका रूप पीठविशेष, चबूतरा) हैं ।

ये प्रत्येक प्रकठक म्रढाई सौ योजन लबे, म्रढाई सौ योजन चौडे म्रौर सवा सौ योजन मोटे हैं तथा सर्वात्मना रत्नो से बने हुए, निर्मल यावत् म्रतीव रमणीय हैं ।

१३१—तेसि ण पगंठगाणं उवरिं पत्तेयं पत्तेय पासायवडेंसगा पन्नत्ता । ते णं पासायवडेंसगा म्रड्ढाइज्जाइ जोयणसयाइ उड्ढ उच्चत्तेण, पणवीस जोयणसय विक्खमेणं, म्रब्भुग्गयमूसिम्रपहसिया विव, विविहमणिरयणभत्तिचित्ता, वाउद्धुयविजय-वेजयतपडागच्छत्ताइछत्तकलिया, तुंगा, गगण-

---

१ देखें सूत्र सख्या ११८

तलमणुलिहतसिहरा, जालतररयणपंजरुम्मिलिय व्व, मणिकणगथूभियागा, वियसियसयवत्तपोंडरीय-तिलगरयणद्धचंदचित्ता, णाणामणिदामालंकिया अतो बहिं च सण्हा तवणिज्जवालुया-पत्थडा सुहफासा सस्सिरीयरूवा पासादीया दरिसणिज्जा जाव दामा।

१३१—उन प्रकण्ठको के ऊपर एक-एक प्रासादावतसक (श्रेष्ठमहल-विशेष) है।

ये प्रासादावतसक ऊँचाई मे अढाई सौ योजन ऊँचे और सवा सौ योजन चौडे हैं, चारो दिशाओ मे व्याप्त अपनी प्रभा से हँसते हुए से प्रतीत होते है। विविध प्रकार के मणि-रत्नो से इनमे चित्र-विचित्र रचनाये बनी हुई हैं। वायु से फहराती हुई, विजय को सूचित करने वाली वैजयन्ती-पताकाओ एव छत्रातिछत्रो (एक दूसरे के ऊपर रहे हुए छत्रो) से अलकृत हैं, अत्यन्त ऊँचे होने से इनके शिखर मानो आकाशतल का उल्लघन करते है। विशिष्ट शोभा के लिये जाली-झरोखो मे रत्न जडे हुए हैं। वे रत्न ऐसे चमकते हैं मानो तत्काल पिटारो से निकाले हुए हो। मणियो और स्वर्ण से इनकी स्तूपिकायें निर्मित (शिखर) हैं। तथा स्थान-स्थान पर विकसित शतपत्र एव पु डरीक कमलो के चित्र और तिलकरत्नो से रचित अर्धचन्द्र बने हुए हैं। वे नाना प्रकार की मणिमय मालाओ से अलकृत है। भीतर और बाहर से चिकने—कमनीय है। प्रागणो मे स्वर्णमयी बालुका बिछी हुई है, इनका स्पर्श सुखप्रद है। रूप शोभासम्पन्न है। देखते ही चित्त मे प्रसन्नता होती है, वे दर्शनीय हैं। यावत् मुक्तादामो आदि से सुशोभित हैं।

विवेचन—'जाव दामा' पद से यह सूचित किया है कि यानविमान के प्रसग मे जिस तरह उसकी अन्तर्भू मि, प्रेक्षागृह मडप, रगमच, सिंहासन, विजय दूष्य, वज्राकु श एव मुक्तादामो का वर्णन किया है, उसी प्रकार समस्त वर्णन यहाँ भी समझ लेना चाहिये।

सक्षेप मे उक्त वर्णन का साराश इस प्रकार है—

इन प्रासादावतसको का अन्तर्वर्ती भूभाग आलिंग पुष्कर, मृदगपुष्कर सूर्यमडल, चन्द्रमडल अथवा कीलो को ठोक और चारो ओर से खीचकर सम किये गये भेड, बैल, सुअर, सिंह आदि के चमडे के समान अतीव सम, रमणीय है एव अनेक प्रकार के शुभ लक्षणो तथा आकार प्रकार वाले काले, पीले, नीले आदि वर्णों की मणियो से उपशोभित है।

प्रत्येक प्रासादावतसक के उस समभूमि भाग के बीचो-बीच वेदिकाओ, तोरणो, पुतलियो आदि से अलकृत प्रेक्षागृहमडप बने हुए हैं और उन मडपो के भी मध्यभाग मे स्थित मणिपीठिकाओ पर ईहामृग, वृषभ, अश्व, नर, मगर आदि-आदि के चित्रामो से युक्त स्वर्ण-मणि रत्नो से बने हुए सिंहासन रखे हैं।

सिंहासनो के ऊपरी भाग मे शख, कु द-पुष्प, क्षीरोदधि के फेनपु ज आदि के सदृश श्वेतधवल विजयदूष्य बधे हैं और उनके बीचो बीच वज्ररत्नो से बने हुए अकु श लगे है।

उन अकु शो मे कु भप्रमाण, अर्धकु भ प्रमाण जैसे बडे-बडे मुक्तादाम (झूमर) लटक रहे हैं। ये सभी दाम सोने के लवूसको, मणि रत्नमयी हारो—अर्धहारो से परिवेष्टित हैं तथा हवा के झोको से परस्पर एक-दूसरे से टकराने पर कर्णप्रिय ध्वनि से समीपवर्ती प्रदेश को व्याप्त करते हुए असाधारण रूप से सुशोभित हो रहे हैं।

द्वारो के उभय पार्श्ववर्ती तोरण

१३२—तेसि ण दाराणं उभओ पासे सोलस सोलस तोरणा पन्नत्ता, णाणामणिमया णाणामणिमएसु खंभेसु उवणिविट्ठसन्निविट्ठा जाव[1] पउम-हत्थगा ।

तेसि ण तोरणाणं पत्तेय पुरओ दो दो सालभजियाओ पन्नत्ताओ, जहा हेट्ठा तहेव[2] ।

तेसि ण तोरणाण पुरओ नागदता पन्नत्ता, जहा हेट्ठा जाव[3] दामा ।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो-दो हयसघाडा गयसंघाडा, नरसघाडा, किन्नरसघाडा, किंपुरिससघाडा, महोरगसघाडा, गधव्वसघाडा, उसभसघाडा, सव्वरयणामया अच्छा जाव[4] पडिरूवा, एव पतीओ वीही मिहुणाइ ।

तेसि ण तोरणाण दो दो पउमलयाओ जाव[5] (नागलयाओ, असोगलयाओ, चपगलयाओ, चूयलयाओ, वणलयाओ, वासतियलयाओ, अइमुत्तयलयाओ कुंदलयाओ) सामलयाओ, णिच्च कुसुमियाओ सव्वरयणामया अच्छा जाव[5] पडिरूवा ।

तेसि णं तोरणाण पुरओ दो-दो दिसा-सोवत्थिया पन्नत्ता, सव्वरयणामया अच्छा जाव[6] पडिरूवा ।

तेसि ण तोरणाण पुरतो दो-दो चदणकलसा पन्नत्ता, ते णं चंदणकलसा वरकमलपइट्ठाणा तहेव[7] ।

तेसि ण तोरणाण पुरतो भिंगारा पन्नत्ता, ते ण भिंगारा वरकमलपइट्ठाणा जाव[8] महया मत्तगयमुहागितिसमाणा पन्नत्ता समणाउसो !

तेसि णं तोरणाण पुरओ दो-दो आयंसा पन्नत्ता, तेसि ण आयसाण इमेयारूवे वन्नावासे पन्नत्ते, तजहा—तवणिज्जमया पगंठगा, अंकमया मडला, अणुग्घसितनिम्मलाए छायाए समणुबद्धा, चंदमडलपडिणिकासा, महया-महया अद्धकायसमाणा पन्नत्ता समणाउसो !

तेसि ण तोरणाण पुरओ दो-दो वइरनाभथाला पन्नत्ता, अच्छतिच्छडियसालितदुलणहसविट्ठपडिपुन्ना इव चिट्ठ ति सव्वजंबूणयमया जाव[9] पडिरूवा महया-महया रहचक्कवालसमाणा पन्नत्ता समणाउसो !

तेसि णं तोरणाण पुरओ दो-दो पाईओ, ताओ ण पाईओ सच्छोदगपरिहत्थाओ, णाणाविहस्स फलहरियगस्स बहुपडिपुन्नाओ विव चिट्ठ ति, सव्वरयणामईओ अच्छा जाव[10] पडिरूवाओ महया-महया गोकलिंजरचक्कसमाणीओ पन्नत्ताओ समणाउसो !

तेसि ण तोरणाण पुरओ दो दो सुपइट्ठा पन्नत्ता णाणाविहभंडविरइया इव चिट्ठ ति सव्वरयणामया अच्छा जाव[11] पडिरूवा ।

तेसि ण तोरणाण पुरओ दो-दो मणोगुलियाओ पन्नत्ताओ, तासु णं मणोगुलियासु बहवे सुवन्न-रुप्पमया फलगा पन्नत्ता, तेसु णं सुवन्नरुप्पमएसु फलगेसु बहवे वयरामया नागदंतया पन्नत्ता, तेसु ण वयरामएसु णागदतएसु बहवे वयरामया सिक्कगा पन्नत्ता, तेसु ण वयरामएसु सिक्कगेसु किण्ह-

१-२ देखें सूत्र सख्या १२६ । ३—देखें सूत्र सख्या १२३ ४—देखें सूत्र सख्या ११८ । ५-६ देखें सूत्र ११८
७-८—देखें सूत्र सख्या ११२ ९-१०-११—देखें सूत्र सख्या ११८

सुत्तसिक्कगवच्छिया णीलसुत्तसिक्कगवच्छिया, लोहियसुत्तसिक्कगवच्छिया हालिद्दसुत्तसिक्कगवच्छिया, सुक्किल्लसुत्तसिक्कगवच्छिया वहवे वायकरगा पन्नत्ता सव्ववेरुलियमया अच्छा जाव[1] पडिरूवा ।

तेसि ण तोरणाण पुरओ दो दो चित्ता रयणकरडगा पन्नत्ता, से जहाणामए रन्नो चाउरत-चक्कवट्टिस्स चित्ते रयणकरडए वेरुलियमणिफलिहपडलपच्चोयडे साते पहाते ते पतेसे सव्वतो समता श्रोभा सति उज्जोवेति तवति पभासति, एवमेव ते वि चित्ता रयणकरडगा साते पभाते ते पएसे सव्वश्रो समता श्रोभासति, उज्जोवेंति, तवति पभासंति ।

तेसि ण तोरणाण पुरओ दो दो हयकठा, गयकठा, नरकंठा, किन्नरकठा, किंपुरिसकंठा, महोरगकंठा, गंधव्वकठा, उसभकठा सव्वरयणामया अच्छा जाव[2] पडिरूवा ।

तेसि णं तोरणाण पुरश्रो दो-दो पुप्फचगेरीश्रो, मल्लचगेरीश्रो, चुन्नचंगेरीश्रो, गधचगेरीश्रो, वत्थचगेरीश्रो, श्राभरणचगेरीश्रो, सिद्धत्थचगेरीश्रो लोमहत्थचगेरीश्रो पन्नत्ताश्रो सव्वरयणामयाश्रो अच्छाश्रो जाव[3] पडिरूवाश्रो ।

तेसि ण तोरणाणं पुरश्रो दो दो पुप्फपडलगाइ जाव लोमहत्थपडलगाइ सव्वरयणामयाइ अच्छाइ जाव[4] पडिरूवाइं ।

तेसि ण तोरणाण पुरश्रो दो दो सीहासणा पण्णत्ता, तेसि ण सीहासणाण वण्णश्रो जाव[5] दामा ।

तेसि ण तोरणाणं पुरश्रो दो दो रुप्पमया छत्ता पन्नत्ता, ते ण छत्ता वेरुलियविमलदडा, जवूणयकन्निया, वइरसधी, मुत्ताजालपरिगया, श्रट्ठसहस्सवरकचणसलागा, दद्दरमलयसुगधिसव्वो-उयसुरभिसीयलच्छाया, मंगलभत्तिचित्ता, चदागारोवमा ।

तेसि ण तोरणाण पुरओ दो दो चामराश्रो पन्नत्ताश्रो, ताश्रो ण चामराश्रो चदप्पभवेरुलिय-वयरनानामणिरयणखचियचित्तदण्डाश्रो[6] सुहुमरययदीहवालातो संखककु ददगरयश्रमयमहियफेण-पु जसन्निगासातो, सव्वरयणामयाओ, अच्छाश्रो जाव पडिरूवाश्रो ।

तेसि ण तोरणाण पुरश्रो दो दो तेल्लसमुग्गा, पत्तसमुग्गा, चोयगसमुग्गा, तगरसमुग्गा, एला-समुग्गा, हरियालसमुग्गा, हिंगुलयसमुग्गा, मणोसिलासमुग्गा, अजणसमुग्गा, सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा ।

१३२—उन द्वारो के दक्षिण और वाम-दोनो पार्श्वों मे सोलह-सोलह तोरण है ।

वे सभी तोरण नाना प्रकार के मणिरत्नो से वने हुए है तथा विविध प्रकार की मणियो से निर्मित स्तम्भों के ऊपर अच्छी तरह वन्धे है यावत् पद्म-कमलो के झूमको-गुच्छो से उपशोभित हैं ।

उन तोरणो मे से प्रत्येक के आगे दो-दो पुतलिया स्थित हैं । पुतलियो का वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए ।

१-२-३-४ देखें सूत्र सख्या ११८

५ सिंहासन के वर्णन के लिये देखें सूत्र सख्या ४८, ४९, ५०, ५१ ।

६ पाठान्तर—णाणामणिकणगरयणविमलमहरिहतवणिज्जुज्जलविचित्तदडाश्रो चिल्लियाश्रो ।

उन तोरणो के आगे दो-दो नागदन्त (खू टे) हैं। मुक्तादाम पर्यन्त इनका वर्णन पूर्ववर्णित नागदन्तो के समान जानना चाहिये।

उन तोरणो के आगे दो-दो अश्व, गज, नर, किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गन्धर्व और वृषभ सघाट (युगल) हैं। ये सभी रत्नमय, निर्मल यावत् असाधारण रूप-सौन्दर्य वाले हैं। इसी प्रकार से इनकी पक्ति (श्रेणी) वीथि[1] और मिथुन (स्त्री-पुरुषयुगल) स्थित हैं।

उन तोरणो के आगे दो-दो पद्मलताये यावत् (नागलतायें, अशोकलताये, चम्पकलतायें, आम्रलताये, वनलतायें, वासन्तीलताये, अतिमुक्तकलताये, कु दलताये) श्यामलताये हैं। ये सभी लतायें पुष्पो से व्याप्त और रत्नमय, निर्मल यावत् असाधारण मनोहर हैं।

उन तोरणो के अग्र भाग मे दो-दो दिशा-स्वस्तिक रखे हैं, जो सर्वात्मना रत्नो से बने हुए, निर्मल यावत् (मन को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप-मनोहर) प्रतिरूप-अतीव मनोहर हैं।

उन तोरणो के आगे दो-दो चन्दनकलश कहे हैं। ये चन्दनकलश श्रेष्ठ कमलो पर स्थापित हैं, इत्यादि वर्णन पूर्ववत् समझ लेना चाहिए।

उन तोरणो के आगे दो-दो भृ गार (झारी) है। ये भृ गार भी उत्तम कमलो पर रखे हुए हैं यावत् हे आयुष्मन् श्रमणो! मत्त गजराज की मुखाकृति के समान विशाल आकार वाले है।

उन तोरणो के आगे दो-दो आदर्श-दर्पण रखे हैं। इन दर्पणो का वर्णन इस प्रकार है—

इनकी पाठपीठ सोने की है, (चौखटे वैडूर्य मणि के और पिछले भाग वज्ररत्नो के बने हुये हैं) प्रतिबिम्ब मण्डल अक रत्न के हैं और अनघिसे होने (घिसे नही जाने) पर भी ये दर्पण अपनी स्वाभाविक निर्मल प्रभा से युक्त है। हे आयुष्मन् श्रमणो! चन्द्रमण्डल सरीखे ये निर्मल दर्पण ऊचाई मे कायार्ध (आधे शरीर) जितने बडे-बडे हैं।

उन तोरणो के आगे वज्रमय नाभि वाले (वज्ररत्नो से निर्मित मध्य भाग वाले) दो-दो थाल रखे हैं। ये सभी थाल मूशल आदि से तीन बार छाटे गये, शोधे गये अतीव स्वच्छ निर्मल अखण्ड तदुलो-चावलो से परिपूर्ण-भरे हुए से प्रतिभासित होते है। हे आयुष्मन् श्रमणो! ये थाल जम्बूनद-स्वर्णविशेष-से बने हुए यावत् अतिशय रमणीय और रथ के पहिये जितने विशाल गोल आकार के हैं।

उन तोरणो के आगे दो-दो पात्रियाँ रखी है। ये पात्रिया स्वच्छ निर्मल जल से भरी हुई हैं और विविध प्रकार के सद्य-ताजे हरे फलों से भरी हुई-सी प्रतिभासित होती हैं। हे आयुष्मन् श्रमणो! ये सभी पात्रिया रत्नमयी, निर्मल यावत् अतीव मनोहर है और इनका आकार बडे-बडे गोकलिंजरो (गाय को घास रखने के टोकरो) के समान गोल हैं।

उन तोरणो के आगे दो दो सुप्रतिष्ठकपात्र विशेष (प्रसाधन मजूषा-शृ गारदान) रखे हैं। प्रसाधन-शृ गार की साधन भूत औषधियो आदि से भरे हुए भाडो से सुशोभित हैं और सर्वात्मना रत्नो से बने हुए, निर्मल यावत् अतीव मनोहर हैं।

---

१ एक दिशोन्मुख एव परस्पर एक दूसरे के उन्मुख अवस्थान को क्रमश. पक्ति और वीथि कहते हैं।

उन तोरणो के आगे दो-दो मनोगुलिकायें हैं। इन मनोहर मनोगुलिकाओ पर अनेक सोने और चादी के पाटिये जडे हुए है और उन सोने और चादी के पाटियो पर वज्ररत्नमय नागदन्त लगे हैं एवं उन नागदन्तो के ऊपर वज्ररत्नमय छीके टगे हैं। उन छीको पर काले, नीले, लाल पीले और सफेद सूत के जालीदार वस्त्र खण्ड से ढँके हुए वातकरक (जल से रहित, कोरे घडे) रखे हैं। ये सभी वातकरक वज्ररत्नमय, स्वच्छ यावत् अतिशय सुन्दर है।

उन तोरणो के आगे चित्रामो से युक्त दो-दो (रत्नकरडक-रत्नो के पिटारे) रखे हैं। जिस तरह चातुरत चक्रवर्ती (षट् खडाधिपति) राजा का वैडूर्यमणि से बना हुआ एव स्फटिक मणि के पटल से आच्छादित अद्भुत-आश्चर्य-जनक रत्नकरडक अपनी प्रभा से उस प्रदेश को पूरी तरह से प्रकाशित, उद्योतित, तापित और प्रभासित करता है, उसी प्रकार ये रत्नकरडक भी अपनी प्रभा—काति से अपने निकटवर्ती प्रदेश को सर्वात्मना प्रकाशित, उद्योतित तापित और प्रभासित करते है।

उन तोरणो के आगे दो-दो अश्वकठ (कठ पर्यन्त घोडे की मुखाकृति जैसे रत्न-विशेष) गज-कठ, नरकठ किन्नरकठ, किंपुरुषकठ, महोरगकठ, गधर्वकठ, और वृषभकठ रखे हैं। ये सब अश्वकठा-दिक सर्वथा रत्नमय, स्वच्छ-निर्मल यावत् असाधारण सुन्दर है।

उन तोरणो के आगे दो-दो पुष्प-चगेरिकाये (फूलो से भरी छोटी-छोटी टोकरिया—डलियायें) माल्यचगेरिकाये, चूर्ण (सुगन्धित चूर्ण) चगेरिकाये गन्ध चगेरिकायें, वस्त्र चगेरिकायें, आभरण (आभूपण) चगेरिकाये, सिद्धार्थ (सरसो) की चगेरिकाये एव लोमहस्त (मयूरपिच्छ) चगेरिकायें रखी है। ये सभी रत्नो से बनी हुई, निर्मल यावत् प्रतिरूप—अतीव मनोहर हैं।

उन तोरणो के आगे दो-दो पुष्पपटलक (पिटारे) यावत् (माल्य, चूर्ण, गन्ध, वस्त्र, आभरण, सिद्धार्थ,) तथा मयूर पिच्छपटलक रखे हैं। ये सब भी पटलक रत्नमय, स्वच्छ—निर्मल यावत् प्रतिरूप है।

उन तोरणो के आगे दो-दो सिंहासन हैं। इन सिंहासनो का वर्णन मुक्तादामपर्यन्त पूर्ववत् कहना चाहिये।

उन तोरणो के आगे रजतमय दो-दो छत्र है। इन रजतमय छत्रो के दण्ड विमल वैडूर्य-मणियो के हैं, कणिकाये (बीच का केन्द्र) सोने की है, सधियाँ वज्र की है, मोती पिरोई हुई आठ हजार सोने की सलाइया (ताने) है तथा दद्दर चन्दन और सभी ऋतुओ के पुष्पो की सुरभि से युक्त शीतल कान्ति वाले हैं। इन पर मगलरूप स्वस्तिक आदि के चित्र बने है। इनका आकार चन्द्रमण्डलवत् गोल है।

उन तोरणो के आगे दो-दो चामर है। इन चामरो की डडिया चन्द्रकात वैडूर्य और वज्र रत्नो की हैं और उनपर अनेक प्रकार के मणि-रत्नो द्वारा विविध चित्र-विचित्र रचनाये बनी है, शख, अकरत्न, कुदपुष्प, जलकण और मथित क्षीरोदधि के फेनपुंज सदृश श्वेत-धवल इनके पतले लम्बे बाल है। ये सभी चामर सर्वथा रत्नमय, निर्मल यावत् प्रतिरूप-अनुपम शोभा शाली है।

उन तोरणो के आगे दो-दो तेलसमुद्गक (सुगन्धित तेल से भरे पात्र), कोष्ठ (सुगन्धित द्रव्य-विशेप कुटज) समुद्गक, पत्र (तमाल—के पत्ते) समुद्गक, चोयसमुद्गक, तगरसमुद्गक, एला

(इलायची) समुद्‌गक, हरतालसमुद्‌गक, हिंगलुकसमुद्‌गक, मैनसिलसमुद्‌गक, अजनसमुद्‌गक रखे हैं। ये सभी समुद्‌गक रत्नो से बने हुए, निर्मल यावत् अतीव मनोहर हैं।

द्वारस्थ ध्वजाओ का वर्णन—

१३३—सूरियाभे णं विमाणे एगमेगे दारे अट्ठसय चक्कज्झयाण, अट्ठसयं मिगज्झयाण, गरुडज्झयाण, छत्तज्झयाणं, पिच्छज्झयाणं, सउणिज्झयाणं, सीहज्झयाण, उसभज्झयाण, अट्ठसयं सेयाणं चउविसाणाण नागवरकेऊण। एवमेव सपुव्वावरेण सूरियाभे विमाणे एगमेगे दारे असीय असीयं केउसहस्स भवति इति मक्खायं।

१३३—सूर्याभ विमान के प्रत्येक द्वार के ऊपर चक्र, मृग, गरुड, छत्र, मयूरपिच्छ, पक्षी, सिह, वृषभ, चार दात वाले श्वेत हाथी और उत्तम नाग (सर्प) के चित्र (चिह्न) से अकित एक सौ, आठ—एक सौ आठ ध्वजायें फहरा रही हैं। इस तरह सब मिलाकर एक हजार अस्सी-एकहजार अस्सी ध्वजायें उस सूर्याभ विमान के प्रत्येक द्वार पर फहरा रही हैं—ऐसा तीर्थंकर भगवन्तो ने कहा है।

द्वारवर्ती भौमो (विशिष्ट स्थानों) का वर्णन—

१३४—तेसि णं दाराण एगमेगे दारे पण्णट्ठि पण्णट्ठि भोमा पन्नत्ता। तेसि ण भोमाण भूमिभागा, उल्लोया च भाणियव्वा। तेसि ण भोमाण च बहुमज्झदेसभागे पत्तेय पत्तेयं सीहासणे, सीहासणवन्नओ सपरिवारो, अवसेसेसु भोमेसु पत्तेयं-पत्तेय भद्दासणा पन्नत्ता।

१३४—उन द्वारो के एक-एक द्वार पर पैसठ-पैसठ भौम (विशिष्ट स्थान—उपरिगृह) बताये हैं। यान विमान की तरह ही इन भौमो के समरमणीय भूमि भाग और उल्लोक (चन्देवो) का वर्णन करना चाहिए।

इन भौमो के बीचो-बीच एक-एक सिहासन रखा है। यानविमानवर्ती सिंहासन की तरह उसका सपरिवार वर्णन समझना चाहिए, अर्थात् उसके परिवार रूप सामानिक आदि देवो के भद्रासनो सहित इन सिंहासनो का वर्ण-जानना चाहिये। शेष आसपास के भौमो मे भद्रासन रक्खे हैं।

१३५—तेसि णं दाराणं उत्तमागारा[1] सोलसविहेहिं रयणेहिं उवसोभिया, त जहा—रयणेहिं जाव रिट्ठेहिं।

तेसि ण दाराण उप्पि अट्ठट्ठमंगलगा सज्झया जाव छत्तातिछत्ता।

एवमेव सपुव्वावरेणं सूरियाभे विमाणे चत्तारि दारसहस्सा भवतीति मक्खाय।

१३५—उन द्वारो के ओतरग (ऊपरी भाग) सोलह प्रकार के रत्नो से उपशोभित हैं। उन रत्नो के नाम इस प्रकार हैं—कर्केतनरत्न यावत् (वज्र, वैडूर्य, लोहिताक्ष, मसारगल्ल, हसगर्भ, पुलक सौगन्धिक, ज्योतिरस, अंक, अजन, रजत, अजनपुलक, जातरूप, स्फटिक), रिष्टरत्न।

१ पाठान्तर—उवरिमागारा।

उन द्वारो के ऊपर ध्वजाओ यावत् छत्रातिछत्रो से शोभित स्वस्तिक आदि आठ-आठ मंगल हैं।

इस प्रकार सूर्याभ विमान मे सब मिलकर चार हजार द्वार सुशोभित हो रहे हैं।

विमान के वनखण्डों का वर्णन—

१३६—सूरियाभस्स विमाणस्स चउद्दिसि पच जोयणसयाइ अबाहाए चत्तारि वणसंडा पन्नत्ता, त जहा—असोगवणे, सत्तवण्णवणे, चंपगवणे, चूयगवणे।

पुरत्थिमेणं असोगवणे, दाहिणेण सत्तवन्नवणे, पच्चत्थिमेण चपगवणे, उत्तरेण चूयगवण।

ते णं वणखडा साइरेगाइ अद्धतेरस जोयणसयसहस्साइ आयामेण, पंच जोयणसयाइ विक्खंभेण, पत्तेयं पत्तेय पागारपरिखित्ता, किण्हा किण्होभासा, नीला नीलोभासा, हरिया हरियोभासा, सीया सीयोभासा, निद्धा निद्धोभासा, तिव्वा तिव्वोभासा, किण्हा किण्हच्छाया, नीला नीलच्छाया, हरिया हरियच्छाया, सीया सीयच्छाया, निद्धा निद्धच्छाया, घणकडितडियच्छाया, रम्मा महामेहनिकुरंब-भूया। ते णं पायवा मूलमतो वणखडवन्नओ।

१३६—उस सूर्याभविमान के चारो ओर पाच सौ-पाँच सौ योजन के अन्तर पर चार दिशाओ मे १ अशोकवन, २ सप्तपर्णवन, ३ चपकवन और ४ आम्रवन नामक चार वन खड हैं।

पूर्व दिशा मे अशोकवन, दक्षिण दिशा मे सप्तपर्ण वन, पश्चिम मे चपक वन और उत्तर मे आम्रवन है।

ये प्रत्येक वनखड साढे बारह लाख योजन से कुछ अधिक लम्बे और पाच सौ योजन चौडे है। प्रत्येक वनखड एक-एक परकोटे से परिवेष्टित—घिरा है।

ये सभी वनखड अत्यन्त घने होने के कारण काले और काली आभा वाले, नीले और नील आभा वाले, हरे और हरी काति वाले, शीत स्पर्श और शीत आभा वाले, स्निग्ध—कमनीय और कमनीय काति दीप्ति-प्रभा वाले, तीव्र प्रभा वाले तथा काले और काली छाया वाले, नीले और नीली छाया वाले, हरे और हरी छाया वाले, शीतल और शीतल छाया वाले, स्निग्ध और स्निग्ध छाया वाले है एव वृक्षो की शाखा-प्रशाखाये आपस मे एक दूसरी से मिली होने के कारण अपनी सघन छाया से बडे ही रमणीय तथा महा मेघो के समुदाय जैसे सुहावने दिखते हैं।

इन वनखडो के वृक्ष जमीन के भीतर गहरी फैली हुई जडो से युक्त हैं, इत्यादि वृक्षो का समग्र वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार यहाँ करना चाहिए।

विवेचन—औपपातिक सूत्र के अनुसार सक्षेप मे वनखड के वृक्षो का वर्णन इस प्रकार है—

---

१ एक जाति वाले श्रेष्ठ वृक्षो के समूह को वन और भिन्न-भिन्न जाति वाले वृक्षो के समुदाय को वनखड कहते हैं—एग जाईएहिं रुक्खेहिं वण अणेगजाईएहिं उत्तमेहिं रुक्खेहिं वणसण्डे (जीवाभिगम चूर्णि)।

इन वनखडो के वृक्ष जमीन के अन्दर विस्तृत गहरे फैले हुए मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाखा, प्रशाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल, बीज से युक्त है। छतरी के समान इनका रमणीय गोल आकार है। इनके स्कन्ध ऊपर की ओर उठी हुई अनेक शाखा-प्रशाखाओ से शोभित हैं और इतने विशाल एव वृत्ताकार है कि अनेक पुरुष मिलकर भी अपने फैलाये हुए हाथो से उन्हे घेर नही पाते। पत्ते इतने घने हैं कि बीच मे जरा भी अतर दिखलाई नही देता है। पत्र-पल्लव सदैव नवीन जैसे दिखते है। कोपलें अत्यन्त कोमल है और सदैव सर्व ऋतुओ के पुष्पो से व्याप्त हैं तथा नमित, विशेष नमित, पुष्पित, पल्लवित, गुल्मित, गुच्छित, विनमित प्रणमित होकर मजरी रूप शिरोभूषणो से अलकृत रहते है। तोता, मयूर, मैना, कोयल, नदीमुख, तीतर, वटेर, चक्रवाल, कलहस, वतक, सारस आदि अनेक पक्षि-युगलो के मधुर स्वरो से गू जते रहते हैं। अनेक प्रकार के गुच्छो और गुल्मो से निर्मित मडप आदि से सुशोभित हैं। नासिका और मन को तृप्ति देने वाली सुगध से महकते रहते हैं। इस प्रकार ये सभी वृक्ष सुरम्य, प्रासादिक दर्शनीय, अभिरूप-मनोहर एव प्रतिरूप—विशिष्ट शोभासपन्न हैं।

१३७—तेसि ण वणसडाण अतो बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा पण्णत्ता, से जहानामए आलिग-पुक्खरे तिवा जाव णाणाविहपंचवण्णेहिं मणीहि य तणेहि य उवसोभिया, तेसि णं गधो फासो णेयव्वो जहक्कम।

१३७—उन वनखडो के मध्य मे अति सम रमणीय भूमिभाग (मैदान) है। वे-मैदान आलिग पुष्कर आदि के सदृश समतल यावत् नाना प्रकार के रग-विरगे पचरगे मणियो और तृणो से उप-शोभित हैं। इन मणियो के गध और स्पर्श यथाक्रम से पूर्व मे किये गये मणियो के गध और स्पर्श के वर्णन के समान जानना चाहिए।

मणियो और तृणों की ध्वनियाँ—

१३८—प्र०—तेसि ण भंते! तणाण य मणीण य पुव्वावरदाहिणुत्तरागतेहिं वातेहिं मंदाय मंदाय एइयाण वेइयाणं कंपियाण चालियाणं फंदियाण घट्टियाणं खोभियाणं उदीरिदाणं केरिसए सद्दे भवति?

१३८—हे भदन्त! पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशा से आए वायु के स्पर्श से मद-मद हिलने-डुलने, कपने, डगमगाने, फरकने, टकराने क्षुभित—विचलित और उदीरित—प्रेरित होने पर उन तृणो और मणियो की कैसी शब्द-ध्वनि होती है?

१३९—उ०—गोयमा! से जहानामए सीयाए वा, संदमाणीए वा, रहस्स वा सच्छत्तस्स सज्झयस्स, सघटस्स, सपडागस्स, सतोरणवरस्स सनदिघोसस्स, सखिखिणिहेमजालपरिक्खित्तस्स, हेमवयचित्ततिणिसकणगणिज्जुत्तदारुयायस्स, सुसपिनद्धचक्कमंडलधुरागस्स, कालायससुकयणेमिजत-कम्मस्स आइण्णवर-तुरगसुसपउत्तस्स, कुसलणरच्छेयसारहि-सुसपरिग्गहियस्स, सरसवत्तीसतोणपरि-मंडियस्स सककडावयगस्स, सचाव-सर-पहरण-आवरणभरिय-जोधजुज्झसज्जस्स, रायंगणसि वा रायतेउरंसि वा रम्मंसि वा मणिकुट्टिमतलंसि अभिक्खणं अभिक्खण अभिघट्टिज्जमाणस्स वा नियट्टिज्ज-माणस्स वा ओराला मणुण्णा मणोहरा कण्णमणनिव्वुइकरा सद्दा सव्वओ समता अभिणिस्सवति।

भवेयारूवे सिया? णो इणट्ठे समट्ठे।

१३९—हे गौतम ! जिस तरह शिविका (डोली, पालकी) अथवा स्यन्दमानिका (बहली-सुखपूर्वक एक व्यक्ति के बैठने योग्य घोडा जुता यान-विशेष) अथवा रथ, जो छत्र, ध्वजा, घटा, पताका और उत्तम तोरणो से सुशोभित, वाद्यसमूहवत् शब्द-निनाद करने वाले घु घरुओ एव स्वर्णमयी मालाओ से परिवेष्टित हो, हिमालय मे उत्पन्न अति निगड-सारभूत उत्तम तिनिश काष्ठ से निर्मित एवं सुव्यवस्थित रीति से लगाये गये आरो से युक्त पहियो और धुरा से सुसज्जित हो, सुदृढ उत्तम लोहे के पट्टो से सुरक्षित पट्टियो वाले, शुभलक्षणो और गुणो से युक्त कुलीन अश्व जिसमे जुते हो जो रथ-सचालन-विद्या मे अति कुशल, दक्ष सारथी द्वारा सचालित हो, एक सौ-एक सौ वाण वाले, वत्तीस तूणीरो (तरकसो) से परिमडित हो, कवच से आच्छादित अग्र-शिखर-भाग वाला हो, धनुष वाण, प्रहरण, कवच आदि युद्धोपकरणो से भरा हो, और युद्ध के लिये तत्पर—सन्नद्ध योधाओ के लिए सजाया गया हो, ऐसा रथ वारवार मणियो और रत्नो से वनाये गये—फर्श वाले राजप्रागण, अतःपुर अथवा रमणीय प्रदेश मे आवागमन करे तो सभी दिशा-विदिशा मे चारो ओर उत्तम, मनोज्ञ, मनोहर, कान और मन को आनन्द-कारक मधुर शब्द-ध्वनि फैलती है।

हे भदन्त ! क्या इन रथादिको की ध्वनि जैसी ही उन तृणो और मणियो की ध्वनि है ?

गौतम ! नही, यह अर्थ समर्थ नही है। (उनकी ध्वनि तो इनसे भी विशेष मधुर है।)

१४०—से जहाणामए वेयालियवीणाए उत्तरमदामुच्छियाए अके सुपइट्ठियाए कुसलनरनारिसुसपरिग्गहियाए चंदणसारनिम्मियकोणपरिघट्टियाए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयमि मदाय-मदाय वेइयाए, पवेइयाए, चलियाए, घट्टियाए, खोभियाए, उदीरियाए ओराला, मणुण्णा, मणहरा, कण्हमणनिव्वुइकरा सद्दा सव्वओ समता अभिनिस्सवति, भवेयारूवे सिया ? णो इणट्ठे समट्ठे।

१४०—भदन्त ! क्या उन मणियो और तृणो की ध्वनि ऐसी है जैसी कि मध्यरात्रि अथवा रात्रि के अतिम प्रहर मे वादनकुशल नर या नारी द्वारा अक—गोद मे लेकर चदन के सार भाग से रचित कोण (वीणा वजाने का दड, डाडी) के स्पर्श से उत्तर-मद मूर्च्छना वाली (राग-रागिनी के अनुरूप तीव्र-मद आरोह-अवरोह ध्वनियुक्त) वैतालिक वीणा को मद-मद ताडित, कपित, प्रकपित, चालित, घर्षित क्षुभित और उदीरित किये जाने पर सभी दिशाओ एव विदिशाओ मे चारो ओर उदार, सुन्दर, मनोज्ञ, मनोहर, कर्णप्रिय एव मनमोहक ध्वनि गू जती है ?

गौतम ! नही, यह अर्थ समर्थ नही है। उन मणियो और तृणो की ध्वनि इससे भी अधिक मधुर है।

१४१—से जहानामए किन्नराण वा, किंपुरिसाण वा, महोरगाण वा, गधव्वाण वा, भद्दसालवणगयाण वा, नंदणवणगयाण वा, सोमणसवणगयाणं वा, पडगवणगयाण वा, हिमवतमलयमदरगिरिगुहासमन्नागयाण वा, एगओ सन्निहियाणं समागयाणं सन्निसन्नाण समुवविट्ठाण पमुइयपक्कीलियाण गीयरइ गधव्वहसियमणाण गज्ज पज्जं, कत्थ, गेय पयबद्धं, पायबद्धं उक्खित्त पायत मदायं रोइयावसाणं सत्तसरसमन्नागय[1] छद्दोसविप्पमुक्क एक्कारसालकार अट्ठगुणोववेय, गुंजाऽवककुहरोवगूढं रत्त तिट्ठाणकरणसुद्ध पगीयाण, भवेयारूवे ?

---

१ पाठान्तर—अट्ठरससपउत्त।

१४१—भगवन्! तो क्या उनकी ध्वनि इस प्रकार की है, जैसे कि भद्रशालवन, नन्दनवन, सौमनसवन अथवा पाडुक वन या हिमवन, मलय अथवा मंदरगिरि की गुफाओ मे गये हुए एवं एक स्थान पर एकत्रित, समागत, बैठे हुए और अपने-अपने समूह के साथ उपस्थित, हर्षोल्लास पूर्वक क्रीडा करने मे तत्पर, सगीत-नृत्य-नाटक-हासपरिहासप्रिय किन्नरो, किंपुरुषो, महोरगो अथवा गधर्वो के गद्यमय-पद्यमय, कथनीय, गेय, पद-बद्ध, पादबद्ध, उत्क्षिप्त, पादान्त, मद-मद घोलनात्मक, रोचितावसान-सुखान्त, मनमोहक सप्त स्वरो से समन्वित, षड्दोषो से रहित, ग्यारह अलकारो और आठ गुणो से युक्त गु जारव से दूर-दूर के कोनो—क्षेत्रो को व्याप्त करने वाले राग-रागिनी मे युक्त त्रि-स्थान-करण शुद्ध गीतो के मधुर बोल होते हैं ?

विवेचन—भवनपति, वाणव्यतर, ज्योतिष्क, और वैमानिक इन चार देवनिकायो मे से किन्नर, किंपुरुष, महोरग और गधर्व व्यतरनिकाय के देव हे। ये सभी प्रशस्त गीत, सगीत, नृत्य एव नाट्य-कलाओ के प्रेमी होते है। बालसुलभ क्रीडा और हास-परिहास, कोलाहल करने मे इन्हे आनन्दानुभूति होती है। पुष्पो से बनाये हुए मुकुट, कु डल आदि इनके प्रिय आभूषण हैं। सर्व ऋतुओ के सुन्दर सुगधित पुष्पो द्वारा निर्मित वनमालाओ से इनके वक्षस्थल शोभित रहते हैं। ये अनेक प्रकार के चित्र-विचित्र रग-बिरगे पचरगे परिधान—वस्त्र पहनते हैं। ये सभी प्राय. सुमेरु पर्वत और हिमवत आदि पर्वतो के रमणीय प्रदेशो मे निवास करते हैं।

प्रस्तुत सूत्र मे सगीत के स्वर, दोष और गुणो की सख्या का सकेत करने के लिये सत्तसरसमन्नागय, छद्दोसविप्पमुक्क, अट्ठगुणोववेय पद दिये है। स्वरो आदि के नाम इस प्रकार हैं—

सप्तस्वर—१ षड्ज, २. ऋषभ, ३ गाधार, ४ मध्यम, ५ पचम, ६ धैवत और ७ निषाद।

षड्दोष—१ भीत, २ द्रुत, ३. उप्पित्थ, ४ उत्ताल, ५ काकस्वर, ६ अनुनास।

अष्टगुण—१ पूर्ण, २ रक्त ३ अलकृत ४ व्यक्त ५ अविघुष्ट, ६ मधुर, ७ सम ८ सुललित।

१४२—हता सिया।

१४२—हे गौतम! हाँ, ऐसी ही मधुरातिमधुर ध्वनि उन मणियो और तृणो से निकलती है।

वनखंडवर्ती वापिकाओं आदि का वर्णन—

१४३—तेसि णं वणसडाण तत्थ-तत्थ तहिं तहिं देसे देसे बहूईओ खुड्डा खुड्डियातो वावीयाओ, पुक्खरिणीओ, दीहियाओ, गु जालियाओ, सरपंतियाओ, सरसरपंतियाओ, बिलपतिओ, अच्छाओ सण्हाओ रययामयकूलाओ, समतीराओ वयरामयपासाणाओ तवणिज्जतलाओ, सुवण्णसुज्झरययवालुयाओ वेरुलियमणिफालियपडलपच्चोयडाओ, सुहोयारसुउत्ताराओ, णाणामणितित्थसुबद्धाओ, चउक्कोणाओ, आणुपुव्वसुजातवप्पगभीरसीयलजलाओ, सछन्नपत्तभिसमुणालाओ, बहुउप्पलकुमुयनलिणसुभगसोगधियपोडरीयसयवत्तसहस्सपत्तकेसरफुल्लोवचियाओ छप्पयपरिभुज्जमाणकमलाओ, अच्छविमलसलिलपुण्णाओ, पडिहत्थभमतमच्छकच्छम-अणेगसउणमिहुणगपविचरिताओ।

पत्तेय-पत्तेय पउमवरवेदियापरिक्खित्ताओ, पत्तेयं-पत्तेय वणसडपरिक्खित्ताओ ।

अप्पेगइयाओ आसवोयगाओ, अप्पेगइयाओ वारुणोयगाओ, अप्पेगइयाओ खीरोयगाओ, अप्पेगइयाओ घओयगाओ, अप्पेगइयाओ खोदोयगाओ[1] अप्पेगतियाओ पगतीए उयगरसेण पण्णत्ताओ, पासादीयाओ दरिसणिज्जाओ अभिरूवाओ पडिरूवाओ ।

१४३—उन वनखडो मे जहाँ-तहाँ स्थान-स्थान पर अनेक छोटी-छोटी चौरस वापिकाये-बावडियाँ, गोल पुष्करिणियाँ, दीर्घिकाये (सीधी बहती नदियाँ), गु जालिकायें (टेढी-तिरछी-बाकी बहती नदिया), फूलो से ढँकी हुई सरोवरो की पक्तियाँ, सर-सर पक्तियाँ (पानी के प्रवाह के लिये नहर द्वारा एक दूसरे से जुडे हुए तालावो की पक्तियाँ) एव कूपपक्तियाँ बनी हुई है ।

इन सभी वापिकाओ आदि का बाहरी भाग स्फटिमणिवत् अतीव निर्मल, स्निग्ध—कमनीय है । इनके तट रजतमय हैं और तटवर्ती भाग अत्यन्त सम-चौरस है । ये सभी जलाशय वज्ररत्न रूपी पाषाणो से बने हुए है । इनके तलभाग तपनीय स्वर्ण से निर्मित है तथा उन पर शुद्ध स्वर्ण और चादी की बालू बिछी है । तटो के समीपवर्ती ऊँचे प्रदेश (मु डेर) वैडूर्य और स्फटिक मणि-पटलो के बने हैं । इनमे उतरने और निकलने के स्थान सुखकारी है । घाटो पर अनेक प्रकार की मणियाँ जडी हुई है । चार कोने वाली वापिकाओ और कुओ मे अनुक्रम से नीचे-नीचे पानी अगाध एव शीतल है तथा कमलपत्र, बिस (कमलकद) और मृणालो से ढँका हुआ है । ये सभी जलाशय विकसित—खिले हुए उत्पल, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगधिक, पु डरीक, शतपत्र तथा सहस्र-पत्र कमलो से सुशोभित है और उन पर पराग-पान के लिये भ्रमरसमूह गू ज रहे हैं । स्वच्छ-निर्मल जल से भरे हुए है । कल्लोल करते हुए मगर-मच्छ कछुआ आदि बेरोक-टोक इधर-उधर घूम फिर रहे हैं और अनेक प्रकार के पक्षिसमूहो के गमनागमन से सदा व्याप्त रहते है ।

ये सभी जलाशय एक-एक पद्मवरवेदिका और एक एक वनखड से परिवेष्टित—घिरे हुए हैं ।

इन जलाशयो मे से किसी मे आसव जैसा, किसी मे वारुणोदक (वारुण समुद्र के जल) जैसा, किसी मे क्षीरोदक जैसा, किसी मे घी जैसा, किसी मे इक्षुरस जैसा और किसी-किसी मे प्राकृतिक—स्वाभाविक पानी जैसा पानी भरा है ।

ये सभी जलाशय मन को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप है ।

१४४—तासि ण वावीण जाव बिलपतीण पत्तेय पत्तेयं चउद्दिसि चत्तारि तिसोपाणपडिरूवगा पण्णत्ता, तेसि ण तिसोपाणपडिरूवगाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा—वइरामया नेमा तोरणाण छत्ताइछत्ता य णेयव्वा ।

१४४—उन प्रत्येक वापिकाओ यावत् कूपपक्तियो की चारो दिशाओ मे तीन-तीन सुन्दर सोपान बने हुए हैं । इन त्रिसोपान प्रतिरूपको का वर्णन इस प्रकार है, जैसे—उनकी नेमे वज्ररत्नो की हैं इत्यादि तोरणो, ध्वजाओ और छत्रातिछत्रो पर्यन्त इनका वर्णन पूर्ववत् समझ लेना चाहिए ।

---

१ पाठान्तर—अप्पेगइआओ खारोयगाओ ।

१४५—तासि णं खुड्डाखुड्डियाण वावीणं जाव विलपंतियाणं तत्थ-तत्थ तहिं-तहिं बहवे उप्पायपव्वयगा, नियइपव्वयगा, जगईपव्वयगा दारुइज्जपव्वयगा, दगमंडवा, दगमंचगा, दगमालगा, दगपासायगा, उसड्ढा खुड्डखुड्डगा अंदोलगा पक्खंदोलगा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा।

१४५—उन छोटी-छोटी वापिकाओ यावत् कूपपक्तियो के मध्यवर्ती प्रदेशो मे बहुत से उत्पात पर्वत, नियतिपर्वत, जगतीपर्वत दारुपर्वत तथा कितने ही ऊँचे-नीचे, छोटे-बडे दकमडप, दकमच, दकमालक, दकप्रासाद बने हुए हैं तथा कही-कही पर मनुष्यो और पक्षियो को झूलने के लिये झूले-हिंडोले पडे हैं। ये सभी पर्वत आदि सर्वरत्नमय अत्यन्त निर्मल यावत् असाधारण रूप से सपन्न है।

विवेचन—सूत्र मे वापिकाओ आदि के अन्तरालवर्ती स्थानो मे आये हुए जिन पर्वतो आदि का वर्णन किया है, उनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

उत्पातपर्वत—ऐसे पर्वत जहाँ सूर्याभ-विमानवासी देव-देवियाँ विविध प्रकार की चित्र-विचित्र क्रीडाओ के निमित्त अपने-अपने उत्तर वैक्रिय शरीरो की रचना करते हैं।

नियतिपर्वत—इन पर्वतो पर सूर्याभ-विमानवासी देव-देवियाँ अपने-अपने भवधारणीय (मूल) वैक्रिय शरीरो से क्रीडारत रहते हैं।

जगतीपर्वत—इन पर्वतो का आकार कोट-परकोटे जैसा होता है।

दारुपर्वत—दारु अर्थात् काष्ठ-लकडी। लकडी से बने पर्वत जैसे आकार वाले कृत्रिम पर्वत।

दकमंडप—स्फटिक मणियो से निर्मित मडप अथवा ऐसे मडप जिनमे फुव्वारो द्वारा कृत्रिम वर्षा की रिमझिम-रिमझिम फुहारें बरसती रहती हैं।

दकमालक—स्फटिक मणियो से बने हुए घर के ऊपरी भाग मे बने हुए कमरे—मालिये।

उत्पात पर्वतों आदि की शोभा

१४६—तेसु ण उप्पाय-पव्वएसु पक्खंदोलएसु बहूइं हंसासणाइं, कोंचासणाइं गरुलासणाइं उण्णयासणाइं, पणयासणाइं, दीहासणाइं, भद्दासणाइं, पक्खासणाइं, मगरासणाइं, उसभासणाइं, सीहासणाइं, पउमासणाइं, दिसासोवत्थियाइं[1] सव्वरयणामयाइं अच्छाइं जाव पडिरूवाइं।

१४६—उन उत्पात पर्वतो, पक्षिहिंडोलो आदि पर सर्वरत्नमय, निर्मल यावत् अतीव मनोहर अनेक हसासन (हस जैसी आकृति वाले आसन) क्रोचासन, गरुडासन, उन्नतासन (ऊपर की ओर उठे हुए आसन), प्रणतासन (नीचे की ओर झुके हुए आसन), दीर्घासन (शैया जैसे लम्बे आसन) भद्रासन, पक्ष्यासन, मकरासन, वृषभासन, सिंहासन, पद्मासन और दिशास्वस्तिक आसन (पक्षी, मगर, वृषभ, सिंह, कमल और स्वस्तिक के चित्रामो से सुशोभित अथवा तदनुरूप आकृति वाले आसन रखे हुए हैं।

---

१ यथाक्रम से इन आसनो की नामबोधक सग्रहणी गाथा इस प्रकार है—

'हंसे कोंचे गरुडे उण्णय पणए य दीह भद्दे य।
पक्खे मयरे पउमे सीह दिसासोत्थि बारसमे।"

वनखंडवर्ती गृहों का वर्णन

१४७—तेसु ण वणसडेसु तत्थ-तत्थ तहिं-तहिं देसे-देसे बहवे आलियघरगा, मालियघरगा, कयलिघरगा, लयाघरगा, अच्छणघरगा, पिच्छणघरगा, मज्जणघरगा, पसाहणघरगा, गब्भघरगा, मोहणघरगा, सालघरगा, जालघरगा, कुसुमघरगा, चित्तघरगा, गधव्वघरगा, आयसघरगा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा ।

१४७—उन वनखडो मे यथायोग्य स्थानो पर बहुत से आलिगृह (वनस्पतिविशेष से बने हुए गृह जैसे मडप) मालिगृह (वनस्पतिविशेष से बने हुए गृह) कदलीगृह, लतागृह, आसनगृह, (विश्राम करने के लिये बैठने योग्य आसनो से युक्त घर) प्रेक्षागृह (प्राकृतिक शोभा के अवलोकन हेतु बने विश्रामगृह अथवा नाट्यगृह) मज्जनगृह (स्नानघर) प्रसाधनगृह (शृ गार-साधनो से सुसज्जित स्थान) गर्भगृह (भीतर का घर), मोहनगृह (रतिक्रीडा करने योग्य स्थान), शालागृह, जाली वाले गृह, कुसुमगृह, चित्रगृह (चित्रो से सज्जित स्थान) गधर्वगृह (सगीत-नृत्य शाला) आदर्शगृह (दर्पणो से बने हुए भवन) सुशोभित हो रहे हैं। ये सभी गृह रत्नो से बने हुए अधिकाधिक निर्मल यावत् असाधारण मनोहर हैं ।

१४८—तेसु णं आलियघरगेसु जाव[1] आयसघरगेसु तहिं तहिं घरएसु हसासणाइ जाव[2] दिसासोवत्थिआसणाइ सव्वरयणामयाइ जाव पडिरूवाइ ।

१४८—उन आलिगृहो यावत् आदर्शगृहो मे सर्वरत्नमय यावत् अतीव मनोहर हसासन यावत् दिशा-स्वस्तिक आसन रखे हैं ।

वनखंडवर्ती मंडपो का वर्णन

१४९—तेसु णं वणसडेसु तत्थ-तत्थ देसे तहिं तहिं बहवे जातिमडवगा, जूहियामडवगा मल्लियामडवगा, णवमालियामडवगा, वासतिमडवगा, दहिवासुयमडवगा, सूरिल्लियमडवगा[3] तबोलिमडवगा, मुद्दियामंडवगा, णागलयामंडवगा, अतिमुत्तयलयामडवगा, अप्फोयामडगा, मालुयामडवगा, अच्छा सव्वरयणामया जाव पडिरूवा ।

१४९—उन वनखडो मे विभिन्न स्थानो पर बहुत से जातिमडप (जाई के कु ज), यूथिकामडप (जूही की वेल के मडप), मल्लिकामडप, नवमल्लिकामडप, वासतीमडप, दधिवासुका (वनस्पतिविशेष) मडप, सूरिल्लि (सूरजमुखी) मडप, नागरवेलमडप, मृद्वीकामडप (अगूर की वेल के मंडप) नागलतामडप, अतिमुक्तक (माधवीलतामडप, अप्फोया मडप और मालुकामडप बने हुए हैं। ये सभी मडप अत्यन्त निर्मल, सर्वरत्नमय यावत् प्रतिरूप—अतीव मनोहर हैं ।

विवेचन—लता और वेलो से बने इन मडपो मे बहुत सी सुगधित पुष्पो वाली लतायें और वेले तो प्रसिद्ध है, परन्तु कुछ एक नामो के बारे मे जानकारी नही मिलती है। जैसे दधिवासुका

१ देखें सूत्र सख्या १४७

२ देखें सूत्र सख्या १४६

३ पाठान्तर—सूरल्लि, सूरमल्लि ।

अप्फोया मालुका । लेकिन प्रसग से ऐसा प्रतीत होता है कि ये सभी लतायें प्राय सुगधित पुष्पो वाली होनी चाहिये ।

१५०—तेसु ण जातिमडवएसु जाव मालुयामडवएसु वहवे पुढविसिलापट्टगा हंसासणसठिया जाव दिसासोवत्थियासणसठिया, अण्णे य बहवे वरसयणासणविसिट्ठसठाणसंठिया[1] पुढविसिलापट्टगा पण्णत्ता समाणाउसो ! आईणग-रूय-बूर-णवणीय-तूलफासा, सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा ।

१५०—हे आयुष्मन् श्रमणो ! उन जातिमडपो यावत् मालुकामडपो मे कितने ही हसासन सदृश आकार वाले यावत् कितने ही क्रोचासन, कितने ही गरुडासन, कितने ही उन्नतासन, कितने ही प्रणतासन, कितने ही दीर्घासन, कितने ही भद्रासन, कितने ही पक्ष्यासन, कितने ही मकरासन, कितने वृषभासन, कितने ही सिंहासन, कितने ही पद्मासन, कितने ही दिशा स्वस्तिकासन जैसे आकार वाले पृथ्वीशिलापट्टक तथा दूसरे भी वहुत से श्रेष्ठ शयनासन (शैया, पलग) सदृश विशिष्ट आकार वाले पृथ्वीशिलापट्टक रखे हुए हैं । ये सभी पृथ्वीशिलापट्टक चर्मनिर्मित वस्त्र अथवा मृगछाला, रुई, वूर, नवनीत, तूल, सेमल या आक की रुई के स्पर्श जैसे सुकोमल, कमनीय, सर्वरत्नमय, निर्मल यावत् अतीव रमणीय है ।

१५१—तत्थ ण बहवे वेमाणिया देवा य देवीओ य आसयंति, सयंति, चिट्ठ ंति, निसीयति, तुयट्ट ंति, रमति, ललति, कीलति, किट्टंति, मोहेति, पुरा पोराणाण सुचिण्णाण सुपरिक्कंताण सुभाण कडाण कम्माण कल्लाणाण कल्लाण फलविवाग पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ।

१५१—उन हसासनो आदि पर वहुत से सूर्याभविमानवासी देव और देवियाँ सुखपूर्वक वैठते हैं, सोते हैं, शरीर को लम्वा कर लेटते हैं, विश्राम करते है, ठहरते हैं, करवट लेते हैं, रमण करते हैं, केलिक्रीडा करते हैं, इच्छानुसार भोग-विलास भोगते है, मनोविनोद करते हैं, रासलीला करते है और रतिक्रीडा करते हैं । इस प्रकार वे अपने-अपने सुपुरुषार्थ से पूर्वोपार्जित शुभ, कल्याणमय शुभफलप्रद, मगलरूप पुण्य कर्मो के कल्याणरूप फलविपाक का अनुभव करते हुए समय विताते है ।

वनखण्डवर्ती प्रासादावतंसक—

१५२—तेसि ण वणसंडाण वहुमज्झदेसभाए पत्तेय-पत्तेयं पासायवडेंसगा पण्णत्ता, तेण पासायवडेंसगा पच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेण, अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं विक्खभेण, अब्भुग्गय-मूसियपहसिया इव तहेव वहुसमरमणिज्जभूमिभागो, उल्लोओ, सीहासण सपरिवारं । तत्थ ण चत्तारि देवा महिड्ढिया जाव महज्जुइया, महावला, महासुक्खा महाणुभावा) पलिओवमट्ठितीया परिवसति, तजहा असोए सत्तपण्णे चपए चूए ।

१५२—उन वनखण्डो के मध्यातिमध्य भाग मे (वीचोवीच) एक-एक प्रासादावतसक (प्रासादो के शिरोभूषण रूप श्रेष्ठ प्रासाद) कहे हैं ।

ये प्रासादावतसक पाँच सौ योजन ऊँचे और अढाई सौ योजन चौडे हैं और अपनी उज्ज्वल प्रभा से हँसते हुए से प्रतीत होते हैं । इनका भूमिभाग अतिसम एव रमणीय है । इनके चदेवा, सामानिक आदि देवो के भद्रासनो सहित सिंहासन आदि का वर्णन पूर्ववत् कर लेना चाहिए ।

---

१ पाठान्तर—मासलसुघट्ठविसिट्ठसठाणसठिया ।

इन प्रासादावतसको मे महान् ऋद्धिशाली यावत् (महाद्युतिसम्पन्न, महाबलिष्ठ, अतीव सुखसम्पन्न और महाप्रभावशाली) एक पल्योपम की स्थिति वाले चार देव निवास करते है। उनके नाम इस प्रकार है—अशोकदेव, सप्तपर्णदेव, चपकदेव और आम्र देव।

विवेचन—सूत्र मे मात्र सूर्याभविमान के चतुर्दिग्वर्ती वनखडो मे निवास करने वाले देवो के नाम और उनकी आयुका उल्लेख किया है। इनके विषय मे विशेष ज्ञातव्य यह है—

ये चारो देव अपने-अपने नाम वाले वनखड के स्वामी है तथा सूर्याभ देव के सदृश महान् ऋद्धिसम्पन्न है एव अपने-अपने सामानिक देवो, सपरिवार अग्रमहिषियो, तीन परिषदाओ, सप्त अनीको—सेनाओ और सेनापतियो, आत्मरक्षक देवो का आधिपत्य, स्वामित्व आदि करते हुए नृत्य, गीत, नाटक और वाद्यघोषो के साथ विपुल भोगोपभोगो का भोग करते हुए अपना समय व्यतीत करते हैं।

इन वनखडाधिपति देवो की आयु का कालप्रमाण वतलाने के लिये 'पल्योपम' शब्द का प्रयोग किया है। जो अतिदीर्घ काल का वोधक है।

काल अनन्त है और इसमे से जिस समय-अवधिकी दिन, मास, और वर्षो के रूप मे गणना की जा सकती है, उसके लिये तो जैन वाड्मय मे घडी, घटा, पूर्वाग पूर्व, आदि शीर्षप्रहेलिका पर्यन्त सज्ञायें निश्चित की हैं। परन्तु इसके वाद जहाँ समय की अवधि इतनी लम्बी हो कि उसकी गणना वर्षो मे न की जा सके, वहाँ उपमाप्रमाण की प्रवृत्ति होती है। अर्थात् उसका वोध उपमाप्रमाण द्वारा कराया जाता है। उस उपमाकाल के दो भेद है—पल्योपम और सागरोपम। प्रस्तुत मे पल्योपम का उल्लेख होने से उसका आशय स्पष्ट करते हैं।

पल्य या पल्ल का अर्थ है कुआ अथवा धान्य को मापने का पात्र विशेष। उसके आधार या उसकी उपमा से की जाने वाली कालगणना की अवधि पल्योपम कहलाती है।

पल्योपम के तीन भेद हैं—१ उद्धारपल्योपम, २ अद्धापल्योपम और ३ क्षेत्रपल्योपम। ये तीनो भी प्रत्येक वादर[1] और सूक्ष्म के भेद से दो-दो प्रकार के हैं। इनका स्वरूप क्रमश इस प्रकार हैं—

उद्धारपल्योपम—उत्सेधागुल[2] द्वारा निष्पन्न एक योजन प्रमाण लम्बा, एक योजन चौडा और एक योजन गहरा एक गोल पल्य-वनाकर उसमे एक दिन से लेकर सात दिन तक की आयु वाले भोगभूमिज मनुष्यो के वालाग्रो को इतना ठसाठस भरे कि न उन्हे आग जला सके, न वायु उडा सके और न जल का ही प्रवेश हो सके। इस प्रकार से भरे हुए उस कुए मे से प्रतिसमय एक-एक बालाग्र-वालखड निकाला जाये तो निकालते-निकालते जितने समय मे वह कुआ खाली हो जाये उस काल-परिमाण को उद्धारपल्योपम कहते हैं। उद्धार का अर्थ है निकालना। अतएव वालो के उद्धार या निकाले जाने के कारण इसका उद्धारपल्योपम नामकरण किया गया है।

उपर्युक्त वर्णन वादर उद्धार-पल्योपम का है। अव सूक्ष्म उद्धार-पल्योपम का स्वरूप वतलाते हैं—

१ अनुयोग द्वार मे सूक्ष्म और व्यावहारिक ये दो भेद किये है।

२. आठ यवमध्य का उत्सेधागुल होता है।

ऊपर बादर उद्धार-पल्योपम को समझने के लिये कुए मे जिन बालाग्रो का सकेत किया है। उनमे से प्रत्येक बालाग्र के बुद्धि के द्वारा असख्यात खड-खड करके उन सूक्ष्म खडो की पूर्ववर्णित कुए मे ठसाठस भरा जाये और फिर प्रतिसमय एक-एक खड को उस कुए से निकाला जाये। ऐसा करने पर जितने काल मे वह कुआ नि शेष रूप से खाली हो जाये, उस समयावधि को सूक्ष्म उद्धारपल्योपम कहते हैं। इसका कालप्रमाण सख्यात करोड वर्ष है। इस सूक्ष्म उद्धारपल्योपम से द्वीप और समुद्रो की गणना की जाती है।

अद्धापल्योपम—अद्धा शब्द का अर्थ है काल या समय। प्रस्तुत सूत्र मे उल्लिखित पल्योपम का आशय इसी पल्योपम से है। इसका उपयोग चतुर्गति के जीवो की आयु और कर्मों की स्थिति वगैरह को जानने मे किया जाता है।

इसकी गणना का क्रम इस प्रकार है—पूर्वोक्त प्रमाण वाले कुए को बालाग्रो से ठसाठस भरने के बाद सौ-सौ वर्ष के अनन्तर एक-एक बालाग्र को निकाला जाये और इस प्रकार से निकालते-निकालते जितना काल लगे, निकालने पर कुआ खाली हो जाये, उतने काल प्रमाण को बादर अद्धा पल्योपम कहते हैं।

ऊपर कहे गये बादर अद्धापल्योपम के लिये जो बालाग्र लिये गये है, उनके बुद्धि द्वारा असख्यात अदृश्य खड करके कुए को ठसाठस भरा जाये और फिर प्रति सौ वर्ष बाद एक खड को निकाला जाये एव इस प्रकार से निकालते-निकालते जब कुआ खाली हो जाये और उसमे जितना समय लगे, उतने कालप्रमाण को सूक्ष्म अद्धापल्योपम कहते हैं।

क्षेत्रपल्योपम—उद्धार पल्योपम के प्रसग मे जिस एक योजन लम्बे-चौडे और गहरे कुए का उल्लेख है उसको पूर्व की तरह एक से सात दिन तक के भोगभूमिज के बालाग्रो से ठसाठस भर दो। वे अग्रभाग आकाश के जिन प्रदेशो का स्पर्श करे, उनमे से प्रतिसमय एक-एक प्रदेश का अपहरण करते-करते जितने समय मे समस्त प्रदेशो का अपहरण हो जाये, उतने समय का प्रमाण बादर क्षेत्र पल्योपम कहलाता है। यह काल असख्यात उत्सर्पिणी और असख्यात अवसर्पिणी काल के बराबर होता है।

बादरक्षेत्र पल्योपम का प्रमाण जानने के लिये जिन बालाग्रो का सकेत है, उनके असंख्यात खड करके पूर्ववत् पल्य मे भर दो। वे खड उस पल्य मे आकाश के जिन प्रदेशो का स्पर्श करे और जिन प्रदेशो का स्पर्श न करे, उनमे से प्रति समय एक-एक प्रदेश का अपहरण करते-करते जितने समय मे स्पृष्ट और अस्पृष्ट दोनो प्रकार के सभी प्रदेशो का अपहरण किया जा सके उतने समय के प्रमाण को सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपमकाल कहते है। इसका काल भी असख्यात उत्सर्पिणी—अवसर्पिणी प्रमाण है। जो बादर क्षेत्र पल्योपम की अपेक्षा असख्यात गुना अधिक जानना चाहिये। इसके द्वारा दृष्टिवाद मे द्रव्यो के प्रमाण का विचार किया जाता है।

अनुयोगद्वार सूत्र और प्रवचनसारोद्धार मे पल्योपम का विस्तार से विवेचन किया गया है।

दिगम्बर साहित्य मे पल्योपम का जो वर्णन किया गया है, वह उक्त वर्णन से कुछ भिन्न है। उसमे क्षेत्र पल्योपम नाम का कोई भेद नही है और न प्रत्येक पल्योपम के बादर और सूक्ष्म भेद ही किये हैं। वहाँ पल्योपम के तीन प्रकारो के नाम इस प्रकार हैं—१ व्यवहारपल्य, २. उद्धारपल्य

ग्रौर ३ ग्रद्धापल्य। इनमे से व्यवहार पल्य का इतना ही उपयोग है कि उसके द्वारा उद्धारपल्य ग्रौर ग्रद्धापल्य की निष्पत्ति होती है। उद्धारपल्य के द्वारा द्वीप ग्रौर समुद्रो की सख्या ग्रौर ग्रद्धापल्य के द्वारा जीवो की ग्रायु आदि का विचार किया जाता है।

सर्वार्थसिद्धि, तत्वार्थराजवार्तिक ग्रौर त्रिलोकसार मे इनका विशद रूप मे विवेचन किया गया है।

उपकारिकालयन का वर्णन

१५३—सूरियाभस्स णं देवविमाणस्स ग्रतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, तजहा-वणसड-विहूणे जाव वहवे वेमाणिया देवा देवीग्रो य ग्रासयति जाव विहरति।

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्भदेसे एत्थ णं महेगे उवगारियालयणे पण्णत्ते, एग जोयणसयसहस्स ग्रायामविक्खभेणं, तिण्णि जोयणसयसहस्साइ सोलस सहस्साइ दोण्णि य सत्तावीसं जोयणसए तिन्नि य कोसे ग्रट्ठावीसं च धणुसय तेरस य अंगुलाइ ग्रद्ध गुल च किंचिविसेसूण परिक्खेवेण, जोयणं बाहल्लेणं सव्वजंबूणयामए ग्रच्छे जाव पडिरूवे।

१५३—सूर्याभ नामक देवविमान के अदर ग्रत्यन्त समतल एव ग्रतीव रमणीय भूमिभाग है। शेप वहुत से वैमानिक देव ग्रौर देवियो के वैठने से लेकर विचरण करने तक का वर्णन पूर्ववत् कर लेना चाहिए। किन्तु यहाँ वनखड का वर्णन छोड देना चाहिए।

उस ग्रतीव सम रमणीय भूमिभाग के वीचो-वीच एक उपकारिकालयन बना हुग्रा है। जो एक लाख योजन लम्वा-चौडा है ग्रौर उसकी परिधि (कुल क्षेत्र का घेराव) तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन तीन कोस एक सौ ग्रट्ठाईस धनुप ग्रौर कुछ अधिक साढे तेरह ग्रगुल है। एक योजन मोटाई है। यह विशाल लयन सर्वात्मना (पूरा का पूरा) स्वर्ण का वना हुग्रा, निर्मल यावत् प्रतिरूप—ग्रतीव रमणीय है।

विवेचन—उपकारिकालयन—प्रशासनिक कार्यों की व्यवस्था के लिए निर्धारित सचिवालय सरीखे स्थान विशेप को कहना चाहिये—सौधोऽस्त्री राजसदनम् उपकार्योपकारिका' (ग्रमरकोश द्वि का पुरवर्ग श्लोक १०, हैम ग्रभिधान का ४ श्लोक५९)। किन्तु 'पाइग्रसद्दमहण्णवो' मे उवगा-रिया+लयण (लेण) इस प्रकार समास पद मानकर उवगारिया का ग्रर्थ प्रासाद आदि की पीठिका ग्रौर लयण (लेण) का अर्थ गिरिवर्ती पापाण-गृह वताया है। यहाँ के वर्णन से प्रतीत होता है कि प्रासाद ग्रादि की पीठिका ग्रर्थ ग्रहण किया है।

१५४—से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेण य सव्वतो समंता सपरिक्खित्ते।

१५४—वह उपकारिकालयन सभी दिशा-विदिशाग्रो मे—सव ग्रोर से एक पद्मवरवेदिका ग्रौर एक वनखड (उद्यान) से घिरा हुग्रा है।

पद्मवरवेदिका का वर्णन

१५५—सा णं पउमवरवेइया ग्रद्धजोयण उड्ढं उच्चत्तेण, पंच धणुसयाइ विक्खभेणं उवकारिय-लेणसमा परिक्खेवेण। तीसे णं पउमवरवेइयाए इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा वयरामया णिम्मा-

रिट्ठामया पतिट्ठाणा वेरुलियामया खंभा सुवण्ण-रुप्पमया फलया, नाणामणिमया कलेवरसघाडगा णाणामणिमया रूवा णाणामणिमया रूवसंघाडगा अंकामया पक्खा, पक्खबाहाओ, जोईरसामया वसा वसकवेल्लुयाओ, रययामईओ पट्टियाओ जायरूवमईओ ओहाडणीओ वइरामईओ उवरिपुच्छणी, सव्वरयणामए अच्छायणे ।

सा ण पउमवरवेइया एगमेगेण हेमजालेण, ए०[1] गवक्खजालेण, ए० खिखिणीजालेण, ए० घंटाजालेण, ए० मुत्ताजालेण, ए० मणिजालेणं, ए० कणगजालेण, ए० पउमजालेण सव्वतो समता संपरिखित्ता, तेण जाला तवणिज्जलबूसगा जाव[2] चिट्ठंति । तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्य-तत्य-देसे तहिं तहिं बहवे हयसघाडा जाव[3] उसभसघाटा सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा पासादीया जाव वीहीओ पतीयो मिहुणाणि लयाओ ।

१५५—वह पद्मवरवेदिका ऊंचाई मे आधे योजन ऊँची, पाच सौ धनुप चौडी और उपकारिकालयन जितनी इसकी परिधि है ।

उस पद्मवरवेदिका का वर्णन इस प्रकार का किया गया है, जैसे कि वज्ररत्नमय (इसकी नेम है । रिष्टरत्नमय इसके प्रतिष्ठान—मूल पाद हैं । वैडूर्यरत्नमय इनके स्तम्भ है) । स्वर्ण और रजतमय इसके फलक—पाटिये है । लोहिताक्ष रत्नो से वनी इसकी सूचियाँ—कीलें है । विविध मणिरत्नमय इसका कलेवर—ढाचा है तथा इसका कलेवर सघात-भीतरी-बाहरी ढाचा विविध प्रकार की मणियो से वना हुआ है । अनेक प्रकार के मणि-रत्नो से इस पर चित्र वने हुए है । नानामणि-रत्नो मे इसमे रूपक सघात—वेल-बूटो, चित्रो आदि के समूह वने है । अक रत्नमय इसके पक्ष—सभी हिस्से है और अक रत्नमय ही इसके पक्षवाहा—प्रत्येक भाग है । ज्योतिरस रत्नमय इसके वश—वास, वला और वशकवेल्लुक (सीधे रखे वासो के दोनो ओर रखे तिरछे वास एव कवेलू) है । रजतमय इनकी पट्टिया (वासो को लपेटने के लिये ऊपर नीचे लगी पट्टिया—लागे) है । स्वर्णमयी अवघाटनिया (ढँकनी) और वज्ररत्नमयी उपरिप्रोछनी (नरिया) है । सर्वरत्नमय आच्छादन (तिरपाल) है ।

वह पद्मवरवेदिका सभी दिशा-विदिशाओ मे चारो ओर से एक-एक हेमजाल (स्वर्णमय माल्यसमूह) से जाल (गवाक्ष की आकृति के रत्नविशेष के माल्यसमूह) से, किंकणी (घु घरु) घटिका, मोती, मणि, कनक (स्वर्ण-विशेष) रत्न और पद्म (कमल) की लवी-लवी मालाओ से परिवेष्टित है अर्थात् उस पर लबी-लवी मालाये लटक रही है ।

ये सभी मालायें सोने के लबूसको (गेद की आकृति जैसे आभूपणविशेपो, मनको) आदि से अलकृत है ।

उस पद्मवरवेदिका के यथायोग्य उन-उन स्थानो पर अश्वसघात (समान आकृति—सस्थान वाले अश्वयुगल) यावत् वृषभयुगल सुशोभित हो रहे है । ये सभी सर्वात्मना रत्नो से वने हुए, निर्मल यावत् प्रतिरूप, प्रासादिक-मन को प्रफुल्लित करने वाले है यावत् इसी प्रकार इनकी वीथियाँ, पक्तियाँ, मिथुन एव लताये हैं ।

---

१ 'ए' अक्षर 'एगमेगेण' पद का दर्शक हैं ।

२ देखें सूत्र सख्या ४९ । ३ देखें सूत्र सख्या १३० ।

१५६—से केणट्ठेणं भंते ! एव वुच्चति पउमवरवेइया पउमवरवेइया ?

१५६—गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर से पूछा—हे भदन्त ! किस कारण कहा जाता है कि यह पद्मवरवेदिका है, पद्मवरवेदिका है ? अर्थात् इस वेदिका को पद्मवरवेदिका कहने का क्या कारण है ?

१५७—गोयमा ! पउमवरवेइयाए णं तत्थ-तत्थ देसे तहिं-तहिं वेइयासु, वेइयाबाहासु य वेइयफलतेसु य वेइयपुडंतरेसु य खभेसु, खमबाहासु खमसीसेसु, खभपुडतरेसु, सूईसु, सूईमुखेसु, सूईफलएसु, सूईपुडतरेसु, पक्खेसु, पक्खबाहासु, पक्खपेरतेसु, पक्खपुडतरेसु बहुयाइं उप्पलाइं-पउमाइं-कुमुयाइ णलिणाति-सुभगाइं-सोगंधियाइं-पुंडरीयाइं-महापुंडरीयाणि-सयवत्ताइ-सहस्सवत्ताइं सव्वरयणामयाइ अच्छाइं पडिरूवाइ महया वासिक्कछत्तसमाणाइ पण्णत्ताइं समणाउसो ! से एएण अट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ पउमवरवेइया 'पउमवरवेइया'।

१५७—भगवान् ने उत्तर दिया—हे गौतम ! पद्मवर-वेदिका के आस-पास की (समीपवर्ती) भूमि मे, वेदिका के फलको—पाटियो मे, वेदिकायुगल के अन्तरालो मे, स्तम्भो-स्तम्भो, की बाजुओ, स्तम्भो के शिखरो, स्तम्भयुगल के अन्तरालो, कीलियो, कीलियो के ऊपरीभागो, कीलियो से जुड़े हुए फलको, कीलियो के अन्तरालो, पक्षो (स्थान विशेषो), पक्षो के प्रान्त भागो और उनके अन्तरालो आदि-आदि मे वर्षाकाल के वरसते मेघो से वचाव करने के लिए छत्राकार—जैसे अनेक प्रकार के वडे-वड़े विकसित, सर्व रत्नमय स्वच्छ, निर्मल अतीव सुन्दर, उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगंधिक पुडरीक महापुंडरीक, शतपत्र और सहस्रपत्र कमल शोभित हो रहे है।

इसीलिये हे आयुष्मन् श्रमण गौतम ! इस पद्मवरवेदिका को पद्मवरवेदिका कहते है।

१५८—पउमवरवेइया ण भंते। किं सासया, असासया ?

गोयमा ! सिय सासया, सिय असासया।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ सिय सासया, सिय असासया ?

गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासया, वन्नपज्जवेहिं, गधपज्जवेहिं, रसपज्जवेहिं, फासपज्जवेहिं असासया, से एएणट्ठेण गोयमा ! एव वुच्चति सिय सासया, सिय असासया।

पउमवरवेइया ण भते ! कालओ केवचिरं होइ ?

गोयमा ! ण कयावि णासि, ण कयावि णत्थि, ण कयावि न भविस्सइ, भुविं च हवइ य, भविस्सइ य, धुवा णियया सासया अक्खया अव्वया अवट्ठिया णिच्चा पउमवर वेइया।

१५८—हे भदन्त ! वह पद्मवरवेदिका शाश्वत है अथवा अशाश्वत है।

हे गौतम ! (किसी अपेक्षा) शाश्वत नित्य भी है और (किसी अपेक्षा) अशाश्वत भी है।

भगवन् ! किस कारण आप ऐसा कहते है कि (किसी अपेक्षा) वह शाश्वत भी है और (किसी अपेक्षा) अशाश्वत भी है ?

हे गौतम ! द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा वह शाश्वत है परन्तु वर्ण, गध, रस, और स्पर्श पर्यायो की अपेक्षा अशाश्वत है। इसी कारण हे गौतम ! यह कहा है कि वह पद्मवरवेदिका शाश्वत भी है और अशाश्वत भी है।

हे भदन्त ! काल की अपेक्षा वह पद्मवर-वेदिका कितने काल पर्यन्त—कब तक रहेगी ?

हे गौतम ? वह पद्मवरवेदिका पहले (भूतकाल मे) कभी नही थी, ऐसा नही है, अभी (वर्तमान मे) नही है, ऐसा भी नही है और आगे (भविष्य मे) नही रहेगी ऐसा भी नही है, किन्तु पहले भी थी, अव भी है और आगे भी रहेगी। इस प्रकार त्रिकालावस्थायी होने से वह पद्मवर-वेदिका ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे पद्मवरवेदिका की शाश्वतता विपयक गौतम स्वामी की जिज्ञासा का समाधान द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दो दृष्टियो (नयो से) किया गया है।

भगवान् ने पद्मवर वेदिका को द्रव्यार्थिक दृष्टि से शाश्वत वताने के साथ वर्णादि पर्यायो के परिवर्तनशील होने से अशाश्वत वताया है क्योकि द्रव्य-पर्याय का यही स्वरूप है। नित्य शाश्वत ध्रुव होते हुए भी द्रव्य मे भावात्मक-पर्यायात्मक परिवर्तन प्रतिसमय होता रहता है। इन्ही परिवर्तनो को पर्याय कहते है और पर्यायें अशाश्वत होती हैं।

पर्यायें अवश्य ही प्रतिसमय परिवर्तित होती रहती हैं परन्तु प्रदेशो के लिए यह नियम नही है। किन्ही द्रव्यो के प्रदेश नियत भी होते हैं और किन्ही के अनियत भी। जैसे कि जीव के प्रदेश सभी देश और काल मे नियत हैं, वे कभी घटते-वढते नही है। किन्तु पुद्गलद्रव्य के प्रदेशो का नियम नही है, उनमे न्यूनाधिकता होती रहती है।

पद्मवरवेदिका पौद्गलिक है और पर्याय दृष्टि से परिवर्तनशील-अशाश्वत है किन्तु पुद्गल द्रव्य होते हुए भी अनियत प्रदेशी नही है।

इन सब विशेषताओ को सूत्र मे धुवा णियया, सासया, अक्खया, अव्वया, अवट्ठिया-ध्रुव नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित पदो से स्पष्ट किया है।

१५९—सा णं पउमवरवेइया एगेण वणसडेण सव्वओ सपरिक्खित्ता।

से णं वणसंडे देसूणाइं दो जोयणाइ चक्कवालविक्खभेण उवयारियालेणसमे परिक्खेवेण, वणसंडवण्णओ भाणितव्वो जाव विहरति।

१५९—वह पद्मवरवेदिका चारो ओर—सभी दिशा-विदिशाओ मे—एक वनखंड से परिवेष्टित—घिरी हुई है।

उस वनखड का चक्रवालविष्कम्भ (गोलाकार-चौडाई) कुछ कम दो योजन प्रमाण है तथा उपकारिकालयन की परिधि जितनी उसकी परिधि है। वहाँ देव-देवियाँ विचरण करती हैं, यहाँ तक वनखड का वर्णन पूर्ववत् यहाँ कर लेना चाहिये।

विवेचन—सूत्र संख्या १३६-१५१ मे वनखड का विस्तार से वर्णन किया है। उसी वर्णन को यहाँ करने का सकेत 'वणसंडवण्णओ भाणितव्वो जाव विहरति' पद से किया है। संक्षेप मे उक्त वर्णन का साराश इस प्रकार है—

यह वनखड चारो ओर से एक परकोटे से घिरा हुआ है तथा वृक्षो की सघनता से हरा-भरा अत्यन्त शीतल और दर्शको के मन को सुखप्रद है। वनखड का भूभाग अत्यन्त सम तथा अनेक प्रकार की मणियो और तृणो से उपशोभित है।

इस वनखड मे स्थान-स्थान पर अनेक छोटी बडी वावडिया, पुष्करणिया, गुंजालिकायें आदि वनी है। इन सवके तट रजतमय हैं और तल भाग मे स्वर्ण-रजतमय बालुका बिछी हुई है। कुमुद, नलिन, सुभग, सौगधिक, पु डरीक आदि विविध जाति के कमलो से इनका जल आच्छादित है।

इन वापिकाओ आदि के अन्तरालवर्ती स्थानो मे मनुष्यो और पक्षियो के भूलने के लिये भूले—हिंडोले पडे हैं और वहुत से उत्पातपर्वत, नियतिपर्वत, दारुपर्वत, दकमडप, दकमालक दकमच वने हुए है।

इन वनखण्डो मे कही-कही आलिगृह, मालिगृह, कदलीगृह, लतागृह, मडप आदि वने हैं और विश्राम करने के लिये जिनमे हसासन आदि अनेक प्रकार के आसन तथा शिलापट्टक रखे हैं और जहाँ वहुत से देव-देविया आ-आकर विविध प्रकार को क्रीडाये करते हुए पूर्वोपार्जित पुण्यकर्मों के फलविपाक को भोगते हुए आनन्दपूर्वक विचरण करते हैं।

१६०—तस्स णं उवयारियालेणस्स चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता, वण्णओ, तोरणा, झया, छत्ताइच्छत्ता।

तस्स णं उवयारियालयणस्स उवरिं, वहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव मणीण फासो।

१६०—उस उपकारिकालयन की चारो दिशाओ मे चार त्रिसोपानप्रतिरूपक (तीन-तीन सीढियो की पक्ति) वने हैं। यान विमान के सोपानो के समान इन त्रिसोपान-प्रतिरूपको का वर्णन भी तोरणो, ध्वजाओ, छत्रातिछत्रो आदि पर्यन्त यहाँ करना चाहिये।

उस उपकारिकालयन के ऊपर अतिसम, रमणीय भूमिभाग है। यानविमानवत् मणियो के स्पर्शपर्यन्त इस भूमिभाग का वर्णन यहाँ करना चाहिये।

विवेचन—उपकारिकालयन की त्रिसोपान-पक्तियो और भूमिभाग का वर्णन यानविमानवत् करने की सूचना प्रस्तुत सूत्र मे दी गयी है। सक्षेप मे उक्त वर्णन इस प्रकार है—

इन त्रिसोपानो की नेम वज्ररत्नो से वनी हुई है। रिष्टरत्नमय इनके प्रतिष्ठान (पैर रखने के स्थान) हैं। वैडूर्यरत्नो से वने इनके स्तम्भ हैं और फलक—पाटिये स्वर्णरजतमय हैं। नाना मणिमय इनके अवलवन और कटकडा हैं। मन को प्रसन्न करने वाले अतीव मनोहर है।

इन प्रत्येक त्रिसोपान-पक्तियो के आगे अनेक प्रकार के मणि-रत्नो से वने हुए वेलबूटो आदि से सुशोभित तोरण वने हैं और तोरणो के ऊपरी भाग स्वस्तिक आदि आठ-आठ मगलो एव वज्र-रत्नो से निर्मित और कमलो जैसी सुरभिगध से सुगधित, रमणीय चामरो से शोभित हो रहे हैं। इसके साथ ही अत्यन्त शोभनीक रत्नो से वने हुए छत्रातिछत्र, पताकाये, घटा-युगल एव उत्पल, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगधिक पु डरीक, महापु डरीक आदि कमलो के भूमके भी उन तोरणो पर लटक रहे हैं आदि।

उस उपकारिकालयन का भूमिभाग आलिग-पुष्कर, मृदगपुष्कर, सरोवर, करतल, चन्द्र-मडल, सूर्यमडल आदि के समान अत्यन्त सम और रमणीय है।

उस भूभाग मे अजन, खजन, सघन मेघ—घटाओ आदि के कृष्ण वर्ण से, भृ गकीट, भृंगपख, नीलकमल, नील-अशोकवृक्ष आदि के नील वर्ण से, प्रात.कालीन सूर्य, पारिजात पुष्प, हिंगलुक, प्रवाल आदि के रक्त वर्ण से, स्वर्णचपा, हरताल, चिकुर, चपाकुसुम आदि के पीत वर्ण से, और शख, चन्द्रमा, कुमुद आदि के श्वेत वर्ण से भी अधिक श्रेष्ठ कृष्ण आदि वर्ण वाली मणिया जड़ी हुई हैं।

वे सभी मणिया इलायची, चदन, अगर, लवग आदि सुगधित पदार्थो से भी अधिक सुरभि गध वाली हैं और बूर—रुई, मक्खन, हसगर्भ नामक रुई विशेष से भी अधिक सुकोमल उनका स्पर्श है।

मुख्य प्रासादावतंसक का वर्णन

१६१—तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महेगे मूलपासाय-वडेंसए पण्णत्ते।

से णं मूलपासायवडिसए पच जोयणसयाइ उड्ढं उच्चत्तेण, अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइ विक्खभेणं, अब्भुग्गयमूसिय—वण्णओ, भूमिभागो उल्लोओ सीहासण सपरिवार भाणियव्व, अट्ठट्ठमगलगा झया छत्ताइच्छत्ता।

१६१—उस अतिसम रमणीय भूमिभाग के अतिमध्यदेश मे एक विशाल मूल—मुख्य प्रासादावतसक (उत्तम महल) है।

वह प्रासादावतसक पाच सौ योजन ऊँचा और अढाई सौ योजन चौड़ा है तथा अपनी फैल रही प्रभा से हँसता हुआ प्रतीत होता है, आदि वर्णन करते हुए उस प्रासाद के भीतर के भूमि-भाग, उल्लोक—चदेवा, परिवार रूप अन्य भद्रासनो आदि से सहित सिंहासन, आठ मगल, ध्वजाओ और छत्रातिछत्रो का यहा कथन करना चाहिए।

१६२—से णं मूलपासायवडेसगे अण्णेहिं चउहिं पासायवडेंसएहिं तयद्धुच्चत्तप्पमाणमेत्तेहिं सव्वतो समता संपरिखित्ते, ते ण पासायवडेंसगा अड्ढाइज्जाइ जोयणसयाइ उड्ढं उच्चत्तेणं पणवीस जोयणसय विक्खभेणं जाव वण्णओ।

ते णं पासायवडिसया अण्णेहिं चउहिं पासायवडिसएहिं तयद्धुच्चत्तप्पमाणमेत्तेहिं सव्वओ समता संपरिखित्ता। ते णं पासायवडेंसया पणवीस जोयणसयं उड्ढं उच्चत्तेण बासट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च विक्खभेण अब्भुग्गयमूसिय वण्णओ, भूमिभागो उल्लोओ सीहासणं सपरिवारं भाणियव्वं अट्ठट्ठ मंगलगा झया छत्तातिच्छत्ता।

ते णं पासायवडेंसगा अण्णेहिं चउहिं पासायवडेंसएहिं तदद्धुच्चत्तपमाणमेत्तेहिं सव्वतो समता संपरिक्खित्ता, ते णं पासायवडेंसगा बासट्ठिं जोयणाइ अद्धजोयण च उड्ढं उच्चत्तेणं एक्कतीसं जोयणाइ कोसं च विक्खंभेण, वण्णओ, उल्लोओ सीहासणं सपरिवारं पासाय० उवरिं अट्ठट्ठ मंगलगा झया छत्तातिछत्ता।

१६२—वह प्रधान प्रासादावतसक सभी चारो दिशाओ मे ऊँचाई मे अपने से आधे ऊँचे अन्य चार प्रासादावतसको से परिवेष्टित है। अर्थात् उसकी चारो दिशाओ मे और दूसरे चार प्रासाद बने हुए हैं। ये चारो प्रासादावतसक ढाई सौ योजन ऊँचे और चौडाई मे सवा सौ योजन चौडे है, इत्यादि वर्णन पूर्ववत् यहाँ करना चाहिये।

ये चारो प्रासादावतसक भी पुन चारो दिशाओ मे अपनी ऊँचाई वाले अन्य चार प्रासादावतसको से घिरे हैं। ये प्रासादावतसक एक सौ पच्चीस योजन ऊँचे और साढे बासठ योजन चौडे हैं तथा ये चारो ओर फैल रही प्रभा से हसते हुए-से दिखते है, यहाँ से लेकर भूमिभाग, चदेवा, सपरिवार सिंहासन, आठ-आठ मगल, ध्वजाओ, छत्रातिछत्रो से सुशोभित है, पर्यन्त इनका वर्णन करना चाहिए।

ये प्रासादावतसक भी चारो दिशाओ मे अपनी ऊँचाई से आधी ऊँचाई वाले अन्य चार प्रासादावतसको से परिवेष्टित हैं। ये प्रासादावतक साडे बासठ योजन ऊँचे और इकतीस योजन एक कोस चौडे हैं। इन प्रासादो के भूमिभाग, चदेवा, सपरिवार सिंहासन, ऊपर आठ मगल, ध्वजाओ छत्रातिछत्रो आदि का वर्णन भी पूर्ववत् यहाँ करना चाहिये।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे प्रधान प्रासादावतसक के आस-पास की चारो दिशाओ सम्बन्धी रचना का वर्णन किया है। वह प्रधान प्रासाद अपनी आस-पास की रचना के बीचो-बीच है और चारो दिशाओ मे बने अन्य चार प्रासादो की अपेक्षा सबसे अधिक ऊँचा और लम्बा-चौडा है तथा शेष पार्श्ववर्ती प्रासाद अपने-अपने से पूर्व के प्रासादो की अपेक्षा ऊँचाई और चौडाई मे उत्तरोत्तर आधे-आधे हैं। अर्थात् मूल प्रासादावतसक की अपेक्षा उत्तरवर्ती अन्य-अन्य प्रासाद शिखर से लेकर तलहटी तक पर्वत के आकार के समान क्रमश अर्ध, चतुर्थ और अष्ट भाग प्रमाण ऊँचे और चौडे है।

सुधर्मा सभा का वर्णन—

१६३—तस्स ण मूलपासायवडेंसयस्स उत्तरपुरत्थिमेण एत्थ ण सभा सुहम्मा पण्णत्ता, एगं जोयणसय आयामेण, पण्णास जोयणाइ विक्खम्भेण, बावत्तरिं जोयणाइं उड्ढ उच्चत्तेण, अणेगखम्भ जाव[1] अच्छरगण[2] पासादीया।

१६३—उस प्रधान प्रासाद के ईशान कोण मे सौ योजन लम्बी, पचास योजन चौडी और बहत्तर योजन ऊँची सुधर्मा नामक सभा है। यह सभा अनेक सैकडो खभो पर सन्निविष्ट यावत् अप्सराओ मे व्याप्त अतीव मनोहर है।

१६४—सभाए णं सुहम्माए तिदिसिं तओ दारा पण्णत्ता तजहा-पुरत्थिमेण, दाहिणेण, उत्तरेण।

ते ण दारा सोलस जोयणाइ उड्ढं उच्चत्तेण, अट्ठ जोयणाइं विक्खम्भेण, तावतिय चेव पवेसेणं, सेया वरकणगथूभियागा जाव[3]वणमालाओ। तेसिं ण दाराणं उवरिं अट्ठट्ठ मङ्गलगा झया छत्ताइछत्ता।

तेसिं ण दाराण पुरओ पत्तेय पत्तेय मुहमण्डवे पण्णत्ते, ते ण मुहमण्डवा एग जोयणसय आयामेण, पण्णासं जोयणाइ विक्खमेण, साइरेगाइ सोलस जोयणाइ उड्ढ उच्चत्तेण, वण्णओ सभाए सरिसो।

तेसिं ण मुहमण्डवाण तिदिसिं ततो दारा पण्णत्ता, तंजहा पुरत्थिमेण, दाहिणेण, उत्तरेण। ते णं दारा सोलस जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अट्ठ जोयणाइ विक्खंभेणं, तावइयं चेव पवेसेणं, सेया

१-२ देखें सूत्र सख्या ४५। ३ देखे सूत्र सख्या १२१ से १२९

वरकणगथूभियागा जाव[1] वणमालाओ। तेसि णं मुहमडवाणं भूमिभागा, उल्लोया तेसि णं मुहमंडवाणं उवरिं अट्ठट्ठ मङ्गलगा, झया, छत्ताइच्छत्ता।

तेसि णं मुहमडवाणं पुरतो पत्तेयं-पत्तेयं पेच्छाघरमडवे पण्णत्ते, मुहमडववत्तव्वया जाव, दारा, भूमिभागा, उल्लोया।

१६४—इस सुधर्मा सभा की तीन दिशाओ मे तीन द्वार हैं। वे इस प्रकार हैं—पूर्व दिशा मे एक, दक्षिण दिशा मे एक और उत्तर दिशा मे एक।

वे द्वार ऊँचाई मे सोलह योजन ऊँचे, आठ योजन चौडे और उतने ही प्रवेश मार्ग वाले हैं। वे द्वार श्वेत वर्ण के हैं। श्रेष्ठ स्वर्ण से निर्मित शिखरो एव वनमालाओ से अलकृत हैं, आदि वर्णन पूर्ववत् यहाँ करना चाहिये।

(उन द्वारो के ऊपर स्वस्तिक आदि आठ-आठ मगल, ध्वजायें और छत्रातिछत्र विराजित हैं—शोभायमान हो रहे हैं।)

उन द्वारो के आगे सामने एक-एक मुखमडप हैं। ये मडप सौ योजन लम्बे, पचास योजन चौडे और ऊँचाई मे कुछ अधिक सोलह योजन ऊँचे हैं। सुधर्मा सभा के समान इनका शेप वर्णन कर लेना चाहिये।

इन मडपो की तीन दिशाओ मे तीन द्वार हैं, यथा—एक पूर्व दिशा मे, एक दक्षिण दिशा मे और एक उत्तर दिशा मे। ये द्वार ऊँचाई मे सोलह योजन ऊचे हैं, आठ योजन चौडे और उतने ही प्रवेशमार्ग वाले हैं। ये द्वार श्वेत धवलवर्ण और श्रेष्ठ स्वर्ण से बनी शिखरो, वनमालाओ से अलकृत है, पर्यन्त का वर्णन पूर्ववत् यहाँ करना चाहिये।

(उन मडपो के भूमिभाग, चदेवा और ऊपर आठ-आठ मंगल, ध्वजाओ, छत्रातिछत्र आदि का भी वर्णन करना चाहिए।)

इन मुखमडपो मे से प्रत्येक के आगे प्रेक्षागृहमडप बने हैं। इन मडपो के द्वार, भूमिभाग, चादनी आदि का वर्णन मुखमडपो की वक्तव्यता के समान जानना चाहिये।

१६५—तेसि ण बहुसमरमणिज्जाण भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेय पत्तेय वइरामए अक्खाडए पण्णत्ते।

तेसि णं वयरामयाण अक्खाडगाण बहुमज्झ-देसभागे पत्तेयं-पत्तेयं मणिपेढिया पण्णत्ता, ताओ णं मणिपेढियाओ अट्ठ जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेण, सव्वमणिमईओ अच्छाओ जाव[2] पडिरूवाओ।

तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं पत्तेय-पत्तेयं सीहासणे पण्णत्ते, सीहासणवण्णओ सपरिवारो।

तेसि णं पेच्छाघरमडवाणं उवरिं अट्ठट्ठ मंगलगा झया छत्तातिछत्ता।

---

१. देखें सूत्र सख्या १२१ से १२९

२ देखें सूत्र सख्या ४७

१६५—उन प्रेक्षागृह मडपो के अतीव रमणीय समचौरस भूमिभाग के मध्यातिमध्य देश मे एक-एक वज्ररत्नमय अक्षपाटक-मच कहा गया है।

उन वज्ररत्नमय अक्षपाटको के भी बीचो-बीच आठ योजन लम्बी-चौडी, चार योजन मोटी और विविध प्रकार के मणिरत्नो से निर्मित निर्मल यावत् प्रतिरूप—असाधारण सुन्दर एक-एक मणिपीठिकाये बनी हुई हैं।

उन मणिपीठिकाओ के ऊपर एक-एक सिंहासन रखा है। भद्रासनो आदि आसनो रूपी परिवार सहित उन सिंहासनो का वर्णन करना चाहिए।

उन प्रेक्षागृह मडपो के ऊपर आठ-आठ मगल, ध्वजाये, छत्रातिछत्र सुशोभित हो रहे है।

स्तूप-वर्णन

१६६—तेसि ण पेच्छाघरमडवाण पुरओ पत्तेय-पत्तेय मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ। ताओ णं मणिपेढियातो सोलस-सोलस जोयणाइ आयामविक्खभेण, अट्ठ जोयणाइ बाहल्लेण, सव्वमणिमईओ अच्छाओ पडिरूवाओ।

तासि णं उवरिं पत्तेय-पत्तेय थूभे पण्णत्ते। ते ण थूभा सोलस-सोलस जोयणाइं आयामविक्खभेणं, साइरेगाइं सोलस-सोलस जोयणाइ उड्ढं उच्चत्तेण, सेया सखक(कुद-दगरय-अमय-महिय-फेणपुंजसंन्निगासातो) सव्वरयणामया अच्छा जाव (सण्हा-लण्हा-घट्ठा-मट्ठा-णीरया-निम्मला-निप्पंका-निक्कंकडच्छाया-सप्पभा-समिरीया-सउज्जोया पासादीया-दरिसणिज्जा अभिरूवा) पडिरूवा।

तेसि ण थूभाण उवरिं अट्ठट्ठ मंगलगा, भया छत्तातिछत्ता जाव[1] सहस्सपत्तहत्थया।

तेसि ण थूभाणं पत्तेय-पत्तेयं चउद्दिसि मणि-पेढियातो पण्णत्ताओ। ताओ ण मणिपेढियातो अट्ठ जोयणाइं आयामविक्खभेणं, चत्तारि जोयणाइ बाहल्लेणं, सव्वमणि-मईओ अच्छाओ जाव पडिरूवातो।

तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि जिणपडिमातो जिणुस्सेहपमाणमेत्ताओ सपलियकनिसन्नाओ, थूभाभिमुहीओ सन्निक्खित्ताओ चिट्ठ ति, तजहा-उसभा, वद्धमाणा, चंदाणणा वारिसेणा।

१६६—उन प्रेक्षागृह मडपो के आगे एक-एक मणिपीठिका है। ये मणिपीठिकाये सोलह-सोलह योजन लम्बी-चौडी आठ योजन मोटी हैं। ये सभी सर्वात्मना मणिरत्नमय, स्फटिक मणि के समान निर्मल और प्रतिरूप हैं।

उन प्रत्येक मणिपीठो के ऊपर सोलह-सोलह योजन लम्बे-चौडे समचौरस और ऊचाई मे कुछ अधिक सोलह योजन ऊचे, शख, अक रत्न, कुन्दपुष्प, जलकण, मथन किये हुए अमृत के फेनपुज सदृश प्रभा वाले) श्वेत, सर्वात्मना रत्नो से बने हुए स्वच्छ यावत् (चिकने, सलौने घुटे हुए, मृष्ट, शुद्ध, निर्मल पक (कीचड़)रहित, आवरण रहित परछाया वाले, प्रभा, चमक और उद्योत वाले, मन को प्रसन्न करने वाले, देखने योग्य, मनोहर) असाधारण रमणीय स्तूप बने हैं।

---

१ देखें सूत्र सख्या २७, २८, २९

उन स्तूपो के ऊपर आठ-आठ मगल, ध्वजाये छत्रातिछत्र यावत् सहस्रपत्र कमलो के झूमके सुशोभित हो रहे है।

उन स्तूपो की चारो दिशाओ मे एक-एक मणिपीठिका है। ये प्रत्येक मणिपीठिकाये आठ योजन लम्बी-चौडी, चार योजन मोटी और अनेक प्रकार के मणि रत्नो से निर्मित, निर्मल यावत् प्रतिरूप हैं।

प्रत्येक मणिपीठिका के ऊपर, जिनका मुख स्तूपो के सामने हैं ऐसी जिनोत्सेध प्रमाण वाली चार जिन-प्रतिमाये पर्यंकासन से विराजमान हैं, यथा—(१) ऋषभ, (२) वर्धमान (३) चन्द्रानन (४) वारिषेण की।

विवेचन—'जिणुस्सेहप्पमाणमेत्ताओ' अर्थात् ऊचाई मे जिन-भगवान् के शरीर प्रमाण वाली। जिन भगवान् के शरीर की अधिकतम ऊचाई पाच सौ धनुष और जघन्यतम सात हाथ की बताई है। वर्णन को देखते हुए यहाँ स्थापित जिन-प्रतिमाये पाँच सौ धनुष प्रमाण ऊची होनी चाहिये, ऐसा टीकाकार का अभिप्राय है।

चैत्य वृक्ष

१६७—तेसि ण थूभाण पुरतो पत्तेय-पत्तेय मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ। ताओ ण मणि-पेढियाओ सोलस जोयणाइ आयामविक्खभेणं, अट्ठ जोयणाइं बाहल्लेण, सव्वमणिमईओ जाव पडिरूवाओ।

तासि ण मणिपेढियाण उवरिं पत्तेय-पत्तेय चेइयरुक्खे पण्णत्ते, ते ण चेइयरुक्खा अट्ठ जोयणाइं उड्ढ उच्चत्तेण अद्धजोयणं उव्वेहेण, दो जोयणाइ खधा, अद्धजोयण विक्खभेण, छ जोयणाइ विडिमा, बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोयणाइं आयामविक्खभेण, साइरेगाइं अट्ठ जोयणाइ सव्वग्गेण पण्णत्ता।

तेसि ण चेइयरुक्खाण इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, त जहा—

वयरामयमूल-रययसुपइट्ठियविडिमा, रिट्ठामयविउलकदवेरुलियरुइलखंधा, सुजायवरजाय-रूवपढमगविसालसाला, नाणामणिमयरयणविविहसाहप्पसाह-वेरुलियपत्त-तवणिज्जपत्तविंटा, जबूणय-रत्तमउयसुकुमालपवालपल्लववरकुरधरा, विचित्तमणिरयणसुरभिकुसुमफलभरनमियसाला, सच्छाया, सप्पभा, सस्सिरीया, सउज्जोया, अहिय नयणमणणिव्वुइकरा, अमयरससमरसफला, पासाईया ।

तेसि ण चेइयरुक्खाण उवरिं अट्ठट्ठ मगलगा झया छत्ताइछत्ता।

१६७—उन प्रत्येक स्तूपो के आगे-सामने मणिमयी पीठिकाये बनी हुई है। ये मणिपीठिकाये सोलह योजन लम्बी-चौडी, आठ योजन मोटी और सर्वात्मना मणिरत्नो से निर्मित, निर्मल यावत् अतीव मनोहर हैं।

उन मणिपीठिकाओ के ऊपर एक-एक चैत्यवृक्ष है। ये सभी चैत्यवृक्ष ऊचाई मे आठ योजन ऊचे, जमीन के भीतर आधे योजन गहरे हैं। इनका स्कन्ध भाग दो योजन का और आधा योजन चौडा है। स्कन्ध से निकलकर ऊपर की ओर फैली हुई शाखायें छह योजन ऊची और लम्बाई-चौड़ाई मे आठ योजन की है। कुल मिलाकर इनका सर्वपरिमाण कुछ अधिक आठ योजन है।

इन चैत्य वृक्षो का वर्णन इस प्रकार किया गया है,—

इन वृक्षो के मूल (जडे) वज्ररत्नो के है, विडिमाये-शाखाये रजत की, कद रिष्टरत्नो के, मनोरम स्कन्ध वैडूर्यमणि के, मूलभूत प्रथम विशाल शाखाये शोभनीक श्रेष्ठ स्वर्ण की, विविध शाखा-प्रशाखाये नाना प्रकार के मणि-रत्नो की, पत्ते वैडूर्यरत्न के, पत्तो के वृन्त (डडियाँ) स्वर्ण के, अरुण-मृदु-सुकोमल-श्रेष्ठ प्रवाल, पल्लव एव अकुर जाम्बूनद (स्वर्णविशेष) के हैं और विचित्र मणिरत्नो एव सुरभिगध-युक्त पुष्प-फलो के भार से नमित शाखाओ एव अमृत के समान मधुररस युक्त फल वाले ये वृक्ष सु दर मनोरम छाया, प्रभा, काति, शोभा, उद्योत से सपन्न नयन-मनको शातिदायक एव प्रासादिक हैं।

उन चैत्यवृक्षो के ऊपर आठ-आठ मगल, ध्वजाये और छत्रातिछत्र सुशोभित हो रहे है।

१६८—तेसि ण चेइयरुक्खाण पुरतो पत्तेयं-पत्तेय मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ। ताओ ण मणिपेढियाओ अट्ठ जोयणाइं आयामविक्खभेण चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेण सव्वमणिमईओ अच्छाओ जाव पडिरूवाओ।

१६८—उन प्रत्येक चैत्यवृक्षो के आगे एक-एक मणिपीठिका है। ये मणिपीठिकाये आठ योजन लबी-चौडी, चार योजन मोटी, सर्वात्मना मणिमय निर्मल यावत् प्रतिरूप—अतिशय मनोरम हैं।

माहेन्द्र-ध्वज :—

१६९—तासि ण मणिपेढियाण उवरिं पत्तेयं-पत्तेय महिंदज्झए पण्णत्ते।

ते णं महिंदज्झया सट्ठि जोयणाइ उड्ढ उच्चत्तेणं, अद्धकोस उव्वेहेण, अद्धकोस विक्खभेण, वइरामय-वट्ट-लट्ठ-सठिय-सुसिलिट्ठ-परिघट्ठ-मट्ठ-सुपतिट्ठिए-विसिट्ठे-अणेगवर-पंचवण्णकुडभी-सहस्सुस्सिए-परिमडियाभिरामे-वाउद्धुयविजयवेजयंतीपडागच्छत्तातिच्छत्तकलिते, तु गे, गगणतल-मणुलिहतसिहरा पासादीया।

तेसि ण महिंदज्झयाणं उवरिं अट्ठट्ठ मगलया झया छत्तातिछत्ता।

१६९—उन मणिपीठिकाओ के ऊपर एक-एक माहेन्द्रध्वज (इन्द्र के ध्वज सदृश अति विशाल ध्वज) फहरा रहा है। वे माहेन्द्रध्वज साठ योजन ऊचे, आधा कोस जमीन के भीतर ऊडे—गहरे, आधा कोस चौडे, वज्ररत्नो से निर्मित, दीप्तिमान, चिकने, कमनीय मनोज्ञ वर्तु लाकार—गोल डडे वाले शेप ध्वजाओ से विशिष्ट, अन्यान्य हजारो छोटी-बडी अनेक प्रकार की मनोरम रग-बिरगी-पचरगी पताकाओ से परिमडित, वायुवेग से फहराती हुई विजय-वैजयन्ती पताका, छत्रातिछत्र से युक्त आकाशमडल को स्पर्श करने वाले ऐसे ऊचे उपरिभागो से अलकृत, मन को प्रसन्न करने वाले है।

इन माहेन्द्र—ध्वजो के ऊपर आठ-आठ मगल, ध्वजाये और छत्रातिछत्र सुशोभित हो रहे हैं।

१७०—तेसि ण महिंदज्झयाणं पुरतो पत्तेयं-पत्तेयं नंदा पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ।

ताओ ण पुक्खरिणीओ एगं जोयणसयं आयामेण, पण्णास जोयणाइं विक्खभेणं, दस जोयणाइं उव्वेहेण, अच्छाओ जाव वण्णओ, एगइयाओ उदगरसेणं पण्णत्ताओ।

पत्तेय-पत्तेय पउमवरवेइयापरिक्खित्ताओ, पत्तेयं-पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ताओ।

तासि ण णदाणं पुक्खरिणीणं तिदिसि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता। तिसोवाणपडिरूवगाण वण्णओ, तोरणा, झया, छत्तातिछत्ता।

१७०—उन माहेन्द्रध्वजाओ के आगे एक-एक नन्दा नामक पुष्करिणी वनी हुई है।

ये पुष्करिणियाँ सौ योजन लवी, पचास योजन चौडी, दस योजन ऊडी-गहरी हैं और स्वच्छ-निर्मल हैं आदि वर्णन पूर्ववत् यहाँ जानना चाहिए। इनमे मे कितनेक का पानी स्वाभाविक पानी जैसा मधुर रस वाला है।

ये प्रत्येक नन्दा पुष्करिणिया एक-एक पद्मवर-वेदिका और वनखडो से घिरी हुई हैं।

इन नन्दा पुष्करिणियो की तीन दिशाओ मे अतीव मनोहर त्रिसोपान-पक्तियाँ हैं। इन त्रिसोपान—पक्तियो के ऊपर तोरण, ध्वजायें, छत्रातिछत्र सुशोभित हैं आदि वर्णन पूर्ववत् करना चाहिए।

सुधर्मासभावर्ती मनोगुलिकायें गोमानसिकायें—

१७१—सभाए ण सुहम्माए अडयालीस मणोगुलियासाहस्सीओ पण्णत्ताओ, त जहा—पुरत्थिमेणं सोलससाहस्सीओ, पच्चत्थिमेण सोलससाहस्सीओ, दाहिणेणं अट्ठसाहस्सीओ, उत्तरेण अट्ठ-साहस्सीओ।

तासु ण मणोगुलियासु वहवे सुवण्णरूप्पमया फलगा पण्णत्ता। तेसु णं सुवन्नरूप्पमएसु फलगेसु वहवे वइरामया णागदंता पण्णत्ता। तेसु णं वइरामएसु णागदतएसु किण्हसुत्तवट्टवग्घारियमल्लदाम-कलावा चिट्ठ ति।

१७१—सुधर्मा सभा मे अडतालीस हजार मनोगुलिकाये (छोटे-छोटे चवूतरे) हैं, वे इस प्रकार हैं—पूर्व दिशा मे सोलह हजार, पश्चिम दिशा मे सोलह हजार, दक्षिण दिशा मे आठ हजार और उत्तर दिशा मे आठ हजार।

उन मनोगुलिकाओ के ऊपर अनेक स्वर्ण एव रजतमय फलक—पाटिये और उन स्वर्ण रजतमय पाटियो पर अनेक वज्ररत्नमय नागदत लगे हैं। उन वज्रमय नागदतो पर काले सूत से वनी हुई गोल लवी-लवी मालाये लटक रही हैं।

१७२—सभाए णं सुहम्माए अडयालीस गोमाणसियासाहस्सीओ पन्नत्ताओ। जह मणोगुलिया जाव णागदंतगा।

तेसु ण णागदतएसु वहवे रययामया सिक्कगा पण्णत्ता। तेसु ण रययामएसु सिक्कगेसु वहवे वेरुलियामइओ घूवघडियाओ पण्णत्ताओ। ताओ णं घूवघडियाओ कालागुरुपवर जाव चिट्ठ ति।

१७२—सुधर्मा सभा मे अडतालीस हजार गोमानसिकायें (शय्या रूप स्थानविशेष) रखी हुई हैं। नागदन्तो पर्यन्त इनका वर्णन मनोगुलिकाओ के समान समझ लेना चाहिए।

उन नागदतो के ऊपर बहुत से रजतमय सीके लटके हैं। उन रजतमय सीको मे बहुत-सी वैडूर्य रत्नो से बनी हुई धूपघटिकाये रखी है। वे धूपघटिकाये काले अगर, श्रेष्ठ कुन्दुरुष्क आदि की सुगध से मन को मोहित कर रही हैं।

माणवक चैत्यस्तम्भ

१७३—सभाए णं सुहम्माए अतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते जाव मणीहिं उवसोभिए मणिफासो य उल्लोयो य।

तस्स ण बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महेगा मणिपेढिया पण्णत्ता, सोलस जोयणाइ आयामविक्खमेण अट्ठ जोयणाइं बाहल्लेण सव्वमणिमयो जाव पडिरूवा।

१७३—उस सुधर्मा सभा के भीतर अत्यन्त रमणीय सम भूभाग है। वह भूमिभाग यावत् मणियो से उपशोभित है आदि मणियो के स्पर्श एव चदेवा पर्यन्त का सब वर्णन यहाँ पूर्ववत् कर लेना चाहिये।

उस अति सम रमणीय भूमिभाग के अति मध्यदेश मे एक विशाल मणिपीठिका बनी हुई है। जो आयाम-विष्कम्भ की अपेक्षा सोलह योजन लबी-चौडी और आठ योजन मोटी तथा सर्वात्मना रत्नो से बनी हुई यावत् प्रतिरूप—अतीव मनोरम है।

१७४—तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं एत्थ णं माणवए चेइएखमे पण्णत्ते, सट्ठि जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, जोयणं उव्वेहेण, जोयण विक्खभेणं, अडयालीसंसिए, अडयालीसइ कोडीए, अडयालीसइ विग्गहिए सेस जहा महिंदज्झयस्स।

माणवगस्स ण चेइयखंभस्स उवरिं बारस जोयणाइ ओगाहेत्ता, हेट्ठावि बारस जोयणाइं वज्जेत्ता, मज्झे छत्तीसाए जोयणेसु एत्थ णं बहवे सुवण्णरूप्पमया फलगा पण्णत्ता। तेसु णं सुवण्ण-रूप्पाएसु फलएसु बहवे वइरामया णागदंता पण्णत्ता। तेसु णं वइरामएसु नागदतेसु बहवे रययामया सिक्कगा पण्णत्ता। तेसु ण रययामएसु सिक्कएसु बहवे वइरामया गोलवट्टसमुग्गया पण्णत्ता। तेसु ण वयरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहवे जिणसकहातो सनिखित्ताओ चिट्ठ ति।

ताओ ण सूरियाभस्स देवस्स अन्नेसिं च बहूणं देवाण य देवीण य अच्चणिज्जाओ जाव पज्जु-वासणिज्जाओ।

माणवगस्स चेइयखभस्स उवरिं अट्ठट्ठ मगलगा, झया, छत्ताइच्छत्ता।

१७४—उस मणिपीठिका के ऊपर एक माणवक नामक चैत्यस्तम्भ है। वह ऊँचाई मे साठ योजन ऊँचा, एक योजन जमीन के अदर गहरा, एक योजन चौड़ा और अडतालीस कोनो, अडतालीस धारो और अडतालीस आयामो—पहलुओ वाला है। इसके अतिरिक्त शेष वर्णन माहेन्द्रध्वज जैसा जानना चाहिए।

उस माणवक चैत्यस्तम्भ के ऊपरी भाग मे बारह योजन और नीचे बारह योजन छोडकर मध्य के शेप छत्तीस योजन प्रमाण भाग—स्थान मे अनेक स्वर्ण और रजतमय फलक—पाटिये लगे हुए है। उन स्वर्ण-रजतमय फलको पर अनेक वज्रमय नागदत—खूटिया हैं। उन वज्रमय नागदतो पर

बहुत से रजतमय सीके लटक रहे हैं। उन रजतमय सीको मे वज्रमय गोल गोल समुद्गक (डिब्बे) रखे हैं। उन गोल-गोल वज्ररत्नमय समुद्गको मे बहुत-सी जिन-अस्थियाँ सुरक्षित रखी हुई हैं।

वे अस्थियाँ सूर्याभदेव एव अन्य देव-देवियो के लिए अर्चनीय यावत् (वंदनीय, पूजनीय, समाननीय, सत्करणीय तथा कल्याण, मगल देव एव चैत्य रूप मे) पर्यु पासनीय हैं।

उस माणवक चैत्य के ऊपर आठ आठ मगल, ध्वजाये और छत्रातिछत्र सुशोभित हो रहे हैं।

देव-शय्या—

१७५—तस्स माणवगस्स चेइयखंभस्स पुरत्थिमेण एत्थ णं महेगा मणिपेढिया पण्णत्ता, अट्ठ जोयणाइं आयाम-विक्खमेण, चत्तारि जोअणाइ बाहल्लेणं सव्वमणिमई अच्छा जाव पडिरूवा। तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं एत्थ णं महेगे सीहासणे पण्णत्ते, सीहासणवण्णओ सपरिवारो।

तस्स णं माणवगस्स चेइयखंभस्स पच्चत्थिमेण एत्थ ण महेगा मणिपेढिया पण्णत्ता, अट्ठ जोयणाइ आयामविक्खभेणं, चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेणं, सव्वमणिमया अच्छा जाव पडिरूवा।

तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं एत्थ णं महेगे देवसयणिज्जे पण्णत्ते।

तस्स ण देवसयणिज्जस्स इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, त जहा—णाणामणिमया पडिपाया, सोवन्निया पाया, णाणामणिमयाइं पायसीसगाइं, जवूणयामयाइ गत्तगाइं, वइरामया सधो, णाणामणि-मए विच्चे, रययामई तूली, लोहियक्खमया बिव्वोयणा, तवणिज्जमया गडोवट्टाणया।

से ण सयणिज्जे सालिगणवट्टिए उभओ बिव्वोयण दुहओ उण्णते, मज्झे णयगभीरे गंगापुलिण-वालुया-उद्दालसालिसए, सुविरइयरयत्ताणे, उवचियखोमदुगुल्लपट्ट-पडिच्छायणे आईणग-रूय-बूर-णवणीय-तूलफासमउए, रत्तसुयसंवुए सुरम्मे पासादीए पडिरूवे।

१७५—उस माणवक चैत्यस्तम्भ के पूर्व दिग्भाग मे विशाल मणिपीठिका बनी हुई है। जो आठ योजन लबी-चौडी, चार योजन मोटी और सर्वात्मना मणिमय निर्मल यावत् प्रतिरूप है।

उस मणिपीठिका के ऊपर एक विशाल सिंहासन रखा है। भद्रासन आदि आसनो रूप परिवार सहित उस सिंहासन का वर्णन करना चाहिए।

उस माणवक चैत्यस्तम्भ की पश्चिम दिशा मे एक बडी मणिपीठिका है। वह मणिपीठिका आठ योजन लम्बी चौडी, चार योजन मोटी, सर्व मणिमय, स्वच्छ-निर्मल यावत् असाधारण सुन्दर है।

उस मणिपीठिका के ऊपर एक श्रेष्ठ रमणीय देव-शय्या रखी हुई है।

उस देवशय्या का वर्णन इस प्रकार है, यथा—इसके प्रतिपाद अनेक प्रकार की मणियो से बने हुए हैं। स्वर्ण के पाद—पाये हैं। पादशीर्षक (पायो के ऊपरी भाग) अनेक प्रकार की मणियो के हैं। गाते (ईषाये, पाटिया) सोने की हैं। साधे वज्ररत्नो से भरी हुई हैं। वाण (निवार) विविध रत्नमयी है। तूली (बिछौना—गादला) रजतमय है। ओसीसा लोहिताक्षरत्न का है। गडोपधानिका (तकिया) सोने की है।

उस शय्या पर शरीर प्रमाण उपधान—गद्दा बिछा है। उसके शिरोभाग और चरणभाग (सिरहाने और पायते) दोनो ओर तकिये लगे हैं। वह दोनो ओर से ऊँची और मध्य मे नत—झुकी

हुई, गभीर गहरी है। जसे गगा किनारे की वालू मे पाव रखने से पाव धस जाता है, उसी प्रकार वैठते ही नीचे की ओर धँस जाते हैं। उस पर रजस्त्राण पडा रहता है—मसहरी लगी हुई है। कसीदा वाला क्षौमदुकूल (रूई का वना चद्दर) बिछा है। उसका स्पर्श आजिनक (मृगछाला, चर्म-निर्मित वस्त्र) रूई, वूर नामक वनस्पति, मक्खन और आक की रुई के समान सुकोमल है। रक्ताशुक—लाल तूस से ढका रहता है। अत्यन्त रमणीय, मनमोहक यावत् असाधारण सुन्दर है।

आयुधगृह—शस्त्रागार—

१७६—तस्स णं देवसयणिज्जस्स उत्तरपुरत्थिमेणं महेगा मणिपेढिया पण्णत्ता—अट्ठ जोयणाइ आयाम-विक्खमेणं, चत्तारि जोअणाइ बाहल्लेण, सव्वमणिमयी जाव पडिरूवा।

तीसे ण मणिपेढियाए उवरिं एत्थ ण महेगे खुड्डए महिंदज्झए पण्णत्ते, सट्ठि जोयणाइ उड्ढं उच्चत्तेण, जोयण विक्खंभेण वइरामया वट्टलट्ठसंठियसुमिलिट्ठ जाव पडिरूवा। उवरिं अट्ठट्ठ मंगलगा, झया, छत्तातिछत्ता।

तस्स ण खुड्डागमहिंदज्झयस्स पच्चत्थिमेण एत्थ ण सूरियाभस्स देवस्स चोप्पाले नाम पहरणकोसे पन्नत्ते, सव्ववइरामए अच्छे जाव पडिरूवे।

तत्थ णं सूरियाभस्स देवस्स फलिहरयण-खग्ग-गया-धणुप्पमुहा बहवे पहरणरयणा सनिक्खित्ता चिट्ठंति, उज्जला निसिया सुतिक्खधारा पासादीया

सभाए णं सुहम्माए उवरिं अट्ठट्ठमगलगा, झया, छत्तातिछत्ता।

१७६—उस देव-शय्या के उत्तर-पूर्व दिग्भाग (ईशान-कोण) मे आठ योजन लम्बी-चौडी, चार योजन मोटी सर्वमणिमय यावत् प्रतिरूप एक वडी मणिपीठिका वनी है।

उस मणिपीठिका के ऊपर साठ योजन ऊँचा, एक योजन चौडा, वज्ररत्नमय सुन्दर गोल आकार वाला यावत् प्रतिरूप एक क्षुल्लक—छोटा माहेन्द्रध्वज लगा हुआ है—फहरा रहा है। जो स्वस्तिक आदि आठ मगलो, ध्वजाओ और छत्रातिछत्रो से उपशोभित है।

उस क्षुल्लक माहेन्द्रध्वज की पश्चिम दिशा मे सूर्याभदेव का 'चोप्पाल' नामक प्रहरणकोश (आयुधगृह—शस्त्रागार) वना हुआ है। यह आयुधगृह सर्वात्मना रजतमय, निर्मल यावत् प्रतिरूप है।

उस प्रहरणकोश मे सूर्याभ देव के परिघरत्न, (मूसल, लोहे का मुद्गर जैसा शस्त्रविशेष तलवार, गदा, धनुष आदि वहुत से श्रेष्ठ प्रहरण (अस्त्र-शस्त्र) सुरक्षित रखे हैं। वे सभी शस्त्र अत्यन्त उज्ज्वल, चमकीले, तीक्ष्ण धार वाले और मन को प्रसन्न करने वाले आदि हैं।

सुधर्मा सभा का उपरी भाग आठ-आठ मगलो, ध्वजाओ और छत्रातिछत्रो से सुशोभित हो रहा है।

सिद्धायतन—

१७७—सभाए णं सुहम्माए उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ ण महेगे सिद्धायतणे पण्णत्ते, एग जोयण-

सय आयामेण, पन्नास जोयणाइ विक्खभेण, बावत्तरिं जोयणाइ उड्ढं उच्चत्तेणं, सभागमएण जाव[1] गोमाणसियाओ, भूमिभागा, उल्लोया तहेव।

१७७—उस सुधर्मा सभा के उत्तर-पूर्व दिग्भाग (ईशान कोण) मे एक विशाल सिद्धायतन है। वह सौ योजन लम्बा, पचास योजन चौडा और बहत्तर योजन ऊँचा है। तथा इस सिद्धायतन का गोमानसिकाओ पर्यन्त एव भूमिभाग तथा चदेवा का वर्णन सुधर्मा सभा के समान जानना चाहिये।

विवेचन—'सभागमएण जाव गोमाणसियाओ' पाठ से सिद्धायतन का वर्णन सुधर्मा सभा के समान करने का जो सकेत किया है, सक्षेप मे वह वर्णन इस प्रकार है—

सुधर्मा सभा के समान ही इस सिद्धायतन की पूर्व, दक्षिण और उत्तर इन तीन दिशाओ मे तीन द्वार है। उन प्रत्येक द्वारो के आगे एक-एक मुखमडप बना है। मुखमण्डपो के आगे प्रेक्षागृह मडप हैं। प्रेक्षागृह मण्डपो के आगे प्रतिमाओ सहित चार चैत्यस्तूप हैं तथा उन चैत्य स्तूपो के आगे चैत्यवृक्ष है। चैत्य वृक्षो के आगे एक एक माहेन्द्रध्वज फहरा रहा है। माहेन्द्रध्वजो के आगे नन्दा पुष्करिणियाँ हैं औरउनके अनन्तर मनोगुलिकायें एव गोमानसिकाये हैं।

१७८—तस्स ण सिद्धायतणस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ ण महेगा मणिपेढिया पण्णत्ता—सोलस जोयणाइ आयामविक्खभेणं, अट्ठ जोयणाइ बाहल्लेणं। तीसे ण मणिपेढियाए उवरिं एत्थ णं महेगे देवच्छंदए पण्णत्ते सोलस जोयणाइं आयामविक्खभेण, साइरेगाइं सोलस जोयणाइं उड्ढ उच्चत्तेणं, सव्वरयणामए जाव पडिरूवे। एत्थ ण अट्ठसय जिणपडिमाणं जिणुस्सेहप्पमाणमित्ताण संनिक्खित्त संचिट्ठति।

तासि ण जिणपडिमाणं इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा—

तवणिज्जमया हत्थतलपायतला, अंकामयाइं नक्खाइं अंतोलोहियक्खपडिसेगाइं, कणगामईओ जंघाओ, कणगामया जाणू, कणगामया उरू, कणगामईओ गायलट्ठीओ, तवणिज्जमयाओ नाभीओ, रिट्ठामईओ रोमराईओ, तवणिज्जमया चुचुया, तवणिज्जमया सिरिवच्छा सिलप्पवालमया ओट्ठा, फालियामया दता, तवणिज्जमईओ जीहाओ, तवणिज्जमया तालुया, कणगामईओ नासिगाओ अतोलोहियक्खपडिसेगाओ, अकामयाणि अच्छीणि अंतोलोहियक्खपडिसेगाणि, [रिट्ठामईओ ताराओ] रिट्ठामयाणि अच्छिपत्ताणि, रिट्ठामईओ भमुहाओ, कणगामया कवोला, कणगामया सवणा, कणगामईओ णिडालपट्टियाओ, वइरामईओ सीसघडीओ, तवणिज्जमईओ केसंतकेसभूमीओ, रिट्ठामया उवरिं मुद्धया।

१७८—उस सिद्धायतन के ठीक मध्यदेश मे सोलह योजन लम्बी-चौडी, आठ योजन मोटी एक विशाल मणिपीठिका बनी हुई है। उस मणिपीठिका के ऊपर सोलह योजन लम्बा-चौडा और कुछ अधिक सोलह योजन ऊँचा, सर्वात्मना मणियो से बना हुआ यावत् प्रतिरूप एक विशाल देवच्छन्दक (आसनविशेष) स्थापित है और उस पर जिनोत्सेध तीर्थंकरो की ऊचाई के बराबर वाली एक सौ आठ जिनप्रतिमाएँ विराजमान है।

उन जिन प्रतिमाओ का वर्णन इस प्रकार है, जैसे कि—

---

१ देखें सूत्रसख्या १६३ से १७१

उन प्रतिमाओ की हथेलियाँ और पगथलियाँ तपनीय स्वर्णमय हैं । मध्य में लोहिताक्ष रत्न से युक्त अंकरत्न के नख है । जघाये,—जानुये—घुटने,—पिंडलियाँ और देहलता—शरीर कनकमय है । नाभियाँ तपनीयमय हैं । रोमराजि रिष्ट रत्नमय हैं । चूचक (स्तन का अग्र भाग) और श्रीवत्स (वक्षस्थल पर बना हुआ चिह्न-विशेष) तपनीयमय हैं । होठ प्रवाल (मूंगा) के बने हुए हैं, दतपंक्ति स्फटिकमणियो और जिह्वा एव तालु तपनीय-स्वर्ण (लालिमायुक्त स्वर्ण) के हैं । नासिकाये वीच मे लोहिताक्ष रत्न खचित कनकमय हैं (नेत्र लोहिताक्ष रत्न से खचित मध्य-भाग युक्त अकरत्न के हैं और नेत्रो की तारिकाये (कनीनिकायें—आँख के वीच का काला भाग) अक्षिपत्र-पलकें तथा भौहे रिष्टरत्नमय हैं । कपोल, कान और ललाट कनकमय है । शीर्षघटी (खोपडी) वज्र रत्नमय है । केशान्त एव केशभूमि (चाद) तपनीय स्वर्णमय है और केश रिष्टरत्नमय हैं ।

१७९—तासि ण जिणपडिमाणं पिट्ठतो पत्तेय-पत्तेय छत्तधारगपडिमाओ पण्णत्ताओ । ताओ णं छत्तधारगपडिमाओ हिम-रयय-कुंदेंदुप्पगासाइ, सकोरटमल्लदामधवलाइ आयवत्ताइ सलीलं धारेमाणीओ धारेमाणीओ चिट्ठंति ।

तासि ण जिणपडिमाण उभओ पासे पत्तेयपत्तेयं चामरधार (ग) पडिमाओ पण्णत्ताओ । ताओ ण चामर-धारपडिमातो चदप्पहवयरवेरुलियनानामणिरयणखचियचित्तदडाओ सुहुमरयत-दीहवालाओ सखककुंद-दगरय-अमतमहियफेणपुंजसन्निकासाओ धवलाओ चामराओ सलील धारेमाणीओ चिट्ठंति ।

तासि ण जिणपडिमाणं पुरतो दो-दो नागपडिमाओ जक्खपडिमाओ, भूयपडिमाओ, कुंडधार-पडिमाओ सव्वरयणामईओ अच्छाओ जाव चिट्ठंति ।

तासि ण जिणपडिमाण पुरतो अट्ठसय घटाण, अट्ठसय चंदणकलसाणं, अट्ठसय भिंगाराण एव आयसाण, थालाण पाईण सुपइट्ठाण, मणोगुलियाणं वायकरगाण, चित्तगराण रयणकरंडगाण, हयकंठाण जाव[1] उसभकठाण, पुप्फचगेरीण जाव[2] लोमहत्थचगेरीण, पुप्फपडलगाणं तेल्लसमुग्गाणं जाव[3] अजणसमुग्गाण, अट्ठसयं झयाण, अट्ठसय धूवकडुच्छुयाण सनिक्खित्तं चिट्ठति । सिद्धायतणस्स णं उवरिं अट्ठट्ठ मगलगा, झया छत्तातिछत्ता ।

१७९—उन जिन प्रतिमाओ मे से प्रत्येक प्रतिमा के पीछे एक एक छत्रधारक—छत्र लिये खडी देवियो की प्रतिमाये है । वे छत्रधारक प्रतिमाये लीला करती हुई-सी भावभगिमा पूर्वक हिम, रजत, कुन्दपुष्प और चन्द्रमा के समान प्रभा—कातिवाले कोरट पुष्पो की मालाओ से युक्त धवल-श्वेत आतपत्रो (छत्रो) को अपने-अपने हाथो मे धारण किये हुए खडी हैं ।

प्रत्येक जिन-प्रतिमा के दोनो पार्श्व भागो—वाजुओ मे एक एक चामरधारक प्रतिमायें है । वे चामर-धारक प्रतिमाये अपने अपने हाथो मे विविध मणिरत्नो से रचित चित्रामो से युक्त चन्द्रकान्त, वज्र और वैडूर्य मणियो की डडियो वाले, पतले, रजत जैसे श्वेत, लम्बे-लम्बे वालो वाले

1, 2, 3—देखें सूत्र सख्या १३२

शख, अकरत्न, कुन्दपुष्प, जलकण, रजत और मन्थन किये हुए अमृत के फेनपु ज सदृश श्वेत-धवल चामरो को धारण करके लीलापूर्वक बीजती हुई-सी खड़ी है।

उन जिन-प्रतिमाओ के आगे दो-दो नाग-प्रतिमाये, यक्षप्रतिमायें, भूतप्रतिमाये, कु ड (पात्र-विशेष) धारक प्रतिमाये खडी हैं। ये सभी प्रतिमायें सर्वात्मना रत्नमय, स्वच्छ—निर्मल यावत् अनुपम शोभा से सम्पन्न है।

उन जिन-प्रतिमाओ के आगे एक सौ आठ—एक सौ आठ घटा, चन्दनकलश, भृ गार, दर्पण, थाल, पात्रिया, सुप्रतिष्ठान, मनोगुलिकाये, वातकरक, चित्रकरक, रत्न करडक, अश्वकठ यावत् वृषभ-कठ पुष्पचगेरिकाये यावत् मयूरपिच्छ चगेरिकाये, पुष्पपटलक, तेलसमुद्गक यावत् अजनसमुद्गक, एक सौ आठ ध्वजायें, एक सो आठ धूपकडुच्छुक (धूपदान) रखे हैं।

सिद्धायतन का ऊपरीभाग स्वस्तिक आदि आठ-आठ मगलो, ध्वजाओ और छत्रातिछत्रो से शोभायमान है।

उपपात आदि सभाएँ—

१८०—तस्स ण सिद्धायतणस्स उत्तरपुरत्थिमेण एत्थ णं महेगा उववायसभा पण्णत्ता, जहा सभाए सुहम्माए तहेव जाव[1] मणिपेढिया अट्ठ जोयणाइं, देवसयणिज्जं तहेव सयणिज्जवण्णओ, अट्ठट्ठ मंगलगा, झया, छत्तातिछत्ता।

१८०—इस सिद्धायतन के ईशान कोण मे एक विशाल श्रेष्ठ उपपात-सभा वनी हुई है। सुधर्मा-सभा के समान ही इस उपपात-सभा का वर्णन समझना चाहिए। मणिपीठिका की लम्बाई-चौडाई आठ योजन की है और सुधर्मा-सभा मे स्थित देवशैया के समान यहा की शैया का ऊपरी भाग आठ मगलो, ध्वजाओ और छत्रातिछत्रो से शोभायमान हो रहा है।

विवेचन—सुधर्मा-सभा के समान इस उपपातसभा के वर्णन करने के सकेत का आशय यह है कि—

सुधर्मासभा के समान ही इस उपपात-सभा के लिये भी पूर्वादि दिग्वर्ती तीन द्वारो, मुखमण्डप, प्रेक्षागृहमण्डप, चैत्यस्तूप, चैत्यवृक्ष, माहेन्द्रध्वज एव नन्दा-पुष्करिणी से लेकर उल्लोक तक का तथा मध्यभाग मे स्थित—मणि-पीठिका और उस पर विद्यमान देवशैया एव ऊपरी भाग मे आठ—आठ मगलो, ध्वजाओ और छत्रो का वर्णन करना चाहिए।

१८१—तीसे णं उववायसभाए उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं महेगे हरए पण्णत्ते, एगं जोयणसयं आयामेण, पण्णासं जोयणाइं विखंभेणं, दस जोयणाइं उव्वेहेणं, तहेव से णं हरए एगाए पउमवर-वेइयाए, एगेण वणसंडेण सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते। तस्स णं हरयस्स तिदिसि तिसोवाणपडिरूवगा पन्नत्ता।

१८१—उस उपपातसभा के उत्तर-पूर्व दिग्भाग मे एक विशाल ह्रद-जलाशय—सरोवर है। इस ह्रद का आयाम (लम्बाई) एक सौ योजन एव विस्तार (चौडाई) पचास योजन है तथा गहराई

---

१ देखें सूत्र सख्या १६३ से १७६

दस योजन है। यह ह्रद सभी दिशाओ मे एक पद्मवरवेदिका एव एक वनखण्ड से परिवेष्टित—घिरा हुआ है तथा इस ह्रद के तीन ओर अतीव मनोरम त्रिसोपान-पक्तियाँ बनी हुई हैं।

१८२—तस्स णं हरयस्स उत्तरपुरत्थिमे ण एत्थ ण महेगा अभिसेगसभा पण्णत्ता, सुहम्मागमएणं जाव[1] गोमाणसियाओ मणिपेढिया सीहासण सपरिवार जाव[2] दामा चिट्ठंति।

तत्थ ण सूरियाभस्स देवस्स सुबहु अभिसेयभडे सनिक्खित्ते चिट्ठइ, अट्ठट्ठ मगलगा तहेव।

१८२—उस ह्रद के ईशानकोण मे एक विशाल अभिषेकसभा है। सुधर्मा-सभा के अनुरूप ही यावत् गोमानसिकाये, मणिपीठिका, सपरिवार सिहासन, यावत् मुक्तादाम हैं, इत्यादि। इस अभिषेक सभा का भी वर्णन जानना चाहिए।

वहा सूर्याभदेव के अभिषेक योग्य साधन—सामग्री से भरे हुए बहुत-से भाण्ड (पात्र आदि सामग्री) रखे है तथा इस अभिषेक-सभा के ऊपरी भाग मे आठ-आठ मगल आदि सुशोभित हो रहे हैं।

१८३—तीसे ण अभिसेगसभाए उत्तरपुरत्थिमेण एत्थ ण अलकारियसभा पण्णत्ता, जहा सभा सुधम्मा मणिपेढिया अट्ठ जोयणाइ, सीहासण सपरिवार। तत्थ ण सूरियाभस्स देवस्स सुबहु अलकारिय-भंडे सनिक्खित्ते चिट्ठंति, सेस तहेव।

१८३—उस अभिषेकसभा के ईशान कोण मे एक अलकार-सभा है। सुधर्मासभा के समान ही इस अलकार-सभा का तथा आठ योजन की मणिपीठिका एव सपरिवार सिहासन आदि का वर्णन समझ लेना चाहिए।

अलकारसभा मे सूर्याभदेव के द्वारा धारण किये जाने वाले अलकारो से भरे हुए बहुत-से अलकार-भाड रखे है। शेष सब कथन पूर्ववत जानना चाहिये।

१८४—तीसे ण अलकारियसभाए उत्तरपुरत्थिमे ण तत्थ णं महेगा ववसायसभा पण्णत्ता, जहा उववायसभा जाव सीहासण सपरिवार मणिपेढिया, अट्ठट्ठ मगलगा०।

१८४—उस अलकारसभा के ईशानकोण मे एक विशाल व्यवसायसभा बनी है। उपपात-सभा के अनुरूप ही यहा पर भी सपरिवार सिंहासन, मणिपीठिका आठ-आठ मगल आदि का वर्णन कर लेना चाहिए।

पुस्तकरत्न एवं नन्दा-पुष्करिणी—

१८५—तत्थ ण सूरिभाभस्स देवस्स एत्थ महेगे पोत्थयरयणे सन्निक्खित्ते चिट्ठइ, तस्स ण पोत्थयरयणस्स इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते त जहा—

रिट्ठामईओ कंबिआओ, तवणिज्जमए दोरे, नाणामणिमए गठी, रयणामयाइ पत्तगाइ, वेरुलियमए लिप्पासणे, रिट्ठामए छदणे, तवणिज्जमई संकला, रिट्ठामई मसी, वइरामई लेहणी, रिट्ठामयाइ अक्खराइ, धम्मिए लेक्खे।

---

१ देखें सूत्र सख्या १६३ से १७१। २ देखें सूत्र सख्या ४८ से ५१

ववसायसभाए ण उवरिं अट्ठट्ठ मंगलगा ।

तीसे णं ववसायसभाए उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं नदा पुक्खरिणी पण्णत्ता हरयसरिसा ।

तीसे ण णंदाए पुक्खरिणीए उत्तरपुरत्थिमेणं महेगे बलिपीढे पण्णत्ते सव्वरयणामए अच्छे जाव पडिरूवे ।

१८५—उस व्यवसाय-सभा मे सूर्याभ देव का विशाल श्रेष्ठतम पुस्तकरत्न रखा है । उस पुस्तकरत्न का वर्णन इस प्रकार है—

इसके पूठे रिष्ट रत्न के हैं । डोरा स्वर्णमय है, गाठें विविध मणिमय हैं । पत्र रत्नमय हैं । लिप्यासन—दवात वैडूर्य रत्न की है, उसका ढक्कन रिष्टरत्नमय है और साकल तपनीय स्वर्ण की बनी हुई है । रिष्टरत्न से बनी हुई स्याही है, वज्ररत्न की लेखनी—कलम है । रिष्टरत्नमय अक्षर हैं और उसमे धार्मिक लेख लिखे हैं ।

व्यवसाय-सभा का ऊपरी भाग आठ-आठ मगल आदि से सुशोभित हो रहा है ।

उस व्यवसाय-सभा मे उत्तरपूर्वदिग्भाग मे एक नन्दा पुष्करिणी है । ह्रद के समान इस नन्दा पुष्करिणी का वर्णन जानना चाहिए ।

उस नन्दा पुष्करिणी के ईशानकोण मे सर्वात्मना रत्नमय, निर्मल, यावत् प्रतिरूप एक विशाल बलिपीठ (आसन-विशेष) वना है ।

उपपातान्तर सूर्याभदेव का चिन्तन—

१८६—तेण कालेण तेण समएण सूरियाभे देवे अहुणोववण्णमित्तए चेव समाणे पचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तीभावं गच्छइ, तंजहा-आहारपज्जत्तीए, सरीरपज्जत्तीए इदियपज्जत्तीए, आणपाण-पज्जत्तीए, भासा-मणपज्जत्तीए ।

तए ण तस्स सूरियाभस्स देवस्स पचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तीभाव गयस्स समाणस्स इमेया-रूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए, मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—किं मे पुव्विं करणिज्जं ? किं मे पच्छा करणिज्ज किं मे पुव्विं सेयं ? किं मे पच्छा सेयं ? किं मे पुव्विं पि पच्छा वि हियाए सुहाए खमाए णिस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ ?

१८६—उस काल और उस समय मे तत्काल उत्पन्न होकर वह सूर्याभ देव (१) आहार पर्याप्ति (२) शरीर-पर्याप्ति (३) इन्द्रिय-पर्याप्ति (४) श्वासोच्छ्वास-पर्याप्ति और (५) भाषा-मन पर्याप्ति—इन पाँच पर्याप्तियो से पर्याप्त अवस्था को प्राप्त हुआ ।

पाँच प्रकार की पर्याप्तियो से पर्याप्तभाव को प्राप्त होने के अनन्तर उस सूर्याभदेव को इस प्रकार का आन्तरिक विचार, चिन्तन, अभिलाष, मनोगत एव सकल्प उत्पन्न हुआ कि—मुझे पहले क्या करना चाहिये ? और उसके अनन्तर क्या करना चाहिये ? मुझे पहले क्या करना उचित (शुभ, कल्याणकर) है ? और बाद में क्या करना उचित है ? तथा पहले भी और पश्चात् भी क्या करना योग्य है जो मेरे हित के लिये, सुख के लिये, क्षेम के लिये, कल्याण के लिये और अनुगामी रूप (परपरा) से शुभानुबध का कारण होगा ?

विवेचन—जीव की उस शक्ति को पर्याप्ति कहते है जिसके द्वारा पुद्गलो को ग्रहण करने तथा उनको आहार, शरीर आदि के रूप मे परिवर्तित करने का कार्य होता है। ससारी जीव को पुद्गलो के ग्रहण करने और परिणमाने की शक्ति पुद्गलो के उपचय (पोषण, वृद्धि) से प्राप्त होती है एव इस उपचय से ग्रहण और परिणमन करता है। इस प्रकार के कार्य-कारण भाव से उपचय, ग्रहण और परिणमन इन तीनो का क्रम निरतर चलता रहता है।

पर्याप्ति के छह भेद हैं १ आहार-पर्याप्ति २ शरीर-पर्याप्ति ३ इन्द्रिय-पर्याप्ति ४. श्वासोच्छ्वास-पर्याप्ति ५ भाषा-पर्याप्ति ६ मन-पर्याप्ति।

उक्त छह पर्याप्तियो मे अनुक्रम से एकेन्द्रिय जीवो के आदि की चार, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असज्ञीपचेन्द्रिय जीवो के आदि की चार पर्याप्तियो के साथ भाषा-पर्याप्ति को मिलाने से पाँच तथा सज्ञी पचेन्द्रिय जीवो के मनपर्यन्त छहो पर्याप्तियाँ होती हैं।

इहभव सबधी शरीर को छोडने के पश्चात् जब जीव परभव सम्बन्धी शरीर ग्रहण करने के लिए उत्पत्तिस्थान मे पहुँच कर कार्मण शरीर के द्वारा प्रथम समय मे जिन पुद्गलो को ग्रहण करता है, उनके आहार-पर्याप्ति आदि रूप छह विभाग हो जाते हैं और उनके द्वारा एक साथ आहार आदि छहो पर्याप्तियो का बनना प्रारम्भ हो जाता है, लेकिन उनकी पूर्णता क्रमश होती है। अर्थात् आहार के बाद शरीर, शरीर के बाद इन्द्रिय आदि। यह क्रम मन-पर्याप्ति पर्यन्त समझना चाहिए। इसको एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझना चाहिए।

जैसे कि छह सूत कातने वाली स्त्रियो ने रुई का कातना तो एक साथ प्रारभ किया, किन्तु उनमे मोटा सूत कातने वाली जल्दी कात लेती है और उत्तरोत्तर बारीक-बारीक कातने वाली अनुक्रम से विलम्ब से कातती हैं। इसी प्रकार यद्यपि पर्याप्तियो का प्रारभ तो एक साथ हो जाता है किन्तु उनकी पूर्णता अनुक्रम से होती है।

पर्याप्तिया औदारिक, वैक्रिय और आहारक इन तीन शरीरो मे होती हैं और उनमे उनकी पूर्णता का क्रम इस प्रकार जानना चाहिए—

औदारिक शरीर वाला जीव पहली आहार-पर्याप्ति एक समय मे पूर्ण करता है और इसके बाद दूसरी से लेकर छठी तक प्रत्येक अनुक्रम से एक-एक अन्तर्मुहूर्त्त के बाद पूर्ण करता है।

वैक्रिय और आहारक शरीर वाले जीव पहली पर्याप्ति एक समय मे पूर्ण कर लेते हैं और उसके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त्त मे दूसरी पर्याप्ति पूर्ण करते है और उसके बाद तीसरी से छठी पर्यन्त अनुक्रम से एक-एक समय मे पूरी करते है। लेकिन देव पाचवी और छठी इन दोनो पर्याप्तियो को अनुक्रम से पूर्ण न कर एक साथ एक समय मे ही पूरी कर लेते है।

सूत्र मे "भासामणपज्जत्तीए" पद से सूर्याभदेव को पाँच पर्याप्तियो से पर्याप्त भाव को प्राप्त होने का सकेत देवो के पाँचवी और छठी भाषा और मन-पर्याप्तियाँ एक साथ पूर्ण होने की अपेक्षा किया गया है।

सामानिक देवो द्वारा कृत्य-संकेत

१८७—तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स सामाणियपरिसोववन्नगा देवा सूरियाभस्स देवस्स

इमेयारूवमज्झत्थियं जाव समुप्पन्नं समभिजाणित्ता जेणेव सूरियाभे देवे तेणेव उवागच्छति, सूरियाभं देवं करयल-परिग्गहियं सिरसावत्त मत्थए अजलि कट्टु जएण विजएण वद्धाविन्ति, वद्धावित्ता एवं वयासी—

एव खलु दवाणुप्पियाणं सूरियाभे विमाणे सिद्धायतणसि जिणपडिमाण जिणुस्सेहपमाण-मित्ताण अट्ठसय सनिक्खित्त चिट्ठति, सभाए ण सुहम्माए माणवए चेइयखंभे वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु बहूओ जिणसकहाओ सनिक्खित्ताओ चिट्ठ ति, ताओ णं देवाणुप्पियाणं अण्णेसि च बहूणं वेमाणियाणं देवाणं य देवीण य अच्चणिज्जाओ जाव पज्जुवासणिज्जाओ ।

त एयं ण देवाणुप्पियाणं पुव्वि करणिज्ज, त एयं ण देवाणुप्पियाण पच्छा करणिज्जं । तं एय ण देवाणुप्पियाण पुव्वि सेय, त एय ण देवाणुप्पियाण पच्छा सेय । त एय ण देवाणुप्पियाणं पुव्वि पि पच्छा वि हियाए, सुहाए, खमाए, निस्सेयसाए, आणुगामियत्ताए भविस्सति ।

१८७—तत्पश्चात् उस सूर्याभदेव की सामानिक परिषद् के देव सूर्याभदेव के इस आन्तरिक विचार यावत् उत्पन्न सकल्प को अच्छी तरह से जानकर सूर्याभदेव के पास आये और उन्होने दोनो हाथ जोड आवर्त पूर्वक मस्तक पर अजलि करके जय-विजय शब्दो से सूर्याभदेव को अभिनन्दन करके इस प्रकार कहा—

आप देवानुप्रिय के सूर्याभविमान स्थित सिद्धायतन मे जिनोत्सेधप्रमाण वाली एक सौ आठ जिन-प्रतिमाये विराजमान हैं तथा सुधर्मा सभा के माणवक—चैत्यस्तम्भ मे वज्ररत्नमय गोल समुद्गको (डिब्बो) मे बहुत-सी जिन-अस्थियाँ व्यवस्थित रूप से रखी हुई हैं । वे आप देवानुप्रिय तथा दूसरे भी बहुत से वैमानिक देवो एव देवियो के लिये अर्चनीय यावत् पर्यु पासनीय हैं ।

अतएव आप देवानुप्रिय के लिये उनकी पर्यु पासना करने रूप कार्य पहले करने योग्य है और यही कार्य पीछे करने योग्य है । आप देवानुप्रिय के लिये यह पहले भी श्रेय-रूप है और बाद मे भी यही श्रेय रूप है । यही कार्य आप देवानुप्रिय के लिए पहले और पीछे भी हितकर, सुखप्रद, क्षेमकर, कल्याणकर एव परम्परा से सुख का साधन रूप होगा ।

१८८—तए ण से सूरियाभे देवे तेसिं सामाणियपरिसोववन्नगाणं देवाण अतिए एयमट्ठं सोच्चा-निसम्म हट्ठ-तुट्ठ जाव (चित्तमाणदिए-पीइमणे-परमसोमणस्सिए-हरिसवसविसप्पमाण) हयहियए सयणिज्जाओ अब्भुट्ठे ति, सयणिज्जाओ अब्भुट्ठे त्ता उववायसभाओ पुरत्थिमिल्लेण दारेणं निग्गच्छइ, जेणेव हरए तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता हरयं अणुपयाहिणीकरेमाणे-अणुपयाहिणी-करेमाणे पुरत्थिमिल्लेण तोरणेणं अणुपविसइ, अणुपविसत्ता पुरत्थिमिल्लेण तिसोवाणपडिरूवएण पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जलावगाहं जलमज्जण करेइ, करित्ता जलकिड्ड करेइ, करित्ता जलाभिसेयं करेइ, करित्ता आयंते चोक्खे परमसूइभूए हरयाओ पच्चोत्तरइ, पच्चोत्तरित्ता जेणेव अभिसेयसभा तेणेव उवागच्छति, तेणेव उवागच्छित्ता अभिसेयसभं अणुपयाहिणीकरेमाणे अणुपयाहिणीकरेमाणे पुरत्थि-मिल्लेण दारेण अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासण-वरगए पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने ।

१८९—तत्पश्चात् वह सूर्याभदेव उन सामानिकपरिषदोपगत देवो से इस अर्थ—बात को सुनकर और हृदय मे अवधारित-मनन कर हर्षित, सतुष्ट यावत् (चित्त मे आनन्दित, अनुरागी, परम

प्रसन्न, हर्षातिरेक से विकसित) हृदय होता हुआ शय्या से उठा और उठकर उपपात सभा के पूर्व-दिग्वर्ती द्वार से निकला, निकलकर ह्रद (जलाशय—तालाब) पर आया, आकर ह्रद की प्रदक्षिणा करके पूर्वदिशावर्ती तोरण से होकर उसमे प्रविष्ट हुआ। प्रविष्ट होकर पूर्वदिशावर्ती त्रिसोपान पक्ति से नीचे उतरा, उतर कर जल मे अवगाहन और जलमज्जन (स्नान) किया, जल-मज्जन करके जलक्रीडा की, जलक्रीडा करके जलाभिषेक किया, जलाभिषेक करके आचमन (कुल्ला आदि) द्वारा अत्यन्त स्वच्छ और शुचिभूत-शुद्ध होकर ह्रद से बाहर निकला, निकल कर जहा अभिषेकसभा थी वहाँ आया, वहाँ आकर अभिषेकसभा की प्रदक्षिणा करके पूर्वदिशावर्ती द्वार से उसमे प्रविष्ट हुआ, प्रविष्ट होकर सिंहासन के समीप आया और आकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके उस श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठ गया।

सूर्याभदेव का अभिषेक-महोत्सव—

१८९—तए ण सूरियाभस्स देवस्स सामाणियपरिसोववन्नगा देवा आभिओगिए देवे सद्दावेंति, सद्दावित्ता एव वयासी—

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सूरियाभस्स देवस्स महत्थ महग्घ महरिहं विउल इदाभिसेयं उवट्ठवेह।

१८९—तदनन्तर सूर्याभदेव की सामानिक परिषद् के देवो ने आभियोगिक देवो को बुलाया और बुलाकर उनसे कहा—

देवानुप्रियो ! तुम लोग शीघ्र ही सूर्याभदेव का अभिषेक करने हेतु महान अर्थ वाले महर्घ (बहुमूल्य) एव महापुरुषो के योग्य विपुल इन्द्राभिषेक की सामग्री उपस्थित करो—तैयार करो।

१९०—तए ण ते आभिओगिआ देवा सामाणियपरिसोववन्नेहिं देवेहिं एव वुत्ता समाणा हट्ठ जाव हियया करयलपरिग्गहिय सिरसावत्त मत्थए अजलि कट्टु 'एवं देवो ! तह' त्ति आणाए विणएण वयण पडिसुणंति, पडिसुणित्ता उत्तरपुरत्थिम दिसीभाग अवक्कमति, उत्तरपुरत्थिम दिसीभागं अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएण समोहणति।

समोहणित्ता संखेज्जाइ जोयणाइ जाव[1] दोच्च पि वेउव्वियसमुग्घाएण समोहणित्ता अट्ठ-सहस्स सोवन्नियाण कलसाण, अट्ठसहस्स रुप्पमयाणं कलसाणं, अट्ठसहस्स मणिमयाण कलसाण, अट्ठ-सहस्स सुवन्नमणिमयाण कलसाण, अट्ठसहस्स रुप्पमणिमयाण कलसाण, अट्ठसहस्स सुवण्णरुप्पमणि-मयाण कलसाण अट्ठसहस्स भोमिज्जाण कलसाण एव भिंगाराण, आयसाण थालाणं, पाईण, सुपइट्ठाण वायकरगाण, रयणकरडगाण, पुप्फचगेरीण, जाव[2] लोमहत्थचगेरीणं, पुप्फपडलगाण जाव लोमहत्थ-पडलगाण, सीहासणाण, छत्ताण, चामराण, तेल्लसमुग्गाणं जाव[3] अंजणसमुग्गाण, झयाण, अट्ठसहस्स धूवकडुच्छुयाण विउव्वति।

विउव्वित्ता ते साभाविए य वेउव्विए य कलसे य जाव कडुच्छुए य गिण्हंति, गिण्हित्ता सूरिया-भाओ विमाणाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता ताए उक्किट्ठाए चवलाए जाव[4] तिरियमसंखेज्जाण जाव[5] वीतिवयमाणे-वीतिवयमाणे जेणेव खीरोदयसमुद्दे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता खीरोयग

---

१ देखे सूत्र सख्या-१३   २ देखें सूत्र सख्या १३२   ३ देखें सूत्र सख्या १३२

४-५ देखे सूत्र सख्या १३

गिण्हंति, जाइं तत्थुप्पलाइं ताइं गेण्हति जाव (पउमाइं, कुमुयाइं, नलिणाइं, सुभगाइं, सोगंधियाइं, पोंडरियाइं, महापोंडरियाइं) सयसहस्सपत्ताइं गिण्हति ।

गिण्हित्ता जेणेव पुक्खरोदए समुद्दे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता पुक्खरोदयं गेण्हति, जाइं तत्थुप्पलाइं सयसहस्सपत्ताइं ताइं जाव गिण्हति । गिण्हित्ता समयखेत्ते जेणेव भरहेरवयाइं वासाइं जेणेव मागहवरदाम-पभासाइं तित्थाइं तेणेव उवागच्छति, तेणेव उवागच्छित्ता तित्थोदगं गेण्हति, गेण्हेत्ता तित्थमट्टियं गेण्हंति ।

गेण्हित्ता जेणेव गंगा-सिंधु-रत्ता-रत्तवईओ महानईओ तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता सलिलोदगं गेण्हंति, सलिलोदगं गेण्हित्ता उभओकूलमट्टियं गेण्हति ।

मट्टियं गेण्हित्ता जेणेव चुल्लहिमवंत-सिहरीवासहरपव्वया तेणेव उवागच्छति, तेणेव उवागच्छित्ता दगं गेण्हंति, सव्वतुयरे सव्वपुप्फे, सव्वगंधे, सव्वमल्ले, सव्वोसहिसिद्धत्थए गिण्हंति, गिण्हित्ता जेणेव पउमपुंडरीयदहे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता दहोदगं गेण्हंति, गेण्हित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं जाव सयसहस्सपत्ताइं ताइं गेण्हति ।

गेण्हित्ता जेणेव हेमवएरवयाइं वासाइं जेणेव रोहिय-रोहियंसा-सुवण्णकूल-रुप्पकूलाओ महाणईओ तेणेव उवागच्छति, सलिलोदगं गेण्हत्ति, गेण्हित्ता उभओकूलमट्टियं गिण्हति, गिण्हित्ता जेणेव सद्दावाति-वियडावातिपरियागा वट्टवेयड्ढपव्वया तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता सव्वतूयरे तहेव ।

जेणेव महाहिमवंतरुप्पिवासहरपव्वया तेणेव उवागच्छन्ति तहेव, जेणेव महापउम-महापुंडरीय-द्दहा तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता दहोदगं गिण्हन्ति तहेव ।

जेणेव हरिवास-रम्मगवासाइं जेणेव हरिकंत-नारिकंताओ महाणईओ, तेणेव उवागच्छति तहेव, जेणेव गंधावाइमालवंतपरियाया वट्टवेयड्ढपव्वया तेणेव तहेव ।

जेणेव णिसढ-णीलवंतवासधरपव्वया तहेव, जेणेव तिगिच्छ-केसरिद्दहाओ तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता तहेव ।

जेणेव महाविदेहे वासे जेणेव सीता-सीतोदाओ महाणदीओ तेणेव तहेव ।

जेणेव सव्वचक्कवट्टिविजया जेणेव सव्वमागह-वरदाम-पभासाइं तित्थाइं तेणेव उवागच्छति, तेणेव उवागच्छित्ता तित्थोदगं गेण्हति, गेण्हित्ता सव्वंतरणईओ जेणेव सव्ववक्खारपव्वया तेणेव उवागच्छति, सव्वतूयरे तहेव ।

जेणेव मंदरे पव्वते जेणेव भद्दसालवणे तेणेव उवागच्छति सव्वतूयरे सव्वपुप्फे सव्वमल्ले सव्वोसहिसिद्धत्थए य गेण्हति, गेण्हित्ता जेणेव णंदणवणे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता सव्वतूयरे जाव सव्वोसहिसिद्धत्थए य सरसगोसीसचंदणं गिण्हंति, गिण्हित्ता जेणेव सोमणसवणे तेणेव उवागच्छंति सव्वतूयरे जाव सव्वोसहिसिद्धत्थए य सरसगोसीसचंदणं च दिव्वं च सुमणदामं गिण्हंति, गिण्हित्ता जेणेव पंडगवणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सव्वतूयरे जाव सव्वोसहिसिद्धत्थए च सरसं च गोसीसचंदणं च दिव्वं च सुमणदामं दद्दरमलयसुगंधियगंधे गिण्हंति ।

गिण्हित्ता एगतो मिलायति मिलाइत्ता ताए उक्किट्ठाए जाव[1] जेणेव सोहम्मे कप्पे जेणेव सूरियाभे विमाणे जेणेव अभिसेयसभा जेणेव सूरियाभे देवे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता सूरियाभं देवं करयलपरिग्गहिय सिरसावत्त मत्थए अजलि कट्टु जएण विजएण वद्धावेंति वद्धावित्ता त महत्थ महग्घं महरिह विउलं इदाभिसेयं उवट्ठवेंति।

१९०—तत्पश्चात् उन आभियोगिक देवो ने सामानिक देवो की इस आज्ञा को सुनकर हर्षित यावत् विकसित हृदय होते हुए दोनो हाथ जोड आवर्तपूर्वक मस्तक पर अजलि करके 'देव ! बहुत अच्छा ! ऐसा ही करेगे' कहकर विनय पूर्वक आज्ञा-वचनो को स्वीकार किया। स्वीकार करके वे उत्तरपूर्व दिग्भाग मे गये और उस उत्तरपूर्व दिग्भाग (ईशानकोण) मे जाकर उन्होने वैक्रिय समुद्घात किया।

वैक्रिय समुद्घात करके सख्यात योजन का दण्ड बनाया यावत् पुन दूसरी बार भी वैक्रिय समुद्घात करके एक हजार आठ स्वर्णकलशो की, एक हजार आठ रुप्यकलशो की, एक हजार आठ मणिमय कलशो की, एक हजार आठ स्वर्ण-रजतमय कलशो की, एक हजार आठ स्वर्ण-मणिमय कलशो की, एक हजार आठ रजत-मणिमय कलशो की, एक हजार आठ स्वर्ण-रूप्य-मणिमय कलशो की, एक हजार आठ भौमेय (मिट्टी के) कलशो की एव इसी प्रकार एक हजार आठ—एक हजार आठ भृगारो, दर्पणो, थालो, पात्रियो, सुप्रतिष्ठानो वातकरको, रत्नकरडको, पुष्पचगेरिकाओ यावत् मयूरपिच्छचगेरिकाओ, पुष्पपटलको यावत् मयूरपिच्छपटलको, सिहासनो, छत्रो, चामरो, तेल-समुद्गको यावत् अजनसमुद्गको, ध्वजाओ, धूपकडुच्छको (धूपदानो) की विकुर्वणा (रचना) की।

विकुर्वणा करके उन स्वाभाविक और विक्रियाजन्य कलशो यावत् धूपकडुच्छको को अपने-अपने हाथो मे लिया और लेकर सूर्याभविमान से बाहर निकले। निकलकर अपनी उत्कृष्ट चपल दिव्य गति मे यावत् तिर्यक् लोक मे असख्यात योजनप्रमाण क्षेत्र को उलाघते हुए जहा क्षीरोदधि समुद्र था, वहाँ आये। वहाँ आकर कलशो मे क्षीरसमुद्र के जल को भरा तथा वहा के उत्पल यावत् पद्म, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगधिक, पु डरीक, महापुण्डरीक) शतपत्र, सहस्रपत्र कमलो को लिया।

कमलो आदि को लेकर जहाँ पुष्करोदक समुद्र था वहाँ आये, आकर पुष्करोदक को कलशो मे मे भरा तथा वहाँ के उत्पल शतपत्र सहस्रपत्र आदि कमलो को लिया।

तत्पश्चात् जहाँ मनुष्यक्षेत्र था और उसमे भी जहाँ भरत-ऐरवत क्षेत्र थे, जहाँ मागध, वरदाम और प्रभास तीर्थ थे वहाँ आये और आकर उन-उन तीर्थों के जल को भरा और वहाँ की मिट्टी ग्रहण की।

इस प्रकार से तीर्थोदक और मृत्तिका को लेकर जहाँ गगा, सिन्धु, रक्ता रक्तवती महानदिया थी, वहाँ आये। आकर नदियो के जल और उनके दोनो तटो की मिट्टी को लिया।

नदियो के जल और मिट्टी को लेकर चुल्लहिमवत और शिखरी वर्षधर पर्वत पर आये। वहाँ आकर कलशो मे जल भरा तथा सर्व ऋतुओ के श्रेष्ठ—उत्तम पुष्पो, समस्त गधद्रव्यो, समस्त पुष्पसमूहो और सर्व प्रकार की औषधियो एव सिद्धार्थको (सरसो) को लिया और फिर पद्मद्रह एव पुण्डरीकद्रह पर आये। यहाँ आकर भी पूर्ववत् कलशो मे द्रह-जल भरा तथा सुन्दर श्रेष्ठ उत्पल यावत् शतपत्र-सहस्रपत्र कमलो को लिया।

इसके पश्चात् फिर जहाँ हैमवत और ऐरण्यवत क्षेत्र थे, जहाँ उन दोनो क्षेत्रो की रोहित, रोहितासा तथा स्वर्णकूला और रूप्यकूला महानदियाँ थी, वहाँ आये और कलशो मे उन नदियो का जल भरा तथा नदियो के दोनो तटो की मिट्टी ली। जल मिट्टी को लेने के पश्चात् जहाँ शब्दापाति विकटापाति वृत्त वैताढ्य पर्वत थे, वहा आये। आकर समस्त ऋतुओ के उत्तमोत्तम पुष्पो आदि को लिया।

वहाँ से वे महाहिमवत और रुक्मि वर्षधर पर्वत पर आये और वहाँ से जल एव पुष्प आदि लिये, फिर जहाँ महापद्म और महापुण्डरीक द्रह थे, वहाँ आये। आकर द्रह जल एव कमल आदि लिये।

तत्पश्चात् जहाँ हरिवर्ष और रम्यकवर्ष क्षेत्र थे, हरिकाता और नारिकांता महानदियाँ थी, गधापाति, माल्यवत और वृत्तवैताढ्य पर्वत थे, वहाँ आये और इन सभी स्थानो से जल, मिट्टी, औषधियाँ एव पुष्प लिये।

इसके वाद जहा निषध, नील नामक वर्षधर पर्वत थे, जहाँ तिगिच्छ और केसरीद्रह थे, वहाँ आये, वहाँ आकर उसी प्रकार से जल आदि लिया।

तत्पश्चात् जहाँ महाविदेह क्षेत्र था जहाँ सीता, सीतोदा महानदियाँ थी वहाँ आये और उसी प्रकार से उनका जल, मिट्टी, पुष्प आदि लिये।

फिर जहाँ सभी चक्रवर्त्ती विजय थे, जहाँ मागध, वरदाम और प्रभास तीर्थ थे, वहाँ आये, वहाँ आकर तीर्थोदक लिया और तीर्थोदक लेकर सभी अन्तर-नदियो के जल एव मिट्टी को लिया। फिर जहाँ वक्षस्कार पर्वत थे वहाँ आये और वहाँ से सर्व ऋतुओ के पुष्पो आदि को लिया।

तत्पश्चात् जहाँ मन्दर पर्वत के ऊपर भद्रशाल वन था वहाँ आये, वहाँ आकर सर्व ऋतुओ के पुष्पो, समस्त औषधियो और सिद्धार्थको को लिया। लेकर वहाँ से नन्दनवन मे आये, आकर सर्व ऋतुओ के पुष्पो यावत् सर्व औषधियो, सिद्धार्थको (सरसो) और सरस गोशीर्ष चन्दन को लिया। लेकर जहाँ सौमनस वन था, वहाँ आये। आकर वहाँ से सर्व ऋतुओ के उत्तमोत्तम पुष्पो यावत् सर्व औषधियो, सिद्धार्थको, सरस गोशीर्ष चन्दन और दिव्य पुष्पमालाओ को लिया, लेकर पाडुक वन मे आये और वहाँ आकर सर्व ऋतुओ के सर्वोत्तम पुष्पो यावत् सर्व औषधियो, सिद्धार्थको, सरस गोशीर्ष चन्दन, दिव्य पुष्पमालाओ, दर्दरमलय चन्दन की सुरभि गध से सुगन्धित गध-द्रव्यो को लिया।

इन सव उत्तमोत्तम पदार्थों को लेकर वे सब आभियोगिक देव एक स्थान पर इकट्ठे हुए और फिर उत्कृष्ट दिव्यगति से यावत् जहाँ सौधर्म कल्प था और जहाँ सूर्याभविमान था, उसकी अभिषेक सभा थी और उसमे भी जहाँ सिंहासन पर वैठा सूर्याभदेव था, वहाँ आये। आकर दोनों हाथ जोड आवर्तपूर्वक मस्तक पर अजलि करके सूर्याभदेव को 'जय हो विजय हो' शब्दो से वधाया और वधाई देकर उसके आगे महान् अर्थ वाली, महा मूल्यवान्, महान् पुरुषो के योग्य विपुल इन्द्राभिषेक की सामग्री उपस्थित की—रखी।

१९१—तए ण त सूरियाभं देव चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ, चत्तारि अग्गमहिसीओ सपरिवाराओ, तिन्नि परिसाओ, सत्त अणियाहिवइणो जाव अन्नेवि वहवे सूरियाभविमाणवासिणो देवा य देवीओ य तेहिं साभाविएहि य वेउव्विएहिं य वरकमलपइट्ठाणेहि य सुरभिवरवारिपडिपुन्नेहिं चंदण-

कयचच्चिएहिं आविद्धकंठेगुणेहिं पउमुप्पलपिहाणेहिं सुकुमालकोमलकरपरिग्गहिएहिं अट्ठसहस्सेणं सोवन्नियाणं कलसाणं जाव अट्ठसहस्सेणं भोमिज्जाणं कलसाणं सव्वोदएहिं सव्वउट्टियाहिं सव्वतूयरेहिं जाव सव्वोसहिसिद्धत्थएहि य सव्विड्ढीए जाव वाइएण महया-महया इंदाभिसेएणं अभिसिंचति ।

१६१—तत्पश्चात्—अभिषेक की सामग्री आ जाने के बाद चार हजार सामानिक देवो, परिवार सहित चार अग्रमहिषियो, तीन परिषदाओ, सात अनीकाधिपतियो यावत् अन्य दूसरे बहुत से देवो-देवियो ने उन स्वाभाविक एव विक्रिया शक्ति से निष्पादित—वनाये गये श्रेष्ठ कमलपुष्पो पर सस्थापित, सुगधित शुद्ध श्रेष्ठ जल से भरे हुए, चन्दन के लेप से चर्चित, पचरगे सूत-कलावे से आविद्ध वन्धे-लिपटे हुए कठ वाले, पद्म (सूर्यविकासी कमलो) एव उत्पल (चन्द्रविकासी कमलो) के ढक्कनो से ढँके हुए, सुकुमाल कोमल हाथो से लिये गये और सभी पवित्र स्थानो के जल से भरे हुए एक हजार आठ स्वर्ण कलशो यावत् एक हजार आठ मिट्टी के कलशो, सब प्रकार की मृत्तिका एव ऋतुओ के पुष्पो, सभी काषायिक सुगन्धित द्रव्यो यावत् औषधियो और सिद्धार्थको—सरसो से महान् ऋद्धि यावत् वाद्यघोषो पूर्वक सूर्याभ देव को अतीव गौरवशाली उच्चकोटि के इन्द्राभिषेक से अभिषिक्त किया ।

अभिषेककालीन देवोल्लास—

१६२—तए ण तस्स सूरियाभस्स देवस्स महया-महया इदाभिसेए वट्टमाणे अप्पेगतिया देवा सूरियाभ विमाण नच्चोयय नातिमट्टिय पविरल-फुसियरेणुविणासण दिव्व सुरभिगधोदगं वासं वासंति, अप्पेगतिया देवा हयरय, नट्ठरय, भट्ठरय, उवसतरय, पसतरय करेंति, अप्पेगतिया देवा सूरियाभ विमाणं मंचाइमंचकलिय करेंति, अप्पेगइया देवा सूरियाभ विमाण णाणाविहरागोसियं झयपडागाइपडागमडियं करेंति, अप्पेगतिया देवा सूरियाभ विमाण लाउल्लोइयमहिय, गोसीससरस-रत्तचंदणदद्दरदिण्णपचगुलितलं करेंति, अप्पेगतिया देवा सूरियाभ विमाण उवचियचंदणकलस चदण-घडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभाग करेंति, अप्पेगतिया देवासूरियाभ विमाण आसत्तोसत्तविउलवट्ट-वग्घारियमल्लदामकलाव करेंति, अप्पेगतिया देवा सूरियाभ विमाण पचवण्णसुरभिमुक्कपुप्फपुंजो-वयारकलिय करेंति, अप्पेगतिया सूरियाभ विमाण कालागुरुपवरकुदुरुक्कतुरुक्कधूवमघमघंतगंधुद्धूया-भिराम करेंति, अप्पेगइतया देवा सूरियाभं विमाणं सुगधगधियं गधवट्टिभूत करेंति ।

अप्पेगतिया देवा हिरण्णवासं वासंति, सुवण्णवास वासति, रययवास वासति, वइरवास०[1] पुप्फवासं० फलवास० मल्लवासं० गधवासं० चुण्णवास० आभरणवास० वासति । अप्पेगतिया देवा हिरण्णविहिं भाएति, एव सुवन्नविहिं भाएति रयणविहिं, पुप्फविहिं, फलविहिं, मल्लविहिं चुण्ण-विहिं वत्थविहिं गधविहिं, तत्थ अप्पेगतिया देवा आभरणविहिं भाएति ।

अप्पेगतिया चउव्विह वाइत्त वाइति-तत-वितत-घणं-झुसिरं, अप्पेगइया देवा चउव्विहं गेयं गायति त०—उक्खित्ताय-पायत्तायं-मदायं-रोइतावसाण, अप्पेगतिया देवा दुय नट्टविहिं उवदंसिति, अप्पेगतिया विलवियणट्टविहिं उवदसेंति, अप्पेगतिया देवा दुतविलविय णट्टविहिं उवदंसेंति, एवं अप्पे-गतिया अंचिय नट्टविहिं उवदसेंति, अप्पेगतिया देवा आरभट, भसोल, आरभडभसोल उप्पायनिवाय-

१ ० 'वासति' शब्द का सूचक है तथा भाएति शब्द का भी सकेत किया गया है । सदर्भानुसार उस उस शब्द को ग्रहण करना चाहिये ।

पवत्तं सकुचियपसारियं, रियारियं भतसंभतणामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति, अप्पेगतिया देवा चउव्विहं अभिणयं अभिणयति, तं जहा—दिट्ठंतियं-पाडंतियं-सामंतोवणिवाइयं-लोगअंतोमज्भावसाणिय ।

अप्पेगतिया देवा बुक्कारेंति, अप्पेगतिया देवा पीणेंति, अप्पेगतिया लासेंति, अप्पेगतिया हक्कारेंति, अप्पेगतिया विणंति, तडवेंति, अप्पेगतिया वग्गंति, अप्फोडेंति, अप्पेगतिया अप्फोडेंति, वग्गति, अप्पे०[1] तिवइं छिंदंति, अप्पेगतिया हयहेसियं करेंति, अप्पेगतिया हत्थिगुलगुलाइयं करेंति, अप्पेगतिया रह-घणघणाइयं करेंति, अप्पेगतिया हयहेसिय-हत्थिगुलगुलाइय-रहघणघणाइयं करेंति, अप्पेगतिया उच्छलेंति, अप्पेगतिया पोच्छलेंति, अप्पेगतिया उक्किट्ठियं करेंति, अ०[2] उच्छलेंति-पोच्छलेंति, अप्पेगतिया तिन्नि वि, अप्पेगतिया उवयंति, अप्पेगतिया उप्पयति, अप्पेगतिया परिवयति, अप्पेगतिया तिन्नि वि, अप्पेगइया सीहनायंति अप्पेगतिया दद्दरयं करेंति, अप्पेगतिया भूमिचवेडं दलयंति अप्पे० तिन्नि वि, अप्पेगतिया गज्जति, अप्पेगतिया विज्जुयायति, अप्पेगइया वासं वासति, अप्पेगतिया तिन्निवि करेंति, अप्पेगतिया जलति अप्पेगतिया तवंति, अप्पेगतिया पतवेंति, अप्पेगतिया तिन्नि वि, अप्पेगतिया हक्कारेंति अप्पेगतिया थुक्कारेंति अप्पेगतिया धक्कारेंति, अप्पेगतिया साइं साइं नामाइं साहेति, अप्पेगतिया चत्तारि वि, अप्पेगइया देवा देवसन्निवायं करेंति, अप्पेगतिया देवुज्जोयं करेंति, अप्पेगइया देवुक्कलियं करेंति, अप्पेगइया देवा कहकहगं करेंति, अप्पेगतिया देवा दुहदुहगं करेंति, अप्पेगतिया चेलुक्खेवं करेंति, अप्पेगइया देवसन्निवाय-देवुज्जोय-देवुक्कलिय-देवकहकहगं-देव-दुहदुहग-चेलुक्खेव करेंति, अप्पेगतिया उप्पलहत्थगया जाव सयसहस्सपत्तहत्थगया, अप्पेगतिया कलसहत्थगया जाव धूवकडुच्छुयहत्थगया हट्ठ-तुट्ठ जाव हियया सव्वतो समंता आहावंति परिधावंति ।

१९२—इस प्रकार के महिमाशाली महोत्सवपूर्वक जब सूर्याभदेव का इन्द्राभिषेक हो रहा था, तब कितने ही देवो ने सूर्याभ विमान मे इस प्रकार से झरमर-झरमर विरल नन्ही-नन्ही बू दो मे अतिशय सुगधित गधोदक की वर्षा बरसाई कि जिससे वहाँ की धूलि दब गई, किन्तु जमीन मे पानी नही फैला और न कीचड हुआ। कितने ही देवो ने सूर्याभ विमान को झाड़-बुहार कर हतरज, नष्टरज, भ्रष्टरज, उपशातरज और प्रशातरज वाला बना दिया। कितने ही देवो ने सूर्याभ विमान की गलियो, बाजारो और राजमार्गों को पानी से सीचकर, कचरा वगैरह झाड-बुहार कर और गोबर से लीपकर साफ किया। कितने ही देवो ने मच बनाये एव मचो के ऊपर भी मचो की रचना कर सूर्याभ विमान को सजाया। कितने ही देवो ने विविध प्रकार की रग-बिरगी ध्वजाओ, पताकाति-पताकाओ से मडित किया। कितने ही देवो ने सूर्याभ विमान को लीप-पोतकर स्थान-स्थान पर सरस गोरोचन और रक्त दर्दर चदन के हाथे लगाये। कितने ही देवो ने सूर्याभ विमान के द्वारो को चदन-चर्चित कलशो से बने तोरणो से सजाया। कितने ही देवो ने सूर्याभ विमान को ऊपर से नीचे तक लटकती हुई लबी-लबी गोल मालाओ से विभूषित किया। कितने ही देवो ने पचरगे सुगंधित पुष्पो को बिखेर कर माडने माडकर सुशोभित किया। कितने ही देवो ने सूर्याभ विमान को कृष्ण अगर, श्रेष्ठ कुन्दरुष्क तुरुष्क और धूप की मघमघाती सुगध से मनमोहक बनाया। कितने ही देवो ने सूर्याभ विमान को सुरभि गध से व्याप्त कर सुगध की गुटिका जैसा बना दिया।

किसी ने चाँदी की वर्षा बरसाई तो किसी ने सोने की, रत्नो की, वज्र रत्नो की, पुष्पो की,

१ अप्पे शब्द 'अप्पेगतिया' का सूचक है।

फलो की, पुष्पमालाओ की, गध द्रव्यो की, सुगधित चूर्ण की और किसी ने आभूषणो की वर्षा वरसाई।

कितने ही देवो ने एक दूसरे को भेंट मे चादी दी। इसी प्रकार से किसी ने आपस मे एक दूसरे को स्वर्ण, रत्न, पुष्प, फल, पुष्पमाला, सुगधित चूर्ण, वस्त्र, गध द्रव्य और आभूषण भेट रूप मे दिये।

कितने ही देवो ने तत, वितत, घन और शुषिर, इन चार प्रकार के वाद्यो को बजाया। कितने ही देवो ने उत्क्षिप्त, पादान्त, मद एव रोचितावसान ये चार प्रकार के सगीत गाये। किसी ने द्रुत नाट्यविधि का प्रदर्शन किया तो किसी ने विलबित नाट्यविधि का एव द्रुतविलबित नाट्यविधि और किसी ने अचित नाट्यविधि दिखलाई। कितने ही देवो ने आरभट, कितने ही देवो ने भसोल, कितने ही देवो ने आरभट-भसोल, कितने ही देवो ने उत्पात-निपातप्रवृत्त, कितने ही देवो ने सकुचित-प्रसारित-रितारित और कितने ही देवो ने भ्रात-सभ्रान्त नामक दिव्य नाट्यविधि प्रदर्शित की। किन्ही किन्ही देवो ने दार्ष्टान्तिक, प्रात्यान्तिक, सामन्तोपनिपातिक और लोकान्तमध्यावसानिक इन चार प्रकार के अभिनयो का प्रदर्शन किया।

साथ ही कितने ही देव हर्षातिरेक से वकरे-जैसी वुकवुकाहट करने लगे। कितने ही देवो ने अपने शरीर को फुलाने का दिखावा किया। कितनेक नाचने लगे, कितनेक हक-हक की आवाजे लगाने लगे। कितने ही लम्वी-लम्वी दौड दौडने लगे। कितने ही गुनगुनाने लगे। कितने ही ताडव नृत्य करने लगे। कितने ही उछलने के साथ ताल ठोकने लगे और कितने ही ताली वजा-वजाकर कूदने लगे। कितने ही तीन पैर की दौड लगाने, कितने ही घोडे जैसे हिनहिनाने लगे। कितने ही हाथी जैसी गुलगुलाहट करने लगे। कितने ही रथ जैसी घनघनाहट करने लगे और कितने ही कभी घोडो की हिनहिनाहट, कभी हाथी की गुलगुलाहट और रथो की घनघनाहट जैसी आवाजें करने लगे। कितनेक ने ऊँची छलाग लगाई, कितनेक और अधिक ऊपर उछले। कितने ही हर्षध्वनि करने लगे। हर्षित हो किलकारिया करने लगे। कितने उछले और अधिक ऊपर उछले और साथ ही हर्षध्वनि करने लगे। कोई ऊपर से नीचे, कोई नीचे से ऊपर और कोई लवे कूदे। किसी ने नीची-ऊँची और लवी—तीनो तरह की छलागे मारी। कितनेक ने सिंह जैसी गर्जना की, कितनेक ने एक दूसरे को रग-गुलाल से भर दिया, कितनेक ने भूमि को थपथपाया और कितनेक ने सिंहनाद किया, रग-गुलाल उडाई और भूमि को भी थपथपाया। कितने ही देवो ने मेघो की गडगडाहट, कितने ही देवो ने बिजली की चमक जैसा दिखावा किया और किन्ही ने वर्षा वरसाई। कितने ही देवो ने मेघो के गरजने चमकने और वरसने के दृश्य दिखाये। कुछ एक देवो ने गरमी से आकुल-व्याकुल होने का, कितने ही देवो ने तपने का, कितने ही देवो ने विशेष रूप मे तपने का तो कितने ही देवो ने एक साथ इन तीनो का दिखावा किया। कितने ही हक-हक, कितने ही थक-थक कितने ही धक-धक जैसे शब्द और कितने ही अपने-अपने नामो का उच्चारण करने लगे। कितने ही देवो ने एक साथ इन चारो को किया। कितने ही देवो ने टोलिया (समूह, झुड) वनाई, कितने ही देवो ने देवोद्योत किया, कितने ही देवो ने रुक-रुक कर वहने वाली वाततरगो का प्रदर्शन किया। कितने ही देवो ने कहकहे लगाये, कितने ही देव दुहदुहाहट करने लगे, कितनेक देवो ने वस्त्रो की वरसा की और कितने ही देवो ने टोलियाँ वनाई, देवोद्योत किया देवोत्कलिका की, कहकहे लगाये, दुहदुहाहट की और वस्त्रवर्षा की। कितनेक

देव हाथो में उत्पल यावत् शतपत्र सहस्रपत्र कमलो को लेकर, कितने ही हाथो मे कलश यावत् धूप दोनो को लेकर हर्षित सन्तुष्ट यावत् हर्षातिरेक से विकसितहृदय होते हुए इधर-इधर चारो ओर दौड-धूप करने लगे।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे उल्लास और प्रमोद के समय होने वाली मानसिक वृत्तियो एव हर्षातिरेक के कारण की जाने वाली प्रवृत्तियो का यथार्थ चित्रण किया है। उपर्युक्त वर्णन मे प्रदर्शित चेष्टाओ के चित्र हमे त्यौहारो-मेलो आदि के अवसरो पर देखने को मिलते हैं, जब बालक से लेकर वृद्ध जन तक सभी अपने-अपने पद और मर्यादा को भूलकर मस्ती मे रम जाते हैं।

१९३—तए ण त सूरियाभं देवं चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ जाव[1] सोलस आयरक्खदेव-साहस्सीओ अण्णे य बहवे सूरियाभरायहाणिवत्थव्वा देवा य देवीओ य महया महया इदाभिसेगेण अभिसिंचंति, अभिसिंचित्ता पत्तेय-पत्तेय करयलपरिग्गहिय सिरसावत्त मत्थए अजलिं कट्टु एवं वयासी—

जय जय नदा! जय जय भद्दा! जय जय नदा! भद्द ते, अजिय जिणाहि, जिय च पालेहि, जियमज्झे वसाहि, इदो इव देवाण, चदो इव ताराण, चमरो इव असुराण, धरणो इव नागाण, भरहो इव मणुयाण बहूइ पलिओवमाइ, बहूइ सागरोवमाइ बहूइ पलिओवमसागरोवमाइ, चउण्ह सामाणिय-साहस्सीण जाव आयरक्खदेवसाहस्सीण सूरियाभस्स विमाणस्स अन्नेसिं च बहूण सूरियाभविमाण-वासीण देवाण य देवीण य आहेवच्चं जाव (पोरेवच्च-सामित्त-भट्टित्त-महत्तरगत्त-आणाईसरसे-णावच्च) महया महयाहयनट्ट० कारेमाणे पालेमाणे विहराहि त्ति कट्टु जय जय सद्द पउजति।

१९३—तत्पश्चात् चार हजार सामानिक देवो यावत् सपरिवार चार अग्रमहिषियो, तीन परिषदाओ, सात अनीकाधिपतियो, सोलह हजार आत्मरक्षक देवो तथा दूसरे भी बहुत से सूर्याभ राजधानी मे वास करने वाले देवो और देवियो ने सूर्याभदेव को महान् महिमाशाली इन्द्राभिषेक से अभिषिक्त किया। अभिषेक करके प्रत्येक ने दोनो हाथ जोड़कर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अजलि करके इस प्रकार कहा—

हे नन्द! तुम्हारी जय हो, जय हो! हे भद्र! तुम्हारी जय हो, जय हो! तुम्हारा भद्र-कल्याण हो! हे जगदानन्दकारक! तुम्हारी बारबार जय हो! तुम न जीते हुओ को जीतो और विजितो (जीते हुओ) का पालन करो, जितो—शिष्ट आचार वालो के मध्य मे निवास करो। देवो मे इन्द्र के समान, ताराओ मे चन्द्र के समान, असुरो मे चमरेन्द्र के समान, नागो मे धरणेन्द्र के समान, मनुष्यो मे भरत चक्रवर्ती के समान, अनेक पल्योपमो तक, अनेक सागरोपमो तक, अनेक-अनेक पल्योपमो-सागरोपमो तक, चार हजार सामानिक देवो यावत् सोलह हजार आत्मरक्षक देवो तथा सूर्याभ विमान और सूर्याभ विमानवासी अन्य बहुत से देवो और देवियो का बहुत-बहुत अतिशय रूप से आधिपत्य (शासन) यावत् (पुरोवर्तित्व), (प्रमुखत्व) भर्तृत्व, (पोषकत्व) महत्तरकत्व, एव आज्ञेश्वरत्व, सेनापतित्व) करते हुए, पालन करते हुए विचरण करो।

इस प्रकार कहकर पुन जय जय कार किया।

१ देखें सूत्र सख्या-७

अभिषेकानंतर सूर्याभदेव का अलंकरण—

१९४—तए ण से सूरियाभे देवे महया महया इदाभिसेगेण अभिसित्ते समाणे अभिसेयसभाओ पुरत्थिमिल्लेणं दारेण निग्गच्छति, निग्गच्छित्ता जेणेव अलकारियसभा तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता अलकारियसभ अणुप्पयाहिणीकरेमाणे करेमाणे अलकारियसभ पुरत्थिमिल्लेण दारेण अणुपविसति, अणुपविसित्ता जेणेव सोहासणे तेणेव उवागच्छति सोहासणवरगते पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने।

१९४—अतिशय महिमाशाली इन्द्राभिषेक से अभिषिक्त होने के पश्चात् सूर्याभदेव अभिषेक सभा के पूर्व-दिशावर्ती द्वार से बाहर निकला, निकलकर जहाँ अलंकार-सभा थी वहाँ आया। आकर अलकार-सभा की अनुप्रदक्षिणा करके पूर्व दिशा के द्वार से अलकार-सभा मे प्रविष्ट हुआ। प्रविष्ट होकर जहाँ सिंहासन था, वहाँ आया और आकर पूर्व की ओर मुख करके उम श्रेष्ठ सिंहासन पर आरूढ हुआ।

१९५—तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स सामाणियपरिसोववन्नगा अलकारियभडे उवट्ठवेंति।

तए णं से सूरियाभे देवे तप्पढमयाए पम्हसलूमालाए सुरभीए गधकासाईए गायाइ लूहेति लूहित्ता सरसेणं गोसीसचदणेण गायाइ अणुलिंपति, अणुलिंपित्ता नासानीसासवायवोज्झ चक्खुहरं वन्नफरिसजुत्तं हयलालापेसवातिरेग धवलं कणगखचियन्तकम्म आगासफालियसमप्पभ दिव्व देवदूस-जुयल नियसेति, नियसेत्ता हार पिणद्धेति, पिणद्धित्ता अद्धहार पिणद्धेइ, एगावलिं पिणद्धेति, पिणद्धित्ता मुत्तावलिं पिणद्धेति पिणद्धित्ता, रयणावलिं पिणद्धेइ, पिणद्धित्ता एव अगयाइ केयूराइ कडगाइ तुडियाइं कडिसुत्तगं दसमुद्दाणतगं वच्छसुत्तग मुरविं कठमुरविं पालब कुडलाइ चूडामणिं मउड पिणद्धेइ, गंथिम-वेढिम-पूरिम-सघाइमेण चउव्विहेणं मल्लेण कप्परुक्खग पिव अप्पाण अलकियविभूसिय करेइ, करित्ता दद्दर-मलय-सुगंधगंधिएहिं गायाइ भुखडेइ दिव्व च सुमणदाम पिणद्धेइ।

१९५—तदनन्तर उस सूर्याभ देव की सामानिक परिषद् के देवो ने उसके सामने अलकार—भाड उपस्थित किया।

इसके वाद सूर्याभदेव ने सर्वप्रथम रोमयुक्त सुकोमल काषायिक सुरभि गध से सुवासित वस्त्र से शरीर को पोछा। पोछकर शरीर पर सरस गोशीर्ष चदन का लेप किया, लेप करके नाक की नि श्वास से भी उड जाये, ऐसा अति वारीक नेत्राकर्षक, सुन्दर वर्ण और स्पर्श वाले, घोडे के थूक (लार) से भी अधिक सुकोमल, धवल जिनके पल्लो और किनारो पर सुनहरी बलबूटे बने हैं, आकाश एव स्फटिक मणि जैसी प्रभा वाले दिव्य देवदूष्य (वस्त्र) युगल को धारण किया। देवदूष्य युगल धारण करने के पश्चात् गले मे हार पहना, अर्धहार पहना, एकावली पहनी, मुक्ताहार पहना, रत्नावली पहनी, एकावली पहन कर भुजाओ मे अगद, केयूर (बाजूवद) कडा, त्रुटित, करधनी, हाथो की दशो अगुलियो मे दस अगूठियाँ, वक्षसूत्र, मुरवि (मादलिया) कठमुरवि (कठी) प्रालब (झूमके), कानो मे कुडल पहने तथा मस्तक पर चूडामणि (कलगी) और मुकुट पहना। इन आभूषणो को पहनने के पश्चात् ग्रथिम (गूथी हुई), वेष्टिम (लपेटी हुई), पूरिम (पूरी हुई) और सघातिम (साधकर वनाई हुई), इन चार प्रकार की मालाओ से अपने को कल्पवृक्ष के समान अलकृत—विभूषित किया। विभूषित कर दद्दर मलय चदन की सुगध से सुगधित चूर्ण को शरीर पर भुरका—छिडका और फिर दिव्य पुष्पमालाओ को धारण किया।

विवेचन—उपर्युक्त वस्त्र परिधान एव आभूषणो को पहनने से यह ज्ञात होता है कि भगवान् महावीर के समकालीन भारतीय जन दो वस्त्र पहनने के साथ-साथ यथायोग्य आभूषणो को धारण करते थे। शृ गारप्रसाधनो मे अतिशय सुरभिगध वाले पदार्थों का उपयोग किया जाता था। वस्त्र-वर्णन तो तत्कालीन वस्त्र-कला की परम प्रकर्षता की प्रतीति कराता है। उस समय 'पाउडर' चूर्ण का भी प्रयोग किया जाता था।

सूर्याभदेव द्वारा कार्य-निश्चय—

१९९—तए ण से सूरियाभे देवे केसालंकारेण, मल्लालकारेण आभरणालकारेणं वत्थालकारेण चउव्विहेण अलंकारेण अलंकिय-विभूसिए समाणे पडिपुण्णालकारे सीहासणाओ अब्भुट्ठेति, अब्भुट्ठित्ता अलकारियसभाओ पुरत्थिमिल्लेणं दारेण पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव व्ववसायसभा तेणेव उवागच्छति, ववसायसभं अणुपयाहिणीकरेमाणे अणुपयाहिणीकरेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं दारेण अणुपविसति जेणेव सीहासणवरगए (?) जाव सन्निसन्ने।

तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स सामाणियपरिसोववन्नगा देवा पोत्थयरयण उणर्वेति, तते ण से सूरियाभे देवे पोत्थयरयण गिण्हति, गिण्हित्ता पोत्थयरयण मुयइ, मुइत्ता पोत्थयरयणं विहाडेइ, विहाडित्ता पोत्थयरयण वाएति, पोत्थयरयण वाएत्ता धम्मिय ववसाय ववसइ, ववसइत्ता पोत्थयरयण पडिनिक्खवइ, सीहासणाओ अब्भुट्ठेति, अब्भुट्ठेत्ता ववसायसभातो पुरत्थिमिल्लेण दारेणं पडिनिक्खमित्ता जेणेव नदा पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता णंदापुक्खरिणिं पुरत्थिमिल्लेण तोरणेण तिसोवाणपडिरूवएण पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता हत्थपाद पक्खालेति, पक्खालित्ता आयते चोक्खे परमसुइभूए एग मह सेय रययामय विमल सलिलपुण्णं मत्तगयमुहागितिकुभसमाण भिगार पगेण्हित्ता जाइ तत्थ उप्पलाइ जाव सतसहस्सपत्ताइ ताइ गेण्हति गेण्हित्ता णंदातो पुक्खरिणीतो पच्चुत्तरति, पच्चुत्तरित्ता जेणेव सिद्धायतणे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

१९९—तत्पश्चात् केशालकारो (केशो को सजाने वाले (अलकार), पुष्प-मालादि रूप माल्यालकारो, हार आदि आभूषणालकारो एव देवदूष्यादि वस्त्रालकारो—इन चारो प्रकार के अलकारो से द्वार (अलकृत-विभूषित होकर वह सूर्याभदेव सिहासन से उठकर) अलकारसभा के पूर्वदिग्वर्ती से बाहर निकला। निकलकर व्यवसाय सभा मे आया एव बारबार व्यवसायसभा की प्रदक्षिणा करके पूर्वदिशा के द्वार से उसमे प्रविष्ट हुआ। प्रविष्ट होकर जहाँ सिहासन था वहाँ आकर यावत् सिहासन पर आसीन हुआ।

तत्पश्चात् सूर्याभदेव की सामानिक परिषद् के देवो ने व्यवसायसभा मे रखे पुस्तक-रत्न को उसके समक्ष रखा। सूर्याभदेव ने उस उपस्थित पुस्तक-रत्न को हाथ मे लिया, हाथ मे लेकर पुस्तक-रत्न खोला, खोलकर उसे वाचा। पुस्तकरत्न को वाचकर धर्मानुगत-धार्मिक कार्य करने का निश्चय किया। निश्चय करके वापस यथास्थान पुस्तकरत्न को रखकर सिहासन से उठा एव व्यवसाय सभा के पूर्व-दिग्वर्ती द्वार से बाहर निकलकर जहाँ नन्दापुष्करिणी थी, वहाँ आया। आकर पूर्व-दिग्वर्ती तोरण और त्रिसोपान पक्ति से नदा पुष्करिणी मे प्रविष्ट हुआ—उतरा। प्रविष्ट होकर हाथ पैर धोये। हाथ-पैर धोकर और आचमन-कुल्ला कर पूर्ण रूप से स्वच्छ और परम शुचिभूत—शुद्ध होकर मत्त गजराज की मुखाकृति जैसी एक विशाल श्वेतधवल रजतमय जल से भरी हुई भृ गार

(झारी) एव वहाँ के उत्पल यावत् शतपत्र-सहस्रपत्र कमलो को लिया। फिर नदा पुष्करिणी से बाहर निकला। बाहर निकलकर सिद्धायतन की ओर चलने के लिये उद्यत हुआ।

सिद्धायतन का प्रमार्जन—

१९७—तए णं ते सूरियाभ देव चत्तारि य सामाणियसाहस्सीओ जाव सोलस आयरक्खदेव-साहस्सीओ अन्ने य बहवे सूरियाभविमाणवासिणो जाव देवीओ य अप्पेगतिया देवा उप्पलहत्थगा जाव सय-सहस्सपत्त-हत्थगा सूरियाभ देव पिट्ठतो समणुगच्छति।

तए णं तं सूरियाभं देव बहवे आभिओगिया देवा य देवीओ य अप्पेगतिया कलसहत्थगा जाव अप्पेगतिया धूवकडुच्छुयहत्थगता हट्ठतुट्ठ जाव सूरियाभ देव पिट्ठतो समणुगच्छति।

१९७—तब उस सूर्याभदेव के चार हजार सामानिक देव यावत् सोलह हजार आत्मरक्षक देव तथा कितने ही अन्य बहुत से सूर्याभविमानवासी देव और देवी भी हाथो मे उत्पल यावत् शतपथ-सहस्रपत्र कमलो को लेकर सूर्याभदेव के पीछे-पीछे चले।

तत्पश्चात् उस सूर्याभदेव के बहुत-से अभियोगिक देव और देवियाँ हाथो मे कलश यावत् धूप-दानो को लेकर हृष्ट-तुष्ट यावत् विकसितहृदय होते हुए सूर्याभदेव के पीछे-पीछे चले।

१९८—तए णं से सूरियाभे देवे चउहिं सामाणिगसाहस्सीहिं जाव अन्नेहि य बहूहि य जाव देवेहि य देवीहि य सद्धि सपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव णातियरवेण जेणेव सिद्धावतणे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता सिद्धायतण पुरत्थिमिल्लेण दारेण अणुपविसति, अणुपविसित्ता जेणेव देवच्छदए जेणेव जिणपडिमाओ तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता जिणपडिमाणे आलोए पणाम करेति, करित्ता लोम-हत्थग गिण्हति, गिण्हित्ता जिणपडिमाण लोमहत्थएण पमज्जइ, पमज्जित्ता जिणपडिमाओ सुरभिणा गधोदएण ण्हाणेइ, ण्हाणित्ता सरसेण गोसीसचदणेणं गायाइ अणुलिपइ, अणुलिपइत्ता सुरभिगधका-साइएण गायाइं लूहेति, लूहित्ता जिणपडिमाण अहयाइ देवदूसजुयलाइं नियसेइ, नियसित्ता पुप्फारुहण-मल्लारुहणं-गधारुहण-चुण्णारुहण-वन्नारुहणं-आभरणारुहणं करेइ, करित्ता आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घा-रियमल्लदामकलाव करेइ, मल्लदामकलाव करेत्ता कयग्गहगहियकरयलपब्भट्ठविप्पमुक्केणं दसवद्ध-वन्नेण कुसुमेण मुक्कपुप्फपु जोवयारकलिय करेति, करित्ता जिणपडिमाण पुरतो अच्छेहि सण्हेहिं रयया-मएहिं अच्छरसातदुलेहिं अट्ठट्ठ मगले आलिहइ, तं जहा—सोत्थिय जाव दप्पण।

तयाणतरं च ण चदप्पभवइरवेरुलियविमलदड कचणमणिरयणभत्तिचित्त कालागुरुपवरकु दु-रुक्क-तुरुक्क-धूव-मघमघतगधुत्तमाणुविद्धं च धूववट्टिं विणिम्मुयत वेरुलियमय कडुच्छुय पग्गहिय पयत्तेण धूव दाऊण जिणवराण अट्ठसयविसुद्धगथजुत्तेहिं अत्थजुत्तेहिं अपुणरुत्तेहिं महावित्तेहिं सथुणइ, सथुणित्ता सत्तट्ठ पयाइ पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता वाम जाणुं अचेइ, अचित्ता दाहिणं जाणु धरणि-तलंसि निहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणितलंसि निवाडेइ निवाडित्ता ईसिं पच्चुण्णमइ, पच्चुण्णमित्ता करयलपरिग्गहिय सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एव वयासी—

१९८—तत्पश्चात् सूर्याभदेव चार हजार सामानिक देवो यावत् और दूसरे बहुत से देवो और देवियो से परिवेष्टित होकर अपनी समस्त ऋद्धि, वैभव यावत् वाद्यो की तुमुल ध्वनिपूर्वक जहाँ सिद्धायतन था, वहाँ आया। पूर्वद्वार से प्रवेश करके जहाँ देवछदक और जिनप्रतिमाएँ थी वहाँ आया। वहाँ आकर उसने जिनप्रतिमाओ को देखते ही प्रणाम करके लोममयी

प्रमार्जनी (मयूरपिच्छ की पू जनी) हाथ मे ली और प्रमार्जनी को लेकर जिनप्रतिमाओ को प्रमार्जित किया (पू जा)। प्रमार्जित करके सुरभि गन्धोदक से उन जिनप्रतिमाओ का प्रक्षालन किया। प्रक्षालन करके सरस गोशीर्ष चन्दन का लेप किया। लेप करके काषायिक (कसैली) सुरभि गन्ध से सुवासित वस्त्र से उनको पोछा। उन जिन-प्रतिमाओ को अखण्ड (अक्षत) देवदूष्य-युगल पहनाया। देवदूष्य पहना कर पुष्प, माला, गन्ध, चूर्ण, वर्ण, वस्त्र और आभूषण चढाये। इन सबको चढाने के अनन्तर फिर ऊपर से नीचे तक लटकती हुई लम्बी-लम्बी गोल मालायें पहनाईं। मालाये पहनाकर पचरगे पुष्पपु जो को हाथ मे लेकर उनकी वर्षा की और माडने माडकर उस स्थान को सुशोभित किया। फिर उन जिनप्रतिमाओ के सन्मुख शुभ्र, सलौने, रजतमय अक्षत तन्दुलो-चावलो से आठ-आठ मगलो का आलेखन किया, यथा—स्वतिक यावत् दर्पण।

तदनन्तर उन जिनप्रतिमाओ के सन्मुख श्रेष्ठ काले अगर, कुन्दरु तुरुष्क और धूप की महकती सुगन्ध से व्याप्त और धूपवत्ती के समान सुरभिगन्ध को फैलाने वाले चन्द्रकात मणि, वज्र-रत्न और वैडूर्य मणि की दडी तथा स्वर्ण-मणिरत्नो से रचित चित्र-विचित्र रचनाओ मे युक्त वैडूर्यमय धूपदान को लेकर धूप-क्षेप किया तथा विशुद्ध (काव्य-दोष से रहित) अपूर्व अर्थसम्पन्न अपुनरुक्त महिमाशाली एक सौ आठ छन्दो मे स्तुति की। स्तुति करके सात-आठ पग पीछे हटा, और फिर पीछे हटकर बाया घुटना ऊचा किया और दाया घुटना जमीन पर टिकाकर तीन बार मस्तक को भूमितल पर नमाया। नमाकर कुछ ऊँचा उठाया, तथा मस्तक ऊचा कर दोनो हाथ जोडकर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अजलि करके इस प्रकार कहा—

अरिहंत-सिद्ध भगवन्तों की स्तुति

१९९—नमोऽत्थु णं अरिहताण भगवताण, आदिगराण, तित्थगराण सयंसबुद्धाण, पुरिसुत्तमाण, पुरिससीहाण, पुरिसवरपुण्डरीआण, पुरिसवरगध-हत्थीणं, लोगुत्तमाण, लोगनाहाणं, लोगहिआण, लोगपईवाण लोगपज्जोअगराणं, अभयदयाण, चक्खुदयाणं मग्गदयाणं, सरणदयाण, बोहिदयाणं, धम्मदयाण, धम्मदेसयाण, धम्मनायगाण, धम्मसारहीण, धम्मवरचाउरतचक्कवट्टीण, अप्पडिहयवर-नाणदसणधराण, विअट्टच्छउमाण, जिणाण, जावयाण तिन्नाण, तारयाणं, बुद्धाण, बोहयाण, मुत्ताणं, मोअगाणं, सव्वन्नूणं, सव्वदरिसीण सिव, अयल, अरुअ, अणत, अक्खय, अव्वाबाहं, अपुणरावित्तिसिद्धि-गइनामधेय ठाण संपत्ताण; वंदइ नमसइ।

१९९—अरिहत भगवन्तो को नमस्कार हो, श्रुत-चारित्र रूप धर्म की आदि करनेवाले, तीर्थकर—तीर्थ की स्थापना करने वाले, स्वयबुद्ध—गुरूपदेश के विना स्वय ही बोध को प्राप्त, पुरुषो मे उत्तम कर्मशत्रुओ का विनाश करने मे पराक्रमी होने के कारण पुरुषो मे सिंह के समान, सौम्य और लावण्य-शाली होने से पुरुषो मे श्रेष्ठ पु डरीक-कमल के समान, अपने पुण्य प्रभाव से ईति-व्याधि भीति—भय आदि को शात, विनाश करने के कारण पुरुषो मे श्रेष्ठ गन्धहस्ती के समान, लोक मे उत्तम, लोक के नाथ, लोक का हित करने वाले, ससारीप्राणियो को सन्मार्ग दिखाने के कारण लोक मे प्रदीप के समान केवलज्ञान द्वारा लोका-लोक को प्रकाशित करने वाले—वस्तु स्वरूप को बताने वाले, अभय दाता, श्रद्धा-ज्ञान रूप नेत्र के दाता, मोक्षमार्ग के दाता, शरणदाता, बोधिदाता, धर्मदाता, देशविरति सर्वविरतिरूप धर्म के उपदेशक, धर्म के नायक, धर्म के सारथी, सम्यक् धर्म के प्रवर्तक चातुर्गतिक

ससार का अन्त करने वाले श्रेष्ठ धर्म के चक्रवर्ती, अप्रतिहत—श्रेष्ठ ज्ञान-दर्शन के धारक, कर्मावरण या कषाय रूप छद्म के नाशक, रागादि शत्रुओ को जीतने वाले तथा अन्य जीवो को भी कर्म-शत्रुओ को जीतने के लिये प्रेरित करने वाले, ससारसागर से स्वय तिरे हुए तथा दूसरो को भी तिरने का उपदेश देने वाले, वोध को प्राप्त तथा दूसरो को भी उपदेश द्वारा बोधि प्राप्त कराने वाले, स्वय कर्ममुक्त एव अन्यो को भी कर्ममुक्त होने का उपदेश देने वाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तथा शिव—उपद्रव रहित, अचल, नीरोग अनन्त, अक्षय, अव्यावाध अपुनरावृत्ति रूप (जन्म-मरण रूप ससार से रहित) सिद्धगति नामक स्थान मे विराजमान सिद्ध भगवन्तो को वन्दन—नमस्कार हो।

सूर्याभदेव द्वारा सिद्धायतन के देवच्छन्दक आदि की प्रमार्जना—

२००—वदित्ता नमसित्ता जेणेव देवच्छदए जेणेव सिद्धायतणस्स बहुमज्झदेसभाए तेणेव उवागच्छइ, लोमहत्थगं परामुसइ, सिद्धायतणस्स बहुमज्झदेसभाग लोमहत्थेण पमज्जति, दिव्वाए दगधाराए अब्भुक्खेइ, सरसेण गोसीसचदणेण पचगुलितल मडलग आलिहइ कयग्गहगहिय जाव[1] पु जोवयारकलिय करेइ, करित्ता धूव दलयइ, जेणेव सिद्धायतणस्स दाहिणिल्ले दारे तेणेव उवागच्छति, लोमहत्थग परामुसइ, दारचेडीओ य सालभजियाओ य वालरूवए य लोमहत्थएण पमज्जइ, दिव्वाए दगधाराए अब्भुक्खेइ, सरसेण गोसीसचणेण चच्चए दलयइ, दलइत्ता पुप्फारुहण मल्ला० जाव[2] आभरणारुहण करेइ, करेत्ता आसत्तोसत्त जाव[3] धूव दलयइ।

जेणेव दाहिणिल्ले दारे मुहमंडवे जेणेव दाहिणिल्लस्स मुहमडवस्स बहुमज्झदेसभाए तेणेव उवागच्छइ लोमहत्थग परामुसइ, बहुमज्झदेसभागं लोमहत्थेण पमज्जइ दिव्वाए दगधाराए अब्भुक्खेइ, सरसेण गोसीसचदणेणं पंचगुलितल मडलग आलिहइ, कयग्गहगहिय जाव धूवं दलयइ।

जेणेव दाहिणिल्लस्स मुहमडवस्स पच्चत्थिमिल्ले दारे तेणेव उवागच्छइ, लोमहत्थग परामुसइ दारचेडीओ य सालभजियाओ य वालरूवए य लोमहत्थेण पमज्जइ, दिव्वाए दगधाराए०[4] सरसेण गोसीसचदणेण चच्चए दलयइ पुप्फारुहण जाव आभरणारुहण करेइ आसत्तोसत्त० कयगहग्गहिय० धूव दलयइ।

जेणेव दाहिणिल्लस्स मुहमडवस्स उत्तरिल्ला खभपती तेणेव उवागच्छइ, लोमहत्थ परामुसइ थभे य सालभजियाओ य वालरूवए य लोमहत्थएण पमज्जइ जहा चेव पच्चत्थिमिल्लस्स दारस्स जाव धूवं दलयइ।

जेणेव दाहिणिल्लस्स मुहमडवस्स पुरत्थिमिल्ले दारे तेणेव उवागच्छइ, लोमहत्थग परामुसति दारचेडीओं त चेव सव्व।

जेणेव दाहिणिल्लस्स मुहमडवस्स दाहिणिल्ले दारे तेणेव उवागच्छइ दारचेडीओ त चेव सव्व।

जेणेव दाहिणिल्ले पेच्छाघरमडवे, जेणेव दाहिणिल्लस्स पेच्छाघरमडवस्स बहुमज्झदेसभागे, जेणेव वइरामए अक्खाडए, जेणेव मणिपेढिया, जेणेव सीहासणे, तेणेव उवागच्छइ, लोमहत्थग परामुसइ,

---

१ देखें सूत्र सख्या १९८ २ देखे सूत्र सख्या १९८ ३ देखे सूत्र सख्या १९८

४ दगधाराए के अनन्तर आगत० से 'अब्भुक्खेइ' शब्द ग्रहण करना चाहिये।

अक्खाडगं च मणिपेढियं च सीहासण च लोमहत्थएण पमज्जइ, दिव्वाए दगधाराए सरसेण गोसीस-चदणेणं चच्चए दलयइ, पुप्फारुहणं आसत्तोसत्त जाव धूव दलेइ, जेणेव दाहिणिल्लस्स पेच्छाघरमंडवस्स पच्चत्थिमिल्ले दारे उत्तरिल्ले दारे त चेव ज चेव पुरत्थिमिल्ले दारे तं चेव दाहिणे दारे तं चेव।

जेणेव दाहिणिल्ले चेइयथूमे तेणेव उवागच्छइ थूभ मणिपेढिय च दिव्वाए दगधाराए सरसेण गोसीसचदणेण चच्चए दलेइ पुप्फारु० आसत्तो० जाव धूव दलेइ।

जेणेव पच्चत्थिमिल्ला मणिपेढिया जेणेव पच्चत्थिममिल्ला जिणपडिमा त चेव, जेणेव उत्तरिल्ला जिणपडिमा तं चेव सव्वं। जेणेव पुरत्थिमिल्ला मणिपेढिया जेणेव पुरत्थिमिल्ला जिण-पडिमा तेणेव उवागच्छइ त चेव, दाहिणिल्ला मणिपेढिया दाहिणिल्ला जिणपडिमा तं चेव।

जेणेव दाहिणिल्ले चेइयरुक्खे तेणेव उवागच्छइ त चेव, जेणेव महिंदज्झए, जेणेव दाहिणिल्ला नदापुक्खरिणी तेणेव उवागच्छति, लोमहत्थग परामुसति, तोरणे य तिसोवाणपडिरूवए सालभंजियाओ य वालरूवए य लोमहत्थएण पमज्जइ, दिव्वाए दगधाराए सरसेण गोसीसचदणेण० पुप्फारुहण आसत्तो-सत्त० धूव दलयति।

सिद्धाययण अणुपयाहिणीकरेमाणे जेणेव उत्तरिल्ला णदापुक्खरिणी तेणेव उवागच्छति तं चेव, जेणेव उत्तरिल्ले चेइयरुक्खे तेणेव उवागच्छति, जेणेव उत्तरिल्ले चेइयथूभे तहेव, जेणेव पच्चत्थिमिल्ला पेढिया जेणेव पच्चत्थिमिल्ला जिणपडिमा तं चेव।

जेणेव उत्तरिल्ले पेच्छाघरमडवे तेणेव उवागच्छति जा चेव दाहिणिल्लवत्तव्वया सा चेव सव्वा पुरत्थिमिल्ले दारे, दाहिणिल्ला खभपती त चेव सव्व।

जेणेव उत्तरिल्ले मुहमंडवे जेणेव उत्तरिल्लस्स मुहमंडवस्स बहुमज्झदेसभाए तं चेव सव्वं, पच्चत्थिमिल्ले दारे तेणेव उत्तरिल्ले दारे दाहिणिल्ला खभपती सेसं त चेव सव्व।

जेणेव सिद्धायतणस्स उत्तरिल्ले दारे त चेव, जेणेव सिद्धायतणस्स पुरत्थिमिल्ले दारे तेणेव उवागच्छइ त चेव, जेणेव पुरत्थिमिल्ले मुहमंडवे जेणेव पुरत्थिमिल्लस्स मुहमंडवस्स बहुमज्झदेसभाए तेणेव उवागच्छइ त चेव, पुरत्थिमिल्लस्स मुहमडवस्स दाहिणिल्ले दारे पच्चत्थिमिल्ला खभपंती उत्तरिल्ले दारे त चेव पुरत्थिमिल्ले दारे त चेव।

जेणेव पुरत्थिमिल्ले पेच्छाघरमडवे, एव थूभे, जिणपडिमाओ चेइयरुक्खा, महिंदज्झया णदा-पुक्खरिणी त चेव धूव दलयइ।

जेणेव सभा सुहम्मा तेणेव उवागच्छति, सभं सुहम्म पुरत्थिमिल्लेण दारेण अणुपविसइ, जेणेव माणवए चेइयखभे जेणेव वइरामए गोलवट्टसमुग्गे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छइत्ता लोमहत्थगं परामुसइ, वइरामए गोलवट्टसमुग्गए लोमहत्थेण पमज्जइ, वइरामए गोलवट्टसमुग्गए विहाडेइ, जिण-सगहाओ लोमहत्थेण पमज्जइ, सुरभिणा गधोदएणं पक्खालेइ, पक्खालित्ता अग्गेहिं वरेहिं गंधेहि य मल्लेहि य अच्चेइ, धूव दलयइ, जिणसकहाओ वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु पडिनिक्खवइ माणवगं चेइयखभ लोमहत्थएण पमज्जइ, दिव्वाए दगधाराए सरसेण गोसीसचंदणेणं चच्चए दलयइ, पुप्फारुहणं जाव धूव दलयइ, जेणेव सीहासणे त चेव, जेणेव देवसयणिज्जे त चेव, जेणेव खुड्डागमहिंदज्झए तं चेव।

जेणेव पहरणकोसे चोप्पालए तेणेव उवागच्छइ, लोमहत्थग परामुसइ पहरणकोसं चोप्पालं लोमहत्थएणं पमज्जइ, दिव्वाए दगधाराए सरसेण गोसीसचदणेणं दलेइ, पुप्फारुहणं आसत्तोसत्त० धूवं दलयइ।

जेणेव सभाए सुहम्माए बहुमज्झदेसभाए, जेणेव मणिपेढिया जेणेव देवसयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, लोमहत्थग परामुसइ, देवसयणिज्ज च मणिपेढिय च लोमहत्थएणं पमज्जइ जाव धूवं दलयइ।

जेणेव उववायसभाए दाहिणिल्ले दारे तहेव अभिसेयसभा सरिसं जाव पुरत्थिमिल्ला णंदा पुक्खरिणी जेणेव हरए तेणेव उवागच्छइ, तोरणे य तिसोवाणे य सालभजियाओ य वालरूवए य तहेव।

जेणेव अभिसेयसभा, तेणेव उवागच्छइ तहेव सीहासण च मणिपेढियं च, सेसं तहेव आययण-सरिसं जाव पुरत्थिमिल्ला णदा पुक्खरिणी। जेणेव अलकारियसभा तेणेव उवागच्छइ जहा अभिसेयसभा तहेव सव्व।

जेणेव ववसायसभा तेणेव उवागच्छइ तहेव लोमहत्थयं परामुसति, पोत्थयरयण लोमहत्थएण पमज्जइ, पमज्जित्ता दिव्वाए दगधाराए अग्गेहि वरेहि य गधेहि मल्लेहि य अच्चेति मणिपेढियं सीहासणं च सेस तं चेव पुरत्थिमिल्ला नदा पुक्खरिणी जेणेव हरए तेणेव उवागच्छइ तोरणे य तिसोवाणे य सालभजियाओ य वालरूवए य तहेव। जेणेव बलिपीढ तेणेव उवागच्छइ बलिविसज्जणं करेइ, आभिओगिए देवे सद्दावेइ सद्दावित्ता एव वयासी—

२००—सिद्ध भगवन्तो को वन्दन नमस्कार करने के पश्चात् सूर्याभदेव देवच्छन्दक और सिद्धायतन के मध्य देशभाग मे आया। वहाँ आकर मोरपीछी उठाई और मोरपीछी से सिद्धायतन के अति मध्यदेशभाग को प्रमार्जित किया (पू जा, झाडा-बुहारा) फिर दिव्य जल-धारा से सीचा, सरस गोशीर्ष चन्दन का लेप करके हाथे लगाये, माडने माडे यावत् हाथ मे लेकर पुष्पपु ज बिखेरे। पुष्प बिखेर कर धूप प्रक्षेप किया—और फिर सिद्धायतन के दक्षिण द्वार पर आकर मोरपीछी ली और उस मोरपीछी से द्वारशाखाओ पुतलियो एव व्यालरूपो को प्रमार्जित किया, दिव्य जलधारा सीची, सरस गोशीर्ष चन्दन से र्चाचत किया, सन्मुख धूप जलाई, पुष्प चढाये, मालायें चढाई, यावत् आभूषण चढाये। यह सब करके फिर ऊपर से नीचे तक लटकती हुई गोल-गोल लम्बी मालाओ से विभूषित किया।

धूपप्रक्षेप करने के बाद जहाँ दक्षिणद्वारवर्ती मुखमण्डप था और उसमे भी जहाँ उस दक्षिण दिशा के मुखमण्डप का अतिमध्य देशभाग था, वहाँ आया और मोरपीछी ली, मोरपीछी को लेकर उस अतिमध्य देशभाग को प्रमार्जित किया—बुहारा, दिव्य जलधारा सीची, सरस गोशीर्ष चन्दन से र्चाचत किया—हाथे लगाये, माडने माडे तथा ग्रहीत पुष्प पु जो को बिखेर कर उपचरित किया यावत् धूपक्षेप किया।

इसके बाद उस दक्षिणदिग्वर्ती मुखमण्डप के पश्चिमी द्वार पर आया, वहाँ आकर मोरपीछी ली। उस मोरपीछी से द्वारशाखाओ, पुतलियो एव व्याल (सर्प) रूपो को पू जा, दिव्य जलधारा से सीचा, सरस गोशीर्ष चन्दन से र्चाचत किया। धूपक्षेप किया, पुष्प चढाये यावत् आभूषण चढाये। लम्बी-लम्बी गोल मालाये लटकाईं। कचग्रहवत् विमुक्त पुष्पपु जो से उपचरित किया, धूप जलाई।

तत्पश्चात् उसी दक्षिणी मुखमण्डप की उत्तरदिशा मे स्थित स्तम्भ-पंक्ति के निकट आया। वहाँ आकर लोमहस्तक—मोरपखो से बनी प्रमार्जनी को उठाया, उससे स्तम्भो को, पुतलियो को और व्यालरूपो को प्रमार्जित किया तथा पश्चिमी द्वार के समान दिव्य जलधारा से सीचने आदि रूप सब कार्य धूप जलाने तक किये।

इसके बाद दक्षिणदिशावर्ती मुखमण्डप के पूर्वी द्वार पर आया, आकर लोमहस्तक हाथ मे लिया और उससे द्वारशाखाओ, पुतलियो सर्परूपो को साफ किया, दिव्य जलधारा सीची आदि सब कार्य धूप जलाने तक के किये।

तत्पश्चात् उस दक्षिण दिशावर्ती मुखमण्डप के दक्षिण द्वार पर आया और द्वारचेटियो आदि को साफ किया, जलधारा सीची आदि धूप जलाने तक करने योग्य पूर्वोक्त सब कार्य किये।

तदनन्तर जहाँ दाक्षिणात्य प्रेक्षागृहमण्डप था, एव उस दक्षिणदिशावर्ती प्रेक्षागृहमण्डप का अतिमध्य देशभाग था और उसके मध्य मे बना हुआ वज्रमय अक्षपाट तथा उस पर बनी मणिपीठिका एव मणिपीठिका पर स्थापित सिंहासन था, वहाँ आया और मोरपीछी लेकर उसमे अक्षपाट, मणिपीठिका और सिंहासन को प्रमार्जित किया, दिव्य जलधारा से सिंचित किया, सरस गोशीर्ष चन्दन से चर्चित किया, धूपप्रक्षेप किया, पुष्प चढाये तथा ऊपर से नीचे तक लटकती हुई लम्बी-लम्बी गोल-गोल मालाओ से विभूषित किया यावत् धूपक्षेप करने के बाद अनुक्रम से जहाँ उसी दक्षिणी प्रेक्षागृह-मण्डप के पश्चिमी द्वार एव उत्तरी द्वार थे वहाँ आया और वहाँ आकर पूर्ववत् प्रमार्जनादि कार्य से लेकर धूपदान तक करने योग्य कार्य सम्पन्न किये। उसके बाद पूर्वी द्वार पर आया। यहाँ आकर भी प्रमार्जनादि कार्य से लेकर धूपदान तक के सब कार्य पूर्ववत् किये। तत्पश्चात् दक्षिणी द्वार पर आया, वहाँ आकर भी उसने प्रमार्जनादि कार्य से लेकर धूप दान तक के सब कार्य किये।

इसके पश्चात् दक्षिणदिशावर्ती चैत्यस्तूप के सन्मुख आया वहाँ आकर स्तूप और मणिपीठिका को प्रमार्जित किया, दिव्य जलधारा से सिंचित किया, सरस गोशीर्ष चन्दन से चर्चित किया, धूप जलाई, पुष्प चढाये, लम्बी-लम्बी मालाये लटकाई आदि सब कार्य सम्पन्न किये। अनन्तर जहाँ पश्चिम दिशा की मणिपीठिका थी, जहाँ पश्चिम दिशा मे विराजमान जिनप्रतिमा थी वहाँ आकर प्रमार्जनादि कृत्य से लेकर धूप दान तक सब कार्य किये। इसके बाद उत्तरदिशावर्ती मणिपीठिका और जिनप्रतिमा के पास आया। आकर प्रमार्जन करने से लेकर धूपक्षेपपर्यन्त सब कार्य किये।

इसके पश्चात् जहाँ पूर्वदिशावर्ती मणिपीठिका थी तथा पूर्वदिशा मे स्थापित जिनप्रतिमा थी, वहाँ आया। वहाँ आकर पूर्ववत् प्रमार्जन करना आदि धूप जलाने पर्यन्त सब कार्य किये। इसके बाद जहाँ दक्षिण दिशा की मणिपीठिका और दक्षिणदिशावर्ती जिनप्रतिमा थी वहाँ आया और पूर्ववत् धूप जलाने तक सब कार्य किये।

इसके पश्चात् दक्षिणदिशावर्ती चैत्यवृक्ष के पास आया। वहाँ आकर भी पूर्ववत् प्रमार्जनादि कार्य किये। इसके बाद जहाँ माहेन्द्रध्वज था, दक्षिण दिशा की नदा पुष्करिणी थी, वहाँ आया। आकर मोरपीछी को हाथ मे लिया और फिर तोरणो, त्रिसोपानो काष्ठपुतलियो और सर्परूपको को मोरपीछी से प्रमार्जित किया—पोछा, दिव्य जलधारा सीची, सरस गोशीर्ष चदन से चर्चित किया, पुष्प चढाये, लम्बी-लम्बी पुष्पमालाओ से विभूषित किया और धूपक्षेप किया।

तदनन्तर सिद्धायतन की प्रदक्षिणा करके उत्तरदिशा की नदा पुष्करिणी पर आया और वहाँ पर भी पूर्ववत् प्रमार्जनादि धूपक्षेप पर्यन्त कार्य किये। इसके बाद उत्तरदिशावर्ती चैत्यवृक्ष और चैत्यस्तम्भ के पास आया एव पूर्ववत् प्रमार्जन से लेकर धूपक्षेप करने तक के कार्य किये। इसके पश्चात् जहाँ पश्चिमदिशावर्ती मणिपीठिका थी, पश्चिम दिशा मे स्थापित प्रतिमा थी, वहाँ आकर भी पूर्ववत् धूपक्षेपपर्यन्त करने योग्य कार्य किये।

तत्पश्चात् वह उत्तर दिशा के प्रेक्षागृह मण्डप मे आया और धूपक्षेपपर्यन्त दक्षिण दिशा के प्रेक्षागृहमण्डप जैसी समस्त वक्तव्यता यहाँ जानना चाहिये तथा वही सब पूर्वदिशावर्ती द्वार के लिये और दक्षिण दिशा की स्तम्भपक्ति के लिये भी पूर्ववत् वही सब कार्य किये अर्थात् स्तम्भो, काष्ठ-पुतलियो और व्यालरूपो आदि के प्रमार्जन से लेकर धूपक्षेप तक सब कार्य किये।

इसके बाद वह उत्तर दिशा के मुखमण्डप और उस उत्तरदिशा के मुखमण्डप के बहुमध्य देशभाग (स्थान) मे आया। यहाँ आकर पूर्ववत् अक्षपाटक, मणिपीठिका एव सिंहासन आदि की प्रमार्जना से धूपक्षेपपर्यन्त सब कार्य किये। इसके बाद वह पश्चिमी द्वार पर आया, वहाँ पर भी द्वार-शाखाओ आदि के प्रमार्जनादि से लेकर धूप दान तक के सब कार्य किये। तत्पश्चात् उत्तरी द्वार और उसकी दक्षिण दिशा मे स्थित स्तम्भपक्ति के पास आया। वहाँ भी पूर्ववत् स्तम्भ पुतलियो एव व्याल रूपो की समार्जना, आदि से लेकर धूपदान तक के सब कार्य किये।

तदनन्तर सिद्धायतन के उत्तरी द्वार पर आया। यहाँ भी पुतलियो आदि के प्रमार्जन आदि से लेकर धूपक्षेप तक के सब कार्य किये। इसके अनन्तर सिद्धातन के पूर्वदिशा के द्वार पर आया और यहाँ पर भी पूर्ववत् कार्य किये। इसके बाद जहाँ पूर्वदिशा का मुखमण्डप था और उस मुखमण्डप का अति-मध्य देशभाग था, वहाँ आया और अक्षपाट, मणिपीठिका, सिंहासन की प्रमार्जना करके धूपक्षेप तक के सब कार्य किये। इसके बाद जहाँ उस पूर्व दिशा के मुखमण्डप का दक्षिणी द्वार था और उसकी पश्चिम दिशा मे स्थित स्तम्भपक्ति थी वहा आया। फिर उत्तरदिशा के द्वार पर आया और पहले के समान इन स्थानो पर स्तम्भो, पुतलियो, व्यालरूपो वगैरह को प्रमार्जित किया आदि धूपदान तक के सभी कार्य किये। इसी प्रकार से पूर्व दिशा के द्वार पर आकर भी पूर्ववत् सब कार्य किये।

इसके अनन्तर पूर्व दिशा के प्रेक्षागृह-मण्डप मे आया। यहाँ आकर अक्षपाटक, मणिपीठिका, सिंहासन का प्रमार्जन आदि किया और फिर क्रमश उस प्रेक्षागृहमण्डप के पश्चिम, उत्तर, पूर्व, एव दक्षिण दिशावर्ती प्रत्येक द्वार पर जाकर उन-उनकी द्वारशाखाओ, पुतलियो, व्यालरूपो की प्रमार्जना करने से लेकर धूपदान तक के सब कार्य पूर्ववत् किये। इसी प्रकार स्तूप की, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण इन चार दिशाओ मे स्थित मणिपीठिकाओ की, जिनप्रतिमाओ की, चैत्यवृक्ष की, माहेन्द्र-ध्वजो की, नन्दा पुष्करिणी की, त्रिसोपानपक्ति की, पुतलियो की, व्यालरूपो की प्रमार्जना करने से लेकर धूपक्षेप तक के सब कार्य किये।

इसके पश्चात् जहाँ सुधर्मा सभा थी, वहाँ आया और पूर्वदिग्वर्ती द्वार से उस सुधर्मा सभा मे प्रविष्ट हुआ। प्रविष्ट होकर जहाँ माणवक चैत्यस्तम्भ था और उस स्तम्भ मे जहाँ वज्रमय गोल समुद्गक रखे थे वहाँ आया। वहाँ आकर मोरपीछी उठाई और उस मोरपीछी से वज्रमय गोल समुद्गको को प्रमार्जित कर उन्हे खोला। उनमे रखी हुई जिन-अस्थियो को लोमहस्तक से पौछा,

सुरभि गधोदक से उनका प्रक्षालन करके फिर सर्वोत्तम श्रेष्ठ गन्ध और मालाओ से उनकी अर्चना की, धूपक्षेप किया और उसके बाद उन जिन-अस्थियो को पुन उन्ही वज्रमय गोल समुद्गको को वन्द कर रख दिया। इसके वाद मोरपीछी से माणवक चैत्यस्तम्भ को प्रमार्जित किया, दिव्य जलधारा से सिंचित किया, सरस गोशीर्ष चन्दन से चर्चित किया, उसपर पुष्प चढाये यावत् धूपक्षेप किया। इसके पश्चात् सिंहासन और देवशैया के पास आया। वहाँ पर भी प्रमार्जना से लेकर धूपक्षेप तक के सव कार्य किये। इसके वाद क्षुद्र माहेन्द्रध्वज के पास आया और वहाँ भी पहले की तरह प्रमार्जना से लेकर धूपदान तक के सव कार्य किये।

इसके अनन्तर चौपाल नामक अपने प्रहरणकोश (आयुधशाला, शस्त्रभण्डार) मे आया। आकर मोर पखो की प्रमार्जनिका—वुहारी हाथ मे ली एव उस प्रमार्जनिका मे आयुधशाला चौपाल को प्रमार्जित किया। उसका दिव्य जलधारा से प्रक्षालन किया। वहाँ सरस गोशीर्ष चन्दन के हाथे लगाये, पुष्प आदि चढाये और ऊपर से नीचे तक लटकती लम्वी-लम्वी मालाओ से उसे सजाया यावत् धूपदान पर्यन्त सर्व कार्य सम्पन्न किये।

इसके वाद सुधर्मा सभा के अतिमध्यदेश भाग मे वनी हुई मणिपीठिका एव देवशैया के पास आया और मोरपीछी लेकर उस देवशैया और मणिपीठिका को प्रमार्जित किया यावत् धूपक्षेप किया।

इसके पश्चात् पूर्वदिशा के द्वार से होकर उपपात सभा मे प्रविष्ट हुआ। यहाँ पर भी पूर्ववत् उसके अतिमध्य भाग की प्रमार्जन आदि कार्य करके उपपात सभा के दक्षिणी द्वार पर आया। वहाँ आकर अभिषेकसभा (सुधर्मासभा) के समान यावत् पूर्ववत् पूर्वदिशा की नन्दा पुष्करिणी की अर्चना की। इसके वाद ह्रद पर आया और पहले की तरह तोरणो, त्रिसोपानो, काष्ठ-पुतलियो और व्यालरूपो की मोरपीछी से प्रमार्जना की, उन्हे दिव्य जलधारा से सिंचित किया आदि धूपक्षेपपर्यन्त सर्व कार्य सम्पन्न किये।

इसके अनन्तर अभिषेक सभा मे आया और यहाँ पर भी पहले की तरह सिंहासन मणि-पीठिका को मोरपीछी से प्रमार्जित किया, जलधारा से सिंचित किया आदि धूप जलाने तक के सव कार्य किये। तत्पश्चात् दक्षिणद्वारादि के क्रम से पूर्व दिशावर्ती—नन्दापुष्करिणीपर्यन्त सिद्धायतन-वत् धूपप्रक्षेप तक के कार्य सम्पन्न किये।

इसके पश्चात् अलकारसभा मे आया और अभिषेकसभा की वक्तव्यता की तरह यहाँ धूप-दान तक के सब कार्य सम्पन्न किये।

इसके वाद व्यवसाय सभा मे आया और मोरपीछी को उठाया। उस मोरपीछी से पुस्तक-रत्न को पोछा, फिर उस पर दिव्य जल छिडका और सर्वोत्तम श्रेष्ठ गन्ध और मालाओ से उसकी अर्चना की। इसके वाद मणिपीठिका की, सिंहासन की अति मध्य देशभाग की प्रमार्जना की, आदि धूपदान तक के सर्व कार्य किये। तदनन्तर दक्षिणद्वारादि के क्रम से पूर्व नन्दा पुष्करिणी तक सिद्धायतन की तरह प्रमार्जना आदि कार्य किये। इसके वाद वह ह्रद पर आया। वहाँ आकर तोरणो, त्रिसोपानो, पुतलियो और व्यालरूपो की प्रमार्जना आदि धूपक्षेपपर्यन्त कार्य सम्पन्न किये।

इन सबकी अर्चना कर लेने के बाद वह बलिपीठ के पास आया और बलि-विसर्जन करके अपने आभियोगिक देवो को बुलाया और बुलाकर उनको यह आज्ञा दी—

आभियोगिक देवो द्वारा आज्ञापालन—

२०१—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सूरियाभे विमाणे सिंघाडएसु तिएसु चउक्केसु चच्चरेसु चउमुहेसु महापहेसु पागारेसु अट्टालएसु चरियासु दारेसु गोपुरेसु तोरणेसु आरामेसु उज्जाणेसु वणेसु वणराईसु काणणेसु वणसडेसु अच्चणिय करेह, अच्चणिय करेत्ता एवमाणत्तिय खिप्पामेव पच्चप्पिणह ।

२०१—हे देवानुप्रियो ! तुम लोग जाओ और शीघ्रातिशीघ्र सूर्याभ विमान के शृ गाटको (सिंघाड़े की आकृति जैसे त्रिकोण स्थानो) मे, त्रिको (तिराहो) मे, चतुष्को (चौको) मे, चत्वरो मे, चतुर्मु खो (चारो ओर द्वार वाले स्थानो) मे, राजमार्गों मे, प्राकारो मे, अट्टालिकाओ मे, चरिकाओ मे, द्वारो मे, गोपुरो मे, तोरणो, आरामो, उद्यानो, वनो, वनराजियो काननो, वनखण्डो मे जा-जा कर अर्चनिका करो और अर्चनिका करके शीघ्र ही यह आज्ञा मुझे वापस लौटाओ, अर्थात् आज्ञानुसार कार्य करने की मुझे सूचना दो ।

२०२—तए ण ते आभिओगिआ देवा सूरियाभेण देवेण एव वुत्ता समाणा जाव पडिसुणित्ता सूरियाभे विमाणे सिंघाडएसु-तिएसु-चउक्कएसु-चच्चरेसु-चउम्मुहेसु-महापहेसु-पागारेसु-अट्टालएसु-चरियासु-दारेसु-गोपुरेसु-तोरणेसु-आरामेसु-उज्जाणेसु-वणेसु-वणरातीसु-काणणेसु-वणसडेसु अच्चणिय करेन्ति, जेणेव सूरियाभे देवे जाव पच्चप्पिणति ।

२०२—तदनन्तर उन आभियोगिक देवो ने सूर्याभदेव की इस आज्ञा को सुनकर यावत् स्वीकार करके सूर्याभ विमान के शृ गाटको, त्रिको, चतुष्को, चत्वरो, चतुर्मु खो, राजमार्गों, प्राकारो, अट्टालिकाओ, चरिकाओ, द्वारो, गोपुरो, तोरणो, आरामो, उद्यानो, वनो, वनराजियो और वनखण्डो की अर्चनिका की और अर्चनिका करके सूर्याभदेव के पास आकर आज्ञा वापस लौटाई—आज्ञानुसार कार्य हो जाने की सूचना दी ।

२०३—तते णं से सूरियाभे देवे जेणेव णदा पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ, नदापुक्खरिंणि पुरत्थिमिल्लेण तिसोपाणपडिरूवएण पच्चोरुहति, हत्थपाए पक्खालेइ, णदाओ पुक्खरिणीओ पच्चुत्तरेइ, जेणेव सभा सुधम्मा तेणेव पहारित्थ गमणाए ।

२०३—तदनन्तर वह सूर्याभदेव जहाँ नन्दा पुष्करिणी थी, वहाँ आया और पूर्व दिशावर्ती त्रिसोपानो से नन्दा पुष्करिणी मे उतरा । हाथ पैरो को धोया और फिर नन्दा पुष्करिणी से बाहर निकला । निकल कर सुधर्मा सभा की ओर चलने के लिए उद्यत हुआ ।

२०४—तए ण सूरियाभे देवे चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं जाव[1] सोलसहिं आयरक्खदेव-साहस्सीहिं, अन्नेहि य बहूहि सूरियाभविमाणवासीहिं वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि य सद्धि सपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव[2] नाइयरवेण जेणेव सभा सुहम्मा तेणेव उवागच्छइ, सभ सुधम्म पुरत्थिमिल्लेण दारेण

१. देखें सूत्र सख्या ७
२ देखें सूत्र सख्या १९

अणुपविसति, अणुपविसित्ता जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे ।

२०२—इसके बाद सूर्याभदेव चार हजार सामानिक देवो यावत् (परिवार सहित चार अग्र महिषियो, तीन परिषदाओ, सात अनीको-सेनाओ, सात अनिकाधिपतियो सोलह हजार आत्मरक्षक देवो तथा और दूसरे भी बहुत से सूर्याभ विमानवासी देव-देवियो से परिवेष्टित होकर सर्व ऋद्धि यावत् तुमुल वाद्यध्वनि पूर्वक जहाँ सुधर्मा सभा थी वहाँ आया और पूर्व दिशा के द्वार से सुधर्मा सभा मे प्रविष्ट हुआ। प्रविष्ट होकर सिंहासन के समीप आया और पूर्व दिशा की ओर मुख करके उस श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठ गया।

सूर्याभदेव का सभा-वैभव—

२०५—तए ण तस्स सूरियाभस्स देवस्स अवरुत्तरेण उत्तरपुरत्थिमेण दिसिभाएणं चत्तारि य सामाणियसाहस्सीओ चउसु भद्दासणसाहस्सीसु निसीयति ।

तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स पुरत्थिमिल्लेणं चत्तारि अग्गमहिस्सीओ चउसु भद्दासणेसु निसीयंति ।

तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स दाहिणपुरत्थिमेणं अब्भितरियपरिसाए अट्ठ देवसाहस्सीओ अट्ठसु भद्दासणसाहस्सीसु निसीयति ।

तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स दाहिणेण मज्झिमाए परिसाए दस देवसाहस्सीओ दससु, भद्दासणसाहस्सीसु निसीयति ।

तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स दाहिणपच्चत्थिमेणं वाहिरियाए परिसाए वारस देवसाहस्सीओ वारससु भद्दासणसाहस्सीसु निसीयति ।

तए ण तस्स सूरियाभस्स देवस्स पच्चत्थिमेणं सत्त अणियाहिवइणो सत्तहिं भद्दासणेहिं णिसीयति ।

तए ण तस्स सूरियाभस्स देवस्स चउद्दिसिं सोलस आयरक्खदेवसाहस्सीओ सोलसहिं भद्दासणसाहस्सीहिं णिसीयंति, तंजहा—पुरत्थिमिल्लेण चत्तारि साहस्सीओ० ।

ते णं आयरक्खा सन्नद्धवद्धवम्मियकवया, उप्पीलियसरासणपट्टिया, पिणद्धगेविज्जा आविद्धविमलवरचिंधपट्टा, गहियाउहपहरणा, तिणयाणि तिसंधियाइं वयरामयकोडीणि धणूइं पगिज्झ पडियाइयकंडकलावा णीलपाणिणो, पीतपाणिणो, रत्तपाणिणो, चावपाणिणो-चारुपाणिणो, चम्मपाणिणो, दंडपाणिणो, खग्गपाणिणो, पासपाणिणो, नीलपीयरत्तचावचारुचम्मदंडखग्गपासधरा, आयरक्ख रक्खोवगा, गुत्ता, गुत्तपालिया जुत्ता, जुत्तपालिया पत्तेय-पत्तेयं समयओ विणयओ किंकरभूया चिट्ठंति ।

२०५—तदन्तर उस सूर्याभदेव की पश्चिमोत्तर और उत्तरपूर्व दिशा मे स्थापित चार हजार भद्रासनो पर चार हजार सामानिक देव वैठे ।

उसके वाद सूर्याभ देव की पूर्व दिशा मे चार भद्रासनो पर चार अग्रमहिषियाँ वैठी ।

तत्पश्चात् सूर्याभ देव के दक्षिण-पूर्वदिक् कोण मे अभ्यन्तर परिषद् के आठ हजार देव आठ हजार भद्रासनो पर बैठे।

सूर्याभदेव की दक्षिण दिशा मे मध्यम परिषद् के दस हजार देव दस हजार भद्रासनो पर बैठे।

तदनन्तर सूर्याभ देव के दक्षिण-पश्चिम दिग् भाग मे बाह्य परिषद् के बारह हजार देव बारह हजार भद्रासनो पर बैठे।

तत्पश्चात् सूर्याभदेव की पश्चिम दिशा मे सात अनीकाधिपति सात भद्रासनो पर बैठे।

इसके बाद सूर्याभदेव की चारो दिशाओ मे सोलह हजार आत्मरक्षक देव पूर्व दिशा मे चार हजार, दक्षिण दिशा मे चार हजार, पश्चिम दिशा मे चार हजार और उत्तर दिशा मे चार हजार, इस प्रकार सोलह हजार भद्रासनो पर बैठे।

वे सभी आत्मरक्षक देव अगरक्षा के लिये गाढबन्धन से बद्ध कवच को शरीर पर धारण करके, बाण एव प्रत्यचा से सन्नद्ध धनुष को हाथो मे लेकर, गले मे ग्रैवेयक नामक आभूषण-विशेष को पहनकर, अपने-अपने विमल और श्रेष्ठ चिह्नपट्टको को धारण करके, आयुध और पहरणो से सुसज्जित हो, तीन स्थानो पर नमित और जुडे हुये वज्रमय अग्र भाग वाले धनुष, दड और बाणो को लेकर, नील-पीत-लाल प्रभा वाले बाण, धनुष चारु (शस्त्र-विशेष) चमडे के गोफन, दड, तलवार, पाश-जाल को लेकर एकाग्रमन से रक्षा करने मे तत्पर, स्वामी-आज्ञा का पालन करने मे सावधान, गुप्त-आदेश पालन करने मे तत्पर, सेवकोचित गुणो से युक्त अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करने के लिये उद्यत, विनयपूर्वक अपनी आचार-मर्यादा के अनुसार किंकर—सेवक जैसे होकर स्थित थे।

सूर्याभदेव विषयक गौतम की जिज्ञासा—

२०६ प्र०—सूरियाभस्स ण भते! देवस्स केवइयं काल ठिती पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि पलिओवमाइ ठिती पण्णत्ता।

प्र०—सूरियाभस्स ण भंते! देवस्स सामाणियपरिसोववण्णगाण देवाण केवइय काल ठिती पण्णत्ता?

उ—गोयमा! चत्तारि पलिओवमाइ ठिती पण्णत्ता।

महिड्ढीए महज्जुत्तीए, महब्बले, महायसे, महासोक्खे, महाणुभागे सूरियाभे देवे।

अहो णं भते! सूरियाभे देवे महिड्ढीए जाव महाणुभागे।

सूरियाभेण भते! देवेण सा दिव्वा देविड्ढी, सा दिव्वा देवज्जुई, से दिव्वे देवाणुभागे किण्णा लद्धे, किण्णा पत्ते, किण्णा अभिसमन्नागए? पुव्वभवे के आसी? किनामए वा? को वा गुत्तेण? कयरसि वा गामसि वा नगरसि वा निगमसि वा रायहाणीए वा खेडसि वा कब्बडसि वा मडबसि वा पट्टणसि वा दोणमुहसि वा आगरसि वा आसमसि वा सबाहसि वा सन्निवेससि वा? किं वा दच्चा, किं वा भोच्चा किं वा किच्चा, किं वा समायरित्ता, कस्स वा तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अतिए एगमवि आरिय धम्मय सुवयण सुच्चा निसम्म ज ण सूरियाभेण देवेण सा दिव्वा देविड्ढी जाव देवाणुभागे लद्धे पत्ते अभिसमन्नागए?

२०६—सूर्याभदेव के समस्त चरित को सुनने के पश्चात् भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान् महावीर से निवेदन किया—

प्र —भदन्त ! सूर्याभदेव की भवस्थिति कितने काल की है ?

उ —गौतम ! सूर्याभदेव की भवस्थिति चार पल्योपम की है ।

प्र —भगवन् ! सूर्याभदेव की सामानिक परिषद् के देवो की स्थिति कितने काल की है ।

उ —गौतम ! उनकी चार पल्योपम की स्थिति है ।

यह सूर्याभ देव महाऋद्धि, महाद्युति, महान् बल, महायश, महासौख्य और महाप्रभाव वाला है ।

भगवान् के इस कथन को सुनकर गौतम प्रभु ने आश्चर्य चकित होकर कहा—अहो भदन्त ! वह सूर्याभदेव ऐसा महाऋद्धि, यावत् महाप्रभावशाली है । उन्होने पुन प्रश्न किया—

भगवन् ! सूर्याभदेव को इस प्रकार की वह दिव्य देवऋषि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देव-प्रभाव कैसे मिला है ? उसने कैसे प्राप्त किया है ? किस तरह से अधिगत किया है, स्वामी वना है ? वह सूर्याभदेव पूर्वभव मे कौन था ? उसका क्या नाम और गोत्र था ? वह किस ग्राम, नगर, निगम (व्यापारप्रधान नगर) राजधानी, खेट (ऊँचे प्राकार से वेष्टित नगर) कर्वट (छोटे प्रकार से घिरी वस्ती), मडब (जिसके आसपास चारो ओर एक योजन तक कोई दूसरा गाँव न हो), पत्तन, द्रोणमुख (जल और स्थलमार्ग से जुडा नगर), आकर (खानो वाला स्थान, नगर), आश्रम (ऋषि-महर्षि प्रधान स्थान) सबाह (सबाध—जहाँ यात्री पडाव डालते हो, ग्वाले आदि बसते हो) सनिवेश सामान्य जनो की बस्ती का निवासी था ? इसने ऐसा क्या दान मे दिया, ऐसा क्या अन्त-प्रान्तादि विरस आहार खाया, ऐसा क्या कार्य किया, कैसा आचरण किया और तथारूप श्रमण अथवा माहण से ऐसा कौनसा धार्मिक आर्य सुवचन सुना कि जिससे सूर्याभदेव ने वह दिव्य देवर्द्धि यावत्देवप्रभाव उपार्जित किया है, प्राप्त किया है और अधिगत किया है ?

केकय अर्ध जनपद और प्रदेशी राजा—

२०७—'गोयमाइ' समणे भगव महावीरे भगवं गोयम आमतेत्ता एव वयासी—

एव खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएण इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे केयइअद्धे नाम जणवए होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धे सव्वोउयफलसमिद्धे रम्मे नंदणवणप्पगासे पासाईए जाव (दरिस-णिज्जे, अभिरूवे) पडिरूवे ।

तत्थ ण केयइअद्धे जणवए सेयविया णामं नगरी होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धा जाव[1] पडिरूवा ।

---

१ देखें सूत्र सख्या १

तीसे ण सेयवियाए नगरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभागे एत्थ णं मिगवणे णाम उज्जाणे होत्था—रम्मे नंदणवणप्पगासे, सव्वोउयफलसमिद्धे, सुभसुरभिसीयलाए छायाए सव्वम्रो चेव समणुबद्धे पासादीए जाव पडिरूवे।

तत्थ णं सेयवियाए णगरीए पएसी णाम राया होत्था, महयाहिमवत जाव[1] विहरइ। अधम्मिए, अधम्मिट्ठे, अधम्मक्खाई, अधम्माणुए, अधम्मपलोई, अधम्मपजणणे, अधम्मसीलसमुयायारे, अधम्मेण चेव वित्ति कप्पेमाणे 'हण'-'छिंद'-भिंद-पवत्तए, लोहियपाणी, पावे, रुद्दे, खुद्दे, साहस्सीए, उक्कंचण-वचण-माया-नियडि-कूड-कवड-सायिसजोगबहुले, निस्सीले, निव्वए, निग्गुणे, निम्मेरे, निप्प-चक्खाणपोसहोववासे, बहूण दुपय-चउप्पय-मिय-पसु-पक्खी-सिरिसवाण घायाए वहाए उच्छायणयाए अधम्मकेऊ, समुट्ठिए, गुरूण णो अब्भुट्ठेति, णो विणयं पउजइ, सयस्स वि य ण जणवयस्स णो सम्म करभरवित्ति पवत्तेइ।

२०७—हे गौतम! इस प्रकार गौतम स्वामी को सम्बोधित कर श्रमण भगवान् महावीर ने गौतम स्वामी से इस प्रकार कहा—

हे गौतम! उस काल और उस समय मे (इस अवसर्पिणी काल के चौथे आरे रूप काल एव केशीस्वामी कुमार श्रमण के विचरने के समय मे) इसी जबूद्वीप नामक द्वीप के भरत क्षेत्र मे केकय-अर्ध (केकयि-अध) नामक जनपद—देश था। जो भवनादिक वैभव से युक्त, स्तिमित-स्वचक्र-परचक्र के भय से रहित और समृद्ध—धनधान्यादि वैभव से सम्पन्न—परिपूर्ण था। सर्व ऋतुओ के फल-फूलो से समृद्ध, रमणीय, नन्दनवन के समान मनोरम, प्रासादिक—मन को प्रसन्न करने वाला, यावत् (दर्शनीय, वारवार देखने योग्य प्रतिरूप) अतीव मनोहर था।

उस केकय-अर्ध जनपद मे सेयविया नाम की नगरी थी। यह नगरी भी ऋद्धि-सम्पन्न स्तमित—शत्रुभय से मुक्त एव समृद्धिशाली यावत् प्रतिरूप थी।

उस सेयविया नगरी के वाहर ईशान कोण मे मृगवन नामक उद्यान था। यह उद्यान रमणीय, नन्दनवन के समान सर्व ऋतुओ के फल-फूलो से समृद्ध, शुभ—सुखकारी, सुरभिगध और शीतल छाया से समनुवद्ध (व्याप्त) प्रासादिक यावत् प्रतिरूप—असाधारण शोभा से सम्पन्न था।

उस सेयविया नगरी के राजा का नाम प्रदेशी था। प्रदेशी राजा महाहिमवान्, मलय पर्वत, मन्दर एव महेन्द्र पर्वत जैसा महान् था। किन्तु वह अधार्मिक—(धम विरोधी), अधर्मिष्ठ (अधर्मप्रेमी), अधर्माख्यायी (अधर्म का कथन और प्रचार करने वाला), अधर्मानुग (अधर्म का अनुसरण करने वाला), अधर्मप्रलोकी (सर्वत्र अधर्म का अवलोकन करने वाला), अधर्मप्रजनक (विशेप रूप से अधार्मिक आचार-विचारो का जनक—प्रचार करने वाला—प्रजा को अधर्माचरण की ओर प्रवृत्त करने वाला) अधर्मशीलसमुदाचारी (अधर्ममय स्वभाव और आचारवाला) तथा अधर्म से ही आजीविका चलाने वाला था। वह सदैव 'मारो, छेदन करो, भेदन करो' इस प्रकार की आज्ञा का प्रवर्तक था। अर्थात् मारो आदि वचनो के द्वारा अपने आश्रितो को जीवो की हिंसा वगैरह के कार्यों मे लगाये रखता था। उसके हाथ सदा रक्त से भरे रहते थे। साक्षात् पाप का अवतार था।

१ देखें सूत्र सख्या ४

प्रकृति से प्रचण्ड-क्रोधी, रौद्र—भयानक और क्षुद्र—अधम था। वह साहसिक (विना विचारे प्रवृत्ति करनेवाला) था। उत्कचन—धूर्त, वदमाशो और ठगो को प्रोत्साहन देने वाला, उकसाने वाला था। लाच—रिश्वत लेनेवाला, वचक—दूसरो को ठगने वाला, धोखा देने वाला, मायावी, कपटी—वकवृत्ति वाला, कूट-कपट करने मे चतुर और अनेक प्रकार के झगडा-फिसाद रचकर दूसरो को दु ख देने वाला था। निश्शील—शील रहित था। निर्व्रत—हिसादि पापो से विरत न होने से व्रतरहित था, क्षमा आदि गुणो का अभाव होने से निर्गुण था, परस्त्रीवर्जन आदि रूप मर्यादा से रहित होने से निर्मर्याद था, कभी भी उसके मन मे प्रत्याख्यान, पौषध, उपवास आदि करने का विचार नही आता था। अनेक द्विपद-मनुष्यादि, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी, सरीसृप—सर्प आदि की हत्या करने, उन्हे मारने, प्राणरहित करने, विनाश करने से साक्षात् अधर्म की ध्वजा जैसा था, अथवा अधर्म रूपी केतुग्रह था। गुरुजनो—माता पिता आदि को देखकर भी उनका आदर करने के लिए आसन से खडा नही होता था, उनका विनय नही करता था और जनपद को प्रजाजनो से राजकर लेकर भी उनका सम्यक् प्रकार से—यथार्थ रूप मे पालन और रक्षण नही करता था।

विवेचन—'केकय-अर्ध'—शास्त्रो मे साढे पच्चीस (२५।।) आर्य देशो और उन देशो की एक—एक राजधानी के नामो का उल्लेख है। पच्चीस देश तो पूर्ण रूप से आर्य थे किन्तु केकय देश का आधा भाग आर्य था। वौद्ध ग्र थो मे भी केकय देश का उल्लेख है। उस देश का वर्तमान स्थान उत्तर मे पेशावर (पाकिस्तान) के आसपास होना चाहिये, ऐसा इतिहासवेत्ताओ का मतव्य है। परन्तु अभी भी उसके नाम और भौगोलिक स्थिति का निश्चित निर्णय नही हो सका है।

मूल पाठ मे 'अद्धे' शब्द है, जिसकी टीकाकार ने 'केकया नाम अर्धम्' लिखकर मूल शब्द की व्याख्या की है। राजा दशरथ की एक रानी का नाम "कैकयी" था। जो इस केकय देश की थी, जिससे उसका नाम कैकयी पडा हो, यह सभव है।

'सेयविया'—केकय देश की राजधानी के रूप मे इस नगरी का उल्लेख सूत्रो मे किया गया है। आवश्यक सूत्र मे वताया है कि श्रमण भगवान् महावीर छद्मस्थ-अवस्था मे विहार करते हुए उत्तर वाचाल प्रदेश मे गये और वहाँ से "सेयविया" गये। इस नगरी के श्रमणोपासक राजा प्रदेशी ने भगवान् की महिमा की और उसके पश्चात् भगवान् वहाँ से सुरभिपुर पधारे। परन्तु वर्तमान मे यहनगरी कहाँ है, एतद् विषयक कोई जानकारी प्राप्त नही होती है।

दीघनिकाय (वौद्ध ग्रन्थ) के 'पायासि सुत्तत' मे इस नगरी का नाम 'सेतव्या' वताया है और कोशल देश मे विहार करते हुए कुमार कश्यप इस नगरी मे आये थे, यह सूचित करके इसे कोसल देश का नगर वताया है—'येन सेतव्या नाम कोसलान नगर तद् अवसरि' (दीघ-निकाय भाग २)।

जैन दृष्टि से कोशल देश अयोध्या और उसके आस-पास का प्रदेश माना गया है।

सेयविया का किसी किसी ने "श्वेतविका" यह भी सस्कृत रूपान्तर किया है।

'पएसी'—सूत्र मे उल्लिखित इस शब्द का टीकाकार आचार्य ने 'प्रदेशी' सस्कृत भाषान्तर किया है और आवश्यक सूत्रो मे "पदेशी" शब्द का प्रयोग किया है।

इस राजा सम्बन्धी जो वर्णन इस "रायपसेणइय" सूत्र मे आगे किया जाने वाला है, उससे मिलता-जुलता वर्णन दीघनिकाय के 'पायासि सुत्त त' मे भी किया गया है। इसमे मुख्य प्रश्नकार

राजा पयासी है और उसका वश राजन्य एव सम्बन्ध कोशल वश के राजा 'पसेनदि' के साथ बताया है। 'रायपसेणइय' सूत्र मे जिस प्रकार से राजा पयेसी को अत्यन्त पापिष्ठ के रूप मे वर्णित किया है, वैसा तो दीर्घनिकाय मे नही कहा है, किन्तु वहाँ इतना उल्लेख अवश्य है कि इस राजा के विचार पापमय थे और यह मानता था कि परलोक नही, औपपातिक सत्ता नही है और सुकृत-दुष्कृत का किसी प्रकार का फल-विपाक नही है (दीघनिकाय भाग २)।

इस राजा के विषय मे और कोई ऐतिहासिक जानकारी नही मिलती है।

रानी सूर्यकान्ता और युवराज सूर्यकान्त—

२०८—तस्स ण पएसिस्स रन्नो सूरियकता नामं देवी होत्था, सुकुमालपाणिपाया धारिणी वण्णओ[1]। पएसिणा रन्ना सद्धि अणुरत्ता अविरत्ता इट्ठे सद्दे फरिसे रसे रूवे जाव (गधे पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणा) विहरइ।

तस्स ण पएसिस्स रण्णो जेट्ठे पुत्ते सूरियकताए देवीए अत्तए सूरियकते नाम कुमारे होत्था, सुकुमालपाणिपाए जाव पडिरूवे।

से णं सूरियकते कुमारे जुवराया वि होत्था, पएसिस्स रन्नो रज्ज च रट्ठ च बलं च वाहण च कोस च कोट्ठागारं च पुरं च अतेउर च सयमेव पच्चुवेक्खमाणे पच्चुवेक्खमाणे विहरइ।

२०८—उस प्रदेशी राजा की सूर्यकान्ता नाम की रानी थी, जो सुकुमाल हाथ पैर आदि अगोपाग वाली थी, इत्यादि धारिणी रानी के समान इसका वर्णन करना चाहिए। वह प्रदेशी राजा के प्रति अनुरक्त—अतीव स्नेहशील थी, उससे कभी विरक्त नही होती थी और इष्ट—प्रिय शब्द, स्पर्श, रस, (यावत् गन्धमूलक) अनेक प्रकार के मनुष्य सम्बन्धी कामभोगो को भोगती हुई रहती थी।

उस प्रदेशी राजा का ज्येष्ठ पुत्र और सूर्यकान्ता रानी का आत्मज सूर्यकान्तनामक राजकुमार था। वह सुकोमल हाथ पैर वाला, अतीव मनोहर था।

वह सूर्यकान्त कुमार युवराज भी था। वह प्रदेशी राजा के राज्य (शासन), राष्ट्र (देश), बल (सेना), वाहन (रथ, हाथी, अश्व आदि) कोश, कोठार (अन्न-भण्डार) पुर और अत पुर की स्वय देख भाल किया करता था।

चित्त सारथी—

२०९—तस्स ण पएसिस्स रन्नो जेट्ठे भाउयवयसए चित्ते णाम सारही होत्था, अड्ढे जाव[2] बहुजणस्स अपरिभूए, साम-दड-भेय-उवप्पयाण-अत्थसत्थ-ईहा-मइविसारए, उप्पत्तियाए-वेणतियाए-कम्मयाए-पारिणामियाए चउव्विहाए बुद्धीए उववेए, पएसिस्स रण्णो बहुसु कज्जेसु य कारणेसु य कुडुंबेसु य मतेसु य गुज्झेसु य रहस्सेसु य निच्छएसु य ववहारेसु य आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे, मेढी, पमाणं, आहारे, आलवण, चक्खू, मेढिभूए, पमाणभूए, आहारभूए, चक्खुभूए, सव्वट्ठाणसव्वभूमियासु लद्धपच्चए विदिण्णविचारे रज्जधुराचितए आवि होत्था।

---

१ धारिणी रानी के वर्णन के लिये देखिये सूत्र सख्या ५

२ देखे सूत्र सख्या ४

उस प्रदेशी राजा का उम्र मे वडा (ज्येष्ठ) भाई एव मित्र सरीखा चित्त नामक सारथी था। वह समृद्धिशाली यावत् (दीप्त-तेजस्वी, प्रसिद्ध, विशाल भवनो अनेक सैकडो शय्या-आसन-यान-रथ आदि तथा विपुल धन, सोने-चादी का स्वामी, अर्थोपार्जन के उपायो का ज्ञाता था। उसके यहाँ इतना भोजन-पान बनता था कि खाने के बाद भी बचा रहता था। दास, दासी, गाये, भैसें, भेडे बहुत बडी सख्या मे उसके यहा थी) और बहुत से लोगो के द्वारा भी पराभव को प्राप्त नही करने वाला था। साम-दण्ड-भेद और उपप्रदान नीति, अर्थशास्त्र एव विचार-विमर्श प्रधान बुद्धि मे विशारद—कुशल था। औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी तथा पारिणामिकी इन चार प्रकार की बुद्धियो से युक्त था। प्रदेशी राजा के द्वारा अपने बहुत से कार्यों मे, कार्य मे सफलता मिलने के उपायो मे, कौटुम्बिक कार्यों मे, मन्त्रणा (सलाह) मे, गुप्त कार्यो मे, रहस्यमय गोपनीय प्रसगो मे, निश्चय—निर्णय करने मे, राज्य सम्बन्धी व्यवहार-विधानो मे पूछने योग्य था, बार-बार विशेष रूप से पूछने योग्य था। अर्थात् सभी छोटे-बडे कार्यो मे उससे सलाह ली जाती थी। वह सबके लिये मेढी (खलिहान के केन्द्र मे गाडा हुआ स्तम्भ, जिसके चारो ओर घूमकर बैल धान्य कुचलते हैं) के समान था, प्रमाण था, पृथ्वी के समान आधार—आश्रय था, रस्सी के समान आलम्बन था, नेत्र के समान मार्गदर्शक था, मेढीभूत था, प्रमाणभूत था, आधार और अवलम्बनभूत था एव चक्षुभूत था। सभी स्थानो—सन्धि-विग्रह आदि कार्यों मे और सभी भूमिकाओ—मन्त्री, अमात्य आदि पदो मे प्रतिष्ठा-प्राप्त था। सबको विचार देने वाला था अर्थात् सभी का विश्वासपात्र था तथा चक्र की धुरा के समान राज्य-सचालक था—सकल राज्य कार्यों का प्रेक्षक था।

विवेचन—उक्त वर्णन से यह प्रतीत होता है कि चित्त सारथी अतिनिपुण राजनीतिज्ञ, राज्य-व्यवस्था करने मे प्रवीण एवं अत्यन्त बुद्धिशाली था। उसे औत्पत्तिकी आदि चार प्रकार की बुद्धियो से युक्त बताया है। इन चार प्रकार की बुद्धियो का स्वरूप इस प्रकार है—

(१) औत्पत्तिकी बुद्धि—अदृष्ट, अननुभूत और अश्रुत किसी विषय को एकदम समझ लेने, तथा विषम समस्या के समाधान का तत्क्षण उपाय खोज लेने वाली बुद्धि या अकस्मात्, सहसा, तत्काल उत्पन्न होने वाली सूझ।

(२) वैनयिकी—गुरुजनो की सेवा-शुश्रूषा, विनय करने से प्राप्त होने वाली बुद्धि।

(१) कार्मिकी—कार्य करते-करते अनुभव-अभ्यास से प्राप्त होने वाली दक्षता, निपुणता। इसको कर्मजा अथवा कर्मसमुत्था बुद्धि भी कहते हैं।

(४) पारिणामिकी—उम्र के परिपाक से अर्जित विभिन्न अनुभवो से प्राप्त होने वाली बुद्धि।

उक्त चार बुद्धिया मतिज्ञान के श्रुतनिश्रित और अश्रुतनिश्रित इन दो मूल विभागो मे से दूसरे विभाग के अन्तर्गत है। जो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान के पूर्वकालिक संस्कार के निमित्त से उत्पन्न किन्तु वर्तमान मे श्रुतनिरपेक्ष होता है, उसे श्रुतनिश्रित कहते हैं एव जिसमे श्रुतज्ञान के सस्कार की किंचित्-मात्र भी अपेक्षा नही होती है वह अश्रुतनिश्रित मतिज्ञान कहलाता है।

कुणाला जनपद, श्रावस्ती नगरी, जितशत्रु राजा—

२१०—तेण कालेण तेणं समयेण कुणाला नामं जणवए होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धे। तत्थ णं

कुणालाए जणवए सावत्थी नाम नयरी होत्था रिद्धत्थिमियसमिद्धा जाव[1] पडिरूवा ।

तीसे णं सावत्थीए णगरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए कोट्ठए नाम चेइए होत्था, पोराणे जाव[2] पासादीए ।

तत्थ ण सावत्थीए नयरीए पएसिस्स रन्नो अतेवासी जियसत्तू नाम राया होत्था, महया-हिमवंत जाव विहरइ ।

२१०—उस काल और उस समय मे कुणाला नामक जनपद-देश था । वह देश वैभवसपन्न, स्तिमित-स्वपरचक्र (शत्रुओ) के भय से मुक्त और धन-धान्य से समृद्ध था ।

उस कुणाला जनपद मे श्रावस्ती नाम की नगरी थी, जो ऋद्ध, स्तिमित, समृद्ध यावत् (देखने योग्य, मन को प्रसन्न करने वाली, अभिरूप-मनोहर और) प्रतिरूप-अतीव मनोहर थी ।

उस श्रावस्ती नगरी के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा (ईशान दिक्कोण) मे कोष्ठक नाम का चैत्य था । यह चैत्य अत्यन्त प्राचीन यावत् प्रतिरूप था ।

उस श्रावस्ती नगरी मे प्रदेशी राजा का अन्तेवासी जैसा अर्थात् अधीनस्थ—आज्ञापालक जितशत्रु नामक राजा था, जो महाहिमवन्त आदि पर्वतो के समान प्रख्यात था ।

विवेचन—दीघनिकाय के 'महासुदस्सन सुत्तत' मे श्रावस्ती नगरी को उस समय का एक महानगर बताया है । प्राचीन भूगोलशोधको का अभिमत है कि वर्तमान मे सेहट-मेहट के नाम से जो ग्राम जाना जाता है, वह प्राचीन श्रावस्ती नगरी है ।

चित्त सारथी का श्रावस्ती की ओर प्रयाण—

२११—तए ण से पएसी राया अन्नया कयाइ महत्थ महग्घ महरिह विउल रायारिह पाहुड सज्जावेइ, सज्जावित्ता चित्तं सारहिं सद्दावेति, सद्दावित्ता एवं वयासी—

गच्छ ण चित्ता ! तुम सावत्थि नगरिं जियसत्तुस्स रण्णो इम महत्थ जाव (महग्घ, महरिह रायारिह) पाहुडं उवणेहि, जाइ तत्थ रायकज्जाणि य रायकिच्चाणि य रायनीतिओ य रायववहारा य ताइ जियसत्तुणा सद्धि सयमेव पच्चुवेक्खमाणे विहराहि त्ति कट्टु विसज्जिए ।

तए णं से चित्ते सारही पएसिणा रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठ जाव (तुट्ठ-चित्तमाणदिए-पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवस-विसप्पमाण-हियए करयल-परिग्गहिय दसनह सिरसावत्त मत्थए अजलि कट्टु 'एव देवो तहत्ति' आणाए विणएण वयण) पडिसुणेत्ता त महत्थ जाव पाहुड गेण्हइ, पएसिस्स रण्णो जाव पडिणिक्खमइ सेयविय नगरिं मज्झमज्झेण जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता त महत्थ जाव पाहुड ठवेइ, कोडुबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेता एव वयासी—

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सच्छत्त जाव चाउग्घटं आसरह जुत्तामेव उवट्ठवेह जाव पच्च-प्पिणह । तए णं ते कोडुबियपुरिसा तहेव पडिसुणित्ता खिप्पामेव सच्छत्त जाव जुद्धसज्ज चाउग्घट आसरहं जुत्तामेव उवट्ठवेन्ति, तमाणत्तिय पच्चप्पिणति ।

---

१ देखें सूत्र सख्या १

२ देखें सूत्र सख्या २

तए ण से चित्ते सारही कोडु'बियपुरिसाण अतिए एयमट्ठ जाव हियए ण्हाए, कयवलिकम्मे, कयकोउयमगलपायच्छित्ते, सन्नद्धबद्धवम्मियकवए, उप्पीलियसरासणपट्टिए, पिणद्धगेविज्जविमलवर-चिंधपट्टे, गहियाउहपहरणे त महत्थ जाव पाहुड गेण्हइ, जेणेव चाउग्घटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ चाउग्घंट आसरह दुरूहेति ।

बहूहिं पुरिसेहि सन्नद्ध जाव गहियाउहपहरणेहिं सद्धि सपरिवुडे सकोरंटमल्लदामेण छत्तेण धरेज्जमाणेणं महया भडचडगररहपहकरविंदपरिक्खित्ते साओ गिहाओ णिग्गच्छइ सेयविय नगरिं मज्झ-मज्झेणं णिग्गच्छइ, सुहेहिं वासेहिं पायरासेहिं नाइविकिट्ठेहिं अतरा वासेहिं वसमाणे-वसमाणे केइय-अद्धस्स जणवयस्स मज्झमज्झणं जेणेव कुणालाजणवए जेणेव सावत्थी नयरी तेणेव उवागच्छइ, सावत्थीए नयरीए मज्झमज्झेण अणुपविसइ । जेणेव जियसत्तुस्स रण्णो गिहे, जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, तुरए निगिण्हइ, रह ठवेति, रहाओ पच्चोरुहइ ।

त महत्थ जाव पाहुडं गिण्हइ जेणेव अब्भितरिया उवट्ठाणसाला जेणेव जियसत्तू राया तेणेव उवागच्छइ, जियसत्तु राय करयलपरिग्गहियं जाव[1] कट्टु जएण विजएण वद्धावेइ, तं महत्थ जाव पाहुड उवणेइ ।

तए णं से जियसत्तू राया चित्तस्स सारहिस्स त महत्थ जाव पाहुड पडिच्छइ, चित्त सारहिं सक्कारेइ सम्माणेइ पडिविसज्जेइ रायमग्गमोगाढ च से आवास दलयइ ।

२११—तत्पश्चात् किसी एक समय प्रदेशी राजा ने महार्थ (विशिष्ट प्रयोजनयुक्त) बहुमूल्य, महान् पुरुषो के योग्य, विपुल, राजाओ को देने योग्य प्राभृत (उपहार) सजाया—तैयार किया । सजाकर चित्त सारथी को बुलाया और बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

हे चित्त ! तुम श्रावस्ती नगरी जाओ और वहाँ जितशत्रु राजा को यह महार्थ यावत् (महान पुरुषो के अनुरूप और राजा के योग्य मूल्यवान्) भेट दे आओ तथा जितशत्रु राजा के साथ रहकर स्वय वहाँ की शासन-व्यवस्था, राजा की दैनिकचर्या, राजनीति और राजव्यवहार को देखो, सुनो और अनुभव करो—ऐसा कहकर विदा किया ।

तब वह चित्त सारथी प्रदेशी राजा की इस आज्ञा को सुनकर हर्षित हुआ यावत् (सतुष्ट हुआ, चित्त मे आनन्दित, मन मे अनुरागी हुआ, परमसौमनस्य भाव को प्राप्त हुआ एव हर्षातिरेक से विकसित-हृदय होकर उसने दोनो हाथ जोड शिर पर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके—'राजन् ! ऐसा ही होगा' कहकर विनयपूर्वक आज्ञा को स्वीकार किया ।) आज्ञा स्वीकार करके उस महार्थक यावत् उपहार को लिया और प्रदेशी राजा के पास से निकल कर बाहर आया । बाहर आकर सेयविया नगरी के बीचो-बीच से होता हुआ जहाँ अपना घर था, वहाँ आया । आकर उस महार्थक उपहार को एक तरफ रख दिया और कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया । बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

देवानुप्रियो ! शीघ्र ही छत्र सहित यावत् चार घटो वाला अश्वरथ जोतकर तैयार कर लाओ यावत् इस आज्ञा को वापस लौटाओ ।

---

१ देखें सूत्र सख्या १३

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषो ने चित्त सारथी को आज्ञा की आज्ञा सुनकर आज्ञानुरूप शीघ्र ही छत्रसहित यावत् युद्ध के लिये सजाये गये चातुर्घंटिक अश्वरथ को जोत कर उपस्थित कर दिया और आज्ञा वापस लौटाई, अर्थात् रथ तैयार हो जाने की सूचना दी।

कौटुम्बिक पुरुषो का यह कथन सुनकर चित्त सारथी हृष्ट-तुष्ट हुआ यावत् विकसितहृदय होते हुए उसने स्नान किया, वलिकर्म (कुलदेवता की अर्चना की, अथवा पक्षियो को दाना डाला), कौतुक (तिलक आदि) मगल-प्रायश्चित्त किये और फिर अच्छी तरह से शरीर पर कवच बाधा। धनुष पर प्रत्यंचा चढाई, गले मे ग्रैवेयक और अपने श्रेष्ठ सकेतपट्टक को धारण किया एव आयुध तथा प्रहरणो को गहण कर, वह महार्थक यावत् उपहार, लेकर वहाँ आया जहाँ चातुर्घंट अश्वरथ खडा था। आकर उस चातुर्घंट अश्वरथ पर आरूढ हुआ।

तत्पश्चात् सन्नद्ध यावत् आयुध एव प्रहरणो से सुसज्जित बहुत से पुरुषो से परिवृत्त हो, कोरट पुष्प की मालाओ से विभूषित छत्र को धारण कर, सुभटो और रथो के समूह के साथ अपने घर से रवाना हुआ और सेयविया नगरी के वीचोवीच से निकल कर सुखपूर्वक रात्रिविश्राम, प्रात· कलेवा, अति दूर नही किन्तु पास-पास अन्तरावास (पडाव) करते, और जगह-जगह ठहरते-ठहरते केकयअर्ध जनपद के वीचोवीच से होता हुआ जहाँ कुणाला जनपद था, जहाँ श्रावस्ती नगरी थी, वहाँ आ पहुँचा। वहाँ आकर श्रावस्ती नगरी के मध्यभाग मे प्रविष्ट हुआ। इसके बाद जहाँ जितशत्रु राजा का प्रासाद था और जहाँ राजा की वाह्य उपस्थानशाला थी, वहाँ आकर घोडो को रोका, रथ को खडा किया और फिर रथ से नीचे उतरा।

तदनन्तर उस महार्थक यावत् भेंट को लेकर आभ्यन्तर उपस्थानशाला (बैठक) मे जहाँ जितशत्रु राजा बैठा था, वहाँ आया। वहाँ दोनो हाथ जोड यावत् जय-विजय शब्दो से जितशत्रु राजा का अभिनन्दन किया और फिर उस महार्थक यावत् उपहार को भेंट किया।

तव जितशत्रु राजा ने चित्त सारथी द्वारा भेंट किये गये इस महार्थक यावत् उपहार को स्वीकार किया एव चित्त सारथी का सत्कार-समान किया और विदा करके विश्राम करने के लिए राजमार्ग पर आवास स्थान दिया।

विवेचन—ऊपर के सूत्र मे वताया कि श्रावस्ती का राजा जितशत्रु सेयविया के राजा प्रदेशी का अतेवासी था अर्थात् अधीनस्थ राजा था। तव प्रश्न होता है कि अधीनस्थ राजा होते हुए भी राजा प्रदेशी का जितशत्रु राजा को भेट भेजने और चित्त सारथी को श्रावस्ती जाकर राजव्यवस्था देखने के सकेत का क्या कारण था ? प्रतीत होता है, अनेक बार अधीनस्थ राजा अपने से मुख्य राजा की अपेक्षा वल, सेना, कोप और कितनी ही दूसरी वातो मे बढने का-गुप्त प्रयास करते है और प्रच्छन्न रूप से उसे अपदस्थ करके स्वय उसके राज्य पर अधिकार करने आदि का प्रयत्न करते है। इस स्थिति का पता जव उस मुख्य राजा को लगता है, तव वह राजनीति का अवलवन लेकर उसकी खोजबीन करने का प्रयास करता है। इस प्रयास के दूसरे-दूसरे उपायो की तरह भेट भेजना भी एक उपाय है। यही वात प्रदेशी राजा द्वारा कहे गये इन शब्दो से विदित होती है—

'तुम यह भेट दे आओ तथा जितशत्रु राजा के साथ रहकर स्वय वहाँ की शासनव्यवस्था, राजा की दैनिक चर्या, राजनीति और व्यवहार को देखो, सुनो और अनुभव करो।'

२१२—तए ण से चित्ते सारही विसज्जिते समाणे जियसत्तुस्स रन्नो अतियाओ पडिनिक्खमइ, जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव चाउग्घटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, चाउग्घट आसरह दुरूहइ, सावत्थि नगरिं मज्झमज्झेण जेणेव रायमग्गमोगाढे आवासे तेणेव उवागच्छइ, तुरए निगिण्हइ, रह ठवेइ, रहाओ पच्चोरुहइ, ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउयमगलपायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइ मगल्लाइ वत्थाइ पवरपरिहिते अप्पमहग्घाभरणालकियसरीरे जिमियभुत्तुत्तरागए वि य ण समाणे पुव्वावरण्ह-कालसमयसि गंधव्वेहि य णाडगेहि य उवनच्चिज्जमाणे उवनच्चिज्जमाणे, उवगाइज्जमाणे उवगाइज्ज-माणे, उवलालिज्जमाणे उवलालिज्जमाणे इट्ठे सद्द-फरिस-रस-रूव-गधे पंचविहे माणुस्सए कामभोए पच्चणुभवमाणे विहरइ।

२१२—तत्पश्चात् चित्त सारथी विदाई लेकर जितशत्रु राजा के पास से निकला और जहाँ बाह्य उपस्थानशाला थी, चार घटों वाला अश्वरथ खडा किया था, वहाँ आया। आकर उस चातुर्घंट अश्वरथ पर सवार हुआ। फिर श्रावस्ती नगरी के बीचोबीच से होता हुआ राजमार्ग पर अपने ठहरने के लिये निश्चित किये गये आवास-स्थान पर आया। वहाँ घोडो को रोका, रथ को खडा किया और नीचे उतरा। इसके पश्चात् उसने स्नान किया, बलिकर्म किया और कौतुक, मगल प्रायश्चित्त करके शुद्ध और उचित—योग्य मागलिक वस्त्र पहने एव अल्प किन्तु बहुमूल्य आभूषणो से शरीर को अलकृत किया। भोजन आदि करके तीसरे प्रहर गधर्वो, नर्तको और नाट्यकारो के सगीत, नृत्य और नाट्याभिनयो को सुनते-देखते हुए तथा इष्ट—अभिलषित शब्द, स्पर्श, रस, रूप एव गधमूलक पाच प्रकार के मनुष्य सबधी कामभोगो को भोगते हुए विचरने लगा।

श्रावस्ती नगरी मे केशी कुमारश्रमण का पदार्पण

२१३—तेणं कालेण तेणं समएणं पासावच्चिज्जे केसी नाम कुमारसमणे जातिसपण्णे कुल-संपण्णे बलसपण्णे रूवसंपण्णे विणयसपण्णे नाणसंपण्णे दसणसंपन्ने चरित्तसंपण्णे लज्जासंपण्णे लाघव-सपण्णे लज्जालाघवसंपण्णे ओयसी तेयसी वच्चंसी जसंसी जियकोहे जियमाणे जियमाए जियलोहे जियणिद्दे जितिदिए जियपरीसहे जीवियास-मरणभयविप्पमुक्के तवप्पहाणे गुणप्पहाणे करणप्पहाणे चरणप्पहाणे निग्गहप्पहाणे निच्छयप्पहाणे अज्जवप्पहाणे मद्दवप्पहाणे लाघवप्पहाणे खतिप्पहाणे गुत्तिप्पहाणे मुत्तिप्पहाणे विज्जप्पहाणे मतप्पहाणे बंभप्पहाणे वेयप्पहाणे नयप्पहाणे नियमप्पहाणे सच्च-प्पहाणे सोयप्पहाणे नाणप्पहाणे दसणप्पहाणे चरित्तप्पहाणे ओराले घोरे घोरगुणे घोरतवस्सी घोरबभ-चेरवासी उच्छूढसरीरे सखित्तविपुलतेउलेस्से चउद्दसपुव्वी चउणाणोवगए पंचहिं अणगारसएहिं सद्धि संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगाम दुइज्जमाणे सुहसुहेणं विहरमाणे जेणेव सावत्थी नयरी, जेणेव कोट्ठए चेइए, तेणेव उवागच्छइ, सावत्थी नयरीए बहिया कोट्ठए चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हइ, उग्गिण्हित्ता सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ।

२१३—उस काल और उस समय मे जातिसपन्न—उत्तम मातृपक्ष वाले, कुल सपन्न—उत्तम पितृपक्ष वाले, आत्मबल से युक्त, अनुत्तर विमानवासी देवो से भी अधिक रूपवान् (शरीर-सौन्दर्य-शाली), विनयवान्, सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चरित्र के धारक, लज्जावान्—पाप कार्यों के प्रति भीरु, लाघववान् (द्रव्य से अल्प उपधि वाले और भाव से ऋद्धि, रस और साता रूप तीन गौरवो से रहित), लज्जालाघवसपन्न, ओजस्वी—मानसिक तेज से सपन्न, तेजस्वी—शारीरिक काति से देदीप्यमान,

वचस्वी—सार्थक वचन वोलने वाले, यशस्वो, क्रोध को जीतने वाले, मान को जीतने वाले, माया को जीतने वाले, लोभ को जीतने वाले, जीवित रहने की आकाक्षा एव मृत्यु के भय से विमुक्त, तप प्रधान अर्थात् उत्कृष्ट तप करने वाले, गुणप्रधान अर्थात् उत्कृष्ट सयम गुण के धारक, करणप्रधान (पिंडविशुद्धि आदि करणसत्तरी मे प्रधान), चरणप्रधान (महाव्रत आदि चरणसत्तरी मे प्रधान), निग्रह-प्रधान (मन और इन्द्रियो की अनाचार मे प्रवृत्ति को रोकने मे सदैव सावधान), तत्त्व का निश्चय करने मे प्रधान, आर्जवप्रधान (माया का निग्रह करने वाले), मार्दवप्रधान (अभिमानरहित), लाघवप्रधान अर्थात् क्रिया करने के कौशल मे दक्ष, क्षमाप्रधान अर्थात् क्रोध का निग्रह करने मे प्रधान, गुप्तिप्रधान (मन, वचन, काय के सयमी), मुक्ति (निर्लोभता) मे प्रधान, विद्याप्रधान (देवता-अधिष्ठित प्रज्ञप्ति आदि विद्याओ मे प्रधान), मन्त्रप्रधान (हरिणेगमैषी आदि देवो से अधिष्ठित अथवा साधना से प्राप्त होने वाली विद्याओ मे प्रधान), ब्रह्मचर्य अथवा समस्त कुशल अनुष्ठानो मे प्रधान, वेदप्रधान अर्थात् लौकिक और लोकोत्तर आगमो मे निष्णात, नयप्रधान अर्थात् समस्त वाचनिक अपेक्षाओ के मर्मज्ञ, नियमप्रधान—विचित्र अभिग्रहो को धारण करने मे कुशल, सत्यप्रधान, शौचप्रधान (द्रव्य और भाव से ममत्व रहित), ज्ञानप्रधान, दर्शनप्रधान, चारित्रप्रधान, उदार, घोर परीषहो, इन्द्रियो और कषायो आदि आन्तरिक शत्रुओ का निग्रह करने मे कठोर, घोरव्रती—अप्रमत्त भाव से महाव्रतो का पालन करने वाले, घोरतपस्वी—महातपस्वी, घोर ब्रह्मचर्यवासी—उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले, शरीरसस्कार के त्यागी, विपुल तेजोलेश्या को अपने शरीर मे ही समाये रखने वाले, चौदह पूर्वो के ज्ञाता, मतिज्ञानादि मन पर्यायज्ञानपर्यन्त चार ज्ञानो के धनी पार्श्वापत्य (भगवान् पार्श्वनाथ की शिष्यपरम्परा के) केशी नामक कुमारश्रमण (कुमार अवस्था मे दीक्षित साधु) पाँच सौ अनगारो से परिवृत्त होकर अनुक्रम से चलते हुए, ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए, सुखे-सुखे विहार करते हुए जहाँ श्रावस्ती नगरी थी, जहाँ कोष्ठक चैत्य था, वहाँ पधारे एव श्रावस्ती नगरी के वाहर कोष्ठक चैत्य मे यथोचित अवग्रह को ग्रहण किया अर्थात् स्थान की याचना की और फिर अवग्रह ग्रहण कर सयम एव तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ।

विवेचन—मूल पाठ मे आगत 'करणप्पहाणे' एव चरणप्पहाणे' पद मे करण और चरण शब्द करणसत्तरी और चरणसत्तरी के वोधक हैं । इन दोनो का तात्पर्य है—करण के सत्तर भेद और चरण के सत्तर भेद । प्रयोजन होने पर साधु जिन नियमो का सेवन करते है उन्हे करण अथवा करणगुण कहते हैं और जिन नियमो का निरतर आचरण किया जाता है, वे चरण अथवा चरणगुण कहलाते है ।

करण के सत्तर भेद इस प्रकार है—

पिंडविसोही समिइ भावण पडिमा य इन्दियनिरोहो ।
पडिलेहण गुत्तीओ अभिग्गहा चेव करण तु ॥

—ओघनिर्युक्ति गा० ३

आहार, वस्त्र, पात्र और शय्या की शुद्ध गवेषणा, पाँच समिति, अनित्य आदि वारह भावनाएँ, वारह प्रतिमाएँ, पच इन्द्रियो का निग्रह, पच्चीस प्रकार की प्रतिलेखना, तीन गुप्ति एव चार प्रकार के अभिग्रह (ये करण गुण के सत्तर भेद हैं) ।

चरण के सत्तर भेद इस प्रकार है—

वय समणधम्म सजम वेयावच्च च वम्भगुत्तीओ ।
णाणाइतिय तव कोहनिग्गहाई चरणमेय ॥

पाच महाव्रत, क्षमा आदि दस प्रकार का यतिधर्म, सत्रह प्रकार का सयम, आचार्य आदि का दस प्रकार का वैयावृत्य, नौ ब्रह्मचर्य-गुप्तियाँ, ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना, वारह प्रकार का तप, क्रोधादि चार कषायो का निग्रह (ये चरणगुण के सत्तर भेद हैं) ।

दर्शनार्थ परिषदा का गमन और चित्त की जिज्ञासा—

२१४—तए ण सावत्थीए नयरीए सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउमुह-महापहपहेसु महया जणसद्दे इ वा जाणवूहे इ वा जणबोले इ वा जणकलकले इ वा जणउम्मी इ वा जणउक्कलिया इ वा जणसन्निवाए इ वा जाव (बहुजणो अण्णमण्ण एव आइक्खइ एवं भासेइ एवं पण्णवेइ एव परूवेइ—एव खलु देवाणुप्पिया! पासावच्चिज्जे केसी नाम कुमारसमणे जाइसपन्ने जाव[1] गामाणुगामं दूइज्जमाणे इह मागए, इह संपत्ते, इह समोसढे, इहेव सावत्थीए नयरीए वहिया कोट्ठए चेइए अहापडिरूव उग्गहं उग्गिण्हित्ता सजमेणं तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ ।

तं महप्फलं खलु भो देवाणुप्पिया! तहारूवाण समणाण भगवंताणं णामगोयस्स वि सवणयाए, किमगपुण अभिगमण-वदन-णमसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए ? एगस्स वि आयरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमग ! पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए ? त गच्छामो ण देवाणुप्पिया ! समणं भगव वंदामो णमसामो सक्कारेमो सम्माणेमो कल्लाण मगल देवयं चेइयं विणएण पज्जुवासामो (एय ण इहभवे पेच्चभवे य हियाए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ-त्ति कट्टु परिसा निग्गया, केसी नाम कुमारसमणं तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेति, वदइ णमसइ, वदित्ता णमसित्ता णच्चासन्ने णाइदूरे सुस्सूसमाणे नमंसमाणे पजलियउडे अभिमुहे विणएण) परिसा पज्जुवासइ ।

२१४—तत्पश्चात् (केशी कुमारश्रमण का पदार्पण होने के पश्चात्) श्रावस्ती नगरी के शृ गाटको (त्रिकोण वाले स्थानो), त्रिको (तिराहो), चतुष्को (चौराहो), चत्वरो (चौको), चतुर्मुखो (चारो तरफ द्वार वाले स्थान-विशेषो), राजमार्गों और मार्गो (गलियो) मे लोग आपस मे चर्चा करने लगे, लोगो के झु ड इकट्ठे होने लगे, लोगो के वोलने की घोघाट सुनाई पडने लगी, जनकोलाहल होने लगा, भीड के कारण लोग आपस मे टकराने लगे, एक के वाद एक लोगो के टोले आते दिखाई देने लगे, इधर-उधर से आकर लोग एक स्थान पर इकट्ठे होने लगे, यावत् (वहुत से लोग परस्पर एक दूसरे से कहने लगे, बोलने लगे, प्ररूपणा करने लगे—हे देवानुप्रियो ! जाति आदि से सपन्न-श्रेष्ठ पार्श्वापत्य केशी कुमारश्रमण अनुक्रम से गमन करते हुए, ग्रामानुग्राम—एक गाव से दूसरे गाव मे—विचरते हुए आज यहा आये हैं, प्राप्त हुए हैं, पधार गए हैं और इसी श्रावस्ती नगरी के वाहर कोष्ठक चैत्य मे यथारूप (साधुमर्यादा के अनुरूप) अवग्रह—आज्ञा लेकर सयम एव तप से आत्मा को भावित करते हुए विचर रहे हैं ।

अतएव हे देवानुप्रियो ! जब तथारूप श्रमण भगवन्तो के नाम और गोत्र के सुनने से ही महाफल प्राप्त होता है, तब उनके समीप जाने, उनकी वदना करने, उनसे प्रश्न पूछने और उनकी

१ देखें सूत्र सख्या २१३

पर्युपासना—सेवा करने से प्राप्त होने वाले अनुपम फल के लिये तो कहना ही क्या है ! आर्य धर्म के एक सुवचन के सुनने से जब महाफल प्राप्त होता है, तब हे आयुष्मन् ! विपुल अर्थों को ग्रहण करने से प्राप्त होने वाले फल के विषय मे तो कहना ही क्या है ? इसलिये हे देवानुप्रियो ! हम उनके पास चले, उनको वदन-नमस्कार करे, उनका सत्कार करे, भक्तिपूर्वक सम्मान करे एव कल्याणरूप, मगलरूप, देवरूप, चैत्यरूप उनकी विनयपूर्वक पर्युपासना करे। यह वदन-नमस्कार करना हमे इस भव तथा परभव मे हितकारी है, सुखप्रद है, क्षेम-कुशल एव परमनिश्रेयस्—कल्याण का साधन रूप होगा तथा इसी प्रकार अनुगामी रूप से जन्म-जन्मान्तर मे भी सुख देने का निमित्त बनेगा—ऐसा विचार कर परिषदा (जनसमुदाय) निकली और केशी कुमारश्रमण के पास पहुँच कर दक्षिण दिशा से प्रारम्भ कर उनकी तीन बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वदन-नमस्कार किया। वदन-नमस्कार करके न तो अधिक दूर और न अधिक निकट किन्तु उनके सम्मुख यथायोग्य स्थान पर बैठकर शुश्रूषा और नमस्कार करते हुए सविनय अजलि करके) पर्युपासना-सेवा करने लगी।

२१५—तए णं तस्स सारहिस्स त महाजणसद्द च जणकलकल च सुणेत्ता य पासेत्ता य इमेया-रूवे अज्झत्थिए जाव (चिंतिए, पत्थिए मणोगते संकप्पे) समुप्पज्जित्था, किं ण अज्ज सावत्थीए णयरीए इदमहे इ वा, खदमहे इ वा, रुद्दमहे इ वा, मउदमहे इ वा, सिवमहे इ वा, वेसमणमहे इ वा, नागमहे इ वा, जक्खमहे इ वा, भूयमहे इ वा, थूममहे इ वा, चेइयमहे इ वा, रुक्खमहे इ वा, गिरिमहे इ वा, दरिमहे इ वा, अगडमहे इ वा, नईमहे इ वा, सरमहे इ वा, सागरमहे इ वा, ज ण इमे बहवे उग्गा उग्गपुत्ता भोगा राइन्ना इक्खागा णाया कोरव्वा जाव (खत्तिया माहणा भडा जोहा मल्लई मल्लइपुत्ता लेच्छइ, लेच्छइपुत्ता) इब्भा इब्भपुत्ता अण्णे य बहवे राया-ईसर-तलवर-माडबिय-कोडुबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभितियो ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता सिरसाकठे-मालकडा आविद्धमणिसुवण्णा कप्पियहार-अद्धहार-तिसरपालबपलबमाण-कडिसुत्तयकयसोहाहरणा चदणोलित्तगायसरोरा पुरिसवग्गुरापरिक्खित्ता महया उक्किट्ठसीहणायबोलकलकलरवेण एगदिसाए जहा उववाइए जाव अप्पेगतिया हयगया गयगया जाव (रहगया सिवियागया सदमाणिया अप्पेगतिया) पायचारविहरेण महया महया वदावदएहिं निग्गच्छति, एव सपेहेइ, संपेहित्ता कचुइज्जपुरिस सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—

किं णं देवाणुप्पिया ! अज्ज सावत्थीए नगरीए इदमहे इ वा जाव सागरमहे इ वा जेण इमे बहवे उग्गा भोगा० णिग्गच्छति ?

२१५—तब लोगो की बातचीत, जनकोलाहल सुनकर तथा जनसमूह को देखकर चित्त सारथी को इस प्रकार का यह आन्तरिक यावत् (चिन्तित, प्रार्थित—इष्ट और मनोगतसकल्प-विचार) उत्पन्न हुआ कि क्या आज श्रावस्ती नगरी मे इन्द्रमह (इन्द्र-निमित्तक उत्सव—इन्द्रमहोत्सव) है ? अथवा स्कन्द (कार्तिकेय) मह है ? या रुद्रमह, मुकुन्दमह, शिवमह, वैश्रमण (कुबेर) मह, नागमह (नाग सम्बन्धी उत्सव), यक्षमह, भूतमह, स्तूपमह, चैत्यमह, वृक्षमह, गिरिमह, दरि(गुफा)मह, कूपमह, नदीमह, सर(तालाब)मह, अथवा सागरमह है ? कि जिससे ये बहुत से उग्रवशीय, उग्रवशीयकुमार, भोगवशीय, राजन्यवशीय, इक्ष्वाकुवशीय, ज्ञातवशीय, कौरववशीय यावत् (क्षत्रिय—सामान्य राजकुल के सम्बन्धी, माहण-ब्राह्मण, सुभट, योद्धा, मल्लक्षत्रिय (मल्लिक गणराज्य से सबधित), मल्लपुत्र, लिच्छवी क्षत्रिय लिच्छिवी पुत्र), इब्भ, इब्भपुत्र तथा दूसरे भी अनेक राजा (माडलिक राजा) ईश्वर

(युवराज) तलवर (जागीरदार), माडविक, कौटुम्बिक, इभ्यश्रेष्ठी (महाधनी—हाथी प्रमाण धन से सपन्न सेठ), सेनापति, सार्थवाह आदि सभी स्नान कर, वलिकर्म कर, कौतुक-मगल-प्रायश्चित कर, मस्तक और गले मे मालाएँ धारण कर, मणिजटित स्वर्ण के आभूषणो से शरीर को विभूपित कर, गले मे हार, (अठारह लड का हार), अर्धहार, तिलडी, झूमका, और कमर मे लटकते हुए कटिसूत्र (करधनी) पहनकर, शरीर पर चदन का लेप कर, आनदातिरेक से सिंहनाद और कलकल ध्वनि से श्रावस्ती नगरी को गु जाते हुए जनसमूह के साथ एक ही दिशा मे मुख करके जा रहे हैं आदि वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार यहा जानना चाहिये। यावत् उनमे से कितने ही घोडो पर सवार होकर, कई हाथी पर सवार होकर, कोई रथो मे वैठ कर, या पालखी मे वैठ कर स्यदमानिका मे वैठ कर और कितने ही अपने अपने समुदाय बनाकर पैदल ही जा रहे हैं। ऐसा विचार किया और विचार करके कचुकी पुरुष (द्वारपाल) को वुलाकर उससे पूछा—

देवानुप्रिय! आज क्या श्रावस्ती नगरी मे इन्द्र-महोत्सव है यावत् सागरयात्रा है कि जिससे ये वहुत से उग्रवशीय, भोगवशीय आदि सभी लोग अपने-अपने घरो से निकलकर एक ही दिशा मे जा रहे हैं?

२१६—तए ण से कचुईपुरिसे केसिस्स कुमारसमणस्स आगमणगहियविणिच्छए चित्तं सारहिं करयलपरिग्गहिय जाव वद्धावेत्ता एवं वयासी—णो खलु देवाणुप्पिया! अज्ज सावत्थीए णयरीए इंदमहे इ वा जाव सागरमहे इ वा जे ण इमे बहवे जाव[1] विदाविंदएहिं निग्गच्छंति, एव खलु भो देवाणुप्पिया! पासावचिज्जे केसी नाम कुमारसमणे जाइसंपन्ने जाव[2] दूइज्जमाणे इहमागए जाव विहरइ। तेण अज्ज सावत्थीए नयरीए बहवे उग्गा जाव इब्भा इब्भपुत्ता अप्पेगतिया वंदणवत्तियाए जाव महया वदावंदएहिं णिग्गच्छंति।

२१६—तव उस कचुकी पुरुष ने केशी कुमारश्रमण के पदार्पण होने के निश्चित समाचार जानकर दोनो हाथ जोड यावत् जय-विजय शब्दो से वधाकर चित्तसारथी से निवेदन किया—देवानुप्रिय! आज श्रावस्ती नगरी मे इन्द्र-महोत्सव यावत् समुद्रयात्रा आदि नही है कि जिससे ये वहुत से उग्रवशीय आदि लोग अपने-अपने समुदाय वनाकर निकल रहे है। परन्तु हे देवानुप्रिय! वात यह है कि आज जाति आदि से सपन्न पार्श्वापत्य केशी नामक कुमारश्रमण यावत् एक ग्राम से दूसरे ग्राम मे विहार करते हुए यहाँ पधारे हैं यावत् कोष्ठक चैत्य मे विराजमान हैं। इसी कारण आज श्रावस्ती नगरी के ये अनेक उग्रवशीय यावत् इब्भ, इब्भपुत्र आदि वदना आदि करने के विचार से वडे-वडे समुदायो मे अपने घरो से निकल रहे हैं।

चित्त सारथी का दर्शनार्थ गमन

२१७—तए ण से चित्ते सारही कचुइपुरिसस्स अतिए एयमट्ठ सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-जाव-हियए कोडु वियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! चाउग्घंटं आसरहं जुत्तामेव उवट्ठवेह जाव सच्छत्त उवट्ठवेंति।

---

१ देखें सूत्र सख्या २१५

२ देखें सूत्र सख्या २१३

२१७—तत्पश्चात् कचुकी पुरुष से यह बात सुन-समझ कर चित्त सारथी ने हृष्ट-तुष्ट यावत् हर्षविभोर हृदय होते हुए कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया। बुलाकर उनसे कहा—हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही चार घटो वाले अश्वरथ को जोतकर उपस्थित करो। यावत् वे कौटुम्बिक पुरुप छत्रसहित अश्वरथ को जोतकर लाये।

२१८—तए ण से चित्ते सारही ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउयमंगलपायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइ मगल्लाइ वत्थाइ पवरपरिहिते अप्पमहग्घाभरणालकियसरीरे जेणेव चाउग्घटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घट आसरह दुरुहइ सकोरिटमल्लदामेण छत्तेण धरिज्जमाणेण महया भडचडगरेण विदपरिखित्ते सावत्थीनगरीए मज्झमज्झेण निग्गच्छइ। निग्गच्छित्ता जेणेव कोट्ठए चेइए जेणेव केसिकुमारसमणे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता केसिकुमारसमणस्स अदूरसामते तुरए णिगिण्हइ रह ठवेइ य, ठवित्ता पच्चोरुहति। पच्चोरुहित्ता जेणेव केसिकुमारसमणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता केसिकुमारसमण तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिण करेइ, करित्ता वदइ नमसइ, नमंसित्ता णच्चासण्णे णाति दूरे सुस्सूसमाणे णमसमाणे अभिमुहे पजलिउडे विणएण पज्जुवासइ।

२१८—तदनन्तर चित्त सारथी ने स्नान किया, वलिकर्म किया, कौतुक मगल प्रायश्चित्त किया, शुद्ध एव सभोचित मागलिक वस्त्रो को पहना, अल्प किन्तु बहुमूल्य आभूषणो से शरीर को अलकृत किया और उसके बाद वह चार घण्टो वाले अश्वरथ के पास आया। आकर उस चातुर्घंट अश्वरथ पर आरूढ हुआ एव कोरट पुष्पो की मालाओ से सुशोभित छत्र धारण करके सुभटो के विशाल समुदाय के साथ श्रावस्ती नगरी के बीचो-बीच होकर निकला। निकलकर जहाँ कोष्ठक नामक चैत्य था और उसमे भी जहाँ केशी कुमारश्रमण विराज रहे थे, वहाँ आया। आकर केशी कुमारश्रमण से कुछ दूर घोडो को रोका और रथ खडा किया। रथ खडा कर उससे नीचे उतरा। उतर कर जहाँ केशी कुमारश्रमण थे, वहाँ आया। आकर दक्षिण दिशा से प्रारभ कर केशी कुमारश्रमण की तीन बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वदन-नमस्कार किया। वदन-नमस्कार करके न अत्यन्त समीप और न अति दूर किन्तु समुचित स्थान पर सम्मुख बैठकर धर्मोपदेश सुनने की इच्छा से नमस्कार करता हुआ विनयपूर्वक अजलि करके पर्युपासना करने लगा।

केशी श्रमण की देशना

२१९—तए ण से केसिकुमारसमणे चित्तस्स सारहिस्स तीसे महतिमहालियाए महच्चपरिसाए चाउज्जाम धम्मं परिकहेइ। तं जहा—सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमण, सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमण, सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमण। तए ण सा महतिमहालिया महच्चपरिसा केसिस्स कुमारसमणस्स अतिए धम्म सोच्चा-निसम्म जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

२१९—तत्पश्चात् केशी कुमारश्रमण ने चित्त सारथी और उस अतिविशाल परिषद् को चार याम धर्म का उपदेश दिया। उन चातुर्यामो के नाम इस प्रकार हैं—

(१) समस्त प्राणातिपात (हिंसा) से विरमण (निवृत्त होना), (२) समस्त मृषावाद (असत्य) से विरत होना, (३) समस्त अदत्तादान से विरत होना, (४) समस्त वहिद्धादान (मैथुन-परिग्रह) से विरत होना।

इसके बाद वह अतिविशाल परिषद् (जनसमूह) केशी कुमारश्रमण से धर्मदेशना सुनकर एव हृदय मे धारण कर—मनन कर जिस दिशा से आई थी, उसी ओर लौट गई, अर्थात् वह आगत जनसमूह अपने-अपने घरो को वापस लौट गया।

विवेचन—कुमारश्रमण केशी पार्श्वनाथ के अनुयायी थे और भगवान् पार्श्व ने चार यामो की प्ररूपणा की है। अत इन्होने चार यामो (महाव्रतो) का उपदेश दिया। लेकिन भगवान् महावीर द्वारा प्ररूपित पच महाव्रतो से सख्या-भेद के सिवाय इन चार महाव्रतो के आशय मे अन्य कोई अन्तर नही है। स्थानागसूत्र टीका मे 'वहिद्धा' का अर्थ मैथुन और 'आदान' का अर्थ परिग्रह वताया है। अथवा स्त्री-परिग्रह एव अन्य किसी भी प्रकार का परिग्रह वहिद्धादान मे गर्भित है।

२२०—तए ण से चित्ते सारही केसिस्स कुमारसमणस्स अतिए धम्म सोच्चा निसम्म हट्ठ-जाव-हियए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता केसिं कुमारसमण तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण करेइ, वदइ नमसइ, नमसित्ता एव वयासी—

सद्दहामि ण भते ! निग्गथ पावयण।

पत्तियामि ण भते ! निग्गथ पावयण।

रोएमि ण भते ! निग्गथ पावयण।

अब्भुट्ठेमि ण भते ! निग्गथ पावयण।

एवमेय निग्गथ पावयण।

तहमेय भते ! ०[1] अवितहमेयं भते ! ० असदिद्धमेय०, इच्छियपडिच्छियमेय भते ! ज ण तुब्भे वदह त्ति कट्टु वदइ नमसइ, नमंसित्ता एवं वयासी—जहा ण देवाणुप्पियाण अतिए बहवे उग्गा जाव इब्भा इब्भपुत्ता चिच्चा हिरण्ण, चिच्चा सुवण्ण एव धणं-धन्नं-बल-वाहण-कोस कोट्ठागार पुरं अतेउर, चिच्चा विउल धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-सख-सिलप्पवाल संतसारसावएज्ज विच्छड्डित्ता विगोवइत्ता दाण दाइयाण परिभाइत्ता मु डे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वयति, णो खलु अह ता सचाएमि चिच्चा हिरण्ण त चेव जाव पव्वइत्तए। अह ण देवाणुप्पियाण अतिए पचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइय दुवालसविह गिहिधम्म पडिवज्जित्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंध करेहि।

२२०—तदनन्तर वह चित्त सारथी केशी कुमारश्रमण से धर्म श्रवण कर एव उसे हृदय मे धारण कर हृष्ट-तुष्ट होता हुआ यावत् (चित्त मे आनन्द का अनुभव करता हुआ, प्रीति-अनुराग युक्त होता हुआ, सौम्यभावो वाला होता हुआ और हर्षातिरेक से विकसित) हृदय होता हुआ अपने आसन से उठा। उठकर केशी कुमारश्रमण की तीन वार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार बोला—भगवन् ! मुझे निर्ग्रन्थ प्रवचन मे श्रद्धा है। भगवन् ! इस पर प्रतीति (विश्वास) करता हूँ। भदन्त ! मुझे निर्ग्रन्थ प्रवचन रुचता है अर्थात् तदनुरूप आचरण करने का आकाक्षी हूँ। हे भगवन् ! मै निर्ग्रन्थ प्रवचन को अगीकार करना चाहता हूँ ! भगवन् !

१ यहा ० 'निगन्थ पावयण' का वोधक सकेत है।

यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ऐसा ही है। भगवन्! यह तथ्य-यथार्थ है। भगवन्! यह अवितथ-सत्य है। असंदिग्ध है—शका-सदेह से रहित है। मुझे इच्छित है अर्थात् मैंने इसकी इच्छा की है। मुझे इच्छित, प्रतीच्छित है अर्थात् मैं इसकी पुन पुन इच्छा करता हूँ। भगवन्! यह वैसा ही है जैसा आप निरूपण-कथन करते हैं। ऐसा कहकर वन्दन-नमस्कार किया और नमस्कार करके पुन बोला—

देवानुप्रिय! जिस तरह से आपके पास अनेक उग्रवशीय, भोगवशीय यावत् इभ्य एव इभ्य-पुत्र आदि हिरण्य—चादी का त्याग कर, स्वर्ण को छोडकर तथा धन, धान्य, बल, वाहन, कोश, कोठार, पुर-नगर, अन्त पुर का त्याग कर और विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शख, शिलाप्रवाल (मू गा) आदि सारभूत द्रव्यो का ममत्व छोडकर, उन सबको दीन-दरिद्रो मे वितरित कर, पुत्रादि मे वँटवारा कर, मु डित होकर, गृहस्थ जीवन का परित्याग कर अनगारधर्म मे प्रव्रजित हुए हैं, उस प्रकार चाँदी का त्याग कर यावत् प्रव्रजित होने मे तो मैं समर्थ नही हूँ। मैं आप देवानुप्रिय के पास पच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत मूलक वारह प्रकार का गृहीधर्म (श्रावकधर्म) अगीकार करना चाहता हूँ।

चित्त सारथी की भावना को जानकर केशी कुमारश्रमण ने कहा—देवानुप्रिय! जिससे तुम्हे सुख हो, वैसा ही करो, किन्तु प्रतिवध—विलव मत करो।

विवेचन—चित्त सारथी ससारभीरु था और प्रदेशी राजा के पाप कार्यों से खेदखिन्न रहता था। लेकिन अपनी मानसिक, पारिवारिक और प्रजाजनो की स्थिति को देखकर तत्काल उसे यह सभव प्रतीत नही हुआ कि अनगार-प्रव्रज्या अगीकार कर लू। इसीलिए उसने निर्ग्रन्थ प्रवचन के प्रति भावपूर्ण शब्दो मे अपनी आन्तरिक श्रद्धा का निवेदन किया।

केशी कुमारश्रमण के समक्ष जव चित्त सारथी ने अपनी आन्तरिक भावना को व्यक्त करते हुए अपने विचारो को प्रकट किया तो केशी कुमारश्रमण ने अपने मध्यस्थभाव के अनुसार कहा—अहासुह देवाणुप्पिया! और फिर यह जानकर कि यह भव्य आत्मा ससारसागर से पार होने की अभिलाषी है, इसे पथप्रदर्शन एव तदनुकूल निमित्तो का वोध कराने की आवश्यकता है। बिना पथ प्रदर्शन के भटक सकती है तो हल्का का सकेत भी उन्होने कर दिया कि 'मा पडिवध करेहि।'

साराश यह हुआ कि इच्छानुसार चित्त सारथी श्रावकधर्म ग्रहण करना चाहे तो कर ले। क्योकि जीवनशुद्धि के लिये कम-से-कम इतना त्याग तो प्रत्येक मनुष्य को करना ही चाहिए।

२२१—तए ण से चित्ते सारही केसिकुमारसमणस्स अतिए पचाणुव्वतिय जाव गिहिधम्म उवसपज्जित्ताण विहरति। तए णं से चित्ते सारही केसिकुमारसमण वदइ नमसइ, नमसित्ता जेणेव चाउग्घटे आसरहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए। चाउग्घट आसरह दुरूहइ, जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

२२१—तव चित्त सारथी ने केशी कुमारश्रमण के पास पाच अणुव्रत यावत् (सात शिक्षाव्रत-रूप) श्रावक धर्म को अगीकार किया।

तत्पश्चात् चित्त सारथी ने केशी कुमारश्रमण की वदना की, नमस्कार किया। नमस्कार करके जहाँ चार घटो वाला अश्वरथ था, उस ओर चलने को तत्पर—उन्मुख हुआ। वहाँ जाकर चार घंटो वाले अश्वरथ पर आरूढ हुआ, फिर जिस ओर से आया था, वापस उसी ओर लौट गया।

विवेचन—श्रावक धर्म पाच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रतरूप है। ये दोनो मिलकर श्रावक के बारह व्रत कहलाते है। इनमे अणुव्रत श्रावक के मूलव्रत है और शिक्षाव्रत उनके पोषण, सवर्धन एव रक्षण मे सहायक वाडरूप व्रत हैं। अणुव्रतो के बिना जैसे इन शिक्षाव्रतो का महत्त्व नही है, उसी प्रकार इनके बिना अणुव्रतो का यथारूप मे अभ्यास, पालन नही किया जा सकता है। शिक्षाव्रतो के अभ्यास से अणुव्रतो मे उत्तरोत्तर स्थिरता आती जाती है।

पाँच अणुव्रत इस प्रकार हैं—अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, स्वदार-सतोपव्रत, परिग्रह-परिमाणव्रत। १ प्राणातिपात (शरीर, इन्द्रिय, आदि द्रव्यप्राणो और चैतन्यरूप भावप्राणो का घात करना) से विरत-निवृत्त होना। इस व्रत मे निरपराधी त्रसजीवो की सकल्पपूर्वक विराधना का त्याग करके निष्प्रयोजन स्थावर-एकेन्द्रिय जीवो का भी प्राणव्यपरोपण (हनन) नही किया जाता है। २ मृषावाद (असत्य) से निवृत्त होना। ३ अदत्तादान (चोरी) से निवृत्त होना। ३ स्वदारसतोप—अपनी परिणीता पत्नी से अतिरिक्त अन्य स्त्रियो के साथ मैथुनसेवन न करना। ५ परिग्रह का परिमाण करना।

सात शिक्षाव्रतो का दो प्रकारो मे विभाजन है—गुणव्रत और शिक्षाव्रत। गुणव्रत तीन और शिक्षाव्रत चार हैं। गुणव्रत अणुव्रतो के गुणात्मक विकास मे सहायक एव साधक के चारित्रगुणो की वृद्धि करने वाले हैं और शिक्षाव्रत अणुव्रतो के अभ्यास एव साधना मे स्थिरता लाने मे उपयोगी है।

२२२—तए ण से चित्ते सारही समणोवासए जाए अहिगयजीवाजीवे, उवलद्ध पुण्ण-पावे; आसव-सवर-निज्जर-किरियाहिगरण-बध-मोक्ख-कुसले असहिज्जे देवासुर-णाग-सुवण्ण-जक्ख-रक्खस-किन्नर-किंपुरिस--गरुल-गधव्व-महोरगाईहिं देवगणेहिं निग्गथाओ पावयणाओ अणइक्कमणिज्जे, निग्गथे पावयणे णिस्सकिए, णिक्कखिए, णिव्वितिगिच्छे, लद्धट्ठे गहियट्ठे पुच्छियट्ठे अहिगयट्ठे विणिच्छियट्ठे, अट्ठिमिजपेम्माणुरागरत्ते—'अयमाउसो ! निग्गथे पावयणे अट्ठे अय परमट्ठे सेसे अणट्ठे', ऊसियफलिहे अवगुयदुवारे चियत्ततेउरघरप्पवेसे चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसह सम्म अणुपालेमाणे, समणेणिग्गंथे फासुएसणिज्जेण असण-पाण-खाइम-साइमेणं-पीढ-फलग-सेज्जा-सथारेण-वत्थ-पडिग्गह-कबल-पायपुछणेण ओसह-भेसज्जेण पडिलाभेमाणे, अहापरिग्गहेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाण भावेमाणे, जाइ तत्थ रायकज्जाणि य जाव[1] रायववहाराणि य ताइ जियसत्तुणा रण्णा सद्धि सयमेव पच्चुवेक्खमाणे पच्चुवेक्खमाणे विहरइ।

२२२ --तब वह चित्त सारथी श्रमणोपासक हो गया। उसने जीव-अजीव पदार्थों का स्वरूप समझ लिया था, पुण्य-पाप के भेद को जान लिया था, वह आश्रव, सवर, निर्जरा, क्रिया, अधिकरण (क्रिया का आधार, जिसके आधार से क्रिया की जाये), बध, मोक्ष के स्वरूप को जानने मे कुशल हो गया था, दूसरे की सहायता का अनिच्छुक (आत्मनिर्भर) था अर्थात् कुतीर्थिको के कुतर्कों के खडन मे पर की सहायता की अपेक्षा वाला नही रहा। देव, असुर, नाग, सुपर्ण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, गरुड, गधर्व, महोरग आदि देवताओ द्वारा निर्ग्रन्थ प्रवचन से अनतिक्रमणीय था, अर्थात् विचलित किये जा सकने योग्य नही था। निर्ग्रन्थ-प्रवचन मे नि शक—शकारहित था, आत्मोत्थान के सिवाय अन्य आकाक्षा रहित था। अथवा अन्य मतो की आकाक्षा उसके चित्त मे नही थी, विचिकित्सा—फल

१ देखें सूत्र सख्या २११

के प्रति सशय रहित था, लब्धार्थ—(गुरुजनो से) यथार्थ तत्त्व का बोध प्राप्त कर लिया था, ग्रहीतार्थ—उसे ग्रहण किये हुए था, विनिश्चितार्थ—निश्चित रूप से उस अर्थ को आत्मसात् कर लिया था एवं अस्थि और मज्जा पर्यन्त धर्मानुराग से भरा था अर्थात् उसकी रग-रग मे निर्ग्रन्थ प्रवचन के प्रति प्रेम और अनुराग व्याप्त था। वह दूसरो को सबोधित करते हुए कहता था कि—आयुष्मन्! यह निर्ग्रन्थप्रवचन ही अर्थ—प्रयोजनभूत है, यही परमार्थ है, इसके सिवाय अन्य—अन्यतीर्थिक के कथन कुगतिप्रापक होने से अनर्थ—अप्रयोजनभूत है। असद् विचारो से रहित हो जाने के कारण उनका हृदय स्फटिक की तरह निर्मल हो गया था। निर्ग्रन्थ श्रमणो का भिक्षा के निमित्त सरलता से प्रवेश हो सकने के विचार से उसके घर का द्वार अर्गलारहित था अर्थात् सुपात्र दान के लिये उसका द्वार सदा खुला रहता था। सभी के घरो, यहाँ तक कि अन्त पुर मे भी उसका प्रवेश शकारहित होने से प्रीतिजनक था। चतुर्दशी, अष्टमी, उद्दिष्ट—अमावस्या एव पूर्णिमा को परिपूर्ण पौषधव्रत का समीचीन रूप से पालन करते हुए, श्रमण निर्ग्रन्थो को प्रासुक, एषणीय—स्वीकार करने योग्य—निर्दोष अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य आहार, पीठ, फलक, शैय्या, सस्तारक, आसन, वस्त्र, पात्र, कबल, पादप्रोछन (रजोहरण), औषध, भैषज से प्रतिलाभित करते हुए एव यथाविधि ग्रहण किये हुए तप कर्म से आत्मा को भावित—शुद्ध करते हुए जितशत्रु राजा के साथ रहकर स्वय उस श्रावस्ती नगरी के राज्यकार्यो यावत् राज्यव्यवहारो का वारम्वार अवलोकन-अनुभव करते हुए विचरने लगा।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे ऐसे मनुष्य का चरित्र-चित्रण किया है, जो जीवनशुद्धि के निमित्त धार्मिक आचार-विचारो के अनुरूप प्रवृत्ति करता है।

२२३—तए ण से जियसत्तुराया अण्णया कयाइ महत्थ जाव पाहुड सज्जेइ, चित्त सारहिं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—गच्छाहि ण तुम चित्ता! सेयवियं नगरिं, पएसिस्स रन्नो इम महत्थं जाव पाहुड उवणेहि। मम पाउग्गं च णं जहाभणियं अवितहमसदिद्धं वयण विन्नवेहि त्ति कट्टु विसज्जिए।

२२३—तत्पश्चात् अर्थात् चित्त सारथी को श्रावस्ती नगरी मे रहते-रहते पर्याप्त समय हो जाने के पश्चात् जितशत्रु राजा ने किसी समय महाप्रयोजनसाधक यावत् प्राभृत (उपहार) तैयार किया और चित्त सारथी को बुलाया। बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—हे चित्त! तुम वापस सेयविया नगरी जाओ और महाप्रयोजनसाधक यावत् इस उपहार को प्रदेशी राजा के सन्मुख भेट करना तथा मेरी ओर से विनयपूर्वक उनसे निवेदन करना कि आपने मेरे लिये जो सदेश भिजवाया है, उसे उसी प्रकार अवितथ—सत्य, प्रमाणिक एव असदिग्ध रूप से स्वीकार करता हूँ। ऐसा कहकर चित्त सारथी को सम्मानपूर्वक विदा किया।

चित्त की केशी कुमारश्रमण से सेयविया पधारने की प्रार्थना—

२२४—तए ण से चित्ते सारही जियसत्तुणा रन्ना विसज्जिए समाणे त महत्थ जाव (महग्घ, महरिह, रायरिह पाहुड) गिण्हइ जाव जियसत्तुस्स रण्णो अतियाओ पडिनिक्खमइ। सावत्थी नयरीए मज्झंमज्झेण निग्गच्छइ। जेणेव रायमग्गमोगाढे आवासे तेणेव उवागच्छइ, त महत्थ जाव ठवइ, ण्हाए जाव (कयबलिकम्मे, कयकोउयमगलपायच्छित्ते सुद्धप्पवेसाइ मगलाइ वत्थाइंपवर परिहिए अप्पमहग्घाभरणालकिय) सरीरे सकोरट०[1] महया०[2] पायचारविहारेण महया पुरिसवग्गुरापरिक्खित्ते रायमग्ग-

---

१ यहा '०' से 'मल्लदामेण छत्तेण धरेज्जमाणेण' पदो का सग्रह किया है।

२ यहा ० मे 'भडचडगररहपहकरविंद परिक्खित्ते' पद का सग्रह किया है।

मोगाढाम्रो भ्रावासाम्रो निग्गच्छइ, सावत्थीनगरीए मज्झमज्झेणं निग्गच्छति, जेणेव कोट्ठए चेइए जेणेव केसी कुमारसमणे तेणेव उवागच्छति, केसी कुमारसमणस्स अन्तिए धम्मं सोच्चा जाव (निसम्म हट्ठ-तुट्ठ-चित्तमाणंदिए-पीइमणे-परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता केसि कुमारसमण तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिण करेइ, करित्ता वदई णमसइ, वंदित्ता णमसित्ता) एव वयासी— एव खलु अहं भंते ! जियसत्तुणा रन्ना पएसिस्स रन्नो इम महत्थ जाव उवणेहि त्ति कट्टु विसज्जिए, त गच्छामि ण अह भते ! सेयविय नगरिं, पासादीया ण भंते ! सेयविया णगरी, एव दरिसणिज्जा णं भते ! सेयविया णगरी, अभिरूवा ण भते ! सेयविया नगरी, पडिरूवा ण भ ते ! सेयविया नगरी, समोसरह ण भ ते ! तुब्भे सेयविय नगरिं।

२२४—तत्पश्चात् जितशत्रु राजा द्वारा विदा किये गये चित्त सारथी ने उस महाप्रयोजन-साधक यावत् उपहार को ग्रहण किया यावत् जितशत्रु राजा के पास से रवाना होकर श्रावस्ती नगरी के बीचो-बीच से निकला। निकल कर राजमार्ग पर स्थित अपने आवास मे आया और उस महार्थक यावत् उपहार को एक ओर रखा। फिर स्नान किया, यावत् शरीर को विभूषित किया, कोरंट पुष्प की मालाओ से युक्त छत्र को धारण कर विशाल जनसमुदाय के साथ पैदल ही राजमार्ग स्थित आवासगृह से निकला और श्रावस्ती नगरी के बीचो-बीच से चलता हुआ वहाँ आया जहाँ कोष्ठक चैत्य था, उसमे भी जहाँ केशी कुमारश्रमण विराजमान थे। वहाँ आकर केशी कुमारश्रमण से धर्म सुनकर यावत् (उसका मनन कर हर्षित, परितुष्ट, चित्त मे आनन्द एव प्रसन्नता का अनुभव करता हुआ, सौम्य मानसिक भावो से युक्त एव हर्षातिरेक से विकसितहृदय होकर अपने आसन से उठा, और उठकर केशी कुमारश्रमण की तीनवार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, वदन-नमस्कार किया, वदन-नमस्कार करके) इस प्रकार निवेदन किया—

भगवन् ! 'प्रदेशी राजा के लिए यह महार्थक यावत् उपहार ले जाओ' कहकर जितशत्रु राजा ने आज मुझे विदा किया है। अतएव हे भदन्त ! मैं सेयविया नगरी लौट रहा हूँ। हे भदन्त ! सेयविया नगरी प्रासादीया—मन को आनन्द देने वाली है। भगवन् ! सेयविया नगरी दर्शनीय—देखने योग्य है। भदन्त ! सेयविया नगरी अभिरूपा—मनोहर है। भगवन् ! सेयविया नगरी प्रतिरूपा—अतीव मनोहर है। अतएव हे भदन्त ! आप सेयविया नगरी मे पधारने की कृपा करे।

२२५—तए ण से केसी कुमारसमणे चित्तेणं सारहिणा एव वुत्ते समाणे चित्तस्स सारहिस्स एयमट्ठ णो आढाइ, णो परिजाणाइ, तुसिणीए सचिट्ठइ।

तए ण से चित्ते सारही केसी कुमारसमण दोच्च पि तच्च पि एव वयासी—एव खलु अह भ ते ! जियसत्तुणा रन्ना पएसिस्स रण्णो इम महत्थ जाव विसज्जिए, त चेव जाव समोसरह ण भ ते ! तुब्भे सेयविय नगरिं।

२२५—इस प्रकार से चित्त सारथी द्वारा प्रार्थना किये जाने पर भी केशी कुमारश्रमण ने चित्त सारथी के कथन का आदर नही किया अर्थात् उसे स्वीकार नही किया। वे मौन रहे।

तब चित्त सारथी ने पुन दूसरी और तीसरी बार भी इसी प्रकार कहा—हे भदन्त ! प्रदेशी राजा के लिए महाप्रयोजन साधक उपहार देकर जितशत्रु राजा ने मुझे विदा कर दिया है। अतएव मैं लौट रहा हूँ। सेयविया नगरी प्रासादिक है, आप वहाँ पधारने की अवश्य कृपा करे।

केशी कुमारश्रमण का उत्तर

२२६—तए ण केसी कुमारसमणे चित्तेण सारहिणा दोच्च पि तच्च पि एव वुत्ते समाणे चित्तं सारहिं एव वयासी—चित्ता ! से जहानामए वणसडे सिया—किण्हे किण्होभासे जाव पडिरूवे, से णूणं चित्ता ! से वणसडे बहूणं दुपय-चउप्पय-मिय-पसु-पक्खी-सिरीसिवाण अभिगमणिज्जे ?

हता अभिगमणिज्जे ।

तसि च ण चित्ता ! वणसडसि बहवे भिलु गा नाम पावसउणा परिवसति, जे ण तेसिं बहूण दुपय-चउप्पय-मिय-पसु-पक्खी-सिरीसिवाण ठियाणं चेव मससोणियं आहारेंति । से णूण चित्ता ! से वणसडे तेसि ण बहूणं दुपय जाव सिरीसिवाण अभिगमणिज्जे ?

णो तिणट्ठे समट्ठे ।

कम्हा ण ?

भ ते ! सोवसग्गे ।

एवामेव चित्ता ! तुब्भं पि सेवियाए णयरीए पएसी नाम राया परिवसइ अधम्मिए जाव (अधम्मिट्ठे-अधम्मक्खाई-अधम्माणुए-अधम्मपलोई-अधम्मपजणणे-अधम्मसीलसमुयायारे-अधम्मेण चेव वित्ति कप्पेमाणे 'हण'-'छिंद'-'भिंद'-पवत्तए, लोहिय-पाणी, पावे, चंडे, रुद्दे, खुद्दे, साहस्सीए, उक्कचण-वचण-माया-नियडि-कूड-कवड-सायिसपओग-बहुले, निस्सीले, निव्वए, निग्गुणे, निम्मेरे, निप्पच्चक्खाणपोसहोववासे, बहूण दुप्पय-चउप्पयमिय-पसु-पक्खी-सिरिसवाण घायाए वहाए उच्छायणयाए अधम्मकेऊ, समुट्ठिए गुरुण णो अब्भुट्ठेति, णो विणय पउजइ, सयस्स वि य ण जणवयस्स) णो सम्मं करभरवित्ति पवत्तइ, त कह ण अह चित्ता ! सेयवियाए नगरीए समोसरिस्सामि ?

२२६—चित्त सारथी द्वारा दूसरी और तीसरी बार भी इसी प्रकार से विनति किये जाने पर केशी कुमारश्रमण ने चित्त सारथी से कहा—हे चित्त ! जैसे कोई एक कृष्णवर्ण एव कृष्णप्रभा वाला अर्थात् हरा-भरा यावत् अतीव मनमोहक सघन छाया वाला वनखड हो तो हे चित्त ! वह वनखड अनेक द्विपद (मनुष्य आदि), चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी, सरीसृपो आदि के गमन योग्य—रहने लायक है, अथवा नही है ?

चित्त ने उत्तर दिया—हाँ, भदन्त ! वह उनके गमन योग्य—वास करने योग्य—होता है ।

उसके पश्चात् पुन केशी कुमारश्रमण ने चित्त सारथी से पूछा—और यदि उसी वनखड मे, हे चित्त ! उन बहुत-से द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी और सर्प आदि प्राणियो के रक्त-मास को खाने वाले भीलु गा नामक पापशकुन (पशुओ का शिकार करने वाले पापिष्ठ भील) रहते हो तो क्या वह वनखड उन अनेक द्विपदो यावत् सरीसृपो के रहने योग्य हो सकता है ?

चित्त ने उत्तर दिया—यह अर्थ समर्थ नही है अर्थात् ऐसी स्थिति मे वह वास करने योग्य नही हो सकता है ।

पुन केशी कुमारश्रमण ने पूछा—क्यो ? अर्थात् वह उनके लिये अभिगमनीय—प्रवेश करने योग्य, रहने योग्य क्यो नही हो सकता ?

चित्त सारथी—क्योकि भदन्त ! वह वनखड उपसर्ग (त्रास, भय, दु ख) सहित होने से रहने योग्य नही है।

यह सुनकर केशी कुमारश्रमण ने चित्त सारथी को समझाने के लिये कहा—इसी प्रकार हे चित्त ! तुम्हारी सेयविया नगरी कितनी ही अच्छी हो, परन्तु वहाँ भी प्रदेशी नामक राजा रहता है। वह अधार्मिक यावत् (अधर्म को प्रिय मानने वाला, अधर्म का कथन और प्रचार करने वाला, अधर्म का अनुसरण करने वाला, सर्वत्र अधर्म-प्रवृत्तियो को देखने वाला, विशेषरूप मे अधार्मिक आचार-विचारो का प्रचार करने वाला अथवा अधर्ममय प्रवृत्तियो का प्रचलन—उत्पन्न करने वाला, प्रजा को अधर्माचरण की ओर प्रेरित करने वाला, अधर्ममयस्वभाव और आचार वाला, अधर्म से ही आजीविका चलाने वाला है। अपने आश्रितो को सदैव जीवो को मारने, छेदने, भेदने की आज्ञा देने वाला है। उसके हाथ सदा खून से भरे रहते हैं। वह साक्षात् पाप का अवतार है। स्वभाव से प्रचड क्रोधी, भयानक, क्षुद्र—अधम और विना विचारे प्रवृत्ति करने वाला है। धूर्त-वदमाशो को प्रोत्साहन देने वाला, उकसाने वाला, लाच—रिश्वत लेने वाला, वचक—धोखा देने वाला, मायावी, कपटी, वक्रवृत्तिवत् प्रवृत्ति करने वाला, कूटकपट करने मे चतुर और किसी-न-किसी उपाय से दूसरो को दु ख देने वाला है। शील और व्रतो से रहित है, क्षमा आदि गुणो का अभाव होने से निर्गु ण है, निर्मर्याद है, उसके मन मे प्रत्याख्यान, पौषध, उपवास आदि करने का विचार ही नही आता है। अनेक द्विपद, चतुष्पद—मृग, पशु, पक्षी, सर्प आदि सरीसृपो की हत्या करने, उन्हे मारने, प्राणरहित करने, उनका विनाश करने से साक्षात् अधर्मरूप केतु—जैसा है। गुरुजनो का कभी विनय नही करता है, उनको आदर देने के लिये आसन से भी खडा नही होता और) प्रजाजनो मे राज-कर लेकर भी उनका अच्छी तरह से पालन—पोषण और रक्षण नही करता है। अतएव हे चित्त ! मैं उस सेयाविया नगरी मे कैसे आ सकता हूँ ?

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे साधु की विहारचर्या का सकेत किया है कि साधु को उन ग्राम, नगर या जनपदो मे नही जाना चाहिये, जहाँ राज्य-व्यवस्था उचित नही हो, राजभय से प्रजा का जीवन सकट मे हो, शासक अन्यायी हो अथवा दुर्भिक्ष महामारी का प्रकोप हो, युद्ध की आशका हो, युद्ध हो रहा हो। क्योकि ऐसे स्थानो मे यथाकल्प साध्वाचार का पालन किया जाना संभव नही है।

२२७—तए णं से चित्ते सारही केसिं कुमारसमणं एवं वयासी—

किं णं भंते ! तुब्भ पएसिणा रन्ना कायव्व ? अत्थि ण भंते ! सेयवियाए नगरीए अन्ने वहवे ईसर-तलवर जाव सत्थवाहपभिइओ जे णं देवाणुप्पियं वंदिस्संति नमसिस्संति जाव पज्जुवासिस्सति विउलं असण पाणं खाइमं साइमं पडिलाभिस्सति, पाडिहारिएण पीढ-फलग-सेज्जा-संथारेण उव-निमंतिस्संति।

तए ण से केसी कुमारसमणे चित्तं सारहिं एवं वयासी—अवि या इं चित्ता ! जाणिस्सामो।

२२७—इस उत्तर को सुनकर चित्त सारथी ने केशी कुमारश्रमण से निवेदन किया—हे भदन्त ! आपको प्रदेशी राजा से क्या करना है—क्या लेना-देना है ? भगवन् ! सेयविया नगरी मे दूसरे राजा, ईश्वर, तलवर यावत् सार्थवाह आदि वहुत से जन हैं, जो आप देवानुप्रिय को वदन

करेंगे, नमस्कार करेंगे यावत् आपकी पर्युपासना करेंगे। विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य आहार से प्रतिलाभित करेंगे, तथा प्रातिहारिक (वापस लौटाने योग्य) पीठ, फलक, शैय्या, सस्तारक ग्रहण करने के लिये उपनिमंत्रित करेंगे अर्थात् आपसे प्रार्थना करेंगे।

तब केशी कुमारश्रमण ने चित्त सारथी से कहा—हे चित्त! ध्यान मे रखेंगे अर्थात् तुम्हारा आमत्रण ध्यान मे रहेगा।

चित्त की उद्यानपालको को आज्ञा—

२२८—तए णं से चित्ते सारही केसि कुमारसमण वदइ नमसइ, केसिस्स कुमारसमणस्स अतियाओ कोट्ठयाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, जेणेव सावत्थी णगरी जेणेव रायमग्गमोगाढे आवासे तेणेव उवागच्छइ कोडु वियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी—

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! चाउग्घटं आसरहं जुत्तामेव उवट्ठवेह, जहा सेयवियाए नगरीए निग्गच्छइ तहेव जाव[1] वसमाणे कुणालाजणवयस्स मज्झमज्झेणं जेणेव केइयअद्धे, जेणेव सेयविया नगरी, जेणेव मियवणे उज्जाणे, तेणेव उवागच्छइ। उज्जाणपालए सद्दावेइ एव वयासी—

जया णं देवाणुप्पिया! पासावच्चिज्जे केसी नाम कुमारसमणे पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे, गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहमागच्छिज्जा तया ण तुब्भे देवाणुप्पिया! केसि कुमारसमण वदिज्जाह, नमसिज्जाह, वदित्ता नमसित्ता अहापडिरूव उग्गह अणुजाणेज्जाह, पडिहारिएणं पीढ-फलग जाव उवनिमंतिज्जाह, एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणेज्जाह।

तए णं ते उज्जाणपालगा चित्तेणं सारहिणा एव वुत्ता समाणा हट्ठ-तुट्ठ जाव हियया करयल-परिग्गहिय जाव एवं वयासी—तहत्ति, आणाए विणएणं वयण पडिसुणति।

२२८—तत्पश्चात् (केशी कुमारश्रमण से आश्वासन मिलने के पश्चात्) चित्त सारथी ने केशी कुमारश्रमण को वदना की, नमस्कार किया और केशी कुमारश्रमण के पास से एव कोष्ठक चैत्य से बाहर निकला। निकलकर जहाँ श्रावस्ती नगरी थी, जहाँ राजमार्ग पर स्थित अपना आवास था, वहाँ आया और कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाकर उनसे कहा—

हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही चार घटो वाला अश्वरथ जोतकर लाओ। इसके बाद जिस प्रकार पहले सेयविया नगरी से प्रस्थान किया था उसी प्रकार श्रावस्ती नगरी से निकल कर यावत् बीच-बीच मे विश्राम करता हुआ—पडाव डालता हुआ, कुणाला जनपद के मध्य भाग मे से चलता हुआ जहाँ केकय-अर्ध देश था, उसमे जहाँ सेयविया नगरी थी और जहाँ उस नगरी का मृगवन नामक उद्यान था, वहाँ आ पहुँचा। वहाँ आकर उद्यानपालको (चौकीदारो एव मालियो) को बुलाकर इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रियो! जब पार्श्वापत्य (भगवान् पार्श्वनाथ की परपरा मे विचरने वाले) केशी नामक कुमारश्रमण श्रमणचर्यानुसार अनुक्रम से विचरते हुए, ग्रामानुग्राम विहार करते हुए यहाँ पधारे तब देवानुप्रियो! तुम केशी कुमारश्रमण को वदना करना, नमस्कार करना। वदना-नमस्कार करके उन्हे यथाप्रतिरूप-साधुकल्पानुसार वसतिका की आज्ञा देना तथा प्रातिहारिक पीठ, फलक आदि

१ देखे सूत्र सख्या २११

के लिये उपनिमंत्रित करना—प्रार्थना करना और इसके बाद मेरी इस आज्ञा को शीघ्र ही मुझे वापस लौटाना अर्थात् जब केशी कुमारश्रमण का यहाँ पदार्पण हो जाये तो उनके आगमन की मुझे सूचना देना।

चित्त सारथी की इस आज्ञा को सुनकर वे उद्यानपालक हर्षित हुए, सन्तुष्ट हुए यावत् विकसितहृदय होते हुए दोनो हाथ जोड यावत् इस प्रकार बोले— .

हे स्वामिन्! 'आपकी आज्ञा प्रमाण' और यह कहकर उनकी आज्ञा को विनयपूर्वक स्वीकार किया।

२२९—तए णं चित्ते सारही जेणेव सेयविया णगरी तेणेव उवागच्छइ, सेयवियं नगरिं मज्झमज्झेण अणुपविसइ, जेणेव पएसिस्स रण्णो गिहे जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, तुरए णिगिण्हइ, रह ठवेइ, रहाओ पच्चोरूहइ, तं महत्थ जाव गेण्हइ, जेणेव पएसी राया तेणेव उवागच्छइ, पएसिं रायं करयल जाव वद्धावेत्ता त महत्थं जाव (महग्घ, महरिहं, रायरिह पाहुड) उवणेइ।

तए ण से पएसी राया चित्तस्स सारहिस्स तं महत्थं जाव पडिच्छइ चित्त सारहिं सक्कारेइ सम्माणेइ पडिविसज्जेइ।

तए णं से चित्ते सारही पएसिणा रण्णा विसज्जिए समाणे हट्ठ जाव हियए पएसिस्स रन्नो अतियाओ पडिनिक्खमइ, जेणेव चाउग्घटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, चाउग्घट आसरह दुरूहइ, सेयवियं नगरिं मज्झमज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, तुरए णिगिण्हइ, रहं ठवेइ, रहाओ पच्चोरुहइ ण्हाए जाव उप्पिं पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं बत्तीसइबद्धएहिं नाडएहिं वरतरुणीसपउत्तेहिं उवणच्चिज्जमाणे उवगाइज्जमाणे उवलालिज्जमाणे इट्ठे सद्दफरिस जाव विहरइ।

२२९—तत्पश्चात् चित्त सारथी सेयविया नगरी मे आ पहुँचा। सेयविया नगरी के मध्य भाग मे प्रविष्ट हुआ। प्रविष्ट होकर जहाँ प्रदेशी राजा का भवन था, जहाँ भवन की बाह्य उपस्थानशाला थी, वहाँ आया। आकर घोडो को रोका, रथ को खडा किया, रथ से नीचे उतरा और उस महार्थक यावत् भेंट को लेकर जहाँ प्रदेशी राजा था, वहाँ पहुँचा। पहुँच कर दोनो हाथ जोड यावत् जय-विजय शब्दो से वधाकर प्रदेशी राजा के सन्मुख उस महार्थक यावत् (महर्घ, महान पुरुषो के योग्य, राजाओ के अनुरूप भेंट) को उपस्थित किया।

इसके बाद प्रदेशी राजा ने चित्त सारथी से वह महार्थक यावत् भेंट स्वीकार की और सत्कार-समान करके चित्त सारथी को विदा किया।

प्रदेशी राजा से विदा लेकर चित्त सारथी हृष्ट यावत् विकसितहृदय हो प्रदेशी राजा के पास से निकला और जहाँ चार घटो वाला अश्वरथ था, वहाँ आया। उस चातुर्घंट अश्वरथ पर आरूढ हुआ तथा सेयविया नगरी के बीचोबीच से गुजर कर अपने घर आया। घर आकर घोडो को रोका, रथ को खडा किया और रथ से नीचे उतरा। इसके बाद स्नान करके यावत् श्रेष्ठ प्रासाद के ऊपर जोर-जोर से बजाये जा रहे मृदगो की ध्वनिपूर्वक उत्तम तरुणियो द्वारा किये जा रहे बत्तीस प्रकार के नाटको आदि के नृत्य, गान और क्रीड़ा (लीला) को सुनता, देखता और हर्षित होता हुआ मनोज्ञ

शब्द, स्पर्श यावत् (रस, रूप और गध वहुल मनुष्य सम्बन्धी कामभोगो को भोगता हुआ) विचरने लगा।

केशी कुमारश्रमण का सेयविया में पदार्पण—

२३०—तए ण केसी कुमारसमणे अण्णया कयाइ पाडिहारिय पीढ-फलग-सेज्जा-सथारग पच्चप्पिणइ सावत्थीओ नगरीओ कोट्ठगाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ पर्चाह अणगार सर्एाह जाव विहरमाणे जेणेव केइयअद्धे जणवए, जेणेव सेयविया नगरी, जेणेव मियवणे उज्जाणे, तेणेव उवागच्छइ, अहापडिरूव उग्गह उगिण्हित्ता सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरति।

२३०—तत्पश्चात् किसी समय प्रातिहारिक (वापिस लौटाने योग्य) पीठ, फलक, शय्या, सस्तारक आदि उन-उनके स्वामियो को सौपकर केशी कुमारश्रमण श्रावस्ती नगरी और कोष्ठक चैत्य से वाहर निकले। निकलकर पाँच सौ अन्तेवासी अनगारो के साथ यावत् विहार करते हुए जहाँ केकय-अर्ध जनपद था, उसमे जहा सेयविया नगरी थी और उस नगरी का मृगवन नामक उद्यान था, वहाँ आये। यथाप्रतिरूप अवग्रह (वसतिका की आज्ञा—अनुमति) लेकर सयम एव तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

विवेचन—पीठ आदि को लौटाने के उपर्युक्त उल्लेख से प्रतीत होता है कि प्राचीनकाल मे साधु पीठ, फलक, सस्तारक आदि स्वय गृहस्थ के यहाँ से गवेषणापूर्वक माग कर लाते थे और उपयोग कर लेने के वाद स्वय ही उनके स्वामियो को वापस लौटाते थे।

२३१—तए ण सेयवियाए नगरीए सिंघाडग महया जणसद्दे वा०[1] परिसा णिग्गच्छइ। तए णं ते उज्जाणपालगा इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा हट्ठतुट्ठ जाव हियया जेणेव केसी कुमारसमणे तेणेव उवागच्छन्ति, केसिं कुमारसमण वदति नमंसति, अहापडिरूवं उग्गह अणुजाणति, पाडिहारिएणं जाव संथारएणं उवनिमतंति, णाम गोय पुच्छति, ओधारेंति, एगंत अवक्कमति, अन्नमन्नं एवं वयासी—जस्स ण देवाणुप्पिया! चित्ते सारही दसणं कखइ, दंसण पत्थेइ, दसणं पीहेइ, दसण अभिलसइ, जस्स ण णामगोयस्स वि सवणयाए हट्ठतुट्ठ जाव हियए भवति, से ण एस केसी कुमार-समणे पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुगाम दूइज्जमाणे इहमागए, इह सपत्ते, इह समोसढे इहेव सेयवियाए णगरीए वहिया मियवणे उज्जाणे अहापडिरूव जाव विहरइ। त गच्छामो ण देवाणुप्पिया! चित्तस्स सारहिस्स एयमट्ठ पिय निवेएमो, पिय से भवउ। अण्णमण्णस्स अतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति।

जेणेव सेयविया णगरी जेणेव चित्तस्स सारहिस्स गिहे, जेणेव चित्तसारही तेणेव उवागच्छति, चित्त सार्राह करयल जाव वद्धावेंति एवं वयासी—जस्स ण देवाणुप्पिया! दसण कखति जाव अभिलसति, जस्स ण णामगोयस्स वि सवणयाए हट्ठ जाव भवइ, से ण अय केसी कुमारसमणे पुव्वाणु-पुव्वि चरमाणे समोसढे जाव विहरइ।

२३१ तत्पश्चात् (केशी कुमारश्रमण का आगमन होने के पश्चात्) सेयविया नगरी के शृ गाटको आदि स्थानो पर लोगो मे वातचीत होने लगी यावत् परिषद् वदना करने निकली। वे

१ देखे सूत्र सख्या २१४

उद्यानपालक भी इस सवाद को सुनकर और समझ कर हर्षित, सन्तुष्ट हुए यावत् विकसित-हृदय होते हुए जहाँ केशी कुमारश्रमण थे, वहाँ आये। आकर केशी कुमारश्रमण को वदना की, नमस्कार किया एव यथाप्रतिरूप अवग्रह (स्थान सवधी अनुमति) प्रदान की। प्रातिहारिक यावत् सस्तारक आदि ग्रहण करने के लिये उपनिमत्रित किया अर्थात् उनसे लेने की प्रार्थना की।

इसके बाद उन्होने नाम एव गोत्र पूछकर (चित्त सारथी की आज्ञा का) स्मरण किया फिर एकान्त मे वे परस्पर एक दूसरे से इस प्रकार बातचीत करने लगे—'देवानुप्रियो! चित्त सारथी जिनके दर्शन की आकाक्षा करते हैं, जिनके दर्शन की प्रार्थना करते हैं, जिनके दर्शन की स्पृहा—चाहना करते है, जिनके दर्शन की अभिलाषा करते है, जिनका नाम, गोत्र सुनते ही हर्षित, सन्तुष्ट यावत् विकसितहृदय होते हैं, ये वही केशी कुमारश्रमण पूर्वानुपूर्वी से गमन करते हुए, एक गाव से दूसरे गाव मे विहार करते हुए यहाँ आये हैं, यहाँ प्राप्त हुए है, यहाँ पधारे हैं तथा इसी सेयविया नगरी के बाहर मृगवन उद्यान मे यथाप्रतिरूप अवग्रह ग्रहण करके यावत् विराजते हैं। अतएव हे देवानुप्रियो! हम चले और चित्त सारथी के प्रिय इस अर्थ को (केशी कुमारश्रमण के आगमन होने के समाचार को) उनसे निवेदन करे। हमारा यह निवेदन उन्हे बहुत ही प्रिय लगेगा।' एक दूसरे ने इस विचार को स्वीकार किया।

इसके बाद वे वहाँ आये जहाँ सेयविया नगरी, चित्त सारथी का घर तथा घर मे जहाँ चित्त सारथी था। वहाँ आकर दोनो हाथ जोड यावत् चित्त सारथी को वधाया और इस प्रकार निवेदन किया—देवानुप्रिय! आपको जिनके दर्शन की इच्छा है यावत् आप अभिलाषा करते हैं और जिनके नाम एव गोत्र को सुनकर आप हर्षित होते है, ऐसे केशी कुमारश्रमण पूर्वानुपूर्वी से विचरते हुए यहाँ (मृगवन उद्यान मे) पधार गये हैं यावत् विचर रहे है।

चित्त का प्रदेशी राजा को प्रतिबोध देने का निवेदन—

२३२—तए ण से चित्ते सारही तेसिं उज्जाणपालगाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ जाव आसणाओ अब्भुट्ठेति, पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पाउयाओ ओमुयइ, एगसाडियं उत्तरासगं करेइ, अजलिमउलियग्गहत्थे केसिकुमारसमणाभिमुहे सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एव वयासी—

नमोऽत्थु ण अरहताणं जाव[1] संपत्ताण नमोऽत्थु णं केसिस्स कुमारसमणस्स मम धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स। व दामि णं भगव त तत्थगय इहगए, पासउ मे त्ति कट्टु वंदइ नमंसइ।

ते उज्जाणपालए विउलेण वत्थगधमल्लालंकारेण सक्कारेइ सम्माणेइ विउल जीवियारिहं पीइदाण दलयइ, पडिविसज्जेइ।

कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ एव वयासी—खिप्पामेव भो! देवाणुप्पिया चाउग्घटं आसरहं जुत्तामेव उवट्ठवेह जाव पच्चप्पिणह।

तए णं ते कोडुबियपुरिसा जाव खिप्पामेव सच्छत्त सज्झयं जाव उवट्ठवित्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति। तए णं से चित्ते सारही कोडुंबियपुरिसाण अतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ जाव-

---

१ देखें सूत्र सख्या १९९

हियए ण्हाए कयबलिकम्मे जाव सरीरे जेणेव चाउग्घंटे जाव दुरूहित्ता सकोरंट० महया भडचडगरेण त चेव जाव पज्जुवासइ धम्मकहाए जाव ।

२३२—तब वह चित्त सारथी उन उद्यानपालको से इस सवाद को सुनकर एव हृदय मे धारण कर हर्षित, सतुष्ट हुआ । चित्त मे आनदित हुआ, मन मे प्रीति हुई । परम सौमनस्य को प्राप्त हुआ । हर्षातिरेक से विकसितहृदय होता हुआ अपने आसन से उठा, पादपीठ से नीचे उतरा, पादुकाए उतारी, एकशाटिक उत्तरासग किया और मुकुलित हस्ताग्रपूर्वक अजलि करके जिस ओर केशी कुमारश्रमण विराजमान थे, उस ओर सात-आठ डग चला और फिर दोनो हाथ जोड आवर्तपूर्वक मस्तक पर अजलि करके उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगा—

अरिहत भगवन्तो को नमस्कार हो यावत् सिद्धगति को प्राप्त सिद्ध भगवन्तो को नमस्कार हो । मेरे धर्माचार्य, मेरे धर्मोपदेशक केशी कुमारश्रमण को नमस्कार हो । उनकी मैं वन्दना करता हूँ । वहाँ विराजमान वे भगवान् यहाँ विद्यमान मुझे देखें, इस प्रकार कहकर वदन-नमस्कार किया ।

इसके पश्चात् उन उद्यानपालको का विपुल वस्त्र, गध, माला, अलकारो से सत्कार-सन्मान किया तथा जीविकायोग्य विपुल प्रीतिदान (पारितोषिक) देकर उन्हे विदा किया । तदनन्तर कौटुम्बिक पुरुषो को बुलाया और उनको आज्ञा दी—हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही तुम चार घटो वाला अश्वरथ जोतकर उपस्थित करो यावत् हमे इसकी सूचना दो ।

तब वे कौटुम्बिक पुरुष यावत् शीघ्र ही छत्र एव ध्वजा-पताकाओ से शोभित रथ को उपस्थित कर आज्ञा वापस लौटाते है—रथ लाने की सूचना देते है ।

कौटुम्बिक पुरुषो से रथ लाने की बात सुनकर एव हृदय मे धारण कर हृष्ट-तुष्ट यावत् विकसितहृदय होते हुए चित्त सारथी ने स्नान किया, बलिकर्म किया यावत् आभूषणो से शरीर को अलकृत किया । जहाँ चार घण्टो वाला रथ था, वहाँ आया और उस पर आरूढ होकर कोरट पुष्पों की मालाओ से युक्त छत्र को धारण कर विशाल सुभटो के समुदाय सहित रवाना हुआ । वहाँ पहुच कर पर्युपासना करने लगा । केशी कुमारश्रमण ने धर्मोपदेश दिया । इत्यादि कथन पहले के समान यहाँ समझ लेना चाहिये ।

२३३—तए ण से चित्ते सारही केसिस्स कुमारसमणस्स अतिए धम्म सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे तहेव एव वयासी—एव खलु भंते ! अम्ह पएसी राया अधम्मिए जाव[1] सयस्स वि ण जणवयस्स नो सम्म करभरवित्ति पवत्तेइ, त जइ ण देवाणुप्पिया ! पएसिस्स रण्णो धम्ममाइक्खेज्जा बहुगुणतर खलु होज्जा पएसिस्स रण्णो तेसिं च बहूणं दुपयचउप्पयमियपसुपक्खीसिरीसवाण, तेसिं च बहूण समण-माहणभिक्खुयाण, त जइ ण देवाणुप्पिया ! पएसिस्स बहुगुणतर होज्जा सयस्स वि य ण जणवयस्स ।

२३३—तत्पश्चात् धर्म श्रवण कर और हृदय मे धारण कर हर्षित, सन्तुष्ट, चित्त मे आनदित, अनुरागी, परम सौम्यभाव युक्त एव हर्षातिरेक से विकसितहृदय होकर चित्त सारथी ने केशी कुमार-श्रमण से निवेदन किया—

हे भदन्त ! हमारा प्रदेशी राजा अधार्मिक है, यावत् राजकर लेकर भी समीचीन रूप से

१ देखें सूत्र सख्या २२६

अपने जनपद का पालन एव रक्षण नही करता है। अतएव आप देवानुप्रिय ! यदि प्रदेशी राजा को धर्म का आख्यान करेंगे—धर्मोपदेश देंगे तो प्रदेशी राजा के लिये, साथ ही अनेक द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी, सरीसृपो आदि के लिये तथा वहुत से श्रमणो, माहणो एव भिक्षुओ आदि के लिये बहुत-बहुत गुणकारी—हितावह, लाभदायक होगा। हे देवानुप्रिय ! यदि वह धर्मोपदेश प्रदेशी के लिये हितकर हो जाता है तो उससे जनपद—देश को भी बहुत लाभ होगा।

केशी कुमारश्रमरण का उत्तर—

२३४—तए ण केसी कुमारसमणे चित्त सारहिं एव वयासी—

एव खलु चउहिं ठाणेहिं चित्ता ! जीवा केवलिपन्नत्त धम्मं नो लभेज्जा सवणयाए, तं जहा—

(१) आरामगय वा उज्जाणगय वा समणं वा माहण वा णो अभिगच्छइ, णो वंदइ, णो णमसइ, णो सक्कारेइ, णो सम्माणेइ, णो कल्लाण मंगल देवय चेइय पज्जुवासेइ, नो अट्ठाइ हेऊइं पसिणाइ कारणाइं वागरणाइं पुच्छइ, एएण ठाणेणं चित्ता ! जीवा केवलिपन्नत्त धम्मं नो लभति सवणयाए।

(२) उवस्सयगयं समणं वा त चेव जाव एतेण वि ठाणेणं चित्ता ! जीवा केवलिपन्नत्तं धम्मं नो लभति सवणयाए।

(३) गोयरग्गगयं समणं वा माहणं वा जाव नो पज्जुवासइ, णो विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभइ० णो अट्ठाइ जाव पुच्छइ, एएणं ठाणेणं चित्ता ! केवलिपन्नत्त धम्मं नो लभइ सवणयाए।

(४) जत्थ वि य ण समणेण वा माहणेण वा सद्धि अभिसमागच्छइ, तत्थ वि ण हत्थेण वा वत्थेण वा छत्तेण वा अप्पाण आवरित्ता चिट्ठइ, नो अट्ठाइं जाव पुच्छइ, एएण वि ठाणेण चित्ता ! जीवे केवलिपन्नत्त धम्मं णो लभइ सवणयाए। एएहिं च ण चित्ता ! चउहिं ठाणेहिं जीवे णो लभइ केवलिपन्नत्त धम्म सवणयाए।

चउहिं ठाणेहिं चित्ता ! जीवे केवलिपन्नत्त धम्म लभइ सवणयाए त जहा—(१) आरामगय वा उज्जाणगय वा समण वा माहण वा व दइ नमंसइ जाव (सक्कारेइ, सम्माणेइ कल्लाणं मगलं देवयं चेइय) पज्जुवासइ अट्ठाइ जाव (हेऊइ पसिणाइं कारणाइं वागरणाइ) पुच्छइ, एएण वि जाव लभइ सवणयाए एव (२) उवस्सयगय (३) गोयरग्गगयं समणं वा जाव पज्जुवासइ विउलेण जाव (असण-पाण-खाइम-साइमेणं) पडिलाभेइ, अट्ठाइ जाव पुच्छइ एएण वि० (४) जत्थ वि य णं समणेण वा माहणेण वा अभिसमागच्छइ तत्थ वि य ण णो हत्थेण वा जाव (वत्थेण वा, छत्तेण वा अप्पाण) आवरेत्ताण चिट्ठइ, एएण वि ठाणेणं चित्ता ! जीवे केवलिपन्नत्तं धम्मं लभइ सवणयाए।

तुज्झं च णं चित्ता ! पएसी राया आरामगय वा तं चेव सव्वं भाणियव्वं आइल्लएणं गमएणं जाव अप्पाणं आवरेत्ता चिट्ठइ, तं कह णं चित्ता ! पएसिस्स रन्नो धम्ममाइक्खिस्सामो ?

२३४—चित्त सारथी की भावना को सुनने के अनन्तर केशी कुमारश्रमण ने चित्त सारथी को समझाया—

हे चित्त ! जीव निश्चय ही इन चार कारणो से केवलि-भाषित धर्म को सुनने का लाभ प्राप्त नही कर पाता है । वे चार कारण इस प्रकार हैं—

१ आराम (बाग) मे अथवा उद्यान मे स्थित श्रमण या माहन के अभिमुख जो नही जाता है, मधुर वचनो से जो उनकी स्तुति नही करता है, मस्तक नमाकर उनको नमस्कार नही करता है, अभ्युत्थानादि द्वारा (आसन से उठकर) उनका सत्कार नही करता है, उनका सम्मान नही करता है तथा कल्याण स्वरूप, मगल स्वरूप, देव स्वरूप, विशिष्ट ज्ञान स्वरूप मानकर जो उनकी पर्युपासना नही करता है, जो अर्थ—जीवाजीवादि पदार्थो को, हेतुओ (मुक्ति के उपायो) को जानने की इच्छा से प्रश्नो को, कारणो (ससारबन्ध के कारणो) को, व्याख्याओ (तत्त्वो का पूर्ण ज्ञान करने के लिये उनके स्वरूप) को नही पूछता है, तो हे चित्त ! वह जीव केवलि-प्रज्ञप्त धर्म को सुन नही पाता है ।

२. उपाश्रय मे स्थित श्रमण आदि का वन्दन, नमन, सत्कार-समान आदि करने के निमित्त जो उनके सन्मुख नही जाता यावत् उनसे व्याकरण (तत्त्व का विवेचन) नही पूछता, तो इस कारण भी हे चित्त ! वह जीव केवलि-भाषित धर्म को सुन नही पाता है ।

३ गोचरी—भिक्षा के लिये गाव मे गये हुए श्रमण अथवा माहन का सत्कार आदि करने के निमित्त जो उनके समक्ष नही जाता यावत् उनकी पर्युपासना नही करता तथा विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य आहार से उन्हे प्रतिलाभित नही करता, एव शास्त्र के अर्थ यावत् व्याख्या को उनसे नही पूछता, तो ऐसा जीव भी हे चित्त ! केवली भगवान् द्वारा निरूपित धर्म को सुन नही पाता है ।

४ कही श्रमण या माहन का सुयोग मिल जाने पर भी वहाँ अपने आप को छिपाने के लिये अथवा पहचाना न जाऊँ, इस विचार से हाथ से, वस्त्र से, छत्ते से स्वय को आवृत कर लेता है, ढाँक लेता है एव उनसे अर्थ आदि नही पूछता है, तो इस कारण से भी हे चित्त ! वह जीव केवलिप्रज्ञप्त धर्म श्रवण करने का अवसर प्राप्त नही कर सकता है ।

उक्त चार कारणो से हे चित्त ! जीव केवलिभाषित धर्म श्रवण करने का लाभ नही ले पाता है, किन्तु हे चित्त ! इन चार कारणो से जीव केवलिप्रज्ञप्त धर्म को सुनने का अवसर प्राप्त कर सकता है । वे चार कारण इस प्रकार है—

१ आराम मे अथवा उद्यान मे पधारे हुए श्रमण या माहन को जो वन्दन करता है, नमस्कार करता है यावत् (सत्कार समान करता है और कल्याणरूप मगलरूप देवरूप एव ज्ञानरूप मानकर) उनकी पर्युपासना करता है, अर्थो को यावत् (हेतुओ, प्रश्नो, कारणो, व्याख्याओ को) पूछता है तो हे चित्त ! वह जीव केवलिप्ररूपित धर्म को सुनने का अवसर प्राप्त कर सकता है ।

२ इसी प्रकार जो जीव उपाश्रय मे रहे हुए श्रमण या माहन को वन्दन-नमस्कार करता है यावत् उनकी पर्युपासना करता हुआ अर्थो आदि को पूछता है तो वह केवलि-प्रज्ञप्त धर्म को सुन सकता है ।

३ इसी प्रकार जो जीव गोचरी—भिक्षाचर्या के लिये गए हुए श्रमण या माहन को वन्दन-नमस्कार करता है यावत् उनकी पर्युपासना करता है तथा विपुल (अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य रूप

आहार से) उन्हे प्रतिलाभित करता है, उनसे अर्थों आदि को पूछता है, वह जीव इस निमित्त से भी केवलिभाषित अर्थ को सुनने का अवसर प्राप्त कर सकता है।

४ इसी प्रकार जो जीव जहाँ कही श्रमण या माहन का सुयोग मिलने पर हाथो, वस्त्रो, छत्ता आदि से स्वय को छिपाता नही है, हे चित्त ! वह जीव केवलिप्रज्ञप्त धर्म सुनने का लाभ प्राप्त कर सकता है।

लेकिन हे चित्त ! तुम्हारा प्रदेशी राजा जब वाग मे पधारे हुए श्रमण या माहन के सन्मुख ही नही आता है यावत् अपने को आच्छादित कर लेता है, तो फिर हे चित्त ! प्रदेशी राजा को मैं कैसे धर्म का उपदेश दे सकूँगा ? (यहाँ पूर्व के चारो कारण समझ लेना चाहिए।')

प्रदेशी राजा को लाने हेतु चित्त की युक्ति—

२३५—तए णं से चित्ते सारही केसिकुमारसमणं एव वयासी—एवं खलु भंते ! अण्णया कयाइ कवीएहिं चत्तारि आसा उवणय उवणीया, ते मए पएसिस्स रण्णो अन्नया चेव उवणीया, तं एएण खलु भंते ! कारणेण अहं पएसिं राय देवाणुप्पियाण अंतिए हव्वमाणेस्सामो, त मा णं देवाणुप्पिया ! तुब्भे पएसिस्स रन्नो धम्ममाइक्खमाणा गिलाएज्जाह, अगिलाए ण भंते ! तुब्भे पएसिस्स रण्णो धम्ममाइक्खेज्जाह, छंदेण भंते ! तुब्भे पएसिस्स रण्णो धम्ममाइक्खेज्जाह।

तए ण से केसी कुमारसमणे चित्तं सारहिं एवं वयासी—अवि या इं चित्ता ! जाणिस्सामो।

तए ण से चित्ते सारही केसिं कुमारसमणं व दइ नमसइ, जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, चाउग्घंट आसरह दुरूहइ, जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

२३५—केशी कुमारश्रमण के कथन को सुनने के अनन्तर चित्त सारथी ने उन से निवेदन किया—हे भदन्त ! किसी समय कंबोज देशवासियो ने चार घोड़े उपहार रूप भेट किये थे। मैंने उनको प्रदेशी राजा के यहाँ भिजवा दिया था, तो भगवन् ! इन घोडो के बहाने मैं शीघ्र ही प्रदेशी राजा को आपके पास लाऊँगा। तब हे देवानुप्रिय ! आप प्रदेशी राजा को धर्मकथा कहते हुए लेश-मात्र भी ग्लानि मत करना—खेदखिन्न, उदासीन न होना। हे भदन्त ! आप अग्लानभाव से प्रदेशी राजा को धर्मोपदेश देना। हे भगवन् ! आप स्वेच्छानुसार प्रदेशी राजा को धर्म का कथन करना।

तब केशी कुमारश्रमण ने चित्त सारथी से कहा—हे चित्त ! अवसर—प्रसग आने पर देखा जायेगा।

तत्पश्चात् चित्त सारथी ने केशी कुमारश्रमण को वन्दना की, नमस्कार किया और फिर जहाँ चार घटो वाला अश्वरथ खडा था, वहाँ आया। आकर उस चार घटो वाले अश्वरथ पर आरूढ हुआ। फिर जिस दिशा से आया था उसी ओर लौट गया।

२३६—तए णं से चित्ते सारही कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मिलियम्मि अहापंडुरे पभाए कयनियमावस्सए सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते साओ गिहाओ णिग्गच्छइ, जेणेव पएसिस्स रन्नो गिहे, जेणेव पएसी राया तेणेव उवागच्छइ, पएसिं रायं करयल-जाव त्ति कट्टु

जएण विजएण वद्धावेइ, एवं वयासी—एव खलु देवाणुप्पियाण कबोएहिं चत्तारि आसा उवणयं उवणीया, ते य मए देवाणुप्पियाण अण्णया चेव विणइया। त एह ण सामी! ते आसे चिट्ठ पासह।

तए णं से पएसी राया चित्त सारहिं एव वयासी—गच्छाहि ण तुम चित्ता! तेहिं चेव चउहिं आसेहिं आसरह जुत्तामेव उवट्ठवेहि जाव पच्चप्पिणाहि।

तए णं से चित्ते सारही पएसिणा रन्ना एव वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ-जाव-हियए उवट्ठवेइ, एयमाणत्तियं पच्चप्पिणइ।

तए ण से पएसी राया चित्तस्स सारहिस्स अतिए एयमट्ठ सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ जाव अप्पमहग्घाभरणालकियसरीरे साओ गिहाओ निग्गच्छइ। जेणामेव चाउग्घटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, चाउग्घंट आसरहं दुरूहइ, सेयवियाए नगरीए मज्झमज्झेण णिग्गच्छइ।

तए ण से चित्ते सारही त रह णेगाइं जोयणाइं उब्भामेइ। तए ण से पएसी राया उण्हेण य तण्हाए य रहवाएणं परिकिलंते समाणे चित्त सारहिं एव वयासी—चित्ता! परिकिलते मे सरीरे, परावत्तेहि रहं।

तए णं से चित्ते सारही रह परावत्तेइ। जेणेव मियवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, पएसिं रायं एवं वयासी—एस ण सामी! मियवणे उज्जाणे, एत्थ ण आसाण सम किलाम सम्म अवणेमो।

तए णं से पएसी राया चित्त सारहिं एव वदासी—एवं होउ चित्ता!

२३६—तत्पश्चात् कल (आगामी दिन) रात्रि के प्रभात रूप मे परिवर्तित हो जाने से जब कोमल उत्पल कमल विकसित हो चुके और धूप भी सुनहरी हो गई तव नियम एव आवश्यक कार्यो से निवृत्त होकर जाज्वल्यमान तेज सहित सहस्ररश्मि दिनकर के चमकने के वाद चित्त सारथी अपने घर से निकला। जहाँ प्रदेशी राजा का भवन था, उसमे भी जहाँ प्रदेशी राजा था, वहाँ आया। आकर दोनो हाथ जोड यावत् अजलि करके जय-विजय शब्दो से प्रदेशी राजा का अभिनन्दन किया और इस प्रकार वोला—कवोज देशवासियो ने देवानुप्रिय के लिए जो चार घोडे उपहार-स्वरूप भेजे थे, उन्हे मैंने आप देवानुप्रिय के योग्य प्रशिक्षित कर दिया है। अतएव स्वामिन्! आज आप पधारिए और उन घोडो की गति आदि चेष्टाओ का निरीक्षण कीजिये।

तव प्रदेशी राजा ने चित्त सारथी से कहा—हे चित्त! तुम जाओ और उन्ही चार घोडो को जोतकर अश्वरथ को यहाँ लाओ यावत् मेरी इस आज्ञा को वापस मुझे लौटाओ अर्थात् रथ आने की मुझे सूचना दो।

चित्त सारथी प्रदेशी राजा के कथन को सुनकर हर्षित एव सन्तुष्ट हुआ। यावत् विकसित-हृदय होते हुए उसने अश्वरथ उपस्थित किया और रथ ले आने की सूचना राजा को दी।

तत्पश्चात् वह प्रदेशी राजा चित्त सारथी की वात सुनकर और हृदय मे धारण कर हृष्ट-तुष्ट हुआ यावत् मूल्यवान् अल्प आभूषणो से शरीर को अलंकृत करके अपने भवन से निकला और जहाँ चार घटो वाला अश्वरथ था, वहाँ आया। आकर उस चार घटो वाले अश्वरथ पर आरूढ होकर सेयविया नगरी के वीचोवीच से निकला।

चित्त सारथी ने उस रथ को अनेक योजनो अर्थात् बहुत दूर तक बडी तेज चाल से दौडाया—चलाया। तब गरमी, प्यास और रथ की चाल से लगती हवा से व्याकुल-परेशान-खिन्न होकर प्रदेशी राजा ने चित्त सारथी से कहा—हे चित्त ! मेरा शरीर थक गया है। रथ को वापस लौटा लो।

तब चित्त सारथी ने रथ को लौटाया और वहाँ आया जहाँ मृगवन उद्यान था। वहाँ आकर प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा—हे स्वामिन् ! यह मृगवन उद्यान है, यहाँ रथ को रोक कर हम घोडो के श्रम और अपनी थकावट को अच्छी तरह से दूर कर ले।

इस पर प्रदेशी राजा ने कहा—हे चित्त ! ठीक, ऐसा ही करो।

केशी कुमारश्रमण को देखकर प्रदेशी का चिन्तन—

२३७—तए णं से चित्ते सारही जेणेव मियवणे उज्जाणे, जेणेव केसिस्स कुमारसमणस्स अदूर-सामंते तेणेव उवागच्छइ, तुरए णिगिण्हेइ, रह ठवेइ, रहाओ पच्चोरुहइ, तुरए मोएति, पएसिं राय एव वयासी—एह ण सामी ! आसाण सम किलाम सम्म अवणेमो।

तए ण से पएसी राया रहाओ पच्चोरुहइ, चित्तेण सारहिणा सद्धि आसाण सम किलाम सम्म अवणेमाणे पासइ जत्थ केसीकुमारसमण महइमहालियाए महच्चपरिसाए मज्झगए महया सद्देणं धम्ममाइक्खमाणं, पासइत्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—जड्डा खलु भो ! जड्डं पज्जुवासति, मुंडा खलु भो ! मुंड पज्जुवासंति, मूढा खलु भो ! मूढं पज्जुवासति, अपडिया खलु भो ! अपडिय पज्जुवासति, निव्विण्णाणा खलु भो ! निव्विण्णाण पज्जुवासति। से केस णं एस पुरिसे जड्डे मुंडे मूढे अपडिए निव्विण्णाणे, सिरीए हिरीए उवगए उत्तप्पसरीरे। एस ण पुरिसे किमाहार-माहारेइ ? किं परिणामेइ ? किं खाइ, किं पियइ, किं दलइ, किं पयच्छइ, ज ण एस एमहालियाए मणुस्सपरिसाए मज्झगए महया सद्देण बूयाए ? एवं सपेहेइ चित्तं सारहिं एवं वयासी—

चित्ता ! जड्डा खलु भो ! जड्डं पज्जुवासति जाव बूयाए, साए वि णं उज्जाणभूमीए नो सचाएमि सम्म पकाम पवियरित्तए !

२३७—राजा के 'हाँ' कहने पर चित्त सारथी ने मृगवन उद्यान की ओर रथ को मोड़ा और फिर उस स्थान पर आया जो केशी कुमारश्रमण के निवासस्थान के पास था। वहाँ घोडो को रोका, रथ को खड़ा किया, रथ से उतरा और फिर घोड़ो को खोलकर—छोडकर प्रदेशी राजा से कहा—हे स्वामिन् ! हम यहाँ घोडो के श्रम और अपनी थकावट को दूर कर लें।

यह सुनकर प्रदेशी राजा रथ से नीचे उतरा, और चित्त सारथी के साथ घोडो की थकावट और अपनी व्याकुलता को मिटाते हुए उस ओर देखा जहाँ केशी कुमारश्रमण अतिविशाल परिषद् के बीच बैठकर उच्च ध्वनि से धर्मोपदेश कर रहे थे। यह देखकर उसे मन-ही-मन यह विचार एवं सकल्प उत्पन्न हुआ—

जड ही जड़ की पर्युपासना करते हैं ! मुंड ही मुंड की उपासना करते हैं ! मूढ ही मूढों की उपसना करते है ! अपडित ही अपंडित की उपासना करते है ! और अज्ञानी ही अज्ञानी की उपासना-समान करते हैं ! परन्तु यह कौन पुरुष है जो जड़, मुंड, मूढ, अपडित और अज्ञानी होते

हुए भी श्री-ह्री से सपन्न है, शारीरिक काति से सुशोभित है ? यह पुरुष किस प्रकार का आहार करता है ? किस रूप मे खाये हुए भोजन को परिणमाता है ? यह क्या खाता है, क्या पीता है, लोगो को क्या देता है, विशेष रूप से उन्हे क्या वितरित करता है—वाटता है—समझाता है ? यह पुरुष इतने विशाल मानव-समूह के बीच वैठकर जोर-जोर से बोल रहा है। उसने ऐसा विचार किया और चित्त सारथी से कहा—

चित्त ! जड पुरुष ही जड की पर्युपासना करते है आदि। यह कौन पुरुष है जो ऊची ध्वनि से वोल रहा है ? इसके कारण हम अपनी ही उद्यानभूमि मे भी इच्छानुसार घूम-फिर नही सकते हैं।

२३८—तए णं से चित्ते सारही पएसीरायं एव वयासी—एस ण सामी ! पासावच्चिज्जे केसी नामं कुमारसमणे जाइसपण्णे जाव[1] चउनाणोवगए अधोऽवहिए अण्णजीविए।

तए ण से पएसी राया चित्त सारहिं एव वयासी—आहोहिय ण वदासि चित्ता ! अण्णजीवियत्त ण वदासि चित्ता !

हता, सामी ! आहोहिअ णं वयामि, अण्णजीवियत्त ण वयामि सामी !
अभिगमणिज्जे णं चित्ता ! एस पुरिसे ?
हता ! सामी ! अभिगमणिज्जे।
अभिगच्छामो णं चित्ता ! अम्हे एय पुरिस ?
हंता सामी ! अभिगच्छामो।

२३८—तव चित्त सारथी ने प्रदेशी राजा से कहा—स्वामिन् ! ये पार्श्वापत्य (भगवान् पार्श्वनाथ की आचार—परम्परा के अनुगामी) केशी नामक कुमारश्रमण हैं, जो जातिसपन्न यावत् मतिज्ञान आदि चार ज्ञानो के धारक हैं। ये आधोऽवधिज्ञान (परमावधि से कुछ न्यून अवधिज्ञान) से सपन्न एव (एषणीय) अन्नजीवी हैं।

तव आश्चर्यचकित हो प्रदेशी राजा ने चित्त सारथी से कहा—हे चित्त ! यह पुरुष आधोऽवधिज्ञान-सपन्न है और अन्नजीवी है ?

चित्त—हाँ स्वामिन् ! ये आधोऽवधिज्ञानसम्पन्न एव अन्नजीवी हैं।

प्रदेशी—हे चित्त ! तो क्या यह पुरुष अभिगमनीय है अर्थात् इस पुरुष के पास जाकर वैठना चाहिये।

चित्त—हाँ स्वामिन् ! अभिगमनीय है।
प्रदेशी—तो फिर, चित्त ! हम इस पुरुप के पास चले।
चित्त—हाँ स्वामिन् ! चले।

२३९—तए णं से पएसी राया चित्तेण सारहिणा सद्धि जेणेव केसीकुमारसमणे तेणेव उवागच्छइ, केसिस्स कुमारसमणस्स अदूरसामते ठिच्चा एव वयासी—तुब्भे ण भते ! आहोहिया अण्णजीविया ?

---
१ देखें सूत्र स २१३

तए ण केसी कुमारसमणे पएसिं रायं एवं वदासी—पएसी ! से जहाणामए अंकवाणिया इ वा, संखवाणिया इ वा, दंतवाणिया इ वा, सुंकं भंसिउंकामा णो सम्मं पंथं पुच्छइ, एवामेव पएसी ! तुब्भे वि विणय भंसेउकामो नो सम्मं पुच्छसि । से णूण तव पएसी मम पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था-जड्डा खलु भो ! जड्डं पज्जुवासंति, जाव पवियरित्तए, से णूणं पएसी अट्ठे समत्थे ?

हंता ! अत्थि ।

२३९—तत्पश्चात् चित्त सारथी के साथ प्रदेशी राजा, जहाँ केशी कुमारश्रमण विराजमान थे, वहाँ आया और केशी कुमारश्रमण से कुछ दूर खड़े होकर वोला—हे भदन्त ! क्या आप आधोऽवधि-ज्ञानधारी हैं ? क्या आप अन्नजीवी हैं ?

तव केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से कहा—हे प्रदेशी ! जैसे कोई अंकवणिक् (अकरत्न का व्यापारी) अथवा शखवणिक्, दन्तवणिक्, राजकर न देने के विचार से सीधा मार्ग नही पूछता, इसी प्रकार हे प्रदेशी ! तुम भी विनयप्रतिपत्ति नही करने की भावना से प्रेरित होकर मुझ से योग्य रीति से नही पूछ रहे हो । हे प्रदेशी ! मुझे देखकर क्या तुम्हे यह विचार समुत्पन्न नही हुआ था, कि ये जड़ जड की पर्युपासना करते हैं, यावत् मैं अपनी ही भूमि मे स्वेच्छापूर्वक घूम-फिर नही सकता हूँ ? प्रदेशी ! मेरा यह कथन सत्य है ?

प्रदेशी—हाँ आपका कहना सत्य है अर्थात् मेरे मन मे ऐसा विचार आया था ।

२४०—तए णं से पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वदासी—से केणट्ठेणं भंते ! तुज्झं नाणे वा दसणे वा जेणं तुज्झे मम एयारूवं अज्झत्थियं जाव संकप्पं समुप्पण्णं जाणह पासह ?

२४०—तत्पश्चात् प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से कहा—भदन्त ! तुम्हे ऐसा कौनसा ज्ञान और दर्शन है कि जिसके द्वारा आपने मेरे इस प्रकार के आन्तरिक यावत् मनोगत सकल्प को जाना और देखा ?

२४१—तए णं से केसीकुमारसमणे पएसिं राय एवं वयासी—एवं खलु पएसी ! अम्हं समणाण निग्गथाणं पंचविहे नाणे पण्णत्ते, त जहा—आभिणिबोहियणाणे सुयनाणे ओहिणाणे मणपज्जवणाणे केवलणाणे ।

से किं त आभिणिवोहियनाणे ?

आभिणिवोहियनाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—उग्गओ ईहा अवाए धारणा ।

से किं तं उग्गहे ?

उग्गहे दुविहे पण्णत्ते, जहा नंदीए जाव से त्तं धारणा, से त्तं आभिणिबोहियणाणे ।

से कि तं सुयनाणे ?

सुयनाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—अंगपविट्ठ च, अंगवाहिरं च, सव्वं भाणियव्वं जाव दिट्ठिवाओ ।

ओहिणाण भवपच्चइय, खओवसमियं जहा णंदीए ।

मणपज्जवनाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—उज्जुमई य, विउलमई य, तहेव केवलनाण सव्व भाणियव्व ।

तत्थ णं जे से आभिणिबोहियनाणे से ण मम अत्थि, तत्थ ण जे से सुयनाणे से वि य मम अत्थि, तत्थ ण जे से ओहिणाणे से वि य मम अत्थि, तत्थ ण जे से मणपज्जवनाणे से वि य मम अत्थि, तत्थ णं जे से केवलनाणे से ण ममं नत्थि, से ण अरिहताण भगवताण ।

इच्चेएण पएसी अह तव चउव्विहेण छउमत्थेण णाणेणं इमेयारूवं अज्झत्थिय जाव समुप्पण्णं जाणामि पासामि ।

२४१—तव केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा—हे प्रदेशी ! निश्चय ही हम निर्ग्रन्थ श्रमणो के शास्त्रो मे ज्ञान के पाँच प्रकार बतलाये हैं। वे पाँच यह हैं—(१) आभिनिबोधिकज्ञान (मतिज्ञान), (२) श्रुतज्ञान (३) अवधिज्ञान (४) मन पर्यायज्ञान और (५) केवलज्ञान ।

प्रदेशी—आभिनिबोधिक ज्ञान कितने प्रकार का है ?

केशी कुमारश्रमण—आभिनिबोधिकज्ञान चार प्रकार का है—अवग्रह, ईहा, अवाय धारणा ।

प्रदेशी—अवग्रह कितने प्रकार का है ?

केशी कुमारश्रमण—अवग्रह ज्ञान दो प्रकार का प्रतिपादन किया है इत्यादि धारणा पर्यन्त आभिनिबोधिक ज्ञान का विवेचन नदीसूत्र के अनुसार जानना चाहिए ।

प्रदेशी—श्रुतज्ञान कितने प्रकार का है ?

केशी कुमारश्रमण—श्रुतज्ञान दो प्रकार का है, यथा अगप्रविष्ट और अगबाह्य । दृष्टिवाद पर्यन्त श्रुतज्ञान के भेदो का समस्त वर्णन नन्दीसूत्र के अनुसार यहाँ करना चाहिए ।

भवप्रत्ययिक और क्षायोपशमिक के भेद से अवधिज्ञान दो प्रकार का है । इनका विवेचन भी नदीसूत्र के अनुसार यहाँ जान लेना चाहिए ।

मन पर्यायज्ञान दो प्रकार का कहा गया है, यथा ऋजुमति और विपुलमति । नदीसूत्र के अनुरूप इनका भी वर्णन यहाँ करना चाहिए ।

इसी प्रकार केवलज्ञान का भी वर्णन यहाँ करना चाहिए ।

इन पाँच ज्ञानो मे से आभिनिबोधिक ज्ञान मुझे है, श्रुतज्ञान मुझे है, अवधिज्ञान भी मुझे है, मन पर्याय ज्ञान भी मुझे प्राप्त है, किन्तु केवलज्ञान प्राप्त नही है । वह केवलज्ञान अरिहत भगवन्तो को होता है ।

इन चतुर्विध छाद्मस्थिक ज्ञानो के द्वारा हे प्रदेशी ! मैंने तुम्हारे इस प्रकार के आन्तरिक यावत् मनोगत सकल्प को जाना और देखा है ।

विवेचन—सूत्र मे जैनदर्शनमान्य आभिनिबोधिक (मति) आदि पाच ज्ञानो के नाम और उन ज्ञानो के कतिपय अवान्तर भेदो का उल्लेख करके शेष विस्तृत वर्णन नदीसूत्र के अनुसार करने का सकेत किया गया है । नन्दीसूत्र के आधार से उन मति आदि पाच ज्ञानो का सक्षेप मे वर्णन इस प्रकार है—

ज्ञान आत्मा का असाधारण गुण है। अतएव ज्ञानावरणकर्म के क्षय अथवा क्षयोपशम से आत्मा का जो बोध रूप व्यापार होता है, वह ज्ञान है। आभिनिवोधिक आदि के भेद से ज्ञान के पांच प्रकार हैं। उनके लक्षण इस प्रकार हैं—

आभिनिबोधिक ज्ञान—जो ज्ञान पाच इन्द्रियो और मन के द्वारा उत्पन्न हो और सन्मुख आये हुए पदार्थों के प्रतिनियत स्वरूप को देश, काल, अवस्था की अपेक्षा इन्द्रियो के आश्रित होकर जाने, ऐसे बोध को आभिनिवोधिक ज्ञान कहते हैं। इसका अपर नाम मतिज्ञान भी है। किन्तु अतर यह है कि मति शब्द से ज्ञान और अज्ञान दोनो को ग्रहण किया जाता है किन्तु आभिनिवोधिक शब्द ज्ञान के लिये ही प्रयुक्त होता है।

श्रुतज्ञान—शब्द को सुनकर जिससे अर्थ की उपलब्धि हो, उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। इस ज्ञान का कारण शब्द है अत उपचार से शब्द के ज्ञान को भी श्रुतज्ञान कहते हैं।

अवधिज्ञान—इन्द्रिय और मन की अपेक्षा न रखते हुए केवल आत्मा के द्वारा रूपी—मूर्त पदार्थों का साक्षात् बोध करने वाला ज्ञान अवधिज्ञान कहलाता है। अवधि शब्द का अर्थ मर्यादा भी होता है। अवधि ज्ञान रूपी पदार्थो को प्रत्यक्ष करने की शक्ति रखता है अरूपी को नही, यही उसकी मर्यादा है। अथवा 'अव' शब्द अधो अर्थ का वाचक है। इसलिये जो ज्ञान अधोऽधो (नीचे-नीचे) विस्तृत जानने की शक्ति रखता है, अथवा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा को लेकर जो ज्ञान मूर्त द्रव्यो को प्रत्यक्ष करता है उसे अवधिज्ञान कहते हैं।

मन पर्यायज्ञान—समनस्क-सज्ञी जीव किसी भी वस्तु का चिन्तन-मनन मन से ही करते है। मन के चिन्तनीय परिणामो को जिस ज्ञान से प्रत्यक्ष किया जाये, उसे मन.पर्याय ज्ञान कहते हैं। यद्यपि मन और मानसिक आकार-प्रकारो को प्रत्यक्ष करने की शक्ति अवधिज्ञान मे भी है, किन्तु मन पर्यायज्ञान मन के पर्यायो-आकार-प्रकारो को सूक्ष्म एव निर्मल रूप मे प्रत्यक्ष कर सकता है अवधिज्ञान नही।

केवलज्ञान—केवल शब्द एक, असहाय, विशुद्ध, प्रतिपूर्ण, अनन्त और निरावरण, इन अर्थो मे प्रयुक्त होता है। अत. इन अर्थो के अनुसार केवलज्ञान की व्याख्या इस प्रकार है—

जिसके उत्पन्न होने पर क्षयोपशमजन्य मतिज्ञानादि (आभिनिबोधिकादि) चारो ज्ञानो का विलीनीकरण होकर एक ही ज्ञान शेष रह जाये, उसे केवलज्ञान कहते हैं। जो ज्ञान मन, इन्द्रिय आदि किसी की सहायता के विना सपूर्ण मूर्त-अमूर्त (रूपी-अरूपी) ज्ञेय पदार्थो को हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष करने मे सक्षम हो, वह केवलज्ञान है। जो ज्ञान विशुद्धतम हो, उसे केवलज्ञान कहते हैं। जो ज्ञान सभी पदार्थों की प्रतिपूर्ण—समस्त पर्यायो को जानने की शक्ति वाला हो, वह केवलज्ञान है। जो ज्ञान अनन्त-अनन्त पदार्थों को जानने मे सक्षम है, अथवा उत्पन्न होने के पश्चात् जिसका कभी अन्त न हो, ऐसे ज्ञान को केवलज्ञान कहते हैं। जो ज्ञान निरावरण, नित्य और शाश्वत हो, वह केवलज्ञान है।

इन पाँच प्रकार के ज्ञानो मे से आदि के दो ज्ञान परोक्ष और अतिम तीन प्रत्यक्ष हैं। मन और इन्द्रियो के माध्यम से जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे परोक्ष और जो ज्ञान साक्षात् आत्मा के द्वारा होता है, उसे प्रत्यक्ष कहते हैं। यद्यपि मन और इन्द्रियो के माध्यम से होने वाला ज्ञान भी

किसी अपेक्षा (लौकिक दृष्टि से) प्रत्यक्ष कहा जाता है, किन्तु वह ज्ञान मन और इन्द्रियो के आश्रित होने से परोक्ष ही है।

जब हम इन्द्रियजन्य ज्ञान को प्रत्यक्ष कोटि मे ग्रहण करते हैं तो वहाँ यह आशय समझना चाहिये कि लोक-प्रतिपत्ति, व्यवहार की दृष्टि से वह ज्ञान प्रत्यक्ष है, लेकिन यथार्थत तो साक्षात् आत्मा से उत्पन्न होने वाला ज्ञान ही प्रत्यक्ष कहलाता है। इन दोनो दृष्टियो को ध्यान मे रखते हुए जैनदर्शन मे प्रत्यक्ष के साव्यवहारिक और पारमार्थिक ये दो भेद किये है। नदीसूत्र मे इन दोनो के लिये क्रमश इन्द्रियप्रत्यक्ष और नोइन्द्रियप्रत्यक्ष शब्द का प्रयोग किया है। स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र के भेद से इन्द्रिया पाच होने से इन्द्रियप्रत्यक्ष के पाच भेद है। कान से होने वाला ज्ञान श्रोत्रेन्द्रियप्रत्यक्ष है, इसी प्रकार शेष इन्द्रियो के लिये समझना चाहिये। अवधिज्ञान, मन पर्यय-ज्ञान एव केवलज्ञान ये तीन नोइन्द्रियप्रत्यक्ष है।

उक्त नोइन्द्रियप्रत्यक्ष के तीन भेदो मे से अवधिज्ञान के दो प्रकार हैं—भवप्रत्ययिक और क्षायोपशमिक। तत्तत् योनिविशेष मे जन्म लेने पर जो ज्ञान उत्पन्न हो अर्थात् जिसकी उत्पत्ति मे भव प्रधान कारण हो, ऐसा ज्ञान भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान कहलाता है। यह भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान देवो और नारको को होता है। तपस्या आदि विशेष गुणो के कारण अवधिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाले ज्ञान को क्षायोपशमिक अवधिज्ञान कहते है। यह मनुष्यो और तिर्यंचो मे पाया जाता है।

क्षायोपशमिक अवधिज्ञान १ आनुगामिक, २ अनानुगामिक, ३ वर्धमान, ४. हीयमान, ५ प्रतिपातिक और ६ अप्रतिपातिक के भेद से छह प्रकार का है।

क्षायोपशमिक अवधिज्ञान के उक्त छह भेदो मे से आनुगामिक अवधिज्ञान दो प्रकार का है—१ अन्तगत और २. मध्यगत। इनमे से अन्तगत अवधिज्ञान तीन प्रकार का है—१ पुरतः (आगे से) अन्तगत—जो अवधिज्ञान आगे-आगे सख्यात, असख्यात योजनो तक पदार्थ को जाने, २ मार्गत. (पीछे से) अन्तगत—जो ज्ञान पीछे के सख्यात, असख्यात योजनो तक के पदार्थ को जाने, ३ पार्श्वत (दोनो पार्श्वों—बाजुओ) से अन्तगत—जो ज्ञान दोनो पार्श्वों मे सख्यात, असख्यात योजन प्रमाण क्षेत्र मे स्थित पदार्थों को जाने। जो ज्ञान चारो ओर के पदार्थो को जानते हुए ज्ञाता के साथ रहता है, उसे मध्यगत अवधिज्ञान कहते है।

अनानुगामिक अवधिज्ञान जिस स्थान पर उत्पन्न होता है, उसी स्थान पर स्थित रहकर अवधिज्ञानी सख्यात, असख्यात योजन प्रमाण सम्बद्ध अथवा असम्बद्ध द्रव्यो को जानता है, अन्यत्र चले जाने पर नही जानता है।

जो अवधिज्ञान पारिणामिक विशुद्धि से उत्तरोत्तर दिशाओ और विदिशाओ मे बढता जाता है, उसे वर्धमानक अवधिज्ञान कहते है। जो ज्ञान पारिणामिक सक्लेश के कारण उत्तरोत्तर हीन-हीन होता जाता है, वह हीयमान अवधिज्ञान है।

नारक, देव और तीर्थंकर अवधिज्ञान से युक्त ही होते है। वे सब दिशाओ-विदिशाओवर्ती पदार्थो को जानते हैं, किन्तु सामान्य मनुष्यो और तिर्यंचो के लिए ऐसा नियम नही है। वे सब दिशाओ मे और एक दिशा मे भी क्षयोपशम के अनुसार जानते है।

मन पर्यायज्ञान पर्याप्त, गर्भज संख्यात वर्ष की श्रायु वाले कर्मभूमिज सम्यग्दृष्टि, ऋद्धिसपन्न श्रप्रमत्तसयत मुनियो मे ही पाया जाता है। इसके दो भेद हैं—ऋजुमति और विपुलमति। द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा ऋजुमति मन पर्यायज्ञानी से विपुलमति मन पर्यायज्ञान वाला अधिक-अधिक विशुद्धि, निर्मलता से पदार्थों को जानता है। वह मनुष्यक्षेत्र मे रहे हुए प्राणियो के मन मे परिचिन्तित अर्थ को जानने वाला है।

केवलज्ञान दो प्रकार का है—भवस्थ-केवलज्ञान और सिद्ध-केवलज्ञान। भवस्थ-केवलज्ञान सयोगिकेवलि और अयोगिकेवलि गुणस्थानवर्ती जीवो को होता है।

सिद्ध केवलज्ञान सिद्धो को होता है। उस के भी दो भेद हैं—१ अनन्तर-सिद्ध केवलज्ञान और २ परपर-सिद्ध केवलज्ञान। जिन्हे सिद्ध हुए प्रथम ही समय है और जिन्हे सिद्ध हुए एक से अधिक समय हो गये है, उन्हे क्रमश. अनन्तरसिद्ध और परपरसिद्ध कहते हैं और उनका केवलज्ञान अनन्तर-सिद्ध-केवलज्ञान एव परपरसिद्ध-केवलज्ञान कहलाता है।

द्रव्य से केवलज्ञानी सर्व द्रव्यो को जानता है, क्षेत्र से सर्व लोकालोक को जानता है, काल से भूत, वर्तमान और भविष्य, इन तीनो कालवर्ती द्रव्यो को जानता है और भाव से सर्व भावों—पर्यायो को जानता है।

पूर्वोक्त प्रकार से प्रत्यक्ष ज्ञानो की सक्षेप मे रूपरेखा बतलाने के अनन्तर अब परोक्ष ज्ञानो का वर्णन करते हैं।

आभिनिबोधिक (मति) ज्ञान श्रुतनिश्रित और अश्रुतनिश्रित के भेद से दो प्रकार का है। श्रुतज्ञान के सस्कार के आधार से उत्पन्न होने वाले मतिज्ञान को श्रुतनिश्रित मतिज्ञान कहते हैं और जो तथाविध क्षयोपशमभाव से उत्पन्न हो, जिसमे श्रुतज्ञान के सस्कार की अपेक्षा न हो, वह अश्रुत-निश्रित मतिज्ञान है।

अश्रुतनिश्रित मतिज्ञान चार प्रकार का है—

(१) औत्पत्तिकीबुद्धि—तथाविध क्षयोपशमभाव के कारण और शास्त्र-अभ्यास के बिना अचानक जिस बुद्धि की उत्पत्ति हो।

(२) वैनयिकीबुद्धि—गुरु आदि की विनय-भक्ति से उत्पन्न बुद्धि।

(३) कर्मजाबुद्धि—शिल्पादि के अभ्यास से उत्पन्न बुद्धि।

(४) पारिणामिकीबुद्धि—चिरकालीन पूर्वापर पर्यालोचन से उत्पन्न बुद्धि।

श्रुतनिश्रित मतिज्ञान के चार भेद हैं—(१) अवग्रह, (२) ईहा, (३) अवाय, (४) धारणा।

१ जो अनिर्देश्य सामान्य मात्र अर्थ को जानता है, उसे अवग्रह कहते हैं। इसके दो भेद हैं—अर्थावग्रह, व्यंजनावग्रह। जो सामान्य मात्र का ग्रहण होता है, उसे अर्थावग्रह कहते है। पाच इन्द्रियो और मन से अर्थावग्रह होने से अर्थावग्रह के छह भेद हैं। प्राप्यकारी श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा (जीभ) और स्पर्शन, इन चार इन्द्रियो से बद्ध—स्पृष्ट अर्थों का जो अत्यन्त अव्यक्त सामान्यात्मक ग्रहण हो, उसे व्यजनावग्रह कहते हैं। इन चार इन्द्रियो से होने के कारण व्यजनावग्रह के चार भेद हैं।

अर्थावग्रह मे अभ्यस्तदशा तथा विशिष्ट क्षयोपशम की अपेक्षा है और व्यजनावग्रह अनभ्यस्तावस्था एव क्षयोपशम की मदता मे होता है। अर्थावग्रह का काल एक समय है किन्तु व्यजनावग्रह का असख्यात समय है।

२ अवग्रह के उत्तर और अवाय से पूर्व सद्भूत अर्थ की पर्यालोचना रूप चेष्टा को ईहा कहते हैं। अथवा अवग्रह से जाने हुए पदार्थ मे विशेष जानने की इच्छा अथवा अवग्रह द्वारा गृहीत सामान्य विषय को विशेष रूप से निश्चित करने के लिए होने वाली विचारणा ईहा है। पाच इन्द्रियो और मन के द्वारा होने से ईहा के तत्तत् नामक छह भेद है।

३ ईहा के द्वारा ग्रहण किये अर्थों का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करना, अवाय कहलाता है। ईहा की तरह इसके भी छह भेद है।

४ निर्णीत अर्थ का धारण करना अथवा कालान्तर मे भी उसकी स्मृति हो आना धारणा है। पाच इन्द्रियो और मन से होने के कारण धारणा के भी छह भेद हैं।

अवग्रह आदि चारो मे से अवग्रह का काल एक समय, ईहा और अवाय का अन्तर्मुहूर्त्त तथा धारणा का सख्यात, असख्यात समय प्रमाण है। पाच इन्द्रियो और मन, इन छह निमित्तो से होने वाले अर्थावग्रह, ईहा, अवाय और धारणा के छह-छह भेद हैं तथा मन और चक्षु इन्द्रिय को छोडकर शेष चार इन्द्रियो से होने के कारण व्यजनावग्रह के चार भेद है। सब मिलाकर ये अट्ठाईस (२८) भेद हैं। ये सब पुन विषय और क्षयोपशम की विविधता से १२-१२ प्रकार के हैं। जिससे अवग्रहादि रूप श्रुतनिश्रित मतिज्ञान के कुल मिलाकर ३३६ भेद हो जाते है। अश्रुतनिश्रित के औत्पत्तिकीबुद्धि आदि चार भेदो को मिलाने से मतिज्ञान के ३४० भेद होते हैं।

क्षायोपशमिक विविधता के बारह प्रकार ये है—

१-२ बहु-अल्पग्राही, ३-४ बहुविध-एकविधग्राही, ५-६ क्षिप्र-अक्षिप्रग्राही, ७-८. निश्रित-अनिश्रितग्राही, ९-१० असदिग्ध-सदिग्धग्राही, ११-१२ ध्रुव-अध्रुवग्राही।

श्रुतज्ञान के भेदो का विचार विस्तार और सक्षेप, इन दो दृष्टियो से किया गया है। विस्तार मे श्रुतज्ञान के चौदह भेदो के नाम इस प्रकार हैं—

१-२ अक्षर-अनक्षर श्रुत, ३-४ सज्ञी-असज्ञी श्रुत, ५-६ सम्यक्-मिथ्या श्रुत, ७-८ सादि-अनादि श्रुत, ९-१० सपर्यवसित-अपर्यवसित श्रुत, ११-१२ गमिक-अगमिक श्रुत, १३-१४ अगप्रविष्ट-अगबाह्य श्रुत।

१-२ अक्षर-अनक्षर श्रुत—क्षर् सचलने धातु से अक्षर शब्द बनता है, 'न क्षरति-न चलति इत्यक्षरम्' अर्थात् जो अपने स्वरूप से चलित नही होता, उसे अक्षर कहते है। इसीलिये ज्ञान का नाम अक्षर है। इसके सज्ञाक्षर, व्यजनाक्षर और लब्ध्यक्षर, ये तीन भेद है। अक्षर की आकृति-सस्थान, बनावट को सज्ञाक्षर कहते है। उच्चारण किये जाने—बोले जाने वाले अक्षर व्यजनाक्षर हैं और शब्द को सुनकर अर्थ का अनुभवपूर्वक पर्यालोचन होना लब्धि-अक्षर कहलाता है। अनक्षरश्रुत अनेक प्रकार का है। छीकना, श्वासोच्छ्वास आदि सब अनक्षरश्रुत रूप है।

३-४ सज्ञि-असज्ञि श्रुत—सज्ञी और असज्ञी जीवो के श्रुत को क्रमश सज्ञि, असज्ञि श्रुत कहते हैं। कालिकी-उपदेश, हेतु-उपदेश और दृष्टिवाद-उपदेश के भेद से संज्ञिश्रुत तीन प्रकार का है।

ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा, चिन्ता, इस प्रकार के विचार-विमर्श से वस्तु के स्वरूप को अधिगत करने की शक्ति जिसमे है, वह कालिकी-उपदेश से सज्ञी है और जिसमे उक्त ईहा, अपोह आदि रूप शक्ति नही, वह असज्ञी है।

जिस जीव की विचारपूर्वक क्रिया करने मे प्रवृत्ति होती है, वह हेतु-उपदेश की अपेक्षा से सज्ञी है और जिसमे विचारपूर्वक क्रिया करने की शक्ति नही, वह असज्ञी है।

दृष्टि दर्शन का नाम है और सम्यग्ज्ञान का नाम सज्ञा है। ऐसी संज्ञा जिसमे हो, उसे दृष्टिवादोपदेश से सज्ञी कहते हैं, उक्त सज्ञा जिसमे नही वह असज्ञी है।

५-६ सम्यक्-मिथ्या श्रुत—सर्वज्ञ, सर्वदर्शी भगवन्तो द्वारा प्ररूपित श्रुत सम्यक्श्रुत और मिथ्यादृष्टि स्वच्छन्द बुद्धि वालो के द्वारा कहा गया श्रुत मिथ्याश्रुत कहलाता है। आचाराग आदि दृष्टिवाद पर्यन्त द्वादशाग रूप तथा सम्पूर्ण दशपूर्वधारी द्वारा कहा गया श्रुत सम्यक्श्रुत है।

७-८-९-१० सादि, सपर्यवसित, अनादि, अपर्यवसित श्रुत—व्यवच्छित्ति—पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा सादि-सपर्यवसित (सान्त) है और अव्यवच्छित्ति—द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा अनादि-अपर्यवसित (अनन्त) है।

११-१२ गमिक-अगमिक श्रुत—जिस श्रुत के आदि, मध्य और अवसान मे किंचित् विशेषता रखते हुए पुन:-पुन पूर्वोक्त शब्दो का उच्चारण हो, उसे गमिक श्रुत और जिस शास्त्र मे पुन:-पुन एक सरीखे पाठ न आते हो, उसे अगमिक श्रुत कहते हैं।

१३-१४ अगप्रविष्ट-अगबाह्य श्रुत—जिन शास्त्रो की रचना तीर्थंकरो के उपदेशानुसार गणधर स्वय करते है, वे अगप्रविष्ट तथा गणधरो के अतिरिक्त अगो का आधार लेकर स्थविरो द्वारा प्रणीत शास्त्र अगबाह्य कहलाते हैं।

अगप्रविष्ट श्रुत के आचाराग आदि बारह भेद हैं।

आवश्यक और आवश्यक-व्यतिरिक्त के भेद से अगबाह्य श्रुत दो प्रकार का है। गुणो के द्वारा आत्मा को वश मे करना आवश्यकीय है, ऐसा वर्णन जिसमे हो, उसे आवश्यक श्रुत कहते हैं। आवश्यक श्रुत के छह भेद है—१ सामायिक, २ चतुर्विशतिस्तव, ३ वदना, ४ प्रतिक्रमण, ५ कायोत्सर्ग और ६ प्रत्याख्यान तथा आवश्यकव्यतिरिक्त श्रुत के दो भेद हैं—कालिक और उत्कालिक।

जो शास्त्र दिन और रात्रि के पहले और पिछले प्रहर मे पढे जाते हैं, वे कालिक और जिनका कालवेला वर्ज कर अध्ययन किया जाता है अर्थात् अस्वाध्याय के समय को छोडकर शेष रात्रि और दिन मे पढे जाते हैं, वे उत्कालिक शास्त्र कहलाते हैं। उत्कालिक और कालिक शास्त्र अनेक प्रकार के हैं।

इन सभी अगप्रविष्ट और अगबाह्य शास्त्रो का विशेष परिचय नदीसूत्र और उसकी चूर्णि एव वत्ति मे दिया गया है।

तज्जीव-तच्छरीरवाद मंडन-खंडन

२४२—तए ण से पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वयासी—ग्रह ण भते ! इह उवविसामि ?

पएसी ! एसाए उज्जाणभूमीए तुमंसि चेव जाणए ।

तए ण से पएसी राया चित्तेण सारहिणा सद्धिं केसिस्स कुमारसमणस्स ग्रदूरसामते उववसिइ, केसिकुमारसमणं एव वदासी--तुब्भे ण भते ! समणाणं णिग्गंथाण एसा सण्णा, एसा पइण्णा, एसा दिट्ठी, एसा रुई, एस हेऊ, एस उवएसे, एस सकप्पे, एसा तुला, एस माणे, एस पमाणे, एस समोसरणे जहा ग्रण्णो जीवो ग्रण्णं सरीरं, णो त जीवो तं सरीरं ?

२४२—केशीस्वामी के कथन को सुनने के ग्रनन्तर प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से निवेदन किया—भदन्त ! क्या मैं यहाँ बैठ जाऊं ?

केशी—हे प्रदेशी ! यह उद्यानभूमि तुम्हारी ग्रपनी है, ग्रतएव बैठने या न बैठने के विषय मे तुम स्वय समझ लो—निर्णय कर लो ।

तत्पश्चात् चित्त सारथी के साथ प्रदेशी राजा केशी कुमारश्रमण के समीप बैठ गया ग्रौर बैठकर केशी कुमारश्रमण से इस प्रकार पूछा—

भदन्त ! क्या ग्राप श्रमण निर्ग्रन्थो की ऐसी सम्यग्ज्ञान रूप सज्ञा है, तत्त्वनिश्चय रूप प्रतिज्ञा है, दर्शन रूप दृष्टि है, श्रद्धानुगत अभिप्राय रूप रुचि है, अर्थ का प्रतिपादन करने रूप हेतु है, शिक्षा वचन रूप उपदेश है, तात्त्विक ग्रध्यवसाय रूप सकल्प है, मान्यता है, तुला-समीचीन निश्चय-कसौटी है, दृढ धारणा है, ग्रविसवादी दृष्ट एव इष्ट रूप प्रत्यक्षादि प्रमाणसगत मतव्य है ग्रौर स्वीकृत सिद्धान्त है कि जीव ग्रन्य है ग्रौर शरीर ग्रन्य है ? ग्रर्थात् जीव ग्रौर शरीर भिन्न-भिन्न स्वरूप वाले हैं ? शरीर ग्रौर जीव दोनो एक नही हैं ?

२४३—तए णं केसी कुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी—पएसी ! ग्रम्हं समणाणं णिग्गंथाणं एसा सण्णा जाव[1] एस समोसरणे, जहा ग्रण्णो जीवो ग्रण्णं सरीरं, णो तं जीवो तं सरीर ।

२४३—प्रदेशी राजा के प्रश्न को सुनकर प्रत्युत्तर मे केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से कहा—हे प्रदेशी ! हम श्रमण निर्ग्रन्थो की ऐसी सज्ञा यावत् समोसरण—सिद्धान्त है कि जीव भिन्न—पृथक् है ग्रौर शरीर भिन्न है, परन्तु जो जीव है वही शरीर है, ऐसी हमारी धारणा नही है ।

२४४—तए णं से पएसी राया केसिं कुमारसमण एव वयासी—जति ण भते ! तुब्भं समणाण णिग्गंथाणं एसा सण्णा जाव[2] समोसरणे जहा ग्रण्णो जीवो ग्रण्ण सरीरं, णो तं जीवो तं सरीर, एव खलु ममं ग्रज्जए होत्था, इहेव जबूदीवे दीवे सेयवियाए णगरीए अधम्मिए जाव[3] सगस्स वि य ण जणवयस्स नो सम्मं करभरवित्ति पवत्तेति, से ण तुब्भं वत्तव्वयाए सुबहुं पाव कम्मं कलिकलुस समज्जिणित्ता कालमासे कालं किच्चा ग्रण्णयरेसु नरएसु णेरइयत्ताए उववण्णे ।

तस्स ण ग्रज्जगस्स णं ग्रहं णत्तुए होत्था इट्ठे कते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए संमए

१-२ देखें सूत्र सख्या २४२ ३ देखें सूत्र सख्या २२६

बहुमए अणुमए रयणकरंडगसमाणे जीविउस्सविए हिययणदिजणणे उंबरपुप्फ पिव दुल्लभे सवणयाए, किमंग पुण पासणयाए ? तं जति ण से अज्जए ममं आगंतु वएज्जा—

एव खलु नत्तुया ! अहं तव अज्जए होत्था, इहेव सेयवियाए नयरीए अधम्मिए जाव नो सम्मं करभरवित्ति पवत्तेमि, तए णं अहं सुबहुं पावं कम्म कलिकलुसं समज्जिणित्ता नरएसु उववण्णे, तं मा णं नत्तुया ! तुम पि भवाहि अधम्मिए जाव नो सम्मं करभरवित्ति पवत्तेहि, मा णं तुम पि एव चेव सुबहुं पावकम्मं जाव उववज्जिहिसि । तं जइ ण से अज्जए ममं आगंतु वएज्जा तो णं अहं सद्दहेज्जा, पत्तिएज्जा, रोएज्जा जहा अन्नो जीवो अन्नं सरीर, णो तं जीवो त सरीरं । जम्हा णं से अज्जए ममं आगतुं नो एवं वयासी तम्हा सुपइट्ठिया मम पइन्ना समणाउसो ! जहा तज्जीवो त सरीरं ।

२४४—तव प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से इस प्रकार कहा—हे भदन्त ! यदि आप श्रमण निर्ग्रन्थो की ऐसी सज्ञा यावत् सिद्धान्त है कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है, किन्तु ऐसी मान्यता नही है कि जो जीव है वही शरीर है, तो मेरे पितामह, जो इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप की सेयविया नगरी मे अधार्मिक यावत् राजकर लेकर भी अपने जनपद का भली-भांति पालन, रक्षण नही करते थे, वे आपके कथनानुसार अत्यन्त कलुषित पापकर्मो को उपार्जित करके मरण-समय मे मरण करके किसी एक नरक मे नारक रूप से उत्पन्न हुए हैं । उन पितामह का मैं इष्ट, कान्त (अभिलषित), प्रिय, मनोज्ञ, मणाम (अतीव प्रिय), धैर्य और विश्वास का स्थान (आधार, पात्र), कार्य करने मे सम्मत (माना हुआ), वहुत कार्य करने मे माना हुआ तथा कार्य करने के वाद भी अनुमत, रत्नकरडक (आभूषणो की पेटी) के समान, जीवन की श्वासोच्छ्वास के समान, हृदय मे आनन्द उत्पन्न करने वाला, गूलर के फूल के समान जिसका नाम सुनना भी दुर्लभ है तो फिर दर्शन की वात ही क्या है, ऐसा पौत्र हूँ । इसलिये यदि मेरे पितामह आकर मुझ से इस प्रकार कहे कि—

'हे पौत्र ! मैं तुम्हारा पितामह था और इसी सेयविया नगरी मे अधार्मिक यावत् प्रजाजनो से राजकर लेकर भी यथोचित रूप मे उनका पालन, रक्षण नही करता था । इस कारण मैं वहुत एव अतीव कलुषित पापकर्मो का सचय करके नरक मे उत्पन्न हुआ हूँ । किन्तु हे नाती (पौत्र) ! तुम अधार्मिक नही होना, प्रजाजनो से कर लेकर उनके पालन, रक्षण मे प्रमाद मत करना और न वहुत से मलिन पाप कर्मो का उपार्जन—सचय ही करना ।'

तो मैं आपके कथन पर श्रद्धा कर सकता हूँ, प्रतीति (विश्वास) कर सकता हूँ एव उसे अपनी रुचि का विषय वना सकता हूँ कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है । जीव और शरीर एक रूप नहीं हैं । लेकिन जब तक मेरे पितामह आकर मुझसे ऐसा नही कहते तव तक हे आयुष्मन् श्रमण ! मेरी यह धारणा सुप्रतिष्ठित—समीचीन है कि जो जीव है वही शरीर है और जो शरीर है वही जीव है ।

विवेचन—यहाँ राजा पएसी (प्रदेशी) ने अपने दादा का दृष्टान्त देकर जो कथन किया है, उसी वात को दीघनिकाय मे राजा पायासि ने अपने मित्रो का उदाहरण देकर कहा है । दीघनिकाय में जिसका उल्लेख इस प्रकार से किया गया है—

राजा पायासि और कुमार काश्यप के मिलने पर पायासि अपनी शंका काश्यप के समक्ष उपस्थित करता है और काश्यप उसका समाधान करते है कि—राजन्य ! ये सूर्य, चन्द्र क्या हैं ? वे इहलोक हैं या परलोक हैं ? देव हैं या मानव हैं ? अर्थात् इन उदाहरणो के द्वारा काश्यप परलोक

की सिद्धि करते है। किन्तु राजा को यह वात समझ मे नही आती है और वह पुन कहता है—मेरे कुछ ज्ञातिजन एव मित्र प्राणातिपात—हिंसा आदि पापकार्यों मे निरत रहते थे, उनको मैंने कह रखा था कि हिंसादिक पापकार्यों से तुम नरक मे जाओ तो मुझे इसकी सूचना देना। लेकिन वे यहाँ आये नही और न कोई दूत भी भेजा। इसलिये परलोक नही है, मेरी यह श्रद्धा सुसगत है।

२४५—तए णं केसी कुमारसमणे पएसिं राय एव वदासी—अत्थि ण पएसी! तव सूरियकंता णाम देवी?

हंता अत्थि।

जइ णं तुम पएसी! त सूरियकत देविं ण्हाय कयबलिकम्म कयकोउयमंगलपायच्छित्त सव्वालंकारविभूसियं केणइ पुरिसेणं ण्हाएण जाव सव्वालकारविभूसिएणं सद्धि इट्ठे सद्द-फरिस-रस-रूव-गधे पचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुब्भवमाणि पासिज्जासि, तस्स ण तुमं पएसी! पुरिसस्स क दंड निव्वत्तेज्जासि?

अह णं भंते! त पुरिस हत्थच्छिण्णग वा, सूलाइगं वा, सूलभिन्नग वा, पायछिन्नगं वा, एगाहच्चं कूडाहच्च जीवियाओ ववरोवएज्जा।

अह ण पएसी से पुरिसे तुम एव वदेज्जा—'मा ताव मे सामी! मुहुत्तग हत्थच्छिण्णग वा जाव जीवियाओ ववरोवेहि जाव ताव अह मित्त-णाइ-णियग-सयण-सबधि-परिजण एव वयामि—एवं खलु देवाणुप्पिया! पावाइं कम्माइ समायरेत्ता इमेयारूव आवइ पाविज्जामि, त मा ण देवाणुप्पिया! तुब्भे वि केइ पावाइ कम्माइं समायरह, मा ण से वि एव चेव आवइ पाविज्जिहिह जहा ण अह।' तस्स णं तुम पएसी! पुरिसस्स खणमवि एयमट्ठ पडिसुणेज्जासि?

णो तिणट्ठे समट्ठे।

कम्हा ण?

जम्हा णं भते! अवराही ण से पुरिसे।

एवामेव पएसी! तव वि अज्जए होत्था, इहेव सेयवियाए णयरीए अधम्मिए जाव[1] णो सम्म करभरवित्ति पवत्तेइ, से णं अम्हं वत्तव्वयाए सुबहुं जाव उववन्नो, तस्स ण अज्जगस्स तुम णत्तुए होत्था इट्ठे कते जाव[2] पासणयाए। से णं इच्छइ माणुस लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं सचाएति हव्वमागच्छित्तए। चउहिं ठाणेहिं पएसी अहुणोववण्णए नरएसु नेरइए इच्छेइ माणुस लोग हव्वमागच्छित्तए नो चेव ण सचाएइ—

१. अहुणोववन्नए नरएसु नेरइए से ण तत्थ महब्भूय वेयण वेदेमाणे इच्छेज्जा माणुस्सं लोगं हव्व (आगच्छित्तए) णो चेव ण सचाएइ।

२. अहुणोववन्नए नरएसु नेरइए निरयपालेहिं भुज्जो-भुज्जो समहिट्ठिज्जमाणे इच्छइ माणुस लोग हव्वमागच्छित्तए, नो चेव ण सचाएइ।

---

१ देखे सूत्र सख्या २२६ २ देखें सूत्र सख्या २४४

३. अहुणोववन्नए नरएसु नेरइए निरयवेयणिज्जंसि कम्मंसि अक्खीणंसि अवेइयंसि अनिज्जिन्नंसि इच्छइ माणुसं लोगं (हव्वमागच्छित्तए) नो चेव णं संचाएइ।

४. एवं णेरइए निरयाउयंसि कम्मंसि अक्खीणंसि अवेइयंसि अणिज्जिन्नंसि इच्छइ माणुसं लोगं० नो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए।

इच्चेएहिं चउहिं ठाणेहिं पएसी अहुणोववन्ने नरएसु नेरइए इच्छइ माणुसं लोगं० णो चेव ण संचाइए।

तं सद्दहाहि ण पएसी ! जहा—अन्नो जीवो अन्नं सरीरं, नो तं जीवो तं सरीरं।

२४५—प्रदेशी राजा की युक्ति को सुनने के पश्चात् केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा—हे प्रदेशी ! तुम्हारी सूर्यकान्ता नाम की रानी है ?

प्रदेशी—हाँ भदन्त ! है।

केशी कुमारश्रमण—तो हे प्रदेशी ! यदि तुम उस सूर्यकान्ता देवी को स्नान, वलिकर्म और कौतुक-मगल-प्रायश्चित्त करके एव समस्त आभरण-अलंकारो से विभूषित होकर किसी स्नान किये हुए यावत् समस्त आभरण-अलंकारो से विभूषित पुरुष के साथ इष्ट-मनोनुकूल शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गधमूलक पाच प्रकार के मानवीय कामभोगो को भोगते हुए देख लो तो, हे प्रदेशी ! उस पुरुष के लिए तुम क्या दड निश्चित करोगे ?

प्रदेशी—हे भगवन् ! मैं उस पुरुष के हाथ काट दूंगा, उसे शूली पर चढ़ा दूंगा, काटो से छेद दूंगा, पैर काट दूंगा अथवा एक ही वार से जीवनरहित कर दूंगा—मार डालूंगा।

प्रदेशी राजा के इस कथन को सुनकर केशी कुमारश्रमण ने उससे कहा—हे प्रदेशी ! यदि वह पुरुष तुमसे यह कहे कि—'हे स्वामिन् ! आप घड़ी भर रुक जाओ, तव तक आप मेरे हाथ न काटें, यावत् मुझे जीवन रहित न करे जव तक मैं अपने मित्र, ज्ञातिजन, निजक—पुत्र आदि स्वजन-सबधी और परिचितो से यह कह आऊँ कि हे देवानुप्रियो ! मैं इस प्रकार के पापकर्मों का आचरण करने के कारण यह दड भोग रहा हूँ, अतएव हे देवानुप्रियो ! तुम कोई ऐसे पाप कर्मों मे प्रवृत्ति मत करना, जिससे तुमको इस प्रकार का दंड भोगना पडे, जैसा कि मैं भोग रहा हूँ।' तो हे प्रदेशी क्या तुम क्षणमात्र के लिए भी उस पुरुष की यह बात मानोगे ?

प्रदेशी—हे भदन्त ! यह अर्थ समर्थ नही है। अर्थात् उसकी यह बात नही मानूंगा।

केशी कुमारश्रमण—उसकी बात क्यो नही मानोगे ?

प्रदेशी—क्योकि हे भदन्त ! वह पुरुष अपराधी है।

तो इसी प्रकार हे प्रदेशी ! तुम्हारे पितामह भी है, जिन्होने इसी सेयविया नगरी मे अधार्मिक होकर जीवन व्यतीत किया यावत् प्रजाजनो से कर लेकर भी उनका अच्छी तरह से पालन, रक्षण नही किया एव मेरे कथनानुसार वे बहुत से पापकर्मों का उपार्जन करके नरक मे उत्पन्न हुए हैं। उन्ही पितामह के तुम इष्ट, कान्त यावत् दुर्लभ पौत्र हो। यद्यपि वे शीघ्र ही मनुष्य लोक मे आना चाहते है किन्तु वहाँ से आने मे समर्थ नही हैं। क्योकि—प्रदेशी ! तत्काल नरक मे नारक रूप से

उत्पन्न जीव शीघ्र ही चार कारणो से मनुष्यलोक में आने की इच्छा तो करते हैं, किन्तु वहाँ से आ नही पाते है । वे चार कारण इस प्रकार हैं—

१ नरक मे अधुनोत्पन्न नारक वहाँ की अत्यन्त तीव्र वेदना का वेदन करने के कारण मनुष्य-लोक मे शीघ्र आने की आकाक्षा करते हैं, किन्तु आने मे असमर्थ हैं ।

२. नरक मे तत्काल नैरयिक रूप से उत्पन्न जीव परमाधार्मिक नरकपालो द्वारा बारबार ताडित-प्रताडित किये जाने से घबराकर शीघ्र ही मनुष्यलोक मे आने की इच्छा तो करते हैं, किन्तु वैसा करने मे समर्थ नही हो पाते है ।

३ अधुनोपपन्नक नारक मनुष्यलोक मे आने की अभिलाषा तो रखते हैं किन्तु नरक सबन्धी असातावेदनीय कर्म के क्षय नही होने, अननुभूत एव अनिर्जीर्ण होने से वे वहाँ से निकलने मे सक्षम नही हो पाते हैं ।

४ इसी प्रकार नरक सवधी आयुकर्म के क्षय नही होने से, अननुभूत एव अनिर्जीर्ण होने से नारक जीव मनुष्यलोक मे आने की अभिलाषा रखते हुए भी वहाँ से आ नही सकते है ।

अतएव हे प्रदेशी ! तुम इस बात पर विश्वास करो, श्रद्धा रखो कि जीव अन्य—भिन्न है और शरीर अन्य है, किन्तु यह मत मानो कि जो जीव है वही शरीर है और जो शरीर है वही जीव है।

विवेचन—नरक मे से जीव के न आ सकने के इन्ही कारणो का दीघनिकाय (बौद्ध ग्रन्थ) मे भी इसी प्रकार से उल्लेख किया है ।

२४६—तए णं से पएसी राया केसिं कुमारसमण एवं वदासी—

अत्थि ण भते ! एसा पण्णा उवमा, इमेण पुण कारणेण नो उवागच्छइ, एव खलु भते ! मम अज्जिया होत्था, इहेव सेयवियाए नगरीए धम्मिया जाव वित्तिं कप्पेमाणी समणोवासिया अभिगय-जीवा० सव्वो वण्णओ जाव[1] अप्पाण भावेमाणी विहरइ, सा ण तुज्झ वत्तव्वयाए सुबहु पुण्णोवचय समज्जिणित्ता कालमासे काल किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववण्णा, तीसे ण अज्जियाए अहं नत्तुए होत्था इट्ठे कते जाव[2] पासणयाए, तं जइ ण सा अज्जिया मम आगतु एवं वएज्जा—एवं खलु नत्तुया ! अहं तव अज्जिया होत्था, इहेव सेयवियाए नगरीए धम्मिया जाव वित्तिं कप्पेमाणी समणो-वासिया जाव विहरामि । तए ण अहं सुबहु पुण्णोवचय समज्जिणित्ता जाव देवलोएसु उववण्णा, तं तुमं पि णत्तुया ! भवाहि धम्मिए जाव विहराहि, तए ण तुम पि एय चेव सुबहु पुण्णोवचयं समज्जिणित्ता जाव (कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए) उववज्जिहिसि ।

त जइ णं अज्जिया मम आगंतु एवं वएज्जा तो ण अह सद्दहेज्जा, पत्तिएज्जा, रोइज्जा जहाअण्णो जीवो अण्णं सरीरं, णो त जीवो तं सरीर । जम्हा सा अज्जिया मम आगंतु णो एव वदासी, तम्हा सुपइट्ठिया मे पइण्णा जहा—तं जीवो तं सरीरं, नो अन्नो जीवो अन्न सरीर ।

---

१ देखें सूत्र सख्या २२२

२ देखें सूत्र सख्या २४४

२४६—केशी कुमारश्रमण के पूर्वोक्त कथन को सुनने के पश्चात् प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण के समक्ष नया तर्क प्रस्तुत करते हुए कहा—हे भदन्त ! मेरी आजी—दादी थी। वह इसी सेयविया नगरी मे धर्मपरायण यावत् धार्मिक आचार-विचारपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करनेवाली, जीव-अजीव आदि तत्त्वो की ज्ञाता श्रमणोपासिक यावत् तप से आत्मा को भावित करती हुई अपना समय व्यतीत करती थी इत्यादि समस्त वर्णन यहाँ समझ लेना चाहिये और आपके कथनानुसार वे पुण्य का उपार्जन कर कालमास मे काल करके किसी देवलोक मे देवरूप से उत्पन्न हुई हैं। उन आर्यिका (दादी) का मैं इष्ट, कान्त यावत् दुर्लभदर्शन पौत्र हूँ। अतएव वे आर्यिका यदि यहाँ आकर मुझसे इस प्रकार कहे कि—हे पौत्र ! मैं तुम्हारी दादी थी और इसी सेयविया नगरी मे धार्मिक जीवन व्यतीत करती हुई श्रमणोपासिका हो यावत् अपना समय बिताती थी। इस कारण मैं विपुल पुण्य का सचय करके यावत् देवलोक मे उत्पन्न हुई हूँ। हे पौत्र ! तुम भी धार्मिक आचार-विचारपूर्वक अपना जीवन बिताओ। जिससे तुम भी विपुल पुण्य का उपार्जन करके यावत् (मरणसमय मे मरण करके किसी एक देवलोक मे देवरूप से) उत्पन्न होओगे।

इस प्रकार से यदि मेरी दादी आकर मुझसे कहे कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है किन्तु वही जीव वही शरीर नही अर्थात् जीव और शरीर एक नही हैं, तो हे भदन्त ! मै आपके कथन पर विश्वास कर सकता हूँ, प्रतीति कर सकता हूँ और अपनी रुचि का विषय बना सकता हूँ। परन्तु जब तक मेरी दादी आकर मुझसे ऐसा नही कहती तब तक मेरी यह धारणा सुप्रतिष्ठित एव समीचीन है कि जो जीव है वही शरीर है। किन्तु जीव और शरीर भिन्न-भिन्न नही हैं।

विवेचन—यहाँ राजा प्रदेशी ने अपनी धार्मिक दादी का उदाहरण देकर जो व्यक्त किया, उसे दीघनिकाय मे राजा पायासि ने अपने धर्मपरायण मित्रो के उदाहरण द्वारा बताया है कि आप अपनी धर्मवृत्ति के कारण स्वर्ग जाने वाले हैं और ऐसा हो तो आप मुझे यह समाचार अवश्य देना।

२४७—तए ण केसी कुमारसमणे पएसीरायं एव वयासी—जति णं तुमं पएसी ! ण्हायं कयबलिकम्मं कयकोउयमंगलपायच्छित्त उल्लपडसाडगं भिंगारकडुच्छुयहत्थगय देवकुलमणुपविसमाण केइ य पुरिसे वच्चघरंसि ठिच्चा एव वदेज्जा—एह ताव सामी ! इह मुहुत्तगं आसयह वा, चिट्ठह वा, निसीयह वा, तुयट्टह वा, तस्स ण तुमं पएसी ! पुरिसस्स खणमवि एयमट्ठ पडिसुणिज्जासि ?

णो तिणट्ठे समट्ठे।

कम्हा णं ?

भते ! असुई असुइ सामतो।

एवामेव पएसी ! तव वि अज्जिया होत्था, इहेव सेयवियाए णयरीए धम्मिया जाव विहरति, सा णं अम्हं वत्तव्वाए सुबहुं जाव उववन्ना, तीसे ण अज्जियाए तुमं णत्तुए होत्था इट्ठे० किमंग पुण पासणयाए ? सा णं इच्छइ माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, णो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए। चऊहि ठाणेहि पएसी ! अहुणोववण्णए देवे देवलोएसु इच्छेज्जा माणुस लोग हव्वमागच्छित्तए णो चेव ण संचाएइ—

१. अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु दिव्वेहि कामभोगेहि मुच्छिए-गिद्धे-गढिए-अज्झोववण्णे से णं माणसे भोगे नो आढाति, नो परिजाणाति, से णं इच्छिज्ज माणुसं० नो चेव ण संचाएति।

२ अहुणोववण्णए देवे देवलोएसु दिव्वेहिं कामभोगेहिं मुच्छिए जाव अज्झोववण्णे, तस्स ण माणुस्से पेम्मे वोच्छिन्नए भवति, दिव्वे पिम्मे सकते भवति, से ण इच्छेज्जा माणुसं० णो चेव णं संचाएइ।

३. अहुणोववण्णे देवे दिव्वेहिं कामभोगेहिं मुच्छिए जाव अज्झोववण्णे, तस्स ण एव भवइ—इयाणि गच्छ मुहुत्त जाव इह गच्छ, अप्पाउया णरा कालधम्मुणा सजुत्ता भवति, से ण इच्छेज्जा माणुस्स० णो चेव णं सचाएइ।

४. अहुणोववण्णे देवे दिव्वेहिं जाव अज्झोववण्णे, तस्स माणुस्सए उराले दुग्गधे पडिकूले पडिलोमे भवइ, उड्ढ पि य ण चत्तारि पच जोअणसए असुभे माणुस्सए गधे अभिसमागच्छति, से ण इच्छेज्जा माणुस० णो चेव ण संचाइज्जा।

इच्चेएहिं ठाणेहिं पएसी ! अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्ज माणुस लोग हव्वमागच्छित्तए णो चेव ण सचाएइ हव्वमागच्छित्तए, त सद्दहाहि ण तुमं पएसी ! जहा—अन्नो जीवो अन्न सरीर, नो तं जीवो तं सरोर।

२४७—प्रदेशी राजा का उक्त तर्क सुनकर केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से इस प्रकार पूछा—हे प्रदेशी ! यदि तुम स्नान, वलिकर्म और कौतुक, मगल, प्रायश्चित्त करके गीली धोती पहन, झारी और धूपदान हाथ मे लेकर देवकुल मे प्रविष्ट हो रहे होओ और उस समय कोई पुरुष विष्ठा-गृह (शौचालय) मे खडे होकर यह कहे कि—हे स्वामिन् ! आओ और क्षणमात्र के लिये यहाँ बैठो, खडे होओ और लेटो, तो क्या हे प्रदेशी ! एक क्षण के लिये भी तुम उस पुरुष की यह बात स्वीकार कर लोगे ?

प्रदेशी—हे भदन्त ! यह अर्थ समर्थ नही है, अर्थात् उस पुरुष की बात स्वीकार नही करू गा।

कुमारश्रमण केशीस्वामी—उस पुरुष की बात क्यो स्वीकार नही करोगे ?

प्रदेशी—क्योकि भदन्त ! वह स्थान अपवित्र है और अपवित्र वस्तुओ से भरा हुआ—व्याप्त है।

केशी कुमारश्रमण—तो इसी प्रकार प्रदेशी ! इसी सेयविया नगरी मे तुम्हारी जो दादी धार्मिक यावत् धर्मानुरागपूर्वक जीवन व्यतीत करती थी और हमारी मान्यतानुसार वे बहुत से पुण्य का सचय करके यावत् देवलोक मे उत्पन्न हुई है तथा उन्ही दादी के तुम इष्ट यावत् दुर्लभदर्शन जैसे पौत्र हो। वे तुम्हारी दादी भी शीघ्र ही मनुष्यलोक मे आने की अभिलाषी हैं किन्तु आ नही सकती।

हे प्रदेशी ! अधुनोत्पन्न देव देवलोक से मनुष्यलोक मे आने के आकाक्षी होते हुए भी इन चार कारणो से आ नही पाते है—

१ तत्काल उत्पन्न देव देवलोक के दिव्य कामभोगो मे मूर्च्छित, गृद्ध, आसक्त और तल्लीन हो जाने मे मानवीय भोगो के प्रति आकर्षित नही होते है, न ध्यान देते हैं और न उनकी इच्छा करते हैं। जिससे वे मनुष्यलोक मे आने की आकाक्षा रखते हुए भी आने मे समर्थ नही हो पाते हैं।

२ देवलोक सवधी दिव्य कामभोगो मे मूर्च्छित यावत् तल्लीन हो जाने से अधुनोत्पन्नक देव का मनुष्य सवधी प्रेम (आकर्षण) व्युच्छिन्न—समाप्त-सा हो जाता है—टूट जाता है और देवलोक

सबधी अनुराग सक्रात हो जाने से मनुष्य लोक मे आने की अभिलाषा रखते हुए भी यहाँ आ नही पाते हैं ।

३ अधुनोत्पन्न देव देवलोक मे जब दिव्य कामभोगो मे मूर्च्छित यावत् तल्लीन हो जाते हैं तब वे सोचते तो है कि अब जाऊँ, अब जाऊँ, कुछ समय बाद जाऊँगा, किन्तु उतने समय मे तो उनके इस मनुष्यलोक के अल्पआयुषी सबधी कालधर्म (मरण) को प्राप्त हो चुकते है । जिससे मनुष्यलोक मे आने की अभिलाषा रखते हुए भी वे यहाँ आ नही पाते है ।

४ वे अधुनोत्पन्नक देव देवलोक के दिव्य कामभोगो मे यावत् तल्लीन हो जाते हैं कि जिससे उनको मर्त्यलोक सबधी अतिशय तीव्र दुर्गन्ध प्रतिकूल और अनिष्टकर लगती है एव उस मानवीय कुत्सित दुर्गन्ध को ऊपर आकाश मे चार-पाच सौ योजन तक फैल जाने से मनुष्यलोक मे आने की इच्छा रखते हुए भी वे उस दुर्गन्ध के कारण आने मे असमर्थ हो जाते है ।

अतएव हे प्रदेशी ! मनुष्यलोक मे आने के इच्छुक होने पर भी इन चार कारणो से अधुनोत्पन्न देव देवलोक से यहाँ आ नही सकते हैं । इसलिये प्रदेशी ! तुम यह श्रद्धा करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, जीव शरीर नही है और न शरीर जीव है ।

विवेचन—यहाँ दिये गये देवकुल मे प्रवेश करने के उदाहरण के स्थान पर दीघनिकाय मे कुमार काश्यप ने दूसरा उदाहरण दिया है—जैसे कोई पुरुष दुर्गन्धमय कूप मे पडा हो और उसका शरीर मल से लिप्त हो और उस पुरुष को बाहर निकलकर स्नान, शरीर पर सुगधित तेल आदि का विलेपन और माला आदि से शृ गारित करने के बाद पुन उसे दुर्गन्धित कूप मे घुसने के लिए कहा जाये तो क्या वह उसमे घुसेगा ?

प्रत्युत्तर मे राजा ने कहा—नही घुसेगा ।

काश्यप—तो इसी प्रकार दुर्गन्धित मनुष्यलोक से स्वर्ग मे पहुँचे हुए देव पुन दूसरी बार दुर्गन्धमय मर्त्यलोक मे आयेंगे क्या इत्यादि ?

मनुष्यलोक मे देवो के न आने के जो कारण यहाँ बताये हैं, इसी प्रकार दीघनिकाय मे भी कहा है कि—

इस मनुष्यलोक के सौ वर्षों के बराबर त्रायस्त्रिश देवो का एक दिन-रात होता है । ऐसे सौ-सौ वर्ष जितने समय वाले तीस दिन-रात होते हैं, तब देवो का एक मास और ऐसे बारह मास का एक वर्ष होता है । इन त्रायस्त्रिश देवो का ऐसे दिव्य हजार वर्षों जितना दीर्घ आयुष्य होता है । ये देव भी विचार करते हैं कि दो-तीन दिन मे इन दिव्य कामगुणो को भोगने के बाद अपने मानव-सबधियो को समाचार देने जाऊगा इत्यादि ।

यहाँ मनुष्यलोक सबधी दुर्गन्ध ऊपर आकाश मे चार-सौ, पाच-सौ योजन तक पहुँचने का उल्लेख किया है, इसके बदले दीघनिकाय मे कहा है कि देवो की दृष्टि मे मनुष्य अपवित्र है, दुरभि-गध वाला है, घृणित है । मनुष्यलोक सबधी दुर्गन्ध ऊपर सौ योजन तक पहुँचकर देवो को बाधा उत्पन्न करती है ।

प्रस्तुत मे चार-सौ, पाँच-सौ योजन तक दुर्गन्ध पहुँचने का जो उल्लेख किया है उसकी नौ

योजन से अधिक दूर से आते सगध पुद्गल घ्राणेन्द्रिय के विषय नही हो सकते हैं—इस शास्त्रीय उल्लेख से किस प्रकार सगति बैठ सकती है ? क्योकि नौ योजन से अधिक दूर से जो पुद्गल आते हैं उनकी गध अत्यन्त मद हो जाती है, जिससे वे घ्राणेन्द्रिय के विषय नही हो सकते हैं।

इसका समाधान करते हुए टीकाकार ने कहा है कि यद्यपि नियम तो ऐसा ही है किन्तु जो पुद्गल अति उत्कट गध वाले होते हैं, उनके नौ योजन तक पहुँचने पर जो दूसरे पुद्गल उनसे मिलते हैं, उनमे अपनी गन्ध सक्रात कर देते है और फिर वे पुद्गल भी आगे जाकर दूसरे पुद्गलो को अपनी गध से वासित कर देते है। इस प्रकार ऊपर-ऊपर पुद्गल चार सौ, पाँच-सौ योजन तक पहुँचते हैं। परन्तु यह बात लक्ष्य मे रखने योग्य है कि ऊपर-ऊपर वह गध मद-मद होती जाती है। इसी प्रकार से मनुष्यलोक सबंधी दुर्गन्ध साधारणतया चार सौ योजन तक और यदि दुर्गन्ध अत्यन्त तीव्र हो तब पाँच सौ योजन तक पहुचती है, इसीलिए मूलशास्त्र मे चार सौ, पाँच सौ ये दो सख्यायें बताई हैं।

इस सबध मे स्थानाग के टीकाकार आचार्य अभयदेवसूरि का मंतव्य है कि इससे मनुष्यक्षेत्र के दुर्गन्धित स्वरूप को सूचित किया गया है। वस्तुत. देव अथवा दूसरा कोई नौ योजन से अधिक दूर से आगत पुद्गलो की गंध नही जानता है, जान नही सकता है। शास्त्र मे इन्द्रियो का जो विषय-प्रमाण वतलाया है, वह सभव है कि औदारिक शरीर सबधी इन्द्रियो की अपेक्षा कहा हो। भरतादि क्षेत्र मे एकान्त सुखमा काल होने पर उसकी दुर्गन्ध चार सौ योजन तक और वह काल न हो तब पाच सौ योजन तक पहुँचती है, इसीलिए दो सख्याएँ बताई हैं।

२४८—तए णं से पएसी राया केसिं कुमारसमण एवं वयासी—

अत्थि णं भंते ! एस पण्णा उवमा, इमेण पुण कारणेणं णो उवागच्छति, एवं खलु भते ! अह अन्नया कयाइं वाहिरियाए उवट्ठाणसालाए अणेग गणणायक-दंडणायग-राय-ईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाह-मति-महामंति-गणग-दोवारिय-अमच्च-चेड-पीढमद्द-नगर-निगम-दूय-संधिवालेहिं सद्धिं सपरिवुडे विहरामि। तए ण मम णगरगुत्तिया ससक्खं सलोद्दं सगेवेज्जं अवउडबंधणबद्धं चोर उवणेंति।

तए णं अहं तं पुरिसं जीवंतं चेव अउकुंभीए पक्खिवावेमि, अउमएणं पिहाणएण पिहावेमि, अएण य तउएण य आयावेमि, आयपच्चइयएहिं पुरिसेहिं रक्खावेमि।

तए णं अह अण्णया कयाइ जेणामेव सा अउकुंभी तेणामेव उवागच्छामि, उवागच्छित्ता त अउकुंभि उग्गलच्छावेमि, उग्गलच्छावित्ता तं पुरिसं सयमेव पासामि, णो चेव ण तीसे अयकुंभीए केइ छिड्डे इ वा विवरे इ वा अतरे इ वा राई वा जओ ण से जीवे अतोहिंतो बहिया णिग्गए।

जइ णं भंते ! तीसे अउकुंभीए होज्जा केई छिड्डे वा जाव राई वा जओ ण से जीवे अंतोहिंतो बहिया णिग्गए, तो णं अहं सद्दहेज्जा-पत्तिएज्जा-रोएज्जा जहा अन्नो जीवो अन्न सरीर, नो त जीवो त सरीर, जम्हा णं भते ! तीसे अउकुभीए णत्थि केइ छिड्डे वा जाव निग्गए, तम्हा सुपतिट्ठिया मे पइन्ना जहा—तं जीवो तं सरीरं, नो अन्नो जीवो अन्न सरीरं।

२४८—केशी कुमारश्रमण के इस उत्तर को सुनने के अनन्तर राजा प्रदेशी ने केशी कुमार-श्रमण से इस प्रकार कहा—

हे भदन्त ! जीव और शरीर की भिन्नता प्रदर्शित करने के लिए आपने देवो के नही आने के कारण रूप मे जो उपमा दी, वह तो बुद्धि से कल्पित एक दृष्टान्त मात्र है कि देव इन कारणो से मनुष्यलोक मे नही आते है। परन्तु भदन्त ! किसी एक दिन मैं अपने अनेक गणनायक (समूह के मुखिया), दडनायक (अपराध का विचार करने वाले), राजा (जागीरदार), ईश्वर (युवराज), तलवर (राजा की ओर से स्वर्णपट्ट प्राप्त करने वाले), माडबिक (पाच सौ गाँव के स्वामी), कौटुम्बिक (ग्रामप्रधान), इभ्भ (अनेको करोड धन-सपत्ति के स्वामी), श्रेष्ठी (प्रमुख व्यापारी), सेनापति, सार्थवाह (देश-देशान्तर जाकर व्यापार करने वाले), मत्री, महामत्री, गणक (ज्योतिषशास्त्र वेत्ता), दौवारिक (राजसभा का रक्षक), अमात्य, चेट (सेवक), पीठमर्दक (समवयस्क मित्र विशेष), नागरिक, व्यापारी, दूत, सधिपाल आदि के साथ अपनी बाह्य उपस्थानशाला (सभाभवन) मे बैठा हुआ था। उसी समय नगर-रक्षक चुराई हुई वस्तु और साक्षी-गवाह सहित गरदन और पीछे दोनो हाथ बाधे एक चोर को पकड कर मेरे सामने लाये।

तब मैंने उसे जीवित ही एक लोहे की कु भी मे बद करवा कर अच्छी तरह लोहे के ढक्कन से उसका मुख ढँक दिया। फिर गरम लोहे एव रागे से उस पर लेप करा दिया और देखरेख के लिये अपने विश्वासपात्र पुरुषो को नियुक्त कर दिया।

तत्पश्चात् किसी दिन मैं उस लोहे की कु भी के पास गया। वहाँ जाकर मैंने उस लोहे की कु भी को खुलवाया। खुलवा कर मैंने स्वय उस पुरुष को देखा तो वह मर चुका था। किन्तु उस लोह कु भी मे राई जितना न कोई छेद था, न कोई विवर था, न कोई अंतर था और न कोई दरार थी कि जिसमे से उस (अदर बद) पुरुष का जीव बाहर निकल जाता।

यदि उस लोहकु भी मे कोई छिद्र यावत् दरार होती तो हे भदन्त ! मैं यह मान लेता कि भीतर बद पुरुष का जीव बाहर निकल गया है और तब उससे आपकी बात पर विश्वास कर लेता, प्रतीति कर लेता एव अपनी रुचि का विषय बना लेता—निर्णय कर लेता कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, किन्तु जीव शरीर रूप नही और शरीर जीव रूप नही है।

लेकिन उस लोहकु भी मे जब कोई छिद्र ही नही है यावत् जीव नही है तो हे भदन्त ! मेरा यह मतव्य ठीक है कि जो जीव है वही शरीर है और जो शरीर है वही जीव है, जीव शरीर से भिन्न नही और शरीर जीव से भिन्न नही है।

२४९—तए णं केसी कुमारसमणे पएसिं राय एव वयासी—

पएसी ! से जहा नामए कूडागारसाला सिया दुहओ लित्ता-गुत्ता-गुत्तदुवारा-णिवायगभीरा। अह णं केइ पुरिसे भेरिं च दड च गहाय कूडागारसालाए अतो अतो अणुप्पविसति, तीसे कूडागारसालाए सव्वतो समता घण-निचिय-निरंतर-णिच्छिड्डाइ दुवारवयणाइं पिहेइ, तीसे कूडागारसालाए बहुमज्झदेसभाए ठिच्चा तं भेरिं दंडएणं महया-महया सद्देणं तालेज्जा, से णूणं पएसी ! से सद्दे णं अतोहिंतो बहिया निग्गच्छइ ?

हंता णिग्गच्छइ।

अत्थि ण पएसी ! तीसे कूडागारसालाए केइ छिड्डे वा जाव राई वा जओ ण से सद्दे अंतोहिंतो बहिया णिग्गए ?

नो तिणट्ठे समट्ठे ।

एवामेव पएसी ! जीवे वि अप्पडिहयगई पुढविं भिच्चा, सिलं भिच्चा, पव्वयं भिच्चा अंतोहिंतो बहिया णिग्गच्छइ, तं सद्दहाहि णं तुमं पएसी ! अण्णो जीवो तं चेव ।

२४९—प्रदेशी राजा की इस युक्ति को सुनने के पश्चात् केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से कहा—

हे प्रदेशी ! जैसे कोई एक कूटाकारशाला (पर्वत के शिखर जैसी आकृति वाला भवन) हो और वह भीतर-बाहर चारों ओर लीपी हुई हो, अच्छी तरह से आच्छादित हो, उसका द्वार भी गुप्त हो और हवा का प्रवेश भी जिसमें नहीं हो सके, ऐसी गहरी हो । अब यदि उस कूटाकारशाला में कोई पुरुष भेरी और बजाने के लिए डंडा लेकर घुस जाये और घुसकर उस कूटाकारशाला के द्वार आदि को इस प्रकार चारों ओर से बंद कर दे कि जिससे कहीं पर भी थोड़ा-सा अंतर नहीं रहे और उसके बाद उस कूटाकारशाला के बीचों-बीच खड़े होकर डंडे से भेरी को जोर-जोर से बजाये तो हे प्रदेशी ! तुम्हीं बताओ कि वह भीतर की आवाज बाहर निकलती है अथवा नहीं ? अर्थात् सुनाई पड़ती है या नहीं ?

प्रदेशी—हाँ भदन्त ! निकलती है ।

केशी कुमारश्रमण—हे प्रदेशी ! क्या उस कूटाकारशाला में कोई छिद्र यावत् दरार है कि जिसमें से वह शब्द बाहर निकला हो ?

प्रदेशी—हे भदन्त ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । अर्थात् वहाँ पर कोई छिद्रादि नहीं कि जिससे शब्द बाहर निकल सके ।

केशी कुमारश्रमण—तो इसी प्रकार प्रदेशी ! जीव भी अप्रतिहत गति वाला है । वह पृथ्वी का भेदन कर, शिला का भेदन कर, पर्वत का भेदन कर भीतर से बाहर निकल जाता है । इसीलिए हे प्रदेशी ! तुम यह श्रद्धा—प्रतीति करो कि जीव और शरीर भिन्न-भिन्न (पृथक्-पृथक्) हैं, जीव शरीर नहीं है और शरीर जीव नहीं है ।

२५०—तए णं पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वदासी—

अत्थि णं भंते ! एस पण्णा उवमा, इमेणं पुण कारणेणं णो उवागच्छइ, एवं खलु भंते ! अहं अन्नया कयाइ बाहिरियाए उवट्ठाणसालाए जाव[1] विहरामि, तए णं ममं णगरगुत्तिया ससक्खं जाव[2] उवणेंति, तए णं अहं (तं) पुरिसं जीवियाओ ववरोवेमि, जीवियाओ ववरोवेत्ता अयोकुंभीए पक्खिवावेमि, अउमएणं पिहावेमि जाव[3] पच्चइएहिं पुरिसेहिं रक्खावेमि ।

तए णं अहं अन्नया कयाइं जेणेव सा कुंभी तेणेव उवागच्छामि, तं अउकुंभिं उग्गलच्छावेमि, तं अउकुंभिं किमिकुंभिं पिव पासामि । णो चेव णं तीसे अउकुंभीए केइ छिड्डे इ वा जाव राई वा जता णं ते जीवा बहियाहिंतो अणुपविट्ठा, जति णं तीसे अउकुंभीए होज्ज केइ छिड्डे इ वा जाव

१-२. देखें सूत्र संख्या २४८
३. देखें सूत्र संख्या २४८

अणुपविट्ठा, तेण अहं सद्दहेज्जा जहा—अन्नो जीवो तं चेव, जम्हा ण तीसे अउकुंभीए नत्थि केइ छिड्डे इ वा जाव अणुपविट्ठा तम्हा सुपतिट्ठिआ मे पइण्णा जहा—त जीवो त सरीर त चेव ।

२५०—इस उत्तर को सुनने के पश्चात् प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से इस प्रकार कहा—

भदन्त ! यह आप द्वारा प्रयुक्त उपमा तो बुद्धिविशेष रूप है, इससे मेरे मन मे जीव और शरीर की भिन्नता का विचार युक्तियुक्त प्रतीत नही होता है । क्योकि हे भदन्त ! किसी समय मैं अपनी बाहरी उपस्थानशाला मे गणनायक आदि के साथ बैठा हुआ था । तब मेरे नगररक्षको ने साक्षी सहित यावत् एक चोर पुरुष को उपस्थित किया । मैंने उस पुरुष को प्राणरहित कर दिया अर्थात् मार डाला और मारकर एक लोहकुंभी मे डलवा दिया, ढक्कन से ढाक दिया यावत् अपने विश्वासपात्र पुरुषो को रक्षा के लिये नियुक्त कर दिया ।

इसके बाद किसी दिन जहाँ वह कुंभी थी, मैं वहां आया । आकर उस लोहकुंभी को उघाडा तो उसे कृमिकुल से व्याप्त देखा । लेकिन उस लोहकुंभी मे न तो कोई छेद था, न कोई दरार थी कि जिसमे से वे जीव बाहर से उसमे प्रविष्ट हो सकें । यदि उस लोहकुंभी मे कोई छेद होता यावत् दरार होती तो यह माना जा सकता था—मान लेता कि वे जीव उसमे से होकर कुंभी मे प्रविष्ट हुए है और तब मैं श्रद्धा कर लेता कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है । लेकिन जब उस लोहकुंभी मे कोई छेद आदि नही थे, फिर भी उसमे जीव प्रविष्ट हो गये । अत मेरी यह प्रतीति सुप्रतिष्ठित-समीचीन है कि जीव और शरीर एक ही है अर्थात् जीव शरीर रूप है और शरीर जीव रूप है ।

२५१—तए ण केसी कुमारसमणे पएसीं राय एव वयासी—

अत्थि णं तुमे पएसी ! कयाइ अए धंतपुव्वे वा धम्मावियपुव्वे वा ?

हता अत्थि ।

से णूणं पएसी ! अए धते समाणे सव्वे अगणिपरिणए भवति ?

हता भवति ।

अत्थि णं पएसी ! तस्स अयस्स केई छिड्डे इ वा जेणं से जोई बहियाहिंतो अंतो अणुपविट्ठे ?

नो इणमट्ठे (इणट्ठे) समट्ठे ।

एवामेव पएसी ! जीवो वि अप्पडिहयगई पुढविं भिच्चा, सिल भिच्चा बहियाहिंतो अणुपविसइ, त सद्दहाहि ण तुम पएसी ! तहेव ।

२५१—तत्पश्चात् केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा—हे प्रदेशी ! क्या तुमने पहले कभी अग्नि से तपाया हुआ लोहा देखा है अथवा स्वय लोहे को तपवाया है ?

प्रदेशी—हाँ भदन्त ! देखा है ।

केशी कुमारश्रमण—तब हे प्रदेशी ! तपाये जाने पर वह लोहा पूर्णतया अग्नि रूप मे परिणत हो जाता है या नही ?

प्रदेशी—हॉ भदन्त ! हो जाता है।

केशी कुमारश्रमण—हे प्रदेशी ! उस लोहे मे कोई छिद्र आदि है क्या, जिससे वह अग्नि बाहर से उसके भीतर प्रविष्ट हो गई ?

प्रदेशी—भदन्त ! यह अर्थ तो समर्थ नही है। अर्थात् उस लोहे मे कोई छिद्र आदि नही होता।

केशी कुमारश्रमण—तो इसी प्रकार हे प्रदेशी ! जीव भी अप्रतिहत गति वाला है, जिससे वह पृथ्वी, शिला आदि का भेदन करके बाहर से भीतर प्रविष्ट हो जाता है। इसीलिए हे प्रदेशी ! तुम इस बात की श्रद्धा—प्रतीति करो कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है।

विवेचन—केशी कुमारश्रमण के कथन का यह आशय है कि ये जीव दूसरी गति से च्यवन कर इस मृत शरीर मे आकर उत्पन्न हुए हैं।

२५२—तए ण पएसी राया केसीकुमारसमणं एव वयासी—

अत्थि णं भते ! एस पण्णा उवमा, इमेण पुण मे कारणेण नो उवागच्छइ, अत्थि णं भते ! से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे जाव सिप्पोवगए पभू पचकडग निसिरित्तए ?

हंता, पभू।

जति णं भते ! सो च्चेव पुरिसे बाले जाव मदविन्नाणे पभू होज्जा पचकडगं निसिरित्तए, तो णं अहं सद्दहेज्जा जहा—अन्नो जीवो त चेव, जम्हा ण भते ! स चेव से पुरिसे जाव मदविन्नाणे णो पभू पचकडग निसिरित्तए, तम्हा सुपइट्ठिया मे पइण्णा जहा—त जीवो त चेव।

२५२—पूर्वोक्त युक्ति को सुनकर प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से कहा—बुद्धि-विशेष-जन्य होने से आपकी उपमा वास्तविक नही है। किन्तु जो कारण मैं बता रहा हूँ, उससे जीव और शरीर की भिन्नता सिद्ध नही होती है। वह कारण इस प्रकार है—

हे भदन्त ! जैसे कोई एक तरुण यावत् (युगवान, बलशाली, निरोग, स्थिर सहनन वाला, सुदृढ पहुँचा वाला, हाथ-पैर-पीठ-जघाओ आदि से सपन्न, सघन-सुदृढ गोल-गोल कधे वाला, चमडे के पट्टो, मुष्टिकाओ आदि के प्रहारो से सुगठित शरीर वाला, हृदय बल से सपन्न, सहोत्पन्न ताल वृक्ष के समान बाहु-युगल वाला, लाघने-कूदने-चलने मे समर्थ, चतुर, दक्ष, कुशल, बुद्धिमान्) और अपना कार्य सिद्ध करने मे निपुण पुरुष क्या एक साथ पाच बाणो को निकालने मे समर्थ है ?

केशी कुमारश्रमण—हाँ वह समर्थ है।

प्रदेशी—लेकिन वही पुरुष यदि बाल यावत् मदविज्ञान वाला होते हुए भी पाच बाणो को एक साथ निकालने मे समर्थ होता तो हे भदन्त ! मैं यह श्रद्धा कर सकता था कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है, जीव शरीर नही है। लेकिन वही बाल, मदविज्ञान वाला पुरुष पाच बाणो को एक साथ निकालने मे समर्थ नही है, इसलिये भदन्त ! मेरी यह धारणा कि जीव और शरीर एक है, जो जीव है वही शरीर है और जो शरीर है वही जीव है, सुप्रतिष्ठित—प्रामाणिक, सुसगत है।

२५३—तए णं केसी कुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी—

से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे जाव सिप्पोवगए णवएणं धणुणा नवियाए जीवाए नवएण इसुणा पभू पंचकडग निसिरित्तए?

हंता, पभू।

सो चेव णं पुरिसे तरुणे जाव निउणसिप्पोवगते कोरिल्लिएणं धणुणा कोरिल्लियाए जीवाए कोरिल्लिएणं इसुणा पभू पंचकंडग निसिरित्तए?

णो तिणमट्ठे समट्ठे।

कम्हा ण?

भंते! तस्स पुरिसस्स अपज्जत्ताइं उवगरणाइं हवंति।

एवामेव पएसी! सो चेव पुरिसे बाले जाव मदविन्नाणे अपज्जत्तोवगरणे, णो पभू पंचकंडयं निसिरित्तए, तं सद्दहाहि ण तुमं पएसी! जहा अन्नो जीवो तं चेव।

२५३—राजा प्रदेशी के इस तर्क के प्रत्युत्तर मे केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से कहा—जैसे कोई एक तरुण यावत् कार्य करने मे निपुण पुरुष नवीन धनुष, नई प्रत्यचा (डोरी) और नवीन वाण से क्या एक साथ पाँच वाण निकालने मे समर्थ है अथवा नही है?

प्रदेशी—हाँ समर्थ है।

केशी कुमारश्रमण—लेकिन वही तरुण यावत् कार्य-कुशल पुरुष जीर्ण-शीर्ण, पुराने धनुप, जीर्ण प्रत्यचा और वैसे ही जीर्ण वाण से क्या एक साथ पाँच वाणो को छोडने मे समर्थ हो सकता है?

प्रदेशी—भदन्त! यह अर्थ समर्थ नही है। अर्थात् पुराने धनुष आदि से वह एक साथ पाच वाण छोडने मे समर्थ नही होगा।

केशी कुमारश्रमण—क्या कारण है कि जिससे यह अर्थ समर्थ नही है?

प्रदेशी—भदन्त! उस पुरुष के पास उपकरण (साधन) अपर्याप्त हैं।

केशी कुमारश्रमण—तो इसी प्रकार हे प्रदेशी! वह वाल यावत् मदविज्ञान पुरुष योग्यता रूप उपकरण की अपर्याप्तता के कारण एक साथ पाच वाणो को छोड़ने मे समर्थ नही हो पाता है। अत. प्रदेशी! तुम यह श्रद्धा-प्रतीति करो कि जीव और शरीर पृथक्-पृथक् है, जीव शरीर नही और शरीर जीव नही है।

२५४—तए णं पएसी राया केसीकुमारसमण एवं वयासी—

अत्थि ण भंते! एस पण्णा उवमा, इमेण पुण कारणेणं नो उवागच्छइ, भंते! से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे जाव सिप्पोवगते पभू एगं महं अयभारगं वा तउयभारगं वा सीसगभारगं वा परिवहित्तए?

हंता पभू।

सो चेव णं भते ! पुरिसे जुन्ने जराजज्जरियदेहे सिढिलवलितयाविणट्ठगत्ते दडपरिग्गहियग्ग-हत्थे पविरलपरिसडियदंतसेढी आउरे किसिए पिवासिए दुब्बले किलते नो पभू एग महं अयभारग वा जाव परिवहित्तए, जति ण भंते ! सच्चेव पुरिसे जुन्ने जराजज्जरियदेहे जाव परिकिलते पभू एग महं अयभारं वा जाव परिवहित्तए तो ण सद्दहेज्जा तहेव, जम्हा ण भते ! से चेव पुरिसे जुन्ने जाव किलते नो पभू एग मह अयभार वा जाव परिवहित्तए, तम्हा सुपतिट्ठिता मे पइण्णा तहेव ।

२५४—इस उत्तर को सुनकर प्रदेशी राजा ने पुन केशी कुमारश्रमण से कहा—हे भदन्त ! यह तो प्रज्ञाजन्य उपमा है, वास्तविक नही है । किन्तु मेरे द्वारा प्रस्तुत हेतु से तो यही सिद्ध होता है कि जीव और शरीर मे भेद नही है । वह हेतु इस प्रकार है—

भदन्त ! कोई एक तरुण यावत् कार्यक्षम पुरुष एक विशाल वजनदार लोहे के भार को, सीसे के भार को या रागे के भार को उठाने मे समर्थ है अथवा नही है ?

केशी कुमारश्रमण—हाँ समर्थ है ।

प्रदेशी—लेकिन भदन्त ! जब वही पुरुष वृद्ध हो जाए और वृद्धावस्था के कारण शरीर जर्जरित, शिथिल, झुर्रियो वाला एव अशक्त हो, चलते समय सहारे के लिए हाथ मे लकडी ले, दतपक्ति मे से बहुत से दात गिर चुके हो, खाँसी, श्वास आदि रोगो से पीडित होने के कारण कमजोर हो, भूख-प्यास से व्याकुल रहता हो, दुर्बल और क्लान्त—थका-मादा हो तो उस वजनदार लोहे के भार को, रागे के भार को अथवा सीसे के भार को उठाने मे समर्थ नही हो पाता है । हे भदन्त ! यदि वही पुरुष वृद्ध, जरा-जर्जरित शरीर यावत् परिक्लान्त होने पर भी उस विशाल लोहे के भार आदि को उठाने मे समर्थ होता तो मैं यह विश्वास कर सकता था कि जीव शरीर से भिन्न है और शरीर जीव से भिन्न है, जीव और शरीर एक नही है । लेकिन भदन्त ! वह पुरुष वृद्ध यावत् क्लान्त हो जाने से एक विशाल लोहे के भार आदि को उठाने मे समर्थ नही है । अत मेरी यह धारणा सुसगत—समीचीन है कि जीव और शरीर दोनो एक ही है, किन्तु जीव और शरीर भिन्न-भिन्न नही है ।

२५५—तए णं केसी कुमारसमणे पएसिं राय एवं वयासी—

से जहाणामए केइ पुरिसे तरुणे जाव सिप्पोवगए णवियाए विहगियाए, णवएहिं सिक्कएहिं, णवएहिं पच्छियपिंडएहिं पहू एगं महं अयभारं जाव (वा तउयभारं वा सीसगभारं वा) परिवहित्तए ?

हंता पभू ।

पएसी ! से चेव णं पुरिसे तरुणे जाव सिप्पोवगए जुन्नियाए दुब्बलियाए घुणक्खइयाए विहगियाए जुण्णएहिं दुब्बलएहिं घुणक्खइएहिं सिढिलतयापिणद्धएहिं सिक्कएहिं, जुण्णएहिं दुब्बलिएहिं घुणखइएहिं पच्छिपिंडएहिं पभू एग मह अयभार वा जाव परिवहित्तए ?

णो तिणट्ठे समट्ठे ।

कम्हा ण ?

भंते ! तस्स पुरिसस्स जुन्नाइं उवगरणाइं भवंति ।

पएसी ! से चेव से पुरिसे जुन्ने जाव[1] किलंते जुत्तोवगरणे नो पभू एगं महं अयभारं वा जाव परिवहित्तए, तं सद्दहाहि ण तुम पएसी ! जहा—अन्नो जीवो अन्नं सरीर ।

२५५—प्रदेशी राजा की इस बात को सुनकर केशी कुमारश्रमण ने राजा प्रदेशी से कहा—जैसे कोई एक तरुण यावत् कार्यनिपुण पुरुष नवीन कावड से, रस्सी से बने नवीन सीके से और नवीन टोकनी से एक बहुत बडे, वजनदार लोहे के भार को यावत् (रागे और सीसे के भार को) वहन करने मे (उठाने, ढोने मे) समर्थ है या नही है ?

प्रदेशी—हाँ समर्थ है ।

केशी कुमारश्रमण—अब मैं पुन तुम से पूछता हूँ कि—हे प्रदेशी ! वही तरुण यावत् कार्य-कुशल पुरुष क्या सडी-गली, पुरानी, कमजोर, घुन से खाई हुई कावड से, जीर्ण-शीर्ण, दुर्बल, दीमक के खाये एव ढीले-ढाले सीके से, और पुराने, कमजोर और दीमक लगे टोकने से एक बड़े वजनदार लोहे के भार आदि को ले जाने मे समर्थ है ?

प्रदेशी—हे भदन्त ! यह अर्थ समर्थ नही है । अर्थात् जीर्ण-शीर्ष कावड आदि से भार ले जाने मे समर्थ नही है ।

केशी कुमारश्रमण—क्यो समर्थ नही है ?

प्रदेशी—क्योकि भदन्त ! उस पुरुष के पास भारवहन करने के उपकरण—साधन जीर्ण-शीर्ण है ।

केशी कुमारश्रमण—तो इसी प्रकार हे प्रदेशी ! वह पुरुष जीर्ण यावत् क्लान्त शरीर आदि उपकरणो वाला होने से एक भारी वजनदार लोहे के भार को यावत् (सीसे के भार को, रागे के भार को) वहन करने मे समर्थ नही है । इसीलिए प्रदेशी ! तुम यह श्रद्धा करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, जीव शरीर नही है और शरीर जीव नही ।

२५६—तए ण से पएसी केसिकुमारसमण एवं वयासी—

अत्थि ण भते ! जाव (एस पण्णा उवमा इमेण पुण कारणेणं) नो उवागच्छइ, एवं खलु भते ! जाव[2] विहरामि । तए णं मम णगरगुत्तिया चोरं उवणेंति । तए णं अहं तं पुरिसं जीवंतग चेव तुलेमि, तुलेत्ता छविच्छेय अकुव्वमाणे जीवियाओ ववरोवेमि, मयं तुलेमि, णो चेव णं तस्स पुरिसस्स जीवतस्स वा तुलियस्स वा मुयस्स वा तुलियस्स केइ आणत्ते वा, नाणत्ते वा, ओमत्ते वा, तुच्छत्ते वा, गुरुयत्ते वा, लहुयत्ते वा, जति ण भते ! तस्स पुरिसस्स जीवंतस्स वा तुलियस्स मुयस्स वा तुलियस्स केइ अन्नत्ते वा जाव लहुयत्ते वा तो ण अहं सद्दहेज्जा त चेव ।

जम्हा णं भते ! तस्स पुरिसस्स जीवंतस्स वा तुलियस्स मुयस्स वा तुलियस्स नत्थि केइ अन्नत्ते वा लहुयत्ते वा तम्हा सुपतिट्ठिया मे पइन्ना जहा—तं जीवो तं चेव ।

२५६—इसके बाद उस प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से ऐसा कहा—हे भदन्त ! आपकी यह उपमा वास्तविक नही है, इससे जीव और शरीर की भिन्नता नही मानी जा सकती

---

१ देखे सूत्र सख्या २५४

२ देखें सूत्र सख्या २४८

है। लेकिन जो प्रत्यक्ष कारण मैं बताता हूँ, उससे यही सिद्ध होता है कि जीव और शरीर एक ही हैं। वह कारण इस प्रकार है—

हे भदन्त! किसी एक दिन मैं गणनायक आदि के साथ बाहरी उपस्थानशाला मे बैठा था। उसी समय मेरे नगररक्षक चोर को पकड़ कर लाये। तब मैंने उस पुरुष को जीवित अवस्था मे तोला। तोलकर फिर मैंने अगभग किये बिना ही उसको जीवन रहित कर दिया—मार डाला और मार कर फिर मैंने उसे तोला। उस पुरुष का जीवित रहते जो तोल था उतना ही मरने के बाद था। जीवित रहते और मरने के बाद के तोल मे मुझे किसी भी प्रकार का अतर—न्यूनाधिकता दिखाई नही दी, न उसका भार बढा और न कम हुआ, न वह वजनदार हुआ और न हलका हुआ। इसलिए हे भदन्त! यदि उस पुरुष के जीवितावस्था के वजन से मृतावस्था के वजन मे किसी प्रकार की न्यूनाधिकता हो जाती, यावत् हलकापन आ जाता तो मैं इस बात पर श्रद्धा कर लेता कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, जीव और शरीर एक नही है।

लेकिन भदन्त! मैंने उस पुरुष की जीवित और मृत अवस्था मे किये गये तोल मे किसी प्रकार की भिन्नता, न्यूनाधिकता यावत् लघुता नही देखी। इस कारण मेरा यह मानना समीचीन है कि जो जीव है वही शरीर है और जो शरीर है वही जीव है किन्तु जीव और शरीर भिन्न-भिन्न नही हैं।

२५७—तए णं केसी कुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी—

अत्थि णं पएसी! तुमे कयाइ वत्थी धतपुव्वे वा धमावियपुव्वे वा?

हता अत्थि।

अत्थि णं पएसी तस्स वत्थिस्स पुण्णस्स वा तुलियस्स अपुण्णस्स वा तुलियस्स केइ अण्णत्ते वा जाव लहुयत्ते वा?

णो तिणट्ठे समट्ठे।

एवामेव पएसी! जीवस्स अगुरुलघुयत्त पडुच्च जीवंतस्स वा तुलियस्स मुयस्स वा तुलियस्स नत्थि केइ आणत्ते वा जाव लहुयत्ते वा, त सद्दाहि ण तुम पएसी! तं चेव।

२५७—इसके बाद केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा—हे प्रदेशी! तुमने कभी धौंकनी मे हवा भरी है अथवा किसी से भरवाई है?

प्रदेशी—हाँ भदन्त! भरी है और भरवाई है।

केशी कुमारश्रमण—हे प्रदेशी! जब वायु से भर कर उस धौकनी को तोला तब और वायु को निकाल कर तोला तब तुमको उसके वजन मे कुछ न्यूनाधिकता यावत् लघुता मालूम हुई?

प्रदेशी—भदन्त! यह अर्थ तो समर्थ नही है, यानी न्यूनाधिकता यावत् लघुता कुछ भी दृष्टिगत नही हुई।

केशी कुमारश्रमण—तो इसी प्रकार हे प्रदेशी! जीव के अगुरुलघुत्व को समझ कर उस चोर के शरीर के जीवितावस्था मे किये गये तोल मे और मृतावस्था मे किये गये तोल मे कुछ भी

नानात्व यावत् लघुत्व नही है। इसीलिए हे प्रदेशी ! तुम यह श्रद्धा करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, किन्तु जीव-शरीर एक नही हैं।

२५८—तए णं पएसी राया केसिकुमारसमणं एव वयासी—

अत्थि णं भते ! एसा जाव[1] नो उवागच्छइ, एवं खलु भते ! अहं अन्नया जाव[2] चोरं उवणेति। तए णं अहं त पुरिसं सव्वतो समंता समभिलोएमि, नो चेव णं तत्थ जीव पासामि, तए णं अहं त पुरिस दुहा फालियं करेमि, करित्ता सव्वतो समता समभिलोएमि, नो चेव णं तत्थ जीवं पासामि, एव तिहा चउहा सखेज्जफालियं करेमि, णो चेव ण तत्थ जीवं पासामि। जइ णं भते ! अहं त पुरिस दुहा वा, तिहा वा, चउहा वा, सखेज्जहा वा फालियमि वा जीवं पासंतो तो ण अह सद्दहेज्जा नो त चेव, जम्हा णं भते ! अह तसि दुहा वा तिहा वा चउहा वा संखिज्जहा वा फालियंमि वा जीव न पासामि तम्हा सुपतिट्ठिया मे पइण्णा जहा—तं जीवो तं सरीरं तं चेव।

२५८—केशी कुमारश्रमण की उक्त बात को सुनने के पश्चात् प्रदेशी राजा ने पुन केशी कुमारश्रमण से इस प्रकार कहा—हे भदन्त ! आपकी यह उपमा बुद्धिप्रेरित होने से वास्तविक नही है। इससे यह सिद्ध नही होता है कि जीव और शरीर पृथक्-पृथक् हैं। क्योकि भदन्त ! बात यह है कि किसी समय मैं अपने गणनायको आदि के साथ बाह्य उपस्थानशाला में बैठा था। यावत् नगररक्षक एक चोर को पकड कर लाये। तब मैंने उस पुरुष को सभी ओर से (सिर से पैर तक) अच्छी तरह देखा-भाला, परन्तु उसमे मुझे कही भी जीव दिखाई नही दिया। इसके बाद मैंने उस पुरुष के दो टुकडे कर दिये। टुकडे करके फिर मैंने अच्छी तरह सभी ओर से देखा। तब भी मुझे जीव नही दिखा। इसके बाद मैंने उसके तीन, चार यावत् सख्यात टुकडे किये, परन्तु उनमे भी मुझे कही पर जीव दिखाई नही दिया। यदि भदन्त ! मुझे उस पुरुष के दो, तीन, चार अथवा सख्यात टुकडे करने पर भी कही जीव दिखता तो मैं यह श्रद्धा-विश्वास कर लेता कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, जीव और शरीर एक नही है। लेकिन हे भदन्त ! जब मैंने उस पुरुष के दो, तीन, चार अथवा सख्यात टुकडो मे भी जीव नही देखा है तो मेरी यह धारणा कि जीव शरीर है और शरीर जीव है, जीव-शरीर भिन्न-भिन्न नही है, सुसगत—सुस्थिर है।

२५९—तए ण केसिकुमारसमणे पएसिं रायं एव वयासी—

मूढतराए णं तुमं पएसी ! ताओ तुच्छतराओ।

के ण भंते ! तुच्छतराए ?

पएसी ! से जहाणामए केइ पुरिसे वणत्थी वणोवजीवी वणगवेसणयाए जोइं च जोइभायणं च गहाय कट्ठाण अडविं अणुपविट्ठा, तए णं ते पुरिसा तीसे अगामियाए जाव किंचिदेस अणुप्पत्ता समाणा एग पुरिस एवं वयासी—अम्हे णं देवाणुप्पिया ! कट्ठाण अडविं पविसामो, एत्तो ण तुमं जोइभायणाओ जोइं गहाय अम्हं असणं साहेज्जासि। अह तं जोइभायणे जोई विज्झवेज्जा एत्तो णं तुम कट्ठाओ जोइं गहाय अम्ह असणं साहेज्जासि, त्ति कट्टु कट्ठाण अडविं अणुपविट्ठा।

---

१ देखें सूत्र सख्या २५४

२. देखें सूत्र सख्या २४८

तए ण से पुरिसे तओ मुहुत्तन्तरस्स तेसिं पुरिसाण असण साहेमि त्ति कट्टु जेणेव जोतिभायणे तेणेव उवागच्छइ। जोइभायणे जोइं विज्झायमेव पासति। तए णं से पुरिसे जेणेव से कट्ठे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं कट्ठं सव्वओ समता समभिलोएति, नो चेव ण तत्थ जोइं पासति। तए ण से पुरिसे परियरं बंधइ, फरसुं गिण्हइ, त कट्ठं दुहा फालियं करेइ, सव्वतो समता समभिलोएइ, णो चेव ण तत्थ जोइ पासइ। एव जाव संखेज्जफालिय करेइ, सव्वतो समता समभिलोएइ, नो चेव ण तत्थ जोइ पासइ।

तए णं से पुरिसे तंसि कट्ठंसि दुहाफालिए वा जाव सखेज्जफालिए वा जोइं अपासमाणे सते तते परिसते निव्विण्णे समाणे परसु एगते एडेइ, परियर मुयइ एव वयासी—अहो! मए तेसिं पुरिसाणं असणे नो साहिए त्ति कट्टु ओहयमणसकप्पे चिंतासोगसागरसपविट्ठे करयलपल्हत्थमुहे अट्टज्झाणोवगए भूमिगयदिट्ठिए झियाइ।

तए ण ते पुरिसा कट्ठाइ छिंदति, जेणेव से पुरिसे तेणेव उवागच्छति। त पुरिस ओहयमण-सकप्प जाव झियायमाण पासति एव वयासी—किं ण तुम देवाणुप्पिया! ओहयमणसकप्पे जाव झियायसि?

तए ण से पुरिसे एव वयासी—तुज्झे णं देवाणुप्पिया! कट्ठाण अडविं अणुपविसमाणा मम एवं वयासी—अम्हे णं देवाणुप्पिया! कट्ठाण अडविं जाव पविट्ठा, तए ण अह तत्तो मुहुत्ततरस्स तुज्झं असण साहेमि त्ति कट्टु जेणेव जोइभायणे जाव झियामि।

तए ण तेसिं पुरिसाण एगे पुरिसे छेए, दक्खे, पत्तट्ठे जाव उवएसलद्धे, ते पुरिसे एवं वयासी—गच्छह ण तुज्झे देवाणुप्पिया! ण्हाया कयबलिकम्मा जाव हव्वमागच्छेह, जा ण अह असण साहेमि त्ति कट्टु परियर बंधइ, परसुं गिण्हइ सरं करेइ, सरेण अरणिं महेइ जोइ पाडेइ, जोइ सधुक्खेइ, तेसिं पुरिसाण असणं साहेइ।

तए णं ते पुरिसा ण्हाया कयबलिकम्मा जाव पायच्छित्ता जेणेव से पुरिसे तेणेव उवागच्छति, तए ण से पुरिसे तेसिं पुरिसाण सुहासणवरगयाण त विउल असण-पाण-खाइमं-साइम उवणेइ। तए णं ते पुरिसा त विउल असण ४ (पाण-खाइम-साइम) आसाएमाणा वीसाएमाणा जाव विहरति। जिमियभुत्तुत्तरागया वि य ण समाणा आयंता चोक्खा परमसुइभूया तं पुरिस एवं वयासी—अहो! णं तुम देवाणुप्पिया! जड्डे-मूढे-अपंडिए-णिव्विण्णाणे-अणुवएसलद्धे, जे ण तुमं इच्छसि कट्ठंसि दुहाफालियसि वा जोतिं पासित्तए।

से एएणट्ठेणं पएसी! एव वुच्चइ मूढतराए णं तुमं पएसी! ताओ तुच्छतराओ।

२५६—प्रदेशी राजा के इस कथन को सुनने के अनन्तर केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से कहा—हे प्रदेशी! तुम तो मुझे उस दीन-हीन कठियारे (लकडी ढोने वाले) से भी अधिक मूढ-विवेकहीन प्रतीत होते हो।

प्रदेशी—हे भदन्त! कौनसा दीन-हीन कठियारा?

केशी कुमारश्रमण—हे प्रदेशी! वन मे रहने वाले और वन से आजीविका कमाने वाले कुछ-एक पुरुष वनोत्पन्न वस्तुओ की खोज मे आग और अगीठी लेकर लकड़ियो के वन मे प्रविष्ट हुए।

प्रविष्ट होने के पश्चात् उन पुरुषो ने दुर्गम वन के किसी प्रदेश मे पहुचने पर अपने एक साथी से कहा—देवानुप्रिय ! हम इस लकडियो के जगल मे जाते है। तुम यहाँ अगीठी से आग लेकर हमारे लिये भोजन तैयार करना। यदि अगीठी मे आग बुझ जाये तो तुम इस लकडी से आग पैदा करके हमारे लिए भोजन बना लेना। इस प्रकार कहकर वे सब उस काष्ठ-वन मे प्रविष्ट हो गए।

उनके चले जाने पर कुछ समय पश्चात् उस पुरुष ने विचार किया—चलो उन लोगो के लिए जल्दी से भोजन बना लूँ। ऐसा विचार कर वह जहाँ अगीठी रखी थी, वहाँ आया। आकर अगीठी मे आग को बुझा हुआ देखा। तब वह पुरुष वहाँ पहुँचा जहाँ वह काष्ठ पडा हुआ था। वहाँ पहुँचकर चारो ओर से उसने काष्ठ को अच्छी तरह देखा, किन्तु कही भी उसे आग दिखाई नही दी। तब उस पुरुष ने कमर कसी और कुल्हाडी लेकर उस काष्ठ के दो टुकडे कर दिये। फिर उन टुकडो को भी सभी ओर से अच्छी तरह देखा, किन्तु कही आग दिखाई नही दी। इसी प्रकार फिर तीन, चार, पाँच यावत् संख्यात टुकडे किये परन्तु देखने पर भी उनमे कही आग दिखाई नही दी।

इसके बाद जब उस पुरुष को काष्ठ के दो से लेकर सख्यात टुकडे करने पर भी कही आग दिखाई नही दी तो वह श्रान्त, क्लान्त, खिन्न और दु खित हो, कुल्हाडी को एक ओर रख और कमर को खोलकर मन-ही-मन इस प्रकार बोला—अरे ! मैं उन लोगो के लिए भोजन नही बना सका। अब क्या करूँ। इस विचार से अत्यन्त निराश, दु खी, चिन्तित, शोकातुर हो हथेली पर मुँह को टिकाकर आर्तध्यानपूर्वक नीचे जमीन मे आँखे गड़ाकर चिंता मे डूब गया।

लकडियो को काटने के पश्चात् वे लोग वहाँ आये जहाँ अपना साथी था और उसको निराश, दु खी यावत् चिन्ताग्रस्त देखकर उससे पूछा—देवानुप्रिय ! तुम क्यो निराश, दु खी यावत् चिन्ता मे डूबे हुए हो ?

तब उस पुरुष ने बताया कि देवानुप्रियो ! आप लोगो ने लकडी काटने के लिए वन मे प्रविष्ट होने से पहले मुझसे कहा था—देवानुप्रिय ! हम लोग लकड़ी लाने जगल मे जाते है, इत्यादि यावत् जगल मे चले गये। कुछ समय बाद मैंने विचार किया कि आप लोगो के लिए भोजन बना लूँ। ऐसा विचार कर जहाँ अगीठी थी, वहाँ पहुँचा यावत् (वहाँ जाकर मैंने देखा कि अगीठी मे आग बुझी हुई है। फिर मैं काष्ठ के पास आया। मैंने अच्छी तरह सभी ओर से उस काष्ठ को देखा किन्तु कही भी मुझे आग दिखाई नही दी। तब मैंने कुल्हाडी लेकर उस काष्ठ के दो टुकडे किये और उन्हे भी इधर-उधर से अच्छी तरह देखा। परन्तु वहाँ भी मुझे आग दिखाई नही दी। इसके बाद मैंने उसके तीन, चार यावत् सख्यात टुकडे किये। उनको भी अच्छी तरह देखा, परन्तु उनमे भी कही आग दिखलाई नही दी। तब श्रान्त, क्लान्त, खिन्न और दु खित होकर कुल्हाडी को एक ओर रखकर विचार किया कि मैं आप लोगो के लिए भोजन नही बना सका। इस विचार से मैं अत्यन्त निराश, दु खी हो शोक और चिन्ता रूपी समुद्र मे डूबकर हथेली पर मुँह को टिकाये) आर्त्त-ध्यान कर रहा हूँ।

उन मनुष्यो मे कोई एक छेक—अवसर को जानने वाला, दक्ष—चतुर, प्राप्तार्थ—कुशलता से अपने अभीप्सित अर्थ को प्राप्त करने वाला यावत् (बुद्धिमान्, कुशल, विनीत, विशिष्टज्ञानसपन्न), उप-देश लब्ध—गुरु से उपदेश प्राप्त पुरुष था। उस पुरुष ने अपने दूसरे साथी लोगो से इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रियो ! आप जाओ और स्नान, बलिकर्म आदि करके शीघ्र आ जाओ। तब तक मैं आप लोगों के लिए भोजन तैयार करता हूँ। ऐसा कहकर उसने अपनी कमर कसी और कुल्हाडी लेकर सर बनाया, सर से अरणि-काष्ठ को रगडकर आग की चिनगारी प्रगट की। फिर उसे धौक कर सुलगाया और फिर उन लोगो के लिए भोजन बनाया।

इतने मे स्नान आदि करने गये पुरुष वापस स्नान करके, बलिकर्म करके यावत् प्रायश्चित्त करके उस भोजन बनाने वाले पुरुष के पास आ गये।

तत्पश्चात् उस पुरुष ने सुखपूर्वक अपने-अपने आसनो पर बैठे उन लोगो के सामने उस विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य रूप चार प्रकार का भोजन रखा—परोसा। वे उस विपुल अशन आदि रूप चारो प्रकार के भोजन का स्वाद लेते हुए, खाते हुए यावत् विचरने लगे। भोजन के बाद आचमन-कुल्ला आदि करके स्वच्छ, शुद्ध होकर अपने पहले साथी से इस प्रकार बोले—हे देवानुप्रिय ! तुम जड-अनभिज्ञ, मूढ-मूर्ख (विवेकहीन), अपडित (प्रतिभारहित), निर्विज्ञान (निपुणतारहित) और अनुपदेशलब्ध (अशिक्षित) हो, जो तुमने काठ के टुकडो मे आग देखना चाही।

इसी प्रकार की तुम्हारी भी प्रवृत्ति देखकर मैंने यह कहा—हे प्रदेशी ! तुम इस तुच्छ कठियारे से भी अधिक मूढ हो कि शरीर के टुकडे-टुकडे करके जीव को देखना चाहते हो।

२६०—तए ण पएसी राया केसिकुमारसमण एव वयासी—

जुत्तए ण भंते ! तुब्भ इय छेयाणं दक्खाण बुद्धाण कुसलाण महामईण विणीयाण विण्णाण-पत्ताण उवएसलद्धाणं अह इमीसाए महालियाए महच्च परिसाए मज्झे उच्चावएहिं आउसेहिं आउसित्तए ? उच्चावयाहि उद्ध सणाहि उद्ध सित्तए ? एव निब्भच्छणाहिं निब्भच्छणित्तए ? निच्छोड-णाहि निच्छोडणत्तए ?

२६०—कुमारश्रमण केशीस्वामी की उक्त बात (उदाहरण) को सुनकर प्रदेशी राजा ने केशी-स्वामी से कहा—भते ! आप जैसे छेक—अवसरज्ञ, दक्ष—चतुर, बुद्ध—तत्त्वज्ञ, कुशल—कर्तव्याकर्तव्य के निर्णायक, बुद्धिमान्, विनीत—विनयशील, विशिष्ट ज्ञानी, सत्-असत् के विवेक से सपन्न (हेयोपादेय की परीक्षा करने वाले), उपदेशलब्ध—गुरु से शिक्षा प्राप्त पुरुष का इस अति विशाल परिषद् के बीच मेरे लिये इस प्रकार के निष्ठुर—आक्रोशपूर्ण शब्दो का प्रयोग करना, अनादरसूचक शब्दो से मेरी भर्त्सना करना, अनेक प्रकार के अवहेलना भरे शब्दो से मुझे प्रताडित करना, धमकाना क्या उचित है ?

२६१—तए णं केसी कुमारसमणे पएसिं राय एव वयासी—

जाणासि णं तुमं पएसी ! कति परिसाओ पण्णत्ताओ ?

जाणामि, चत्तारि परिसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—खत्तियपरिसा, गाहावइपरिसा, माहण-परिसा, इसिपरिसा।

जाणासि णं तुमं पएसी राया ! एयासिं चउण्हं परिसाणं कस्स का दंडणीई पण्णत्ता ?

हंता ! जाणामि । जे णं खत्तियपरिसाए अवरज्झइ से ण हत्थच्छिण्णए वा, पायच्छिण्णए वा, सीसच्छिण्णए वा, सूलाइए वा एगाहच्चे कूडाहच्चे जीवियाओ ववरोविज्जइ ।

जे णं गाहावइपरिसाए अवरज्झइ से णं तएण वा, वेढेण वा, पलालेण वा, वेढित्ता अगणिकाएणं झामिज्जइ ।

जे ण माहणपरिसाए अवरज्झइ से णं अणिट्ठाहिं अकंताहिं जाव अमणामाहिं वग्गूहिं उवालभित्ता कुंडियालछणए वा सूणगलछणए वा कीरइ, निव्विसए वा आणविज्जइ ।

जे ण इसिपरिसाए अवरज्झइ से ण णाइअणिट्ठाहिं जाव णाइअमणामाहिं वग्गूहिं उवालब्भइ ।

एव च ताव पएसी ! तुमं जाणासि तहा वि णं तुमं ममं वामं वामेणं, दड दडेणं, पडिकूल पडिकूलेणं, पडिलोमं पडिलोमेण, विविच्चासं विविच्चासेणं वट्टसि ।

२६१—प्रदेशी राजा के इस उपालभ को सुनने के पश्चात् केशी कुमाणश्रमण ने प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा—

हे प्रदेशी ! जानते हो कि कितनी परिषदाये कही गई हैं ?

प्रदेशी—जी हाँ जानता हूँ चार परिषदाये कही है—१. क्षत्रिय परिषदा, २ गाथापतिपरिषदा, ३ ब्राह्मणपरिषदा और ४ ऋषिपरिषदा ।

केशी कुमारश्रमण—प्रदेशी ! तुम यह भी जानते हो कि इन चार परिषदाओ के अपराधियो के लिये क्या दंडनीति बताई गई है ?

प्रदेशी—हाँ जानता हूँ । जो क्षत्रिय-परिषद् का अपराध-अपमान करता है, उसके या तो हाथ काट दिये जाते हैं अथवा पैर काट दिये जाते हैं या शिर काट दिया जाता है, अथवा उसे शूली पर चढ़ा देते हैं या एक ही प्रहार से या कुचलकर प्राणरहित कर दिया जाता है—मार दिया जाता है ।

जो गाथापति-परिषद् का अपराध करता है, उसे घास से अथवा पेड के पत्तो से अथवा पलाल-पुआल से लपेट कर अग्नि मे झोक दिया जाता हैं ।

जो ब्राह्मणपरिषद् का अपराध करता है, उसे अनिष्ट, रोषपूर्ण, अप्रिय या अमणाम शब्दो से उपालभ देकर अग्नितप्त,लोहे से कुंडिका चिह्न अथवा कुत्ते के चिह्न से लाछित-चिह्नित कर दिया जाता है अथवा निर्वासित कर दिया जाता है, अर्थात् देश से निकल जाने की आज्ञा दी जाती है ।

जो ऋषिपरिषद् का अपमान-अपराध करता है, उसे न अति अनिष्ट यावत् न अति अमनोज्ञ शब्दो द्वारा उपालभ दिया जाता है ।

केशी कुमारश्रमण—इस प्रकार की दडनीति को जानते हुए भी हे प्रदेशी ! तुम मेरे प्रति विपरीत, परितापजनक, प्रतिकूल, विरुद्ध, सर्वथा विपरीत व्यवहार कर रहे हो !

२६२—तए णं पएसी राया केसिं कुमारसमणं एव वयासी—एवं खलु अह देवाणुप्पिएहिं पढमिल्लुएण चेव वागरेणेण सलत्ते, तए ण ममं इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव संकप्पे समुप्पज्जित्था—

जहा जहा ण एयस्स पुरिसस्स वामं वामेणं जाव विवच्चास विवच्चासेणं वट्टिस्सामि तहा तहा ण अहं नाण च नाणोवलभं च करण च करणोवलंभ च दसण च दंसणोवलभं च जीवं च जीवोवलभ च उवलभिस्सामि, तं एएण अह कारणेण देवाणुप्पियाणं वाम वामेण जाव विवच्चास विवच्चासेणं वट्टिए।

२६२—तव प्रदेशी राजा ने अपनी मनोभावना व्यक्त करते हुए केशी कुमारश्रमण से कहा—वात यह है—भदन्त ! मेरा आप देवानुप्रिय से जब प्रथम ही वार्तालाप हुआ तभी मेरे मन मे इस प्रकार का विचार यावत् सकल्प उत्पन्न हुआ कि जितना-जितना और जैसे-जैसे मै इस पुरुष के विपरीत यावत् सर्वथा विपरीत व्यवहार करूगा, उतना-उतना और वैसे-वैसे मैं अधिक-अधिक तत्त्व को जानूगा, ज्ञान प्राप्त करूगा, चारित्र को, चारित्रलाभ को, तत्त्वार्थश्रद्धा रूप दर्शन—सम्यक्त्व को, सम्यक्त्व लाभ को, जीव को, जोव के स्वरूप को समझ सकूगा। इसी कारण आप देवानुप्रिय के प्रति मैंने विपरीत यावत् अत्यन्त विरुद्ध व्यवहार किया है।

२६३—तए ण केसी कुमारसमणे पएसीराय एव वयासी—

जाणासि ण तुम पएसी ! कइ ववहारगा पण्णत्ता ?

हता जाणामि। चत्तारि ववहारगा पण्णत्ता— १ देइ नामेगे णो सण्णवेइ। २ सन्नवेइ नामेगे नो देइ। ३ एगे देइ वि सन्नवेइ वि। ४ एगे णो देइ णो सण्णवेइ।

जाणासि ण तुम पएसी ! एएसि चउण्ह पुरिसाण के ववहारी के अव्ववहारी ?

हता जाणामि। तत्थ ण जे से पुरिसे देइ णो सण्णवेइ, से ण पुरिसे ववहारी। तत्थ ण जे से पुरिसे णो देइ सण्णवेइ, से णं पुरिसे ववहारी। तत्थ ण जे से पुरिसे देइ वि सन्नवेइ वि से पुरिसे ववहारी। तत्थ ण जे से पुरिसे णो देइ णो सन्नवेइ से णं अव्ववहारी।

एवामेव तुमं पि ववहारी, णो चेव ण तुम पएसी अव्ववहारी।

२६३—प्रदेशी राजा की इस भावना को सुनकर केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से कहा—

हे प्रदेशी ! जानते हो तुम कि व्यवहारकर्त्ता कितने प्रकार के बतलाये गए है ?

प्रदेशी—हा, भदन्त ! जानता हूँ कि व्यवहारको के चार प्रकार हैं—१ कोई किसी को दान देता है, किन्तु उसके साथ प्रीतिजनक वाणी नही बोलता। २ कोई सतोषप्रद बाते तो करता है, किन्तु देता नही है। ३ कोई देता भी है और लेने वाले के साथ सन्तोषप्रद वार्तालाप भी करता है और ४ कोई देता भी कुछ नही और न संतोपप्रद वात करता है।

केशी कुमारश्रमण—हे प्रदेशी ! जानते हो तुम कि इन चार प्रकार के व्यक्तियो मे से कौन व्यवहारकुशल है और कौन व्यवहारशून्य है—व्यवहार को नही समझने वाला है ?

प्रदेशी—हाँ जानता हूँ। इनमे से जो पुरुप देता है, किन्तु सभाषण नही करता, वह व्यवहारी है। जो पुरुप देता नही किन्तु सम्यग् आलाप (वातचीत) से सतोष उत्पन्न करता है (दिलासा देता है), धीरज वधाता है, वह व्यवहारी है। जो पुरुप देता भी है और शिष्ट वचन भी कहता है, वह व्यवहारी है, किन्तु जो न देता है और न मधुर वाणी बोलता है, वह अव्यवहारी है।

केशी कुमारश्रमण—उसी प्रकार हे प्रदेशी ! तुम भी व्यवहारी हो, अव्यवहारी नही हो। अर्थात् तुमने मेरे साथ यद्यपि शिष्टजनमान्य वाग्-व्यवहार नही किया, फिर भी मेरे प्रति भक्ति और समान प्रदर्शित करने के कारण व्यवहारी हो।

२६४—तए ण पएसी राया केसिकुमारसमणं एवं वयासी—

तुब्भे ण भते ! इय छेया दक्खा जाव उवएसलद्धा, समत्था णं भंते ! मम करयलंसि वा आमलय जीव सरीराओ अभिनिवट्टित्ताण उवदंसित्तए ?

तेण कालेण तेण समएण पएसिस्स रण्णो अदूरसामंते वाउयाए सवुत्ते, तणवणस्सइकाए एयइ वेयइ चलइ फदइ घट्टइ उदीरइ, त त भाव परिणमइ।

तए ण केसी कुमारसमणे पएसिराय एव वयासी—

पाससि ण तुम पएसी राया ! एय तणवणस्सइ एयत जाव तं तं भाव परिणमतं ?

हता पासामि।

जाणासि ण तुम पएसी ! एय तणवणस्सइकाय किं देवो चालेइ, असुरो वा चालेइ, णागो वा, किन्नरो वा चालेइ, किंपुरिसो वा चालेइ, महोरगो वा चालेइ, गधव्वो वा चालेइ ?

हता जाणामि—णो देवो चालेइ जाव णो गधव्वो चालेइ, वाउयाए चालेइ।

पाससि ण तुम पएसी ! एतस्स वाउकायस्स सरूविस्स सकामस्स सरागस्स समोहस्स सवेयस्स सलेसस्स ससरीरस्स रूव ?

णो तिणट्ठे (समट्ठे)।

जइ णं तुम पएसी राया ! एयस्स वाउकायस्स सरूविस्स जाव ससरीरस्स रूवं न पाससि तं कहं णं पएसी ! तव करयलसि वा आमलग जीवं उवदंसिस्सामि ? एवं खलु पएसी ! दसट्ठाणाइ छउमत्थे मणुस्से सव्वभावेण न जाणइ न पासइ, तंजहा—धम्मत्थिकाय १, अधम्मत्थिकायं २, आगासत्थिकाय ३, जीवं असरीरबद्ध ४, परमाणुपोग्गल ५, सद्द ६, गंधं ७, वाय ८, अयं जिणे भविस्सइ वा णो भविस्सइ ९, अय सव्वदुक्खाण अत करेस्सइ वा नो वा १०। एताणि चेव उप्पन्ननाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली सव्वभावेण जाणइ पासइ तं जहा-धम्मत्थिकाय जाव नो वा करिस्सइ, तं सद्दहाहि ण तुम पएसी ! जहा—अन्नो जीवो त चेव।

२६४—तत्पश्चात् प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से कहा—हे भदन्त ! आप अवसर को जानने मे निपुण है, कार्यकुशल हैं यावत् आपने गुरु से शिक्षा प्राप्त की है तो भदन्त ! क्या आप मुझे हथेली मे स्थित आवले की तरह शरीर से बाहर जीव को निकालकर दिखाने मे समर्थ है ?

प्रदेशी राजा ने यह कहा ही था कि उसी काल और उसी समय प्रदेशी राजा से अति दूर नही अर्थात् निकट ही हवा के चलने से तृण-घास, वृक्ष आदि वनस्पतिया हिलने-डुलने लगी, कपने लगी, फरकने लगी, परस्पर टकराने लगी, अनेक विभिन्न रूपो मे परिणत होने लगी।

तब केशी कुमारश्रमण ने राजा प्रदेशी से पूछा—हे प्रदेशी ! तुम इन तृणादि वनस्पतियों को हिलते-डुलते यावत् उन-उन अनेक रूपो मे परिणत होते देख रहे हो ?

प्रदेशी—हा, देख रहा हूँ।

केशी कुमारश्रमण—तो प्रदेशी! क्या तुम यह भी जानते हो कि इन तृण-वनस्पतियो को कोई देव हिला रहा है अथवा असुर हिला रहा है अथवा कोई नाग, किन्नर, किंपुरुष, महोरग अथवा गधर्व हिला रहा है?

प्रदेशी—हा, भदन्त! जानता हूँ। इनको न कोई देव हिला-डुला रहा है, यावत् न गधर्व हिला रहा है। ये वायु से हिल-डुल रही हैं।

कुमारश्रमण केशी—हे प्रदेशी! क्या तुम उस मूर्त, काम, राग, मोह, वेद, लेश्या और शरीर-धारी वायु के रूप को देखते हो?

प्रदेशी—यह अर्थ समर्थ नही है। अर्थात् भदन्त! मै उसे नही देखता हूँ।

केशी कुमारश्रमण—जब राजन्! तुम इस रूपधारी (मूर्त) यावत् सशरीर वायु के रूप को भी नही देख सकते तो हे प्रदेशी! इन्द्रियातीत ऐसे अमूर्त जीव को हाथ मे रखे आवले की तरह कैसे देख सकते हो? क्योकि प्रदेशी! छद्मस्थ (अल्पज्ञ) मनुष्य (जीव) इस दस वस्तुओ को उनके सर्व भावो-पर्यायो सहित जानते-देखते नही है। यथा (उनके नाम इस प्रकार है—) १ धर्मास्तिकाय, २. अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ अशरीरी (शरीर रहित) जीव, ५ परमाणु पुद्गल, ६ शब्द, ७ गध, ८. वायु, ९ यह जिन (कर्म-क्षय करने वाला) होगा अथवा जिन नही होगा और १०. यह समस्त दु खो का अन्त करेगा या नही करेगा। किन्तु उत्पन्न ज्ञान-दर्शन के धारक (केवलज्ञानी, केवलदर्शी, सर्वज्ञ सर्वदर्शी) अर्हन्त, जिन, केवली इन दस बातो को उनकी समस्त पर्यायो सहित जानते-देखते हैं, *यथा—धर्मास्तिकाय यावत् सर्व दु खो का अन्त करेगा या नही करेगा*। इसलिये प्रदेशी! तुम यह श्रद्धा करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, जीव शरीर एक नही हैं।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे वायुकायिक जीवो के उल्लेख द्वारा ससारी जीवो का स्वरूप बताया है कि सभी ससारी जीव सूक्ष्म और बादर इन दो प्रकारो मे से किसी-न-किसी एक प्रकार वाले हैं। इन प्रकारो के होने के कारण सूक्ष्म नाम और बादर नाम कर्म हैं। सूक्ष्म नामकर्म के उदय से प्राप्त शरीर इन्द्रियग्राह्य नही हो पाता है और बादर नामकर्म के उदय से शरीर मे ऐसा बादर परिणाम उत्पन्न होता है कि जिससे वे इन्द्रियग्राह्य हो सकते है। सूक्ष्म और बादर नामकर्म का उदय तिर्यंचगति के जीवो मे होता है और इनके एक पहली स्पर्शनेन्द्रिय होती है। सभी ससारी जीव नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव, इन चार गतियो मे से किसी-न-किसी गति वाले है और स्वाभाविक चैतन्य गुण के साथ गतियो के अनुरूप प्राप्त इन्द्रियो, शरीर, वेद एव रागद्वेष, मोह आदि वैभाविक भावो तथा लेश्या परिणाम वाल होते है।

वायुकाय के जीवो की गति तिर्यच है और उनके एक स्पर्शनेन्द्रिय, कृष्ण, नील, कापोत लेश्या, नपु सक वेद और औदारिक, वैक्रिय, तैजस, कार्मण शरीर होते हैं।

२६५—तए ण से पएसी राया केसि कुमारसमण एवं वयासी—

से नूण भते! हत्थिस्स कु थुस्स य समे चेव जीवे?

हंता पएसी! हत्थिस्स य कु थुस्स य समे चेव जीवे।

से णूणं भंते ! हत्थीउ कुंथू अप्पकम्मतराए चेव अप्पकिरियतराए चेव अप्पासवतराए चेव एवं आहार-नोहार-उस्सास-नीसास-इड्ढीए महज्जुइअप्पतराए चेव, एवं च कुंथुओ हत्थी महाकम्मतराए चेव महाकिरिय० जाव ?

हंता पएसी ! हत्थीओ कुंथू अप्पकम्मतराए चेव कुंथुओ वा हत्थी महाकम्मतराए चेव तं चेव ।

कम्हा णं भंते ! हत्थिस्स य कुंथुस्स य समे चेव जीवे ?

पएसी ! जहा णाम ए कूडागारसाला सिया जाव गम्भीरा, अह णं केइ पुरिसे जोइं व दीवं व गहाय तं कूडागारसालं अंतो अंतो अणुपविसइ तीसे कूडागारसालाए सव्वतो समंता घणनिचियनिरंतराणि णिच्छिड्डाइं दुवारवयणाइं पिहेति, तीसे कूडागारसालाए बहुमज्झदेसभाए तं पईवं पलीवेज्जा, तए णं से पईवे तं कूडागारसालं अंतो अंतो ओभासइ उज्जोवेइ तवति पभासेइ, णो चेव णं बाहिं ।

अह णं पुरिसे तं पईवं इड्डरएणं पिहेज्जा, तए णं से पईवे तं इड्डरयं अंतो ओभासेइ, णो चेव णं इड्डरगस्स बाहिं, णो चेव णं कूडागारसालाए बाहिं, एवं गोकिलिंजेणं, पच्छिपिडएणं, गंडमाणियाए, आढतेणं, अद्धाढतेणं, पत्थएणं, अद्धपत्थएणं, कुलवेणं, अद्धकुलवेण, चाउब्भाइयाए, अट्ठभाइयाए, सोलसियाए, बत्तीसियाए, चउसट्ठियाए, दीवचंपएणं तए णं से पदीवे दीवचंपगस्स अंतो ओभासति, नो चेव णं दीवचंपगस्स बाहिं, नो चेवं णं चउसट्ठियाए बाहिं, णो चेव णं कूडागारसालं, णो चेव णं कूडागारसालाए बाहिं ।

एवामेव पएसी ! जीवे वि जं जारिसयं पुव्वकम्मनिबद्धं बोंदिं णिव्वत्तेइ तं असंखेज्जेहिं जीवपदेसेहिं सचित्तं करेइ खुड्डियं वा महालियं वा, तं सद्दहाहि णं तुम पएसी ! जहा—अण्णो जीवो तं चेव णं ।

२६५—तत्पश्चात् प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से कहा—भंते ! क्या हाथी और कुंथु का जीव एक-जैसा है ?

केशी कुमारश्रमण—हाँ, प्रदेशी । हाथी और कुंथु का जीव एक-जैसा है, समान प्रदेश परिमाण वाला है, न्यूनाधिक प्रदेश-परिमाण वाला नही है ।

प्रदेशी—हे भदन्त ! हाथी से कुंथु अल्पकर्म (आयुष्यकर्म), अल्पक्रिया, अल्प प्राणातिपात आदि आश्रव वाला है, और इसी प्रकार कुंथु का आहार, निहार, श्वासोच्छ्वास, ऋद्धि—शारीरिकबल, द्युति आदि भी अल्प है और कुंथु से हाथी अधिक कर्मवाला, अधिक क्रियावाला यावत् अधिक द्युति सपन्न है ?

केशी कुमारश्रमण—हाँ प्रदेशी ! ऐसा ही है—हाथी से कुंथु अल्प कर्मवाला और कुंथु से हाथी महाकर्मवाला है ।

प्रदेशी—तो फिर भदन्त ! हाथी और कुंथु का जीव समान परिमाण वाला कैसे हो सकता है ?

केशी कुमारश्रमण—हाथी और कुंथु के जीव को समान परिमाण वाला ऐसे समझा जा सकता है—हे प्रदेशी ! जैसे कोई कूटाकार (पर्वतशिखर के आकार-जैसी) यावत् विशाल एक

शाला (घर) हो और कोई एक पुरुष उस कूटाकारशाला मे अग्नि और दीपक के साथ घुसकर उसके ठीक मध्यभाग मे खडा हो जाए। तत्पश्चात् उस कूटाकारशाला के सभी द्वारो के किवाडो को इस प्रकार सटाकर अच्छी तरह वद कर दे कि उनमे किंचिन्मात्र भी साध-छिद्र न रहे। फिर उस कूटाकारशाला के वीचोवीच उस प्रदीप को जलाये तो जलाने पर वह दीपक उस कूटाकारशाला के अन्तर्वर्ती भाग को ही प्रकाशित, उद्योतित, तापित और प्रभासित करता है, किन्तु बाहरी भाग को प्रकाशित नही करता है।

अव यदि वही पुरुष उस दीपक को एक विशाल पिटारे से ढक दे तो वह दीपक कूटाकार-शाला की तरह उस पिटारे के भीतरी भाग को ही प्रकाशित करेगा किन्तु पिटारे के बाहरी भाग को प्रकाशित नही करेगा। इसी तरह गोकिलिज (गाय को घास रखने का पात्र—डलिया), पच्छिका-पिटक (पिटारी), गडमाणिका (अनाज को मापने का वर्तन), आढक (चार सेर धान्य मापने का पात्र), अर्धाढक, प्रस्थक, अर्धप्रस्थक, कुलव, अर्धकुलव, चतुर्भागिका, अष्टभागिका, षोडशिका, द्वात्रिंशतिका, चतुष्षष्टिका अथवा दीपचम्पक (दीपक का ढकना) से ढके तो वह दीपक उस ढक्कन के भीतरी भाग को ही प्रकाशित करेगा, ढक्कन के बाहरी भाग को नही और न चतुष्षष्टिका के बाहरी भाग को, न कूटाकारशाला को, न कूटाकारशाला के बाहरी भाग को प्रकाशित करेगा।

इसी प्रकार हे प्रदेशी! पूर्वभवोपार्जित कर्म के निमित्त से जीव को क्षुद्र—छोटे अथवा महत्—वडे जैसे भी शरीर को निष्पत्ति—प्राप्ति होती है, उसी के अनुसार आत्मप्रदेशो को सकुचित और विस्तृत करने के स्वभाव के कारण वह उस शरीर को अपने असख्यात आत्मप्रदेशो द्वारा सचित्त अर्थात् आत्मप्रदेशो से व्याप्त करता है। अतएव प्रदेशी! तुम यह श्रद्धा करो—इस बात पर विश्वास करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, जीव शरीर नही और शरीर जीव नही है।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्र मे दीपक को ढकने पर उन-उन के भीतरी भाग को प्रकाशित करने के लिये जिन पात्रो (वर्तनो) के नामो का उल्लेख किया है, वे सभी प्राचीनकाल मे मगध देश मे प्रचलित—गेहूँ, चावल, आदि धान्य तथा घी, तेल आदि तरल पदार्थ मापने के साधन—माप हैं। गडमाणिका से लेकर अर्धकुलव पर्यन्त के मापो से धान्य और चतुर्भागिका आदि चतुष्षष्टिका पर्यन्त के पात्रो से तरल पदार्थों को मापा जाता था।

वैदिक दर्शनो मे आत्मा के आकार और परिमाण के विषय मे अणुमात्र से लेकर सर्वदेशव्याप्त तक मानने की कल्पनाये हैं। वे प्रमाणसिद्ध नही है और न वैसा अनुभव ही होता है। इसीलिये उन सब कल्पनाओं का निराकरण और आत्मा के सही परिमाण का निर्देश सूत्र मे किया गया है कि न तो आत्मा अणु-प्रमाण है और न सर्वलोक व्यापी आदि है। किन्तु कर्मोपार्जित शरीर के आकार के अनुरूप होकर जीव के असख्यात प्रदेश उस समस्त शरीर मे व्याप्त रहते हैं।

प्रदेशी की परंपरागत मान्यता का निराकरण—

२६६—तए णं पएसी राया केसिं कुमारसमण एवं वयासी—एव खलु भंते! मम अज्जगस्स एस सन्ना जाव समोसरणे जहा—तज्जीवो त सरीर, नो अन्नो जीवो अन्न सरीर। तयाणतर च णं मम पिउणो वि एस सण्णा, तयाणतर मम वि एसा सण्णा जाव समोसरणं, त नो खलु अहं बहुपुरिस-परपरागय कुलनिस्सिय दिट्ठि छडेस्सामि।

२६६—तत्पश्चात् प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से कहा—भदन्त ! आपने बताया सो ठीक, किन्तु मेरेपितामह की यही ज्ञानरूप सज्ञा—बुद्धि थी यावत् समवसरण-सिद्धान्त था कि जो जीव है वही शरीर है, जो शरीर है वही जीव है। जीव शरीर से भिन्न नही और शरीर जीव से भिन्न नही है। तत्पश्चात् (पितामह के काल-कवलित हो जाने के बाद) मेरे पिता की भी ऐसी ही सज्ञा यावत् ऐसा ही समवसरण था और उनके बाद मेरी भी यही सज्ञा यावत् ऐसा ही समवसरण है। तो फिर अनेक पुरुषो (पीढियो) एवं कुलपरपरा से चली आ रही अपनी दृष्टि—मान्यता को कैसे छोड दू ?

विवेचन—लोक परपराएँ, मान्यताएँ कैसे प्रचलित होती है, इसका सूत्र मे सकेत है। हम मानवो मे जो भी अनुपयोगी और मिथ्या रूढियाँ चालू है उनका आधार पूर्वजो का नाम, लोक-दिखावा और अहकार का पोषण है। हम उनके साथ ऐसे जुडे हैं कि छोडने मे प्रतिष्ठाहानि और भय अनुभव करते हैं। इस कारण दिनोदिन हिंसा, झूठ, छल-फरेब, चोरी-जारी बढ रही है और नैतिक पतन होने से मानवीय गुणो का कुछ भी मूल्य नही रहा है।

२६७—तए ण केसी कुमारसमणे पएसिराय एव वयासी—मा ण तुमं पएसी ! पच्छाणुताविए भवेज्जासि, जहा व से पुरिसे अयहारए।

के ण भते ! से अयहारए ?

पएसी ! से जहाणामए केई पुरिसा अत्थत्थी, अत्थगवेसी, अत्थलुद्धगा, अत्थकखिया, अत्थपिवासिया अत्थगवेसणयाए विउल पणियभडमायाए सुबहु भत्तपाणपत्थयणं गहाय एगं मह अकामिय (अगामिय) छिन्नावायं दीहमद्धं अडविं अणुपविट्ठा।

तए ण ते पुरिसा तीसे अकामियाए अडवीए कंचि देसं अणुप्पत्ता समाणा एगमहं अयागर पासति, अएण सव्वतो समता आइण्णं विच्छिण्ण सच्छड उवच्छड फुड गाढ पासति हट्ठतुट्ठ—जाव—हियया अन्नमन्न सद्दावेंति एव वयासी—एस ण देवाणुप्पिया ! अयभंडे इट्ठे कते जाव मणामे, तं सेय खलु देवाणुप्पिया ! अम्ह अयभारए बधित्तए त्ति कट्टु अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति अयभारं बधति, अहाणुपुव्वीए सपत्थिया।

तए ण ते पुरिसा अकामियाए जाव अडवीए किंचि देस अणुपत्ता समाणा एग मह तउआगरं पासति, तउएण आइण्ण त चेव जाव सद्दावेत्ता एव वयासी—एस ण देवाणुप्पिया ! तउयभडे जाव मणामे, अप्पेण चेव तउएण सुबहु अए लब्भति, त सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अयभारए छड्डेत्ता तउयभारए बधित्तए त्ति कट्टु अन्नमन्नस्स अतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति, अयभारं छड्डेंति तउयभारं बंधति। तत्थ ण एगे पुरिसे णो संचाएइ अयभारं छड्डेत्तए तउयभार बंधित्तए।

तए ण ते पुरिसा त पुरिस एव वयासी—एस ण देवाणुप्पिया ! तउयभडे जाव सुबहुं अए लब्भति, त छड्डेहि ण देवाणुप्पिया ! अयभारगं, तउयभारगं बंधाहि।

तए से पुरिसे एव वयासी—दूराहडे मे देवाणुप्पिया ! अए, चिराहडे मे देवाणुप्पिया ! अए, अइगाढबधणबद्धे मे देवाणुप्पिया ! अए, असिढिलबधणबद्धे देवाणुप्पिया ! अए, धणियबंधणबद्धे देवाणुप्पिया ! अए, णो सचाएमि अयभारगं छड्डेता तउयभारगं बधित्तए।

तए ण ते पुरिसा तं पुरिस जाहे णो सचायति बहूंहि श्राघवणाहि य पन्नवणाहि य श्राघवित्तए वा पण्णवित्तए वा तया श्रहाणुपुव्वीए सपत्थिया, एव तबागर रुप्पागर सुवण्णागरं रयणागरं वइरागर ।

तए ण ते पुरिसा जेणेव सया जणवया, जेणेव साइ साइ नगराइ, तेणेव उवागच्छन्ति वयर-विक्कणणं करेंति, सुबहुदासीदासगोमहिसगवेलगं गिण्हति, श्रट्ठतलमूसियवडसगे कारावेंति, ण्हाया कयबलिकम्मा उप्पि पासायवरगया फुट्टमाणेहिं मुइगमत्थएहिं बत्तीसइबद्धएहिं नाडएहिं वरतरुणीसप-उत्तेहिं उवणच्चिज्जमाणा उवलालिज्जमाणा इट्ठे सद्द-फरिस-जाव विहरति ।

तए णं से पुरिसे श्रयभारेण जेणेव सए नगरे तेणेव उवागच्छइ, श्रयभारेण गहाय श्रयविक्किणण करेति, तसि श्रप्पमोल्लसि निहियसि झीणपरिव्वए, ते पुरिसे उप्पि पासायवरगए जाव विहरमाणे पासति, पासित्ता एव वयासी—श्रहो ! ण श्रह श्रधन्नो श्रपुन्नो श्रकयत्थो श्रकयलक्खणो हिरिसिरिवज्जिए हीणपुण्णचाउद्दसे दुरतपतलक्खणे । जति ण श्रह मित्ताण वा णाईण वा नियगाण वा सुणेंतश्रो तो ण श्रह पि एव चेव उप्पि पासायवरगए जाव विहरतो ।

से तेणट्ठेण पएसी एव वुच्चइ—मा तुम पएसी पच्छाणुताविए भविज्जासि, जहा व से पुरिसे श्रयभारिए ।

२६७—प्रदेशी राजा की बात सुनकर केशी कुमारश्रमण ने इस प्रकार कहा—प्रदेशी ! तुम उस श्रयोहारक (लोहे के भार को ढोने वाले लोहवणिक्) की तरह पश्चात्ताप करने वाले मत होश्रो । श्रर्थात् जैसे वह श्रयोहारक—लोहवणिक् पछताया उसी तरह तुम्हे भी अपनी कुलपरम्परागत श्रन्धश्रद्धा के कारण पछताना पडेगा ।

प्रदेशी—भदन्त ! वह श्रयोहारक कौन था श्रौर उसे क्यो पछताना पडा ?

केशी कुमारश्रमण—प्रदेशी ! कुछ श्रर्थ (धन) के अभिलाषी, श्रर्थ की गवेषणा करने वाले, श्रर्थ के लोभी, श्रर्थ की काक्षा श्रौर श्रर्थ की लिप्सा वाले पुरुष श्रर्थ-गवेषणा करने (धनोपार्जन करने) के निमित्त विपुल परिमाण मे बिक्री करने योग्य पदार्थो श्रौर साथ मे खाने-पीने के लिये पुष्कल—पर्याप्त पाथेय (नाश्ता) लेकर निर्जन, हिंसक प्राणियो से व्याप्त श्रौर पार होने के लिये रास्ता न मिले, ऐसी एक बहुत बडी श्रटवी (वन) मे जा पहुँचे ।

जब वे लोग उस निर्जन श्रटवी मे कुछ श्रागे बढे तो किसी स्थान पर उन्होने इधर-उधर सारयुक्त लोहे से व्याप्त लम्बी-चौडी श्रौर गहरी एक विशाल लोहे की खान देखी । वहाँ लोहा खूब बिखरा पडा था । उस खान को देखकर हर्षित, सतुष्ट यावत् विकसितहृदय होकर उन्होने श्रापस मे एक दूसरे को बुलाया श्रौर कहा, यह सलाह की—देवानुप्रियो ! यह लोहा हमारे लिये इष्ट, प्रिय यावत् मनोज्ञ है, श्रत देवानुप्रियो ! हमे इस लोहे के भार को बाध लेना चाहिए । इस विचार को एक दूसरे ने स्वीकार करके लोहे का भारा बाध लिया । बाधकर उसी अटवी मे श्रागे चल दिये ।

तत्पश्चात् श्रागे चलते-चलते वे लोग जब उस निर्जन यावत् श्रटवी मे एक स्थान पर पहुँचे तब उन्होने सीसे से भरी हुई एक विशाल सीसे की खान देखी, यावत् एक दूसरे को बुलाकर कहा—हे देवानुप्रियो ! हमे इस सीसे का सग्रह करना यावत् लाभदायक है । थोड़े से सीसे के बदले हम

बहुत-सा लोहा ले सकते हैं। इसलिये देवानुप्रियो! हमे इस लोहे के भार को छोडकर सीसे का पोटला बाध लेना योग्य है। ऐसा कहकर आपस मे एक दूसरे ने इस विचार को स्वीकार किया और लोहे को छोडकर सीसे के भार को वाध लिया। किन्तु उनमे से एक व्यक्ति लोहे को छोड़कर सीसे के भार को बाधने के लिये तैयार नही हुआ।

तब दूसरे व्यक्तियो (साथियो) ने अपने उस साथी से कहा—देवानुप्रिय! हमे लोहे की अपेक्षा इस सीसे का सग्रह करना अधिक अच्छा है, यावत् हम इस थोडे से सीसे से वहुत-सा लोहा प्राप्त कर सकते है। अतएव देवानुप्रिय! इस लोहे को छोडकर सीसे का भार वाध लो।

तव उस व्यक्ति ने कहा—देवानुप्रियो! मैं इस लोहे के भार को वहुत दूर से लादे चला आ रहा हूँ। देवानुप्रियो! इस लोहे को वहुत समय से लादे हुए हूँ। देवानुप्रियो! मैंने इस लोहे को बहुत ही कसकर बाधा है। देवानुप्रियो! मैंने इस लोहे का अशिथिल वधन से वाधा है। देवानुप्रियो! मैंने इस लोहे को अत्यधिक प्रगाढ वधन से वाधा है। इसलिए मैं इस लोहे को छोड़कर सीसे के भार को नही बाध सकता हूँ।

तब दूसरे साथियो ने उस व्यक्ति को अनुकूल-प्रतिकूल सभी तरह की आख्यापना (सामान्य रूप से प्रतिपादन करने वाली वाणी) से, प्रज्ञापना (विशेष रूप से प्रतिपादन करने वाली—समझाने वाली—वाणी) से समझाया। लेकिन जव वे उस पुरुप को समझाने-बुझाने मे समर्थ नही हुए तो अनुक्रम से आगे-आगे चलते गये और वहाँ-वहाँ पहुँचकर उन्होने तावे की, चादी की, सोने की, रत्नो की और हीरो की खानें देखी एव इनको जैसे-जैसे वहुमूल्य वस्तुएँ मिलती गईं, वैसे-वैसे पहले-पहले के अल्प मूल्य वाले तावे आदि को छोडकर अधिक-अधिक मूल्यवाली वस्तुओ को वाधते गये। सभी खानो पर उन्होने अपने उस दुराग्रही साथी को समझाया किन्तु उसके दुराग्रह को छुड़ाने मे वे समर्थ नही हुए।

इसके बाद वे सभी व्यक्ति जहाँ अपना जनपद-देश था और देश मे जहाँ अपने-अपने नगर थे, वहाँ आये। वहाँ आकर उन्होने हीरों को बेचा। उससे प्राप्त धन से अनेक दास-दासी, गाय, भैस और भेडो को खरीदा, बडे-बडे आठ-आठ मजिल के ऊचे भवन वनवाये और इसके वाद स्नान, बलिकर्म आदि करके उन श्रेष्ठ प्रासादो के ऊपरी भागो मे वैठकर वजते हुए मृदंग आदि वाद्यो—निनादो एव उत्तम तरुणियो द्वारा की जा रही नृत्य-गान युक्त वत्तीस प्रकार की नाट्य लीलाओ को देखते तथा साथ ही इष्ट शब्द, स्पर्श यावत् (रस, रूप और गध मूलक मनुष्य सम्वन्धी काम-भोगो को भोगते हुए अपना-अपना समय) व्यतीत करने लगे।

वह लोहवाहक पुरुष भी लोहभार को लेकर अपने नगर मे आया। वहाँ आकर उस लोहभार के लोहे को बेचा। किन्तु अल्प मूल्य वाला होने से उसे थोडा-सा धन मिला। उस पुरुष ने अपने साथियो को श्रेष्ठ प्रासादो के ऊपर रहते हुए यावत् (भोग-विलास मे) अपना समय बिताते हुए देखा। देखकर अपने आपसे इस प्रकार कहने लगा—अरे! मै अधन्य, पुण्यहीन, अकृतार्थ, शुभलक्षणो से रहित, श्री-ह्री से वर्जित, हीनपुण्य चातुर्दशिक (कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को जन्मा हुआ), दुरत-प्रान्त लक्षण वाला कुलक्षणी हूँ। यदि उन मित्रो, ज्ञातिजनो और अपने हितैषियो की बात मान लेता तो आज मैं भी इसी तरह श्रेष्ठ प्रासादो मे रहता हुआ यावत् अपना समय व्यतीत करता।

इसी कारण हे प्रदेशी ! मैने यह कहा है कि यदि तुम अपना दुराग्रह नही छोडोगे तो उस लोहभार को ढोने वाले दुराग्रही की तरह तुम्हे भी पश्चात्ताप करना पडेगा ।

प्रदेशी की प्रतिक्रिया एवं श्रावकधर्म-ग्रहण—

२६८—एत्थ णं से पएसी राया सबुद्धे केसिकुमारसमण वदइ जाव एवं वयासी—णो खलु भते ! अह पच्छाणुताविए भविस्सामि जहा व से पुरिसे अयभारिए, त इच्छामि ण देवाणुप्पियाण अंतिए केवलिपन्नत्त धम्मं निसामित्तए ।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबधं करेह ।

धम्मकहा जहा चित्तस्स । तहेव गिहिधम्म पडिवज्जइ जेणेव सेयविया नगरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

२६८—इस प्रकार समझाये जाने पर यथार्थ तत्त्व का बोध प्राप्त कर प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण को वदना की यावत् निवेदन किया—भदन्त ! मैं वैसा कुछ नही करूगा जिससे उस लोहभारवाहक पुरुष की तरह मुझे पश्चात्ताप करना पडे । अत आप देवानुप्रिय से केवलिप्रज्ञप्त धर्म सुनना चाहता हूँ ।

केशी कुमारश्रमण—देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हे सुख उपजे वैसा करो, परन्तु विलब मत करो ।

इसके पश्चात् प्रदेशी की जिज्ञासा-वृत्ति देखकर केशी कुमारश्रमण ने जैसे चित्त सारथी को धर्मोपदेश देकर श्रावकधर्म समझाया था उसी तरह राजा प्रदेशी को भी धर्मकथा सुनाकर गृहिधर्म का विस्तार से विवेचन किया । राजा गृहस्थधर्म स्वीकार करके सेयविया नगरी की ओर चलने को तत्पर हुआ ।

२६९—तए णं केसी कुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी—जाणासि तुमं पएसी ! कइ आयरिया पन्नत्ता ?

हंता जाणामि, तओ आयरिआ पण्णत्ता, तजहा—कलायरिए, सिप्पायरिए, धम्मायरिए ।

जाणासि णं तुमं पएसी ! तेसिं तिण्हं आयरियाणं कस्स का विणयपडिवत्ती पउजियव्वा ?

हंता जाणामि, कलायरियस्स सिप्पायरिस्स उवलेवणं समज्जण वा करेज्जा, पुरओ पुप्फाणि वा आणवेज्जा, मज्जावेज्जा, मडावेर्ज्जा, भोयाविज्जा वा विउलं जीवितारिहं पीइदाण दलएज्जा, पुत्ताणुपुत्तिय वित्ति कप्पेज्जा । जत्थेव धम्मायरियं पासिज्जा तत्थेव वदेज्जा णमसेज्जा सक्कारेज्जा सम्माणेज्जा, कल्लाण मगलं देवयं चेइयं पज्जुवासेज्जा, फासुएसणिज्जेण असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभेज्जा, पाडिहारिएणं पीढ-फलग-सिज्जा-संथारएण उवनिमंतेज्जा ।

एवं च ताव तुम पएसी ! एव जाणासि तहावि ण तुमं मम वामं वामेण जाव वट्टित्ता ममं एयमट्ठं अखामित्ता जेणेव सेयविया नगरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए ?

२६९—तब केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से कहा—प्रदेशी ! जानते हो कितने प्रकार के आचार्य होते है ?

प्रदेशी—हाँ भदन्त ! जानता हूँ, तीन (प्रकार के) आचार्य होते हैं—१ कलाचार्य, २ शिल्पाचार्य, ३. धर्माचार्य ।

केशी कुमारश्रमण—प्रदेशी ! तुम जानते हो कि इन तीन आचार्यों मे से किसकी कैसी विनय-प्रतिपत्ति करनी चाहिए ?

प्रदेशी—हाँ भदन्त ! जानता हूँ। कलाचार्य और शिल्पाचार्य के शरीर पर चन्दनादि का लेप और तेल आदि का मर्दन (मालिश) करना चाहिए, उन्हे स्नान कराना चाहिए, उनके सामने पुष्प आदि भेंट रूप मे रखना चाहिए, उनके कपडो आदि को सुरभि गन्ध मे सुगन्धित करना चाहिए, आभूषणो आदि से उन्हे अलकृत करना चाहिए, आदरपूर्वक भोजन कराना चाहिए और आजीविका के योग्य विपुल प्रीतिदान देना चाहिए, एव उनके लिये ऐसी आजीविका की व्यवस्था करना चाहिये कि पुत्र—पौत्रादि परम्परा भी जिसका लाभ ले सके। धर्माचार्य के जहाँ भी दर्शन हो, वहीं उनको वन्दना-नमस्कार करना चाहिए, उनका सत्कार-समान करना चाहिए और कल्याणरूप, मगलरूप, देवरूप एव ज्ञानरूप उनकी पर्युपासना करनी चाहिए तथा अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य भोजन-पान से उन्हे प्रतिलाभित करना चाहिए, पडिहारी पीठ, फलक, शय्या-सस्तारक आदि ग्रहण करने के लिये उनसे प्रार्थना करनी चाहिए।

केशी कुमारश्रमण—प्रदेशी ! इस प्रकार की विनयप्रतिपत्ति जानते हुए भी तुम अभी तक मेरे प्रति जो प्रतिकूल व्यवहार एव प्रवृत्ति करते रहे, उसके लिए क्षमा मागे विना ही सेयविया नगरी की ओर चलने के लिये उद्यत हो रहे हो ?

२७०—तए ण से पएसी राया केसिं कुमारसमणं एवं वदासी—एवं खलु भते ! मम एयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—एव खलु अहं देवाणुप्पियाण वामं वामेण जाव वट्टिए, तं सेयं खलु मे कल्ल पाउप्पभायाए रयणीए फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मिलियम्मि अहापंडुरे पभाए रत्तासोग-किंसुय-सुयमुह-गुंजद्धरागसरिसे कमलागरनलिणिसडबोहए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलते अतेउरपरियालसद्धिं सपरिवुडस्स देवाणुप्पिए वदित्तए नमसित्तए एतमट्ठं भुज्जो-भुज्जो सम्मं विणएण खामित्तए-त्ति कट्टु जामेव दिसिं पाउब्भूते तामेव दिसिं पडिगए।

तए ण से पएसी राया कल्ल पाउप्पभायाए रयणीए जाव तेयसा जलते हट्ठतुट्ठ-जाव-हियए जहेव कूणिए[1] तहेव निग्गच्छइ अतेउरपरियालसद्धिं सपरिवुडे पंचविहेण अभिगमेणं वदइ नमंसइ एयमट्ठं भुज्जो भुज्जो सम्मं विणएण खामेइ।

२७०—केशी कुमारश्रमण के इस सकेत को सुनकर प्रत्युत्तर मे प्रदेशी राजा ने केशी कुमार-श्रमण से यह निवेदन किया—हे भदन्त ! आपका कथन योग्य है किन्तु मेरा इस प्रकार यह आध्यात्मिक—आन्तरिक यावत् विचार—सकल्प है कि अभी तक आप देवानुप्रिय के प्रति मैंने जो प्रतिकूल यावत् व्यवहार किया है, उसके लिये आगामी कल, रात्रि के प्रभात रूप मे परिवर्तित होने, उत्पलो और कमनीय कमलो के उन्मीलित और विकसित होने, प्रभात के पाडुर (पीलाश लिये श्वेत वर्ण का) होने, रक्ताशोक, पलाशपुष्प, शुकमुख (तोते की चोच), गुजाफल के अर्धभाग जैसे लाल, सरोवर मे

१ देखिए समिति द्वारा प्रकाशित औपपातिक सूत्र

स्थित कमलिनीकुलो के विकासक सूर्य का उदय होने एव जाज्वल्यमान तेज सहित सहस्रश्मि दिनकर के प्रकाशित होने पर अन्त पुर-परिवार सहित आप देवानुप्रिय की वन्दना-नमस्कार करने और अवमानना रूप अपने अपराध की वारवार विनयपूर्वक क्षमापना के लिये सेवा मे उपस्थित होऊ ।

ऐसा निवेदन कर वह जिस ओर से आया था, उसी ओर लौट गया ।

दूसरे दिन जब रात्रि के प्रभात रूप मे रूपान्तरित होने यावत् जाज्वल्यमान तेज सहित दिनकर के प्रकाशित होने पर प्रदेशी राजा हृष्ट-तुष्ट यावत् विकसितहृदय होता हुआ कोणिक राजा की तरह दर्शनार्थ निकला । उसने अन्त पुर-परिवार आदि के साथ पाच प्रकार के अभिगमपूर्वक वन्दन-नमस्कार किया और यथाविधि विनयपूर्वक अपने प्रतिकूल आचरण के लिये वारवार क्षमायाचना की ।

विवेचन—पाच अभिगमो के नाम इस प्रकार हैं—

१ सचित्त द्रव्यो (पुष्प, पान आदि) का त्याग ।
२. अचित्त द्रव्यो (वस्त्र, आभूषण आदि) का अत्याग ।
३. एक शाटिका (दुपट्टा) का उत्तरासग करना ।
४ दृष्टि पडते ही दोनो हाथ जोडना ।
५ मन को एकाग्र करना ।

२७१—तए णं केसी कुमारसमणे पएसिस्स रण्णो सूरियकंतप्पमुहाण देवीण तीसे य महति-महालियाए महच्चपरिसाए जाव धम्मं परिकहेइ ।

तए ण से पएसी राया धम्म सोच्चा निसम्म उट्ठाए उट्ठेति, केसिकुमारसमण वदइ नमसइ जेणेव सेयविया नगरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

२७१—तत्पश्चात् केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा, सूर्यकान्ता आदि रानियो और उस अति विशाल परिषद् को यावत् धर्मकथा सुनाई ।

इसके वाद प्रदेशी राजा धर्मदेशना सुन कर और उसे हृदय मे धारण करके अपने आसन से उठा एव केशी कुमारश्रमण को वदन-नमस्कार किया । वदन-नमस्कार करके सेयविया नगरी की ओर चलने के लिये उद्यत हुआ ।

२७२—तए णं केसी कुमारसमणे पएसिराय एव वदासी—मा ण तुम पएसी ! पुव्वि रमणिज्जे भवित्ता पच्छा अरमणिज्जे भविज्जासि, जहा से वणसंडे इ वा, णट्टसाला इ वा इक्खुवाडए इ वा, खलवाडए इ वा ।

कहं ण भंते ! ?

वणसडे पत्तिए पुप्फिए फलिए हरियगरेरिज्जमाणे सिरीए अतीव अतीव उवसोभेमाणे चिट्ठइ, तया णं वणसंडे रमणिज्जे भवति । जया णं वणसडे नो पत्तिए, नो पुप्फिए, नो फलिए नो हरियगरेरिज्जमाणे णो सिरीए अईव अईव उवसोभेमाणे चिट्ठइ तया ण जुन्ने झडे परिसडिय पंडुपत्ते सुक्करुक्खे इव मिलायमाणे चिट्ठइ तया णं वणे णो रमणिज्जे भवति ।

जया ण णट्टसाला वि गिज्जइ वाइज्जइ नच्चिज्जइ हसिज्जइ रमिज्जइ तया णं णट्टसाला रमणिज्जा भवइ, जया णं नट्टसाला णो गिज्जइ जाव णो रमिज्जइ तया णं णट्टसाला अरमणिज्जा भवति।

जया ण इक्खुवाडे छिज्जइ भिज्जइ सिज्जइ पिज्जइ दिज्जइ तया णं इक्खुवाडे रमणिज्जे भवइ, जया ण इक्खुवाडे णो छिज्जइ जाव तया इक्खुवाडे अरमणिज्जे भवइ।

जया णं खलवाडे उच्छुब्भइ उडुइज्जइ मलइज्जइ मुणिज्जइ खज्जइ पिज्जइ दिज्जइ तया णं खलवाडे रमणिज्जे भवति जया ण खलवाडे नो उच्छुब्भइ जाव अरमणिज्जे भवति।

से तेणट्ठेण पएसी ! एवं वुच्चइ मा ण तुमे पएसी ! पुव्वि रमणिज्जे भवित्ता पच्छा अरमणिज्जे भविज्जासि जहा वणसडे इ वा।

२७२—राजा प्रदेशी को सेयविया नगरी की ओर चलने के लिये उद्यत देखकर केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा इस प्रकार कहा—जैसे वनखड अथवा नाट्यशाला अथवा इक्षुवाड (गन्ने का खेत) अथवा खलवाड (खलिहान) पूर्व मे रमणीय होकर पश्चात् अरमणीय हो जाते हैं, उस प्रकार तुम पहले रमणीय (धार्मिक) होकर बाद मे अरमणीय (अधार्मिक) मत हो जाना।

प्रदेशी—भदन्त ! यह कैसे कि वनखड आदि पूर्व मे रमणीय (मनोरम, सुन्दर) होकर बाद मे अरमणीय हो जाते है ?

केशी कुमारश्रमण—प्रदेशी ! वनखड आदि पहले रमणीय होकर बाद मे अरमणीय ऐसे हो जाते हैं कि—

वनखड जब तक हरे-भरे पत्तो, पुष्पो, फलो से सपन्न और अतिशय सुहावनी सघन छाया एव हरियाली से व्याप्त होता है तब तक अपनी शोभा से अतीव-अतीव सुशोभित होता हुआ रमणीय लगता है। लेकिन वही वनखड पत्तो, फूलो, फलो और नाममात्र की भी हरियाली नही रहने से हराभरा, देदीप्यमान न होकर कुरूप, भयावना दिखने लगता है तब सूखे वृक्ष की तरह छाल-पत्तो के जीर्ण-शीर्ण हो जाने, झर जाने, सड जाने, पीले और म्लान हो जाने से रमणीय नही रहता है।

इसी प्रकार नाट्यशाला भी जब तक सगीत-गान होता रहता है, बाजे बजते रहते हैं, नृत्य होते रहते हैं, लोगो के हास्य से व्याप्त रहती है और विविध प्रकार की रमतें—क्रीडायें होती रहती हैं तब तक रमणीय-सुहावनी लगती है, किन्तु जब उसी नाट्यशाला मे गीत नही गाये जा रहे हो यावत् क्रीडायें नही हो रही हो, तब वही नाट्यशाला असुहावनी हो जाती है।

इसी तरह प्रदेशी ! जब तक इक्षुवाड (ईख के खेत) मे ईख कटती हो, टूटती हो, पेरी जाती हो, लोग उसका रस पीते हो, कोई उसे लेते-देते हो, तब तक वह इक्षुवाड रमणीय लगता है। लेकिन जब उसी इक्षुवाड मे ईख न कटती हो आदि तब वही मन को अरमणीय—अप्रिय, अनिष्टकर लगने लगती है।

इसी प्रकार प्रदेशी ! जब तक खलवाड (खलिहान) मे धान्य के ढेर लगे रहते हैं, उडावनी होती रहती है, धान्य का मर्दन (दाय) होता रहता है, तिल आदि पेरे जाते हैं, लोग एक साथ मिलकर भोजन खाते-पीते, देते-लेते है, तब तक वह रमणीय मालूम होता है, लेकिन जब धान्य के ढेर आदि नही रहते तब वही अरमणीय दिखने लगता है।

इसीलिये हे प्रदेशी ! मैंने यह कहा है कि तुम पहले रमणीय होकर बाद मे अरमणीय मत हो जाना, जैसे कि वनखड आदि हो जाते है ।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्रगत—'मा ण तुम पएसी ! पुव्वि रमणिज्जे भवित्ता पच्छा अरमणिज्जे भविज्जासि' वाक्य का टीकाकार आचार्य ने इस प्रकार आशय स्पष्ट किया है—केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से कहा कि हे राजन् ! जब तुम धर्मानुगामी नही थे तब दूसरे लोगो को दान देते थे तो दान देने की यह प्रथा अब भी चालू रखना । अर्थात् पूर्व मे जैसे रमणीय-दानी थे उसी तरह अब भी रमणीय-दानी रहना किन्तु अरमणीय न होना । यदि अरमणीय हो जाओगे—सकुचित दृष्टि वाले हो जाओगे तो इससे निर्ग्रन्थप्रवचन की अपकीर्ति फैलेगी और हमे अन्तराय कर्म का बध होगा ।

२७३—तए ण पएसी केसिं कुमारसमणं एवं वयासी—णो खलु भंते ! अहं पुव्विं रमणिज्जे भवित्ता पच्छा अरमणिज्जे भविस्सामि, जहा वणसंडे इ वा जाव खलवाडे इ वा । अहं णं सेयविया-नगरीपमुक्खाइं सतगामसहस्साइं चत्तारि भागे करिस्सामि, एगं भागं बलवाहणस्स दलइस्सामि, एगं भागं कुट्ठागारे छुभिस्सामि, एगं भागं अंतेउरस्स दलइस्सामि, एगेणं भागेणं महतिमहलयं कूडागारसालं करिस्सामि, तत्थ ण बहूहिं पुरिसेहिं दिन्नभइभत्तवेयणेहिं विउलं असण० (पानं-खाइम-साइम) उवक्ख-डावेत्ता बहूणं समण-माहण-भिक्खुयाणं-पथियपहियाणं परिभाएमाणे बहूहिं सीलव्वयगुणव्वयवेरमण-पच्चक्खाणपोसहोववासस्स जाव विहरिस्सामि त्ति कट्टु जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए ।

२७३—तब प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से इस प्रकार निवेदन किया—भदन्त ! आप द्वारा दिये गये वनखड यावत् खलवाड के उदाहरणो की तरह मैं पहले रमणीय होकर बाद मे अरमणीय नही बनूगा । क्योकि मैंने यह विचार किया है कि सेयावियानगरी आदि सात हजार ग्रामो के चार विभाग करूगा । उनमे से एक भाग राज्य की व्यवस्था और रक्षण के लिये बल (सेना) और वाहन के लिये दूगा, एक भाग प्रजा के पालन हेतु कोठार मे अन्न आदि के लिये रखूगा, एक भाग अत पुर के निर्वाह और रक्षा के लिये दूगा और शेष एक भाग से एक विशाल कूटाकार शाला बनवाऊगा और फिर बहुत से पुरुषो को भोजन, वेतन और दैनिक मजदूरी पर नियुक्त कर प्रतिदिन विपुल मात्रा मे अशन, पान, खादिम, स्वादिम रूप चारो प्रकार का आहार बनवाकर अनेक श्रमणो, माहनो, भिक्षुओ, यात्रियो और पथिको को देते हुए एव शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान, पोषधोपवास आदि यावत् (तप द्वारा आत्मा को भावित करते हुए) अपना जीवनयापन करूगा, ऐसा कहकर जिस दिशा से आया था, वापस उसी ओर लौट गया ।

प्रदेशी द्वारा कृत राज्यव्यवस्था—

२७५—तए ण से पएसी राया कल्लं जाव तेयसा जलंते सेयवियापामोक्खाइं सत्त गामसह-स्साइं चत्तारि भाए करेइ, एगं भाग बलवाहणस्स दलइ जाव कूडागारसाल करेइ, तत्थ णं बहूहिं पुरिसेहिं जाव उवक्खडावेत्ता बहूणं समण जाव परिभाएमाणे विहरइ ।

२७४—तत्पश्चात् प्रदेशी राजा ने अगले दिन यावत् जाज्वल्यमान तेजसहित सूर्य के प्रकाशित होने पर सेयविया प्रभृति सात हजार ग्रामो के चार भाग किये । उनमे से एक भाग बल-वाहनो को

दिया यावत् कूटाकारशाला का निर्माण कराया। उसमे बहुत से पुरुषो को नियुक्त कर यावत् भोजन बनवाकर बहुत से श्रमणो यावत् पथिको को देते हुए अपना समय बिताने लगा।

२७५—तए ण से पएसी राया समणोवासए जाए अभिगयजीवाजीवे० विहरइ।

जप्पभिइ च णं पएसी राया समणोवासए जाए तप्पभिइं च णं रज्जं च, रट्ठं च, बलं च, वाहण च, कोट्ठागारं च, पुरं च, अतेउरं च, जणवयं च, अणाढायमाणे यावि विहरति।

प्रदेशी राजा अब श्रमणोपासक हो गया और जीव-अजीव आदि तत्त्वो का ज्ञाता होता हुआ धार्मिक आचार-विचारपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगा।

जबसे वह प्रदेशी राजा श्रमणोपासक हुआ तब से राज्य, राष्ट्र, बल, वाहन, कोठार, पुर, अन्त पुर और जनपद के प्रति भी उदासीन रहने लगा।

सूर्यकान्ता रानी का षड्यंत्र

२७६—तए णं तीसे सूरियकंताए देवीए इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—जप्पभिइं च णं पएसी राया समणोवासए जाए तप्पभिइं च णं रज्जं च रट्ठं जाव अंतेउरं च ममं जणवयं च अणाढायमाणे विहरइ; तं सेयं खलु मे पएसिं रायं केणवि सत्थप्पओएण वा अग्गिप्पओएण वा मंतप्पओगेण वा विसप्पओगेण वा उद्दवेत्ता सूरियकंतं कुमारं रज्जे ठवित्ता सयमेव रज्जसिरिं कारेमाणीए पालेमाणीए विहरित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता सूरियकंतं कुमारं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

जप्पभिइं च णं पएसी राया समणोवासए जाए तप्पभिइं च णं रज्जं च जाव अंतेउर च णं जणवयं च माणुस्सए य कामभोगे अणाढायमाणे विहरइ, तं सेयं खलु तव पुत्ता ? पएसिं रायं केणइ सत्थप्पयोगेण वा जाव उद्दवित्ता सयमेव रज्जसिरिं कारेमाणे पालेमाणे विहरित्तए।

तए णं सूरियकंते कुमारे सूरियकंताए देवीए एवं वुत्ते समाणे सूरियकंताए देवीए एयमट्ठं णो आढाइ नो परियाणाइ, तुसिणीए संचिट्ठइ।

तए णं तीसे सूरियकताए देवीए इमेयारूवे अज्झत्थिए जाव समुप्पज्जित्था—मा णं सूरियकंते कुमारे पएसिस्स रन्नो इमं रहस्सभेयं करिस्सइ त्ति कट्टु पएसिस्स रण्णो छिद्दाणि य मम्माणि य रहस्साणि य विवराणि य अंतराणि य पडिजागरमाणी पडिजागरमाणी विहरइ।

२७६—राजा प्रदेशी को राज्य आदि के प्रति उदासीन देखकर सूर्यकान्ता रानी को यह और इस प्रकार का आन्तरिक यावत् विचार उत्पन्न हुआ कि—जब से राजा प्रदेशी श्रमणोपासक हुआ है, उसी दिन से राज्य, राष्ट्र यावत् अन्त पुर, जनपद और मुझसे विमुख हो गया है। अत मुझे यही उचित है कि शस्त्रप्रयोग, अग्निप्रयोग, मत्रप्रयोग अथवा विषप्रयोग द्वारा प्रदेशी राजा को मारकर और सूर्यकान्त कुमार को राज्य पर आसीन करके अर्थात् राजा बनाकर स्वय राज्यलक्ष्मी का भोग करती हुई, प्रजा का पालन करती हुई आनन्दपूर्वक रहूँ। ऐसा उसने विचार किया। विचार करके सूर्यकान्त कुमार को बुलाया और बुलाकर अपनी मनोभावना बताई—

हे पुत्र ! जव से प्रदेशी राजा ने श्रमणोपासक धर्म स्वीकार कर लिया है, तभी से राज्य यावत् अन्त पुर, जनपद और मनुष्य सवधी कामभोगो की ओर ध्यान देना वद कर दिया है। इसलिये पुत्र ! तुम्हे यही श्रेयस्कर है कि शस्त्रप्रयोग आदि किसी-न-किसी उपाय से प्रदेशी राजा को मार कर स्वय राज्यलक्ष्मी का भोग एव प्रजा का पालन करते हुए अपना जीवन विताओ।

सूर्यकान्ता देवी के इस विचार को सुनकर सूर्यकान्त कुमार ने उसका आदर नही किया, उस पर ध्यान नही दिया किन्तु शात-मौन ही रहा।

तव सूर्यकान्ता रानी को इस प्रकार का आन्तरिक यावत् विचार उत्पन्न हुआ कि कही ऐसा न हो कि सूर्यकान्त कुमार प्रदेशी राजा के सामने मेरे इस रहस्य को प्रकाशित कर दे। ऐसा सोचकर सूर्यकान्ता रानी प्रदेशी राजा को मारने के लिये उसके दोष रूप छिद्रो को, कुकृत्य रूप आन्तरिक मर्मों को, एकान्त मे सेवित निषिद्ध आचरण रूप रहस्यो को, एकान्त निर्जन स्थानो को और अनुकूल अवसर रूप अतरो को जानने की ताक मे रहने लगी।

२७७—तए णं सूरियकंता देवी अन्नया कयाइ पएसिस्स रण्णो अंतरं जाणइ, असणं जाव खाइमं सव्व वत्थ-गंध-मल्लालंकारं विसप्पजोगं पउंजइ, पएसिस्स रण्णो ण्हायस्स जाव पायच्छित्तस्स सुहासणवरगयस्स तं विससंजुत्तं असणं वत्थं जाव-अलकार निसिरेइ, घातइ।

तए णं तस्स पएसिस्स रण्णो त विससंजुत्तं असणं आहारेमाणस्स सरीरगंमि वेयणा पाउब्भूया उज्जला विपुला पगाढा कक्कसा कडुया फरुसा निट्ठुरा चडा तिव्वा दुक्खा दुग्गा दुरहियासा पित्तजर-परिगयसरीरे दाहवक्कतिया वि विहरइ।

२७७—तत्पश्चात् किसी एक दिन अनुकूल अवसर मिलने पर सूर्यकान्ता रानी ने प्रदेशी राजा को मारने के लिये अशन-पान आदि भोजन मे तथा शरीर पर धारण करने योग्य सभी वस्त्रो, सू घने योग्य सुगधित वस्तुओ, पुष्पमालाओ और आभूषणो मे विष डालकर विषैला कर दिया। इसके वाद जव वह प्रदेशी राजा स्नान यावत् मगल प्रायश्चित्त कर भोजन करने के लिये सुखपूर्वक श्रेष्ठ आसन पर वैठा तव वह विषमिश्रित घातक अशन आदि रूप आहार परोसा तथा विषमय वस्त्र पहनाये यावत् विषमय अलकारो से उसको शृ गारित किया।

तव उस विषमिले आहार को खाने से प्रदेशी राजा के शरीर मे उत्कट, प्रचुर, प्रगाढ, कर्कश, कटुक, परुष, निष्ठुर, रौद्र, दु खद, विकट और दुस्सह वेदना उत्पन्न हुई। विषम पित्तज्वर से सारे शरीर मे जलन होने लगी।

प्रदेशी का संलेखना-मरण—

२७८—तए ण से पएसी राया सूरियकंताए देवीए अत्ताण संपलद्धं जाणित्ता सूरियकंताए देवीए मणसावि अप्पदुस्समाणे जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, पोसहसाल पमज्जइ, उच्चार-पासवणभूमिं पडिलेहेइ, दब्भसंथारग सथरेइ, दब्भसथारग दुरूहइ, पुरत्थाभिमुहे सपलियंकनिसन्ने करयलपरिग्गहिय सिरसावत्त अजलिं मत्थए त्ति कट्टु एवं वयासी—

नमोऽत्थु ण अरहताण जाव[1] संपत्ताण। नमोऽत्थु णं केसिस्स कुमारसमणस्स मम धम्मोव-

---

१ देखें सूत्र सख्या १९९

देसगस्स धम्मायरियस्स, वंदामि णं भगवंतं तत्थ गयं इह गए, पासउ मे भगवं तत्थ गए इह गयं ति कट्टु वंदइ नमंसइ। पुव्विं पि णं मए केसिस्स कुमारसमणस्स अंतिए थूलपाणाइवाए पच्चक्खाए जाव परिग्गहे, तं इयाणिं पि णं तस्सेव भगवतो अंतिए सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जाव परिग्गहं, सव्वं कोहं जाव मिच्छादंसणसल्लं, अकरणिज्जं जोयं पच्चक्खामि, सव्वं असणं चउव्विहं पि आहारं जावज्जीवाए पच्चक्खामि,

जं पि य मे सरीरं इट्ठं जाव फुसंतु त्ति एयं पि य णं चरिमेहिं ऊसासनिस्सासेहिं वोसिरामि त्ति कट्टु आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे सूरियाभे विमाणे उववायसभाए जाव वण्णओ।

२७८—तत्पश्चात् प्रदेशी राजा सूर्यकान्ता देवी के इस उत्पात (षड्यंत्र, धोखे) को जानकर भी उस के प्रति मन मे लेशमात्र भी द्वेष-रोष न करते हुए जहाँ पौषधशाला थी, वहाँ आया। आकर उसने पौषधशाला की प्रमार्जना की, उच्चारप्रस्रवणभूमि (स्थडिल भूमि) का प्रतिलेखन किया। फिर दर्भ का सथारा बिछाया और उस पर आसीन हुआ। आसीन होकर उसने पूर्व दिशा की ओर मुख करके पर्यंकासन (पद्मासन) से बैठकर दोनो हाथ जोड आवर्तपूर्वक मस्तक पर अजलि करके इस प्रकार कहा—

अरिहतो यावत् सिद्धगति को प्राप्त भगवन्तो को नमस्कार हो। मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक केशी कुमारश्रमण को नमस्कार हो। यहाँ स्थित मैं वहाँ विराजमान भगवान् की वदना करता हूँ। वहाँ पर विराजमान वे भगवन् यहाँ रहकर वदना करने वाले मुझे देखें। पहले भी मैंने केशी कुमारश्रमण के समक्ष स्थूल प्राणातिपात यावत् स्थूल परिग्रह का प्रत्याख्यान किया है। अब इस समय भी मैं उन्ही भगवन्तो की साक्षी से (यावज्जीवन के लिये) सपूर्ण प्राणातिपात यावत् समस्त परिग्रह, क्रोध यावत् मिथ्यादर्शन शल्य का (अठारह पापस्थानो का) प्रत्याख्यान करता हूँ। अकरणीय (नही करने योग्य जैसे) समस्त कार्यों एव मन-वचन-काय योग का प्रत्याख्यान करता हूँ और जीवनपर्यंत के लिये सभी अशन-पान आदि रूप चारो प्रकार के आहार का भी त्याग करता हूँ।

यद्यपि मुझे यह शरीर इष्ट—प्रिय रहा है, मैंने यह ध्यान रखा है कि इसमे कोई रोग आदि उत्पन्न न हो परन्तु अब अतिम श्वासोच्छ्वास तक के लिये इस शरीर का भी परित्याग करता हूँ।

इस प्रकार के निश्चय के साथ पुन आलोचना और प्रतिक्रमण करके समाधिपूर्वक मरण समय के प्राप्त होने पर काल करके सौधर्मकल्प के सूर्याभविमान की उपपात सभा मे सूर्याभदेव के रूप मे उत्पन्न हुआ, इत्यादि पूर्व मे किया गया समस्त वर्णन यहाँ कर लेना चाहिये।

सूर्याभदेव का भावी जन्म—

२७९—तए ण से सूरियाभे देवे अहुणोववन्नए चेव समाणे पचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गच्छति, त०—आहारपज्जत्तीए सरीरपज्जत्तीए इंदियपज्जत्तीए आणपाणपज्जत्तीए भास-मणपज्जत्तीए, त एव खलु भो! सूरियाभेणं देवेण दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवजुती दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमन्नागए।

सूरियाभस्स णं भंते ! देवस्स केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ।

गोयमा ! चत्तारि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता ।

से णं सूरियाभे देवे ताओ लोगाओ आउक्खएण भवक्खएण ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गमिहिति कहिं उववज्जिहिति ?

गोयमा ! महाविदेहे वासे जाणि इमाणि कुलाणि भवंति, त०—अड्ढाइं दित्ताइ विउलाइ विच्छिण्णविपुलभवण-सयणासण-जाण-वाहणाइं बहुधण-बहुजातरूव-रययाइ आओगपओगसपउत्ताइं विच्छड्डियपउरभत्तपाणाइ बहुदासी-दास-गो-महिस-गवेलगप्पभूयाइं बहुजणस्स अपरिभूताइं, तत्थ अन्नयरेसु कुलेसु पुत्तत्ताए पच्चाइस्सइ ।

२७९—तत्काल उत्पन्न हुआ वह सूर्याभदेव पाच पर्याप्तियो से पर्याप्त हुआ । वे पर्याप्तिया इस प्रकार है—१ आहारपर्याप्ति, २ शरीरपर्याप्ति, ३ इन्द्रियपर्याप्ति, ४ श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति, ५ भाषा-मन पर्याप्ति ।

इस प्रकार से हे गौतम ! उस सूर्याभदेव ने यह दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवानुभाव—देवप्रभाव उपार्जित किया है, प्राप्त किया है और अधिगत—अधीन किया है ।

गौतम—भदन्त ! उस सूर्याभदेव की आयुष्यमर्यादा कितने काल की है ?

भगवान्—गौतम ! उसकी आयुष्यमर्यादा चार पल्योपम की है ।

गौतम—भगवन् ! आयुष्य पूर्ण होने, भवक्षय और स्थितिक्षय होने के अनन्तर सूर्याभदेव उस देवलोक से च्यवन करके कहाँ जायेगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?

भगवान्—गौतम ! महाविदेह क्षेत्र मे जो कुल आढ्य-धन-धान्यसमृद्ध, दीप्त-प्रभावक, विपुल-बड़े कुटुम्ब परिवारवाले, बहुत से भवनो, शय्याओ, आसनो और यानवाहनो के स्वामी, बहुत से धन, सोने-चादी के अधिपति, अर्थोपार्जन के व्यापार-व्यवसाय मे प्रवृत्त एव दीनजनो को जिनके यहाँ से प्रचुर मात्रा मे भोजनपान प्राप्त होता है, सेवा करने के लिये बहुत से दास-दासी रहते हैं, बहुसंख्यक गाय, भैंस, भेड आदि पशुधन है और जिनका बहुत से लोगो द्वारा भी पराभव—तिरस्कार नही किया जा सकता, ऐसे प्रसिद्ध कुलो मे से किसी एक कुल मे वह पुत्र रूप से उत्पन्न होगा ।

माता-पिता द्वारा कृत जन्मादि संस्कार—

२८०—तए णं तंसि दारगंसि गब्भगयंसि चेव समाणंसि अम्मापिऊण धम्मे दढा पइण्णा भविस्सइ ।

तए णं तस्स दारयस्स नवण्हं मासाणं बहुपडिपुन्नाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाण वितिक्कंताणं सुकुमालपाणिपायं अहीणपडिपुण्णपंचिंदियसरीरं लक्खणवंजणगुणोववेयं माणुम्माणपमाणपडिपुन्न-सुजायसव्वंगसुंदरंग ससिसोमाकारं कंतं पियदंसणं सुरूवं दारयं पयाहिसि ।

तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे ठितिवडियं करेहिंति, ततियदिवसे चंदसूर-दंसणिगं करिस्संति, छट्ठे दिवसे जागरियं जागरिस्संति, एक्कारसमे दिवसे वीइक्कंते संपत्ते बारसाहे दिवसे णिव्वित्ते असुइजायकम्मकरणे चोक्खे संमज्जिओवलित्ते विउलं असणपाणखाइमसाइमं उवक्खडा-

वेस्सति, मित्तणाइणियगसयणसंबंधिपरिजण आमतेत्ता तओ पच्छा ण्हाया कायवलिकम्मा जाव अलकिया भोयणमंडवसि सुहासणवरगया ते मित्तणाइ-जाव परिजणेण सद्धि विउलं असणं आसाएमाणा विसाए-माणा परिभुजेमाणा परिभाएमाणा एव चेव णं विहरिस्सति, जिमियभुत्तुत्तरागया वि य णं समाणा आयंता चोक्खा परमसुइभूया त मित्तणाइ-जाव परिजणं विउलेण वत्थगंधमल्लालकारेणं सक्कारेस्सति सम्माणिस्सति तस्सेव मित्त-जाव-परिजणस्स पुरतो एवं वइस्संति—

जम्हा ण देवाणुप्पिया ! इमंसि दारगसि गब्भगयंसि चेव समाणंसि धम्मे दढा पइण्णा जाया, त होउ ण अम्हं एयस्स दारयस्स दढपइण्णे णामेण । तए ण तस्स दढपइण्णस्स दारगस्स अम्मापियरो नामधेज्ज करिस्सति—दढपइण्णो य दढपइण्णो य ।

तए ण तस्स अम्मापियरो आणुपुव्वेण ठितिवडियं च चंदसूरियदरिसणं च धम्मजागरिय च नामधिज्जकरण च पजेमणगं च पडिवद्धावणग च पचकमणगं च कन्नवेहण च संवच्छरपडिलेहणग च चूलोवणय च अन्नाणि य वहूणि गब्भाहाणजम्मणाइयाइ महया इड्ढीसक्कारसमुदएणं करिस्संति ।

२८०—तत्पश्चात् उस दारक के गर्भ मे आने पर माता-पिता की धर्म मे दृढ प्रतिज्ञा—श्रद्धा होगी ।

उसके बाद नौ मास और साढे सात रात्रि-दिन बीतने पर दारक की माता सुकुमार हाथ-पैर वाले शुभ लक्षणो एव परिपूर्ण पाच इन्द्रियो और शरीर वाले, सामुद्रिक शास्त्र मे वताये गये शारीरिक लक्षणो, तिल आदि व्यजनो और गुणो से युक्त, माप, तोल और नाप मे वरावर, सुजात, सर्वांगसुन्दर, चन्द्रमा के समान सौम्य आकार वाले, कमनीय, प्रियदर्शन एव सरूपवान् पुत्र को जन्म देगी ।

तब उस दारक के माता-पिता प्रथम दिवस स्थितिपतिता (कुलपरपरागत क्रियाओ से पुत्र-जन्मोत्सव) करेंगे । तीसरे दिन चन्द्रदर्शन और सूर्यदर्शन सम्वधी क्रियाये करेगे । छठे दिन रात्रिजागरण करेंगे । ग्यारह दिन बीतने के बाद वारहवें दिन जातकर्म सवन्धी अशुचि की निवृत्ति के लिये घर झाड-बुहार और लीप-पोत कर शुद्ध करेगे । घर की शुद्धि करने के वाद अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य रूप विपुल भोजनसामग्री बनवायेंगे और मित्रजनो, ज्ञातिजनो, निजजनो, स्वजन-सवन्धियो एव दास-दासी आदि परिजनो, परिचितो को आमन्त्रित करेगे । इसके वाद स्नान, वलिकर्म, तिलक आदि कौतुक-मंगल-प्रायश्चित्त यावत् आभूषणो से शरीर को अलकृत करके भोजनमडप मे श्रेष्ठ आसनो पर सुखपूर्वक बैठकर मित्रो यावत् परिजनो के साथ विपुल अशनादि रूप भोजन का आस्वादन, विशेष रूप मे आस्वादन करेंगे, उसका परिभोग करेंगे, एक दूसरे को परोसेगे और भोजन करने के पश्चात् आचमन-कुल्ला आदि करके स्वच्छ, परम शुचिभूत होकर उन मित्रो, ज्ञातिजनो यावत् परिजनो का विपुल वस्त्र, गध, माला, अलकारो आदि से सत्कार-समान करेंगे और फिर उन्ही मित्रो यावत् परिजनो से कहेगे—

देवानुप्रियो ! जब से यह दारक माता की कुक्षि मे गर्भ रूप से आया था तभी से हमारी धर्म मे दृढ प्रतिज्ञा—श्रद्धा हुई है, इसलिये हमारे इस बालक का 'दृढप्रतिज्ञ' यह नाम हो । इस तरह उस दारक के माता-पिता 'दृढप्रतिज्ञ' यह नामकरण करेंगे ।

इस प्रकार से उसके माता-पिता अनुक्रम से १ स्थितिपतिता, २, चन्द्र-सूर्यदर्शन, ३. धर्म-जागरण, ४ नामकरण, ५ अन्नप्राशन ६ प्रतिवर्धापन (आशीर्वाद, अभिनंदन-समान समारोह),

७ प्रचक्रमण (पैरो चलना—डग भरना और शब्दोच्चारण करना), ८ कर्णवेधन ९ सवत्सर प्रतिलेख (प्रथम वर्ष का जन्मोत्सव) और १० चूलोपनयन (मु डनोत्सव—झडूला उतारना) आदि तथा अन्य दूसरे भी बहुत से गर्भाधान, जन्मादि सबन्धी उत्सव भव्य समारोह के साथ प्रभावक रूप मे करेंगे।

दृढप्रतिज्ञ का लालन-पालन—

२८१—तए णं दढपतिण्णे दारगे पंचधाईपरिक्खित्ते—खीरधाईए-मडणधाईए-मज्जणधाईए-अंकधाईए-कीलावणधाईए, अन्नाहि बहूहिं खुज्जाहिं, चिलाइयाहिं, वामणियाहिं, वडभियाहिं, बब्बराहिं बउसियाहिं, जोण्हियाहिं, पण्णवियाहिं, ईसिणियाहिं, वारुणियाहिं, लासियाहिं, लाउसियाहिं, दमिलीहिं, सिंहलीहिं, पुलिंदीहिं, आरबीहिं, पक्कणीहिं, बहलीहिं, मुरुडीहिं, सबरीहिं, पारसीहिं, णाणादेसी-विदेस-परिमंडियाहिं इगियचितियपत्थियवियाणाहिं सदेसणेवत्थगहियवेसाहिं निउणकुसलाहिं विणीयाहिं चेडियाचक्कवालतरुणिवदपरियालपरिवुडे वरिसधरकचुइमहयरवदपरिक्खित्ते हत्थाओ हत्थं साहरिज्ज-माणे उवनचिज्जमाणे अंकाओ अक परिभुज्जमाणे उवगिज्जेमाणे उवलालिज्जमाणे उवगूहिज्जमाणे अवतासिज्जमाणे परियदिज्जमाणे परिचु बिज्जमाणे रम्मेसु मणिकोट्टिमतलेसु परगमाणे गिरिकंदर-मल्लीणे विव चंपगवरपायवे णिव्वाघायसि सुहसुहेण परिवड्ढिस्सइ।

२८१—उसके बाद वह दृढप्रतिज्ञ शिशु १ क्षीरधात्री—दूध पिलानेवाली धाय, २ मडनधात्री—वस्त्राभूषण पहनाने वाली धाय, ३ मज्जनधात्री—स्नान कराने वाली धाय, ४ अकधात्री—गोद मे लेने वाली धाय और ५ क्रीडापनधात्री—खेल खिलाने वाली धाय—इन पाच धायमाताओ की देखरेख मे तथा इनके अतिरिक्त इगित (मुख आदि की चेष्टा), चिंतित (मानसिक विचार), प्रार्थित (अभिलषित) को जानने वाली, अपने-अपने देश के वेप को पहनने वाली, निपुण, कुशल-प्रवीण एव प्रशिक्षित ऐसी कुब्जा (कुबडी), चिलातिका (चिलात-किरात नामक देश मे उत्पन्न), वामनी (चीनी), वडभी (बडे पेट वाली), बर्बरी (बर्बर देश की), बकुश देश की, योनक देश की, पल्हविका (पल्हव देश की), ईसिनिका, वारुणिका (वरुण देश की), लासिका (तिब्बत देश की), लाकुसिका (लकुस देश की), द्रावडी (द्रविड देश की), सिंहली (सिंहल देश, लका की), पुलिंदी (पुलिंद देश की), आरबी (अरब देश की), पक्कणी (पक्कण देश की), बहली (बहल देश की), मुरण्डी (मुरंड देश की), शबरी (शबर देश की), पारसी (पारस देश की) आदि अनेक देश-विदेशो की तरुण दासियो एव वर्षधरो (प्रयोग द्वारा नपु सक बनाये हुए पुरुषो), कचुकियो और महत्तरको (अन्तपुर के कार्य की चिन्ता रखने वालो) के समुदाय से परिवेष्टित होता हुआ, हाथो ही हाथो मे लिया जाता, दुलराया जाता, एक गोद से दूसरी गोद मे लिया जाता, गा-गाकर बहलाया जाता, क्रीडा आदि के द्वारा लालन-पालन किया जाता, लाड किया जाता, लोरिया सुनाया जाता, चुम्बन किया जाता और रमणीय मणिजटित प्रागण मे चलाया जाता हुआ व्याघात रहित गिरि-गुफा मे स्थित श्रेष्ठ चपक वृक्ष के समान सुखपूर्वक दिनोदिन परिवर्धित होगा—बढेगा।

दृढ़प्रतिज्ञ का कलाशिक्षण—

२८२—तए ण त दढपतिण्णं दारगं अम्मापियरो सातिरेगअट्ठवासजायगं जाणित्ता सोभणसि तिहिकरणणक्खत्तमुहुत्तंसि ण्हाय कयबलिकम्म कयकोउयमगलपायच्छित्त सव्वालकारविभूसिय करेत्ता महया इड्ढीसक्कारसमुदएणं कलायरियस्स उवर्णेहिति।

तए ण से कलायरिए तं दढपतिण्णं दारगं लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणरुयपज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ सुत्तओ अत्थओ य गथओ य करणओ य सेहावेहि य पसिक्खावेहि य ।

त जहा—लेह गणिय रूवं नट्ट गीयं वाइयं सरगय पुक्खरगयं समताल जूयं जणवयं पासग अट्ठावय पारेकव्वं दगमट्टिय अन्नविहि पाणविहि वत्थविहि विलेवणविहि सयणविहि अज्जं पहेलियं मागहियं णिद्दाइयं गाह गीइय सिलोग हिरण्णजुत्ति सुवण्णजुत्ति आभरणविहि तरुणीपडिकम्मं इत्थिलक्खण पुरिसलक्खण हयलक्खण गयलक्खण कुक्कुडलक्खणं छत्तलक्खणं चक्कलक्खण दडलक्खणं असिलक्खण मणिलक्खण कागणिलक्खण वत्थुविज्जं णगरमाण खधवारं माणवार पडिचार वूहं चक्कवूहं गरुलवूहं सगडवहं जुद्ध नियुद्धं जुद्धजुद्धं अट्ठिजुद्धं मुट्ठिजुद्धं वाहुजुद्धं लयाजुद्धं ईसत्थं छरुप्पवायं धणुवेय हिरण्णपाग सुवण्णपाग मणिपाग धाउपाग सुत्तखेड्डं वट्टखेड्डं णालियाखेड्ड पत्तच्छेज्जं कडगच्छेज्जं सज्जीवनिज्जीव सउणरुयं-इति ।

२८२—तत्पश्चात् दृढप्रतिज्ञ वालक को कुछ अधिक आठ वर्ष का होने पर कलाशिक्षण के लिये माता-पिता शुभ तिथि, करण, नक्षत्र और मुहूर्त मे स्नान, वलिकर्म, कौतुक-मगल-प्रायश्चित्त कराके और अलकारो से विभूषित कर ऋद्धि-वैभव, सत्कार, समारोहपूर्वक कलाचार्य के पास ले जायेगे ।

तब कलाचार्य उस दृढप्रतिज्ञ वालक को गणित जिनमे प्रधान है ऐसी लेख (लिपि) आदि शकुनिरुत (पक्षियो के शब्द—बोली) तक की वहत्तर कलाओ को सूत्र से, अर्थ से (विस्तार से व्याख्या करके), ग्रन्थ से तथा प्रयोग से सिद्ध करायेंगे, अभ्यास करायेंगे । वे कलायें इस प्रकार हैं—

१ लेखन, २ गणित, ३ रूप सजाने की कला, ४ नाट्य (अभिनय) अथवा नृत्य करने की कला, ५ सगीत, ६ वाद्य बजाना, ७ स्वर जानना, ८ वाद्य सुधारना अथवा ढोल आदि वजाने की कला, ९ सगीत मे गीत और वाद्यो के सुर-ताल की समानता को जानना, १० द्यूत—जुआ खेलना, ११ लोगो के साथ वार्तालाप और वाद-विवाद करना, १२ पासो से खेलना, १३ चौपड़ खेलना, १४ तत्काल काव्य-कविता की रचना करना, १५ जल और मिट्टी को मिलाकर वस्तु निर्माण करना, अथवा जल और मिट्टी के गुणो की परीक्षा करना, १६ अन्न उत्पन्न करने अथवा भोजन बनाने की कला, १७ नया पानी उत्पन्न करना अथवा औषधि आदि के सयोग-सस्कार से पानी को शुद्ध करना, स्वादिष्ट पेय पदार्थो का बनाना, १८ नवीन वस्त्र बनाना, वस्त्रो को रगना, सीना और पहनना, १९ विलेपनविधि—शरीर पर लेप करने की विधि, २०. शय्या बनाना और शयन करने की विधि जानना, २१ मात्रिक छन्दो को बनाना और पहचानना, २२. पहेलिया बनाना और बुझाना, २३ मागधिक—मागधी भाषा मे गाथा-छन्द आदि बनाना, २४. निद्रायिका—नीद मे सुलाने की कला, २५ प्राकृत भाषा मे गाथा आदि बनाना, २६. गीति-छद बनाना, २७ श्लोक (अनुष्टुप छद) बनाना, २८ हिरण्ययुक्ति—चादी बनाना और चादी शुद्ध करना, २९ स्वर्णयुक्ति—स्वर्ण बनाना और स्वर्ण शुद्ध करना, ३० आभूषण-अलकार बनाना, ३१ तरुणीप्रतिकर्म-स्त्रियो का श्रृगार-प्रसाधन करना, ३२ स्त्रियो के शुभाशुभ लक्षणो को जानना, ३३ पुरुष के लक्षण जानना, ३४ अश्व के लक्षण जानना, ३५. हाथी के लक्षण जानना, ३६ मुर्गों के लक्षण जानना, ३७ छत्र-लक्षण जानना, ३८ चक्र-लक्षण जानना, ३९ दड-लक्षण जानना, ४०, असि-(तलवार) लक्षण जानना, ४१ मणि-लक्षण जानना, ४२. काकणी-(रत्न-विशेष) लक्षण जानना, ४३. वास्तुविद्या—गृह,

गृहभूमि के गुण-दोषो को जानना, ४४ नया नगर बसाने आदि की कला, ४५. स्कन्धावार—सेना के पडाव की रचना करने की कला, ४६ मापने-नापने-तोलने के साधनो को जानना, ४७ प्रतिचार—शत्रु सेना के सामने अपनी सेना को चलाना, ४८ व्यूह—युद्ध मे शत्रु सेना के समक्ष अपनी सेना का मोर्चा बनाना, ४९ चक्रव्यूह—चक्र के आकार की मोर्चाबन्दी करना, ५०. गरुडव्यूह—गरुड के आकार की व्यूहरचना करना, ५१ शकटव्यूह रचना, ५२. सामान्य युद्ध करना, ५३ नियुद्ध—मल्लयुद्ध करने की कला, कुश्ती लडना, ५४ युद्ध-युद्ध—शत्रु सेना की स्थिति को जानकर युद्धविधि को बदलने की कला अथवा घमासान युद्ध करना, ५५ अट्ठि (यष्ठि—लाठी या अस्थि—हड्डी) से युद्ध करना, ५६ मुष्ठियुद्ध करना, ५७ बाहुयुद्ध करना, ५८ लतायुद्ध करना, ५९ इष्वस्त्र—शस्त्र-बाण बनाने की कला अथवा नागबाण आदि विशिष्ट बाणो के प्रक्षेपण की विधि, ६० तलवार चलाने की कला, ६१ धनुर्वेद—धनुष-बाण सबन्धी कौशल, ६२ चादी का पाक बनाना, ६३ सोने का पाक बनाना, ६४. मणियो के निर्माण की कला अथवा मणियो की भस्म आदि औषधि बनाना, ६५ धातुपाक—औषधि के लिये स्वर्ण आदि धातुओ की भस्म बनाना, ६६ सूत्रखेल—रस्सी पर खेल-तमाशे, क्रीडा करने की कला, ६७ वृत्तखेल—क्रीडाविशेष, ६८ नालिकाखेल—द्यूत—जुआविशेष, ६९. पत्र को छेदने की कला, ७० पार्वतीय भूमि छेदने की कला, ७१ मूर्छित को होश मे लाने और अमूर्च्छित को मृततुल्य करने की कला, ७२ काक, घूक आदि पक्षियो की बोली और उससे अच्छे-बुरे शकुन का ज्ञान करना।

कलाचार्य का सम्मान—

२८३—तए णं से कलायरिए तं दढपइण्णं दारग लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणरुय-पज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य गंथओ य करणओ य सिक्खावेत्ता सेहावेत्ता अम्मापिऊण उवणेहिति।

तए णं तस्स दढपइण्णस्स दारगस्स अम्मापियरो तं कलायरियं विउलेणं असणपाणखाइम-साइमेण वत्थगंधमल्लालकारेण सक्कारिस्सति सम्माणिस्सति विउल जीवियारिहं पीतिदाण दलइस्संति विउल जीवियारिहं पीतिदाण दलइत्ता पडिविसज्जेहिंति।

२८३—तत्पश्चात् कलाचार्य उस दृढप्रतिज्ञ बालक को गणित प्रधान, लेखन (लिपि) से लेकर शकुनिरुत पर्यन्त बहत्तर कलाओ को सूत्र (मूल पाठ) से, अर्थ (व्याख्या) से, ग्रन्थ एव प्रयोग से सिखला कर, सिद्ध कराकर माता-पिता के पास ले जायेंगे।

तब उस दृढप्रतिज्ञ बालक के माता-पिता विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य रूप चतुर्विध आहार, वस्त्र, गन्ध, माला और अलकारो से कलाचार्य का सत्कार, सम्मान करेंगे और फिर जीविका के योग्य विपुल प्रीतिदान (भेट) देगे। जीविका के योग्य विपुल प्रीतिदान देकर विदा करेंगे।

दृढप्रतिज्ञ की भोगसमर्थता—

२८४—तए ण से दढपतिण्णे दारए उम्मुक्कबालभावे विण्णायपरिणयमित्ते जोव्वणगमणुपत्ते बावत्तरिकलापंडिए णवंगसुत्तपडिबोहए अट्ठारसविहदेसिप्पगारभासाविसारए गीयरई गधव्वणट्ट-कुसले सिगारागारचारुवेसे संगयगयहसियभणियचिट्ठियविलासनिउणजुत्तोवयारकुसले हयजोही गय-जोही रहजोही बाहुजोही बाहुप्पमद्दी अलंभोगसमत्थे साहस्सीए वियालचारी यावि भविस्सइ।

२८४—इसके बाद वह दृढप्रतिज्ञ बालक बालभाव से मुक्त हो परिपक्व विज्ञानयुक्त, युवावस्थासपन्न हो जायेगा। बहत्तर कलाओ मे पडित होगा, बाल्यावस्था के कारण मनुष्य के जो नौ अग—दो कान, दो नेत्र, दो नासिका, जिह्वा, त्वचा और मन सुप्त-से अर्थात् अव्यक्त चेतना वाले रहते हैं, वे जागृत हो जायेंगे। अठारह प्रकार की देशी भाषाओ मे कुशल हो जायेगा, वह गीत का अनुरागी, गीत और नृत्य मे कुशल हो जायेगा। अपने सुन्दर वेष से शृ गार का आगार-जैसा प्रतीत होगा। उसकी चाल, हास्य, भाषण, शारीरिक और नेत्रो की चेष्टाये आदि सभी सगत होगी। पारस्परिक आलाप-सलाप एव व्यवहार मे निपुण-कुशल होगा। अश्वयुद्ध, गजयुद्ध, रथयुद्ध, बाहुयुद्ध करने एव अपनी भुजाओ से विपक्षी का मर्दन करने मे सक्षम एव भोग भोगने की सामर्थ्य से सपन्न हो जायेगा तथा साहसी ऐसा हो जायेगा कि विकालचारी (मध्यरात्रि मे इधर-उधर जाने-आने मे भी) भयभीत नही होगा।

विवेचन—प्रस्तुत सूत्रगत 'बावत्तरिकलापडिए' और 'अट्ठारसविहदेसिप्पगारभासाविसारए' इन दो पदो का विचार करते है।

कला का अर्थ है—कार्य को भलीभाति करने का कौशल। व्यक्ति के उन सस्कारो को सबल बनाना जो स्वय उसके एव सामाजिक जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक हैं। यदि व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण न हो, चारित्र का विकास न हो और सस्कृति की सुरक्षा के लिये सामाजिक तथा धार्मिक कर्त्तव्यो एव दायित्वो का सम्यक् प्रकार से पालन नही किया जाये तो मानव का कुछ भी महत्त्व नही है। मानव और दानव, पशु मे कुछ भी अन्तर नही रहेगा। यही कारण है कि प्रत्येक युग मे मानव को सुसस्कारी बनाने, शारीरिक, मानसिक दृष्टि से विकसित करने और आजीविका के प्रामाणिक साधनो की योग्यता अर्जित करने के लिये कलाओ के शिक्षण पर विशेष ध्यान दिया जाता रहा है।

यद्यपि कलाओ के विषय मे प्रत्येक देश के साहित्य मे विचार किया गया है, तथापि हम अपने देश की ही मुख्य धर्मपरपराओ के साहित्य को देखें तो सर्वत्र विस्तार के साथ कलाओ का विवरण उपलब्ध है। वैदिक परपरा के रामायण, महाभारत, शुक्रनीति, वाक्यपदीय आदि ग्रन्थो मे, बौद्ध-परपरा के ललितविस्तरा मे और जैन परपरा के समवायागसूत्र, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, ज्ञातासूत्र, औपपातिकसूत्र, कल्पसूत्र और इनकी व्याख्याओ मे वर्णन किया गया है। किन्तु सख्या और नामो मे अन्तर है। कही कलाओ की सख्या चौसठ बताई है तो क्षेमेन्द्र के कलाविलास ग्रन्थ मे सौ से अधिक कलाओ का वर्णन किया है। बौद्धसाहित्य मे इनकी सख्या छियासी कही है। जैनसाहित्य मे पुरुष योग्य बहत्तर और महिलाओ के लिये चौसठ कलाओ का उल्लेख है। लेकिन जैनसाहित्यगत पुरुष-योग्य कलायें बहत्तर मानने की परपरा सर्वमान्य है। जिसकी पुष्टि जनसाधारण मे प्रचलित इस दोहे से हो जाती है—

कला बहत्तर पुरुष की, तामे दो सरदार।
एक जीव की जीविका, एक जीव उद्धार॥

जीवन धारण करने के लिये मानव को जैसे रोटी, कपडा और मकान जरूरी है, उसी प्रकार जीवन की सुरक्षा के लिये शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शुद्धि और आजीविका के साधनो की व्यवस्था, ये तीन भी आवश्यक हैं। अतएव पूर्व सूत्र मे उल्लिखित बहत्तर कलाओ के नामो मे ध्यान

देने योग्य यह है कि उनके चयन मे दीर्घदृष्टि से काम लिया गया है। उनमे जीवन की सुरक्षा के तीनो अगो के साधनो का समावेश करने के साथ लोकव्यवहारो के निर्वाह करने की क्षमता और प्राकृतिक पदार्थों को अपने लिये उपयोगी बनाने और उनका समीचीन उपयोग करने की योग्यता अर्जित करने का लक्ष्य रखा गया है।

कलाओ के शिक्षण की प्राचीन पद्धति पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय शिक्षणपद्धति का स्तर क्या था ? मात्र पुस्तकीय ज्ञान करा देना अथवा ग्रथ रटा देना और वाणी द्वारा व्याख्या कर देना ही पर्याप्त नही माना जाता था, किन्तु प्रयोग द्वारा वैसा कार्य भी कराया जाता था। यदि उन कलाओ और शिक्षणपद्धति को सन्मुख रखकर आज की शिक्षा-नीति निर्धारित की जाये तो उपयोगी रहेगा।

विद्वत्ता के लिये जैसे आज अनेक देशो की बोलियो और भाषाओ को जानना आवश्यक है, उसी तरह प्राचीन काल मे भी कलाओ के अध्ययन के साथ प्रत्येक व्यक्ति और विशेषकर समृद्ध परिवारो मे जन्मे व्यक्तियो और देश-विदेश मे व्यापार के निमित्त जाने वालो के लिये अनेक भाषाओ का ज्ञाता होना अनिवार्य था। जो दृढप्रतिज्ञ के उत्पन्न होने के कुलो के लिये दिये विशेषणो से स्पष्ट है।

यद्यपि यहाँ की तरह अन्य आगम-पाठो मे भी 'अट्ठारसविहदेसिप्पगारभासाविसारए' पद आया है। वह वर्ण्य व्यक्ति की विशेषता बताने के लिये प्रयुक्त हुआ है। किन्तु वे अठारह भाषायें कौनसी थी, इसका उल्लेख मूल पाठो मे कही भी देखने मे नही आया है। हाँ समवायाग, प्रज्ञापना, विशेपावश्यकभाष्य और कल्पसूत्र की टीकाओ मे अठारह लिपियो के नाम मिलते है। परन्तु इन नामो मे भी भिन्नता है। इस स्थिति मे यही माना जा सकता है कि उस समय बहुमान्य प्रचलित बोलियो को एक-एक भाषा माना जाता हो और उनको बोलने-समझने मे निष्णात होने का बोध कराने के लिये ही 'अठारह भाषाविशारद' पद ग्रहण किया गया हो।

२८५—तए णं तं दढपइण्ण दारग अम्मापियरो उम्मुक्कबालभाव जाव वियालचारिं च वियाणित्ता विउलेहिं अन्नभोगेहि य पाणभोगेहि य लेणभोगेहि य वत्थभोगेहि य सयणभोगेहि य उवनिमतिहिति।

२८५—तब उस दृढप्रतिज्ञ बालक को बाल्यावस्था से मुक्त यावत् विकालचारी जानकर माता-पिता विपुल अन्नभोगो, पानभोगो, प्रासादभोगो, वस्त्रभोगो और शय्याभोगो के योग्य भोगो को भोगने के लिये आमन्त्रित करेगे। अर्थात् माता-पिता उसे भोगसमर्थ जानकर कहेगे कि हे चिरजीव ! तुम युवा हो गये हो अत अब कामभोगो की इस विपुल सामग्री का भोग करो।

दृढप्रतिज्ञ की अनासक्ति

२८६—तए णं दढपइण्णे दारए तेहिं विउलेहिं अन्नभोएहिं जाव सयणभोगेहिं णो सज्जिहिति, णो गिज्झिहिति, णो मुच्छिहिति, णो अज्झोववज्जिहिति, से जहा णामए पउमुप्पले ति वा पउमे इ वा जाव सयसहस्सपत्तेति वा पंके जाते जले संवुड्ढे णोवलिप्पइ पंकरएण णोवलिप्पइ जलरएणं, एवामेव दढपइण्णे वि दारए कामेहिं जाते भोगेहिं सवड्ढिए णोवलिप्पिहिति० मित्तणाइणियगसयण संबधिपरिजणेणं।

से ण तथारूवाणं थेराणं अंतिए केवल बोहिं बुज्झिहिति, केवलं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सति, से णं अणगारे भविस्सइ ईरियासमिए जाव सुहुयहुयासणो इव तेयसा जलते।

तस्स णं भगवतो अणुत्तरेण णाणेणं एवं दसणेण चरित्तेणं आलएण विहारेण अज्जवेण मद्दवेणं लाघवेणं खन्तीए गुत्तीए मुत्तीए अणुत्तरेण सव्वसंजमसुचरियतवफलणिव्वाणमग्गेण अप्पाण भावेमाणस्स अणते अणुत्तरे कसिणे पडिपुण्णे निरावरणे णिव्वाघाए केवलवरनाणदसणे समुप्पज्जिहिति।

तए णं से भगवं अरहा जिणे केवली भविस्सइ सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स परियाय जाणहिति त०—आगति गति ठिति चवणं उववाय तक्कं कडं मणोमाणसियं खइय भुत्तं पडिसेवियं आवीकम्मं रहोकम्मं अरहा अरहस्सभागी तं तं मणवयकायजोगे वट्टमाणाण सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावे जाणमाणे पासमाणे विहरिस्सइ।

तए णं दढपइन्ने केवली एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणे बहूइं वासाइं केवलिपरियागं पाउणित्ता अप्पणो आउसेस आभोएत्ता बहूइं भत्ताइं पच्चक्खाइस्सइ, बहूइं भत्ताइं अणसणाए छेइस्सइ, जस्सट्ठाए कीरइ णग्गभावे केसलोचबम्भचेरवासे अण्हाणग अदतवण अणुवहाणग भूमिसेज्जाओ फलहसेज्जाओ परघरपवेसो लद्धावलद्धाइं माणावमाणाइ परेसिं हीलणाओ निंदणाओ खिंसणाओ तज्जणाओ ताडणाओ गरहणाओ उच्चावया विरूवरूवा बावीसं परीसहोवसग्गा गामकंटगा अहियासिज्जंति तमट्ठ आराहेइ, चरिमेहिं उस्सासनिस्सासेहिं सिज्झिहिति मुच्चिहिति परिनिव्वाहिति सव्वदुक्खाणमंत करेहिति।

२८६—तब वह दृढप्रतिज्ञ दारक उन विपुल अन्न रूप भोग्य पदार्थों यावत् शयन रूप भोग्य पदार्थों मे आसक्त नही होगा, गृद्ध नही होगा, मूर्च्छित नही होगा और अनुरक्त नही होगा। जैसे कि नीलकमल, पद्मकमल (सूर्यविकासी कमल) यावत् शतपत्र या सहस्रपत्र कमल कीचड मे उत्पन्न होते हैं और जल मे वृद्धिगत होते है, फिर भी पकरज और जल रज से लिप्त नही होते है, इसी प्रकार वह दृढप्रतिज्ञ दारक भी कामो मे उत्पन्न हुआ, भोगो के बीच लालन-पालन किये जाने पर भी उन कामभोगो मे एव मित्रो, ज्ञातिजनो, निजी-स्वजन-सम्बन्धियो और परिजनो मे अनुरक्त नही होगा।

किन्तु वह तथारूप स्थविरो से केवलबोधि—सम्यग्ज्ञान अथवा सम्यक्त्व का लाभ प्राप्त करेगा एव मु डित होकर, गृहत्याग कर अनगार-प्रव्रज्या अगीकार करेगा। अनगार होकर ईर्यासमिति आदि अनगार धर्म का पालन करते हुए सुहुत (अच्छी तरह से होम की गई) हुताशन (अग्नि) की तरह अपने तपस्तेज से चमकेगा, दीप्तमान होगा।

इसके साथ ही अनुत्तर (सर्वोत्तम) ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अप्रतिबद्ध विहार, आर्जव, मार्दव, लाघव, क्षमा, गुप्ति, मुक्ति (निर्लोभता) सर्व सयम एव निर्वाण की प्राप्ति जिसका फल है ऐसे तपोमार्ग से आत्मा को भावित करते हुए उस भगवान् (दृढप्रतिज्ञ) को अनन्त, अनुत्तर, सकल, परिपूर्ण, निरावरण, निर्व्याघात, अप्रतिहत, सर्वोत्कृष्ट केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त होगा।

तब वे दृढप्रतिज्ञ भगवान् अर्हंत, जिन, केवली हो जायेंगे। जिसमे देव, मनुष्य तथा असुर आदि रहते हैं ऐसे लोक की समस्त पर्यायो को वे जानेंगे। अर्थात् वे प्राणिमात्र की आगति—एक गति से दूसरी गति मे आगमन को, गति—वर्तमान गति को छोड़कर अन्यगति मे गमन को, स्थिति, च्यवन, उपपात (देव या नारक जीवो की उत्पत्ति—जन्म), तर्क (विचार), क्रिया, मनोभावो, क्षयप्राप्त

(भोगे जा चुके), प्रतिसेवित (भोग-परिभोग की वस्तुओ), आविष्कर्म (प्रकट कार्यों), रह कर्म (एकान्त मे किये गुप्त कार्यों) आदि, प्रगट और गुप्त रूप से होने वाले उस—उस मन, वचन और काययोग मे विद्यमान लोकवर्ती सभी जीवो के सर्वभावो को जानते-देखते हुए विचरण करेगे।

तत्पश्चात् वे दृढप्रतिज्ञ केवली इस प्रकार के विहार से विचरण करते हुए और अनेक वर्षों तक केवलिपर्याय का पालन कर, आयु के अत को जानकर अपने अनेक भक्तो-भोजनो का प्रत्याख्यान व त्याग करेंगे और अनशन द्वारा बहुत से भोजनो का छेदन करेंगे और जिस साध्य की सिद्धि के लिये नग्नभाव, केशलोच, ब्रह्मचर्यधारण, स्नान का त्याग, दतधावन का त्याग, पादुकाओ का त्याग, भूमि पर शयन करना, काष्ठासन पर सोना, भिक्षार्थ परगृहप्रवेश, लाभ-अलाभ मे सम रहना, मान-अपमान सहना, दूसरो के द्वारा की जाने वाली हीलना (तिरस्कार), निन्दा, खिसना (अवर्णवाद), तर्जना (धमकी), ताडना, गर्हा (घृणा) एव अनुकूल-प्रतिकूल अनेक प्रकार के बाईस परीषह, उपसर्ग तथा लोकापवाद (गाली-गलौच) सहन किये जाते है, उस साध्य—मोक्ष की साधना करके चरम श्वासोच्छ्वास मे सिद्ध हो जायेगे, मुक्त हो जायेगे, सकल कर्ममल का क्षय और समस्त दु खो का अत करेगे।

उपसंहार

२८७—सेव भते ! सेव भते ! त्ति भगव गोयमे समणं भगव महावीर वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमसित्ता सजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरति।

२८७—इस प्रकार से सूर्याभदेव के अतीत, अनागत और वर्तमान जीवन-प्रसगो को सुनने के पश्चात् गौतम स्वामी ने कहा—

भगवन् ! वह ऐसा ही है जैसा आपने प्रतिपादन किया है, हे भगवन् ! वह इसी प्रकार है, जैसा आप फरमाते हैं, इस प्रकार कहकर भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वदन-नमस्कार किया। वदन-नमस्कार करके सयम एव तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

२८८—णमो जिणाण जियभयाण। णमो सुयदेवयाए भगवतीए। णमो पण्णत्तीए भगवईए। णमो भगवओ अरहओ पासस्स। पस्से सुपस्से पस्सवणा णमो। ग्रन्थाग्रम्—२१२०।

।। रायपसेणइयं समत्त ।।

भयो के विजेता भगवान् को नमस्कार हो। भगवती श्रुत देवता को नमस्कार हो। प्रज्ञप्ति भगवती को नमस्कार हो। अर्हत् भगवान् पार्श्वनाथ को नमस्कार हो। प्रदेशी राजा के प्रश्नो के प्रदर्शक को नमस्कार हो।

।। राजप्रश्नीयसूत्र समाप्त ।।

नृत्य-संगीत-नाट्य-वाद्य से सम्बन्धित शब्दसूची

अइमुत्तयलयापविभत्ती	५६
अच्छिज्जती	५१
अट्ठगुण	७७
अत्थमणत्थमण	५४
अप्फालिज्जमाण	५१
अभिणय	५८, ११२
अभिसेयचरिय	५७
असोगलयापविभत्ती	५६
असोयपल्लवपविभत्ती	५६
अचिअ	५७, ५८, १११
अचियरिभिअ	५६
अतो मज्झावसाणिय	५८
अवपल्लवप०	५६
आउज्जविहाण	४८, ५०
आगमणागमण	५४
आताडिज्जत	५१
आमोडिज्जत	५१
आमोत	५१
आरभड	५७, ५८, १११
आरभडभसोल	५७, १११
आलवत	५१
आलिग	५१
आवड	५३
आवरणावरण	५४
आहम्मत	५१
ईहामिअ	५३
उक्खित्त	५८, ७७
उक्खित्ताय	१११
उग्गमणुग्गमण	५४
उत्तालिज्जत	५१
उद्धुमत	५१
उप्पयनिवयपवत्त	५७
उप्पायनिवायपवत्त	१११
उप्पिजलभूत	५१
उसभ	५३
उसभमडल	५५
एक्कारसालकार	७७
एगओचक्कवाल	५३
एगतोवंक	५३
एगावली	५४
एगुणपण्णआउज्जविहाण	४८
ककारपविभत्ति	५५
कच्छभी	५१
कणगावली	५४
कडव	५१
कत्थ	७७
करडा	५१
करणसुद्ध	५१
कलस	५२
कलसिया	५१
कहकहभूअ	५२
कामभोगचरिय	५७
किणिअ	५१
किन्नर	५३
कुट्टिज्जत	५१
कुतुंव	५१

कोसबपल्लव ५६
कसताल ५१
कु जर ५३
कु तु ब ५१
कु दलयापविभत्ति ५६
खकारपविभत्ति ५५
खरमुही ४८, ५१
खरमुहीवाय ४८
गकारपविभत्ति ५५
गज्ज ७७
गयविलसिअ ५५
गयविलविअ ५५
गह ५१
गीअ ५२
गेय ५१, ७७
गेय ५८, १११
गोमुही ५१
गधव्वणट्टकुसल
गंधव्वमडल ५४
गु जाऽवककुहरोवगूढ ५१
घकारपविभत्ति ५५
घट्टिज्जत ५१
घण ५८, १११
ङकारपविभत्ति ५५
चकारवग्ग ५५
चक्कद्धचक्कवाल ५३
चमर ५३
चरिमचरिअ ५७
चवणचरिअ ५७
चूयलयाप० ५६
चदणसार ७७
चदमंडल ५४
चदागमण ५४
चदावलिपविभत्ति ५४
चदावरण ५४
चदुग्गमण

चदत्थमण ५४
चपगलयाप० ५६
चपापविभत्ति ५५
चित्तवीणा ५१
छद्दोस ७७
छब्भाभरी ५१
छिप्पन्ती ५१
जक्खमडल ५४
जम्मणचरिय ५७
जार ५३
जारपविभत्ति ५५
जोव्वणचरिय ५७
जवूपल्लव ५६
झल्लरी ५१
झुसिर ५८
झंझा ५१
टकारवग्ग ५५
डिंडिम ५१
णट्टविह ५७
णट्टविहि ५८
णट्टसाला
तकारवग्ग ५५
तत ५८, १११
तल ५१
तवचरणचरिअ ५७
ताडिज्जंत ५१
तार ५१
तारावलि ५४
ताल ५१
तालिज्जत ५१
तिट्ठाणकरणसुद्ध ५१, ७७
तिठाण ५१
तित्थपवत्तणचरिअ ५७
तिसमयरेयगरइय ५१
तुरग ५३
तूण ५१

तती ५१
तु बवीणा ५१
थिमियामेव उन्नमति ५०
थिमियामेव ओनमति ५०
दद्दरग ५१
दद्दरिका ५१
दप्पण ५२
दिट्ठ तिअ ५८, ११२
दुत(य)विलबित ५५, १११
दुय ११२
दुयणाम ५७
दुहओचक्कवाल ५३
दु दुभी-दु दुही ५१
नउल ५१
नट्ट ५२
नट्टविधि ५२
नट्टविहि १११
नट्टसज्ज ४७
नट्टसज्जा ४८
नर ५३
नागमडल ५४
नागरपविभत्ति ५५
नागलयाप० ५६
नाडय ५६
नाणुप्पायचरिअ ५७
निक्खमणचरिअ ५७
नदापविभत्ति ५५
नदिघोसा ५१
नदियावत्त ५२
नदीमुइग ५१
पउमपत्त ५३
पउमलया ५३
पउमलयापविभत्ति ५६
पकारवग्ग ५५
पगाइसु ५०
पच्चावड ५३
पज्ज ७७
पडह ५१
पणच्चिसु ५०
पणव ५१
पयबद्ध ७७
पयसचार ५१
परिनिव्वाणचरिअ ५७
परिल्ली ५१
परिवायणी ५१
पल्लवपविभत्ति ५६
पवाएसु ५०
पविभत्ति ५४
पसारिअ ५७
पसेढी ५३
पाडतिअ ११२
पाडितिअ ५८
पायवद्ध ७७
पायत्ताण ११९
पायत ५८, ७७
पिरिपिरिया ५१
पिरीपिरीया ४८
पिरीपिरीयावायग ४८
पुव्वभवचरिअ ५७
पूस ५३
पेया ४८, ५१
पेयावायग ४८
फुट्टिज्जती ५१
फुल्लावलि ५३
फूमिज्जत ५१
बत्तीसइवद्धनट्टविहि ४५, ५०
बत्तीसइवद्धनाडय ५९, ११०, १९५
वद्धग ५१
बद्धीस ५१
वालभावचरिअ ५७
भद्दासण ५२

भसोल	५७, ५८, १११	रक्खस	५४
भामरी	५१	रत्त	७७
भूतमडल	५४	रयणावली	५४
भेरी	५१	रयारइअ	५७
भत	५७	रिभिअ	५१, ५७, ५८
भतसभतणाम	११२	रियारिय	११२
भभा	५१	रुरु	५३
मगर	५३	रेयग	५१
मगरिया	५१	रोइतावसाण	५८
मगरड	५३	रोइयावसाण	५८, ७७
मच्छ	५२	रिंगिरिसया	५१
मच्छड	५३	लत्तिया	५१
मच्छडापविभत्ति	५५	लय	५१
मड्डया	५१	लया	५६
मत्तगजविलसिअ	५५	लोगअतोमज्भावसाणिअ	११२
मत्तगयविलंबिअ	५५	वणलया	५३
मत्तहयविलसिअ	५५	वणलयाप०	५६
मत्तहयविलबिअ	५५	वद्धमाणग	५२, ५३
मद्दल	५१	वलियावलिपविभत्ति	५४
मयरडापविभत्ति	५५	वल्लकी	५१
महुर	५१	वसतलया	५३
महोरग	५४	वाइअ	५२
महती	५१	वाइज्जंत	५१
माणवय	५३	वाइत्त	५८, १११
मार	५३	वातिअ	५२
मारपविभत्ति	५५	वालग	५३
मिउरिभिय	५१	वाली	५१
मुइग	५१	वासतियलयाप०	५६
मुगुद	५१	विचिक्की	५१
मुच्छिज्जत	५१	वितत	५८, १११
मुत्तावली	५४	वितार	५१
मुरय	५१	विपची	५१
मगलभत्तिचित्त	५२	विलबिय	५७
मडलमडल	५४	विलबियनट्टविहि	५७, १११
मद	५१	विहग	५३
मदाय	५८, ७७, १११	वीणा	५१

वेयालियवीणा ७७
वेलु ५१
वस ५१
सत्तसर ७७
सम ५१
समामेव अवणमंति ५०
समामेव उन्नमति ५०
समामेव पसरति ५०
समामेव समोसरण ५०
सरभ ५३
सललिअ ५१
सहितामेव उन्नमति ५०
सहितामेव ओनमति ५०
सागरतरग ५३
सागरपविभत्ति ५५
सामन्नोविणिवाइय ५८
सामलयापविभत्ति ५६
सामंतोवणिवाइअ ११२
सारिज्जत ५१
सिरिवच्छ ५२
सीहमडल ५५
सुघोसा ५१
सुणइ ५१
सुरइ ५१
सूरत्थमण ५४
सूरमडल ५४
सूरागमण ५४
सूरावरण ५४
सूरावलिपविभत्ति ५४
सूरुग्गमण ५४
सेढी ५३
सोत्थिय ५२, ५३
सोवत्थिय ५२
सकुंचिय ५७
सकुंचियपसारिय ११२
सख ४८, ५१
सखवाय ४८
सखियवाय ४८
सखिया ४८, ५१
सगयामेव उन्नमति ५०
सगयामेव ओनमति ५०
समत ५७
सहरणचरिअ ५७
सिंग ४८, ५१
सिंगवाय ४८
सिंगार ५२
सु सुमारिया ५१
हयविलसिय ५५
हयविलबिय ५५
हुडुक्की ५१
होरभ ५१
हसावलिपविभत्ति ५४

विशिष्ट शब्दों की अनुक्रमणिका

अइमुत्तयलया	७०	अट्ठारसविहदेसिप्पगारभासाविसारअ	—
अयकु भी	१७५	अट्ठिजुद्ध	२०८
अक्खय	१४, ११८	अणगारसय	१३६
अक्खर	१०३	अणिय	११
अक्खाडग	३३, ४७, ६२, ११९, १२०,	अणियाहिवई	११, ३८, १२६
अगड	३	अणुवहाणय	—
अगडमह	१३९	अणेग	१७५
अगणिपरिणय	१७८	अणत	१४, ११८
अग्गमहिसी	११, १२६	अणजीविअ	१५६
अग्गलपासाय	६३	अण्हाणग	२१२
अग्गला	६३	अतिमुत्तयलयामडव	८१
अग्गिपओग	२०२	अत्थ	२०८
अच्चणिज्ज	९७	अत्थजुत्त	११७
अच्चणिय	१२५	अत्थत्थी	१९४
अच्छणघरग	८१	अत्थरग	३३
अच्छरगण	३२	अत्थसत्थ	१३१
अच्छरसातदुल	११७	अदतवण	२१२
अच्छायण	८६	अद्दरिट्ठ	२८
अच्छि	१००	अद्धकुलव	१९२
अच्छिपत्त	१००	अद्धपत्थय	१९२
अज्ज	२०८	अद्धहार	११५
अज्जग (य)	१६७, १९३	अद्धाढत	१९२
अज्जिय	१७१	अधम्मत्थिकाय	१९०
अज्झत्थित	१४	अधोऽवहिअ	१५९
अट्टालय	३	अन्नविहि	२०८
अट्ठतलमसियवडंसग	१९५	अपुणरावित्ति	१४, ११८
अट्ठभाइआ	१९२	अपुणसत्त	११७
अट्ठसय	१००	अपडिअ	१५८
अट्ठसयविसुद्धगथजुत्त	११७	अप्पकम्मतर	१९२
अट्ठावय	२०८	अप्पकिरियतर	१९२

अप्पासवतर १६२
अप्फोयामडवग ८१
अब्भवद्दलग २०
अब्भितरपरिसा ३५
अब्भितरियपरिसा १२६
अभिगम १०, १९८
अभिगमणिज्ज १५६
अभिसेग(य)सभा १०३, १०६, १२१
अभिसेयभड १०३
अमच्च १७५
अय १७५
अयभड १९४
अयभारग(य) १८०
अयभारिय १९५
अयल ११८
अयविक्किणण १६५
अयहारय १६४
अयागर १६४
अरमणिज्ज २०१
अरहस्सभागी २१२
अरिहत १३, ११८
अरुअ १४, ११८
अलकारियभंड १०३, ११५
अलकारियसभा १०३, ११५, ११६, १२१
अलभोगसमत्थ २०६
अवलबण २६
अवलबणबाहा २६
अवाय १६०
अवगुयदुवार १४४
अव्बावाह १४, ११८
अव्ववहारी १८९
असण १४४, १८४
असिलक्खण २०८
असुर १६०
असोग ७
असोगलया ७०
असोगवण ७५
अहिगरण १४४
अक १७
अकवाणिअ १६१
अकधाई २०७
अकुस ३४
अगपविट्ठ १६०
अगवाहिर १६०
अचिय नट्टविहि १११
अजण १७
अजणपुलग १७
अजणसमुग्ग ७१, १०१, १०७
अतर २०२, २०३
अतेउर १३१, २०१
अदोलग ८०
अबसालवण ६, १५
अंवसालवण-चेइअ ६, १३, १६, २३, ३६
आइक्खग ६
आईणग ३३
आओग ८, २०५
आगर १२७
आगासत्थिकाय १६०
आढत(य) १६२
आणपाणपज्जत्ति १०४, २०४
आभरणविहि २०८
आभरणारुहण ११७, ११९
आभिनिवोहियनाण १६०, १६१
आभियोगदेव १५
आमलकप्पा ३, ६, ८, १३, १५, १६, १७, २२, २३, ३६
आमलग (य) १६०
आमेलग ६६
आययण १२१
आयरक्ख ११, १२६
आयरिय १९७
आयस ७०, १०१, १०७
आयसघरग ८१

आरबी	२०७	उग्गह	१३, १६०
आराहए	४४	उच्चारपासवणभूमि	२०३
आलियघरग	८१	उच्छु	३
आलिंगपुक्खर	२७, ४७, ७६	उज्जाण	१२९, १४६, १५१, १५७, १५८
आवत्तणपेढिया	६३	उज्जाणपालग(य)	१४६, १५१
आवास	१३४	उज्जाणभूमि	१६७
आविकम्म	२१२	उज्जुमई	१६१
आस	१५६, १५७	उण्णयासण	८०
आसम	१२७	उत्तप्पसरीर	१५८
आसरह	१३३, १५७	उत्तरासंग	१०
आसव	१४४	उत्तरग	६३
आनवोयग	७९	उप्पत्तिया	१३१
आहार	१३१	उप्पल	८७
आहारपज्जत्ति	१०४, २०४	उप्पलहत्थए	२७
इक्खाग	१३६	उप्पायपव्वयग	८०
इक्खुवाड	१६६, २००	उप्फेस	१०
इड्डरग (य)	१६२	उयगरस	७६
इत्थिलक्खण	२०८	उरू	१००
इसिपरिसा	४१, १८७, १८७	उल्लोय	३२, ४७, ६३
इसु	१८०	उवएस	१६७
इब्भ	१३९, १७५	उवगाइज्जमाण	१३६
इब्भपुत्त	१३६	उवगारियालयण	८५
इंदकील	३, ६३	उवट्ठाणसाला	१३४
इंदकुंभ	६५	उवनच्चिज्जमाण	१३६
इंदमह	१३९	उवप्पयाण	१३१
इंदाभिसेय	१०६, १११	उवरिपुंछणी	६३
इंदियपज्जत्ति	१४०, २०४	उवलेवण	१९७
ईसत्थ	२०८	उववाइअ	७, १३६
ईसर	१३६, १७५	उववाय	२१२
ईसिणिया	२०७	उववायसभा	१०२, १२१
ईहा	१३१, १६०	उसड्ड	८०
ईहामिय	२५, ३२, ६३	उसभ	२५, ३२, ६३, ९३
उक्कोडिय	३	उसभकंठ	७१, १०१
उक्खित्त	७७, १११	उसभसंघाड	७०
उग्ग	१३६	उसभासण	८०
उग्गपुत्त	१३६	उंवरपुप्फ	१६८

ऊसियफलिह १४४
एगाहच्च १६१
एरवय १०८
एला ३०, ७१
एलासमुग्ग ७१
एलुय ६३
ओट्ठ १००
ओमत्त १८२
ओरोह ३
ओसह १४४
ओहाडणी ६३
ओहि १२, २१
ओहिणाण १६०
कज्ज १३१
कट्ठ १६, १८४
कडग १३
कडगच्छेज्ज २०८
कडिसुत्त १५५
कडुच्छुय ११७
कत्थ ७७
कन्नवेहण २०६
कब्बड १२७
कम्मया १३१
कयबलिकम्म १३४, १३९, १४१, १५३, १६९
१७२, २०६
कयलिघरग ८१
करण २०८
करभरवित्ति १२९, १४७, १६७, १६८
करयल ९, १३, १७
कलस ६, २७, ३७, ७०, १०७
कलेवरसघाडग ८६
कवाड ६३
कविसीसय(ग) ३, ६३
कवोल १००
कहग ३, ६
कागणिलक्खण २०८
कामभोग ९, १३१
कारण १३१
कालागुरु ६, १६, २१, ३२, ६६, ११७
किण्हसुत्त ६६
किन्नर २५, ३२, ७७, १९०
किन्नरकठ ७१
किन्नरसघाड ७०
किमिकु भी १७७
किरिया १४४
किलावणधाई २०७
कुक्कुड ३
कुक्कुडलक्खण २०८
कुट्ठागार २०१, २०९
कुणाल (जणवय) १३२, १३४, १४९
कप्पूरपुड ३१
कुमुअ ८७
कुलनिस्सिय १९३
कुलव १९२
कुलसपण्ण १३६
कुसुमघरग ८१
कुहडिया २९
कूड ६३
कूडागारसाला ६१, १७६, १९२, २०१
कूडाहच्च १६९
केइयअद्ध (जणवय) १२८, १३४
केउकर ८
केऊर १३
केवलकप्प १२
केवलनाण १६०
केवलिपरियाय २१२
केवली १९०
केसरिद्दह १०८
केसि कुमारसमण १३६, १३८, १४०, १४१, १४२
१४३, १४६, १४९, १५१, १५४, १५६
केसत केसभूमि १००
कोट्टिमतल ६३

कोट्ठ ३०
कोट्ठयचेइअ १३३, १३६, १३८, १४१
कोट्ठागार ८, १३१, २०२
कोडुंबिय ३, १७५
कोडुंबियपुरिस १३३, १३४, १४०, १५२
कोरव्व १३९
कोरिल्लिअ १८०
कोस ८, १३१
कंचुई २०७
कंचुइज्जपुरिस १३९
कवल १४४
कविआ १०३
कंबोअ १५६, १५७
कुंकुम ३०
किंपुरिस ७७, १९०
किंपुरिसकंठ ७१
किंपुरिससंघाड ७०
कुंजर ३, २५, ३२, ३३
कुंडधार पडिमा १०१
कुंडल ९, १३
कुंडियालच्छण १८८
कुंदलया ७०
कुंदुरुक्क ६, १६, २१, ३२, ६६, ११७
कुंथु १९१, १९२
कोंचासण ८०
खइअ २१२
खओवसमिय १६०
खग्ग ९९
खत्तिय १३९
खत्तियपरिसा १८७, १८८
खयंगाल ३५
खलवाड १९९, २००, २०१
खात ३
खीरधाई २०७
खीरोदयसमुद्द ७९, १०७
खेड १२७
खोदोयग ७९
खडरक्ख ३
खदमह १३९
खधवार २०८
खभ २६, ६३, ७०, ८७
खभपुडतर ८७
खभबाहा ८७
खभसीस ८७
खिखणीजाल ६५, ८६
गज्ज ७७
गणग १७५
गणनायग १७५
गणिय २०८
गणियप्पहाण २०८
गति २१२
गत्त ३३
गत्तग ९८
गब्भघरग ८१
गब्भाहाण २०६
गयकंठ ७१
गयलक्खण २०८
गयसंघाड ७०
गया ३, ९९
गरुलवूह २०८
गरुलालन ८०
गवक्खजाल ६५, ८६
गाम १२७
गामकटक २१२
गामसहस्स २०१
गायलट्ठी १००
गाहा २०८
गाहावइपरिसा १८७, १८८
गिरिमह १३९
गिहिधम्म १४२, १४३
गीइय २०८
गीय १२, २०८
गीयरइ ७७

गुणव्वय २०१
गुज्झ १३१
गुत्त १७६
गेय ७७
गो ३
गोकलिंजर ७०
गोकलिंज १९२
गोपुच्छ ६३
गोपुर ३
गोमाणसिया ६३, ९६
गोयम ६०, १२८
गोयमाइ(दि)य ४५, ५०, ५९
गोल १२०
गोलवट्टसमुग्गय १०६
गोसीस ३२
गोसीसचदण ११५, ११७, ११९, १२०, १२१
गगा ९८, १०८
गठिभेद ३
गठी १०३
गडमाणिया १९२
गडलेहा ९
गंडोवट्टाणय ९८
गथ २०८
गध ९, १०८, १९०
गधकासाइय ११५
गधपज्जव ८७
गधव्व ७७, १३६, १९०
गधव्वकठ १७
गधव्वघरग ८७
गधव्वसघाड ७०
गंधारुहण ११७
गधोवाइ १०८
गधोदय १६, ११७
गुंजालिया ७८
घओयग ७९
घण १११
घणमुइग १२
घोसेडिय २९
घटा ६, ३२, ६७
घटाजाल ६५, ८६
घटापास ६७
चउक्क ३
चउद्दसपुव्वी १३६
चउनाणोवगय १३६, १५९
चक्क ३
चक्कल ३३
चक्कलक्खण २०८
चक्कवट्टिविजय १०८
चक्कवूह २०८
चच्चर ३
चमर २५, ३२, ३३
चम्मेट्ठग १९
चरिम ४४, ४५
चरिय ३
चवण २१२
चवल १३
चाउज्जाम १४१
चाउब्भाइया १९२
चामर ७१, १०७
चामरधारपडिमा १०१
चित्तगर १०१
चित्तघरग ८१
चित्तसारहि १३१, १३३, १३४, १४०
चिलाइया २०७
चुचुअ १००
चुण्णारुहण ११७
चुल्लहिमवंत १०८
चूयलया ७०
चूयगवण ७५
चूलोवणय २०६
चेइअ ३, ६, १६, १७, २२, १९७
चेइयखभ ९७, १०६, १२०

चेइयथूभ १२०
चेइयमह १३९
चेइयरुक्ख ९४, १२०
चेड १७५
चेडा ६३
चेनित २२
चेतिय १५
चोक्ख १०६, ११६, १८५, २०५, २०६
चोप्पाल ९९, १२१
चोय ३०
चोयगसमुग्ग ७१
चोर १७५
चगेरी ७१
चंदणकलस ३२, ६५, ७०, १०१
चदसूरदसणिग २०५
चंदसूरियदरिसण २०६
चदाणण ९३
चपछल्ली २९
चंपगलया ७०
चपगवण ७५
छत्त ६, ७०, ७१, ७०, १०७, १५४
छत्तधारगपडिमा १०१
छत्तलक्खण २०८
छरुप्पवाय २०८
छविच्छेय १८२
छायण ६३
छिवाडी ३०
छेयायरिय ३
छदण १०३
जइपरिसा ४१
जक्खपडिमा १०१
जक्खमह १३९
जगईपव्वय ८०
जड्ड १५८, १६०, १८५
जणवय ८, १२८, १३२, १३३, १४७, १५१, १५३
१६७, १९५, २०२, २०८
जल्ल ३, ६
जव ३
जाग ६
जागरिया २०५
जाण ५
जाणवय ६
जाणविमाण २५, २६, २७, ३२, ३५, ३६,
३९, ५९
जाणु १३, ११७
जाणू १००
जातिमडवग ८१, ८२
जातिसपण्ण १३६
जायरूव ८, १७
जार २७
जालकडग ६७
जालघरग ८१
जिण १९०
जिणपडिमा ९३, १००, १०१,१०६, ११७, १२०
जिणवर ११७
जिणसकहा ६७, १०६, १२०
जिणिंदाभिगमणजोग्ग ३६
जियसत्तू १३३, १३४, १४५
जीव १६७, १७५, १८४, १९०
जीवा १८०
जीवि्या(ता)रिह १५२, १९७
जीहा १००
जुवइसन्निविट्ठ ३
जुद्ध २०८
जुद्धजुद्ध २०८
जुद्धसज्ज १३३
जुवराय १३१
जूय २०८
जूहियामडव ८१
जोइ १८४, १८५, १९२
जोइस ४०
जोइ(ति)भायण १८४, १८५

जोई १७८
जोईरस १७
जोग्ग ३
जोण्हिया २०७
जोय २०४
जोह १३९
जघा १००
जत ८
जवुद्दीव १२, १५, १६, १७, २२, २३, ३९, १२८ १६७
जवूफल २८
झय ६, १०१, १०७
झुसिर १११
ठितिवडिय २०५, २०६
डिंवडमर ८
णगरगुत्तिय १७५, १७७
णगरमाण २०८
णग्गभाव २१२
णट्टग ६
णट्टसाला १९९, २००
णड ६
णत्तुअ १६७, १६९
णवणीय ८२, ९८
णवमालियामडवग ८१
णाइ १६९
णाग १४४, १९०
णागलयामडवग ८१
णाडग १३६
णाणादेसी २०७
णाय १३९
णालियाखेड २०८
णिग्गथ १४४, १६७
णिडालपट्टिया १००
णिद्दाइय २०८
णिम्मा २६, ६३
णियग १६९
णिव्विण्णाण १८५
णिसढ १०८
णीलवत १०८
णीली २८
णेज्जाय ३८
णेरइयत्त १६७
णदणवण १०८
तउअ १७५, १९४
तउयआगर १९४
तउयभारअ १९४
तउयभारग १८०, १९४
तउयभड १९४
तक्क २१२
तगर ३०
तगरसमुग्ग ७१
तज्जीव १९३
तण १६
तडवडा २९
तणवणस्सइकाय १९०
तत १११
तरुण १८०
तरुणीपडिकम्म २०८
तल १२
तलवर १३९, १७५
तलाग ३
ताण १३
तारा १००
ताल १२
तालाचर ३
तालु १००
तिगिच्छिद्दह १०८
तिच्छडिय ७०
तित्थयराइसेस १०
तिय ३, १३८
तिसोपाण ३६
तिसोवाण २६, ३६, ३७, ३९
तुडिय १२, १३

तुरग	३, २५, ३२, ६३	दार	३, ६३
तुरिय	१३	दारग	२०५, २०६, २०७, २०८
तुरुक्क	१६, ३३, ६६, ११७	दारचेडी	११६
तुला	१६७	दारुइज्जपव्वयग	८०
तूणइल्ल	३६	दाहवक्कतिया	२०३
तूली	६८	दाहिण	१३
तेल्लसमुग्ग	७१, १०१, १०७	दिट्ठिवाय	१६०
तोरण	३, २६, ३२, ७०, ७१	दिट्ठी	१६७
तती	१२	दिसासोवत्थिअ	७०, ८०
तबागर	१६५	दिसासोवत्थिआसण	८१
तबोलिमडवग	८१	दीव	१३, १६२
तु बवीणिय	३, ६	दीवचपअ	१६२
थाल	१०१, १०७	दीवचपग	१६२
थूभ	६३	दीहासण	८०
थूभमह	१३६	दीहिया	३, ७८
थूभाभिमुही	६३	दुगुल्ल	३३
थूभिया	६३	दुघण	१६
थेज्ज	१६७	दुतविलबियनट्टविहि	१११
थेर	२१२	दुयनट्टविहि	१११
दक्ख	१८७, १६०	दूय	१७५
दगथालग	२०	देव	१६०
दगधारा	११६, १२०	देवच्छदय	१००, ११७
दगपासायग	८०	देवपरिसा	४१
दगमट्टिय	२०८	देवदूसजुयल	११५, ११७
दगमालग	८०	देवसयणिज्ज	६८, १०२, १२१
दगमचग	८०	देवाइ	१८
दगमडव	८०	दोणमुह	१२७
दढपइण्ण	२०६	दोर	१०३
दप्पण	२७	दोवारिय	१७५
दब्भसथारग	२०३	दड	१७, १३१
दमणापुड	३०	दंडणायग	१७५
दमिली	२०७	दडलक्खण	२०८
दरिमह	१३६	दडसपुच्छणी	१६
दव्वट्ठया	८७	दत	१००
दसद्धवन्न	१६, २१, ११७	दतवाणिअ	१६०
दहिवासुयमडवग	८१	दसण	१६०

धणु ६६, १८०
धणुवेय २०८
धम्म ४१, १५४, १९७, १६६
धम्मकहा १६७
धम्मजागरिय २०६
धम्मत्थिकाय १६०
धम्मायरिअ १५२, १६७, २०४
धम्मावियपुव्व १७८
धम्मिअ १७१
धम्मोवदेसग १५२, २०३
धाउपाग २०८
धारणा १६०
धारिणी ६
धूव १६, १२०
धूवकडुच्छुय १०१, १०७
धूवघडी ६६, ९६
धतपुव्व १७८, १८३
नईमह १३६
नक्ख १००
नगर १२७, १७५
नट्ट ३, १२, २०८
नड ३
नत्तुअ १६८
नयणमाला १०
नयप्पहाण १३६
नरकठ ७१
नरय १६७, १६८, १६९, १७०
नरवइ ३
नरसघाड ७०
नागदन्त ६५, ६६, ७०, ६६, ६७
नागपडिमा १०१
नागमह १३६
नागलया ७०
नाडय १५०
नाण १६०
नाणत्त १८२
नाणसपण्ण १३६
नाभी १००
नामगोअ १६
नामधिज्जकरण २०६
नारिकत १०८
नासिगा १००
निचिय १७६
निगम १२७, १७५
निग्गथ ४२
निग्गथपावयण १४२
निच्छोडण १८७
निज्जर १४४
निब्भच्छण १८७
नियइपव्वयग ८०
नियुद्ध २०८
निरयपाल १६९
निव्विण्ण १८५
निव्विण्णाण १५८
निव्विसय १८८
निसीहिया ६५
नदणवण ७७
नंदा ९५, ६६, १०४
नदि (सूत्र) १६०
नदियावत्त २७, ३७
नदीसरवर ३६
पइ(ति)ट्ठाण ६३, ६५, ८६
पइण्णा (न्ना) १६७, १६८, १७८, १७६, १८१, १८२, १८४ २०६
पईव १३, १६२
पउम ८७
पउमपु डरीयदह १०८
पउमलया ७०
पउमवरवेदिया ७९, ८५, ८६, ८७
पउमासण ८०, ६६
पएसी १२६, १४७, १५०, १५३, १५६, १५७, १६०, १६९, १७६, १८०, १८२, १८३, १८४

पएसी १८५, १८७, १८८, १९०, १९१
१९२, १९३, १९७, १९८, १९९, २०१, २०२
पओग
पओहर ६७
पकाम १५८
पक्कणी २०७
पक्ख ६३, ८६, ८७
पक्खपुडतर ८७
पक्खपेरत ८७
पक्खबाह ६३, ८६, ८७
पक्खासण ८०
पक्खदोलग ८०
पगठग ६८, ७०
पच्चक्खाण २०१
पच्छाणुताविअ १९४, १९५, १९७,
पच्छिपिंडय १८१, १९२
पचकमणग २०६
पच्छियपिंडय १८१
पजेमणग २०६
पज्ज ७७
पज्जत्ति २०४
पज्जुवासण १०
पज्जुवासणिज्ज ९७
पट्टण १२७
पट्टिआ ६३, ८६
पडलग ७१
पडागा ६
पडिग्गह १४४
पडिचार २०८
पडिपाय ९८
पडिवद्धावणग २०६
पण्णविया २०७
पण्णा १७१, १७७, १७९, १८०
पणयासण ८०
पणिय ३
पतिट्ठाण २६
पत्त १६
पत्तग १०३
पत्तच्छेज्ज २०८
पत्तसमुग्ग ७१
पत्थय १९२
पभास १०८
पभू १७९, १८०, १८१, १८२
पमाण १३१, १६७
पयबद्ध ७७
पयरग ६६
परघरपवेस २१२
परपुट्ठ २८
परमाणुपोग्गल १९०
परसु १८५
परित्तससारित ४४
परियर १८५
परियाय १०८
परिसहोवसग्ग २१२
परिसा १०, ११, ४१, १३८, १५१
पलिओवम ११४, १२७, २०५
पवग ३, ६
पवेसण ९१
पसाहणघरग ८१
पहरणकोस ६६, १२१
पहू १८१
पहेलिअ २०८
पाई ७०, १०१, १०७
पाउया १३, १५२
पागार ३, ६३
पाडिहारिअ १४८, १५१
पाणविहि २०८
पाणाइवाअ २०४
पाय ३३, ९७
पायचार १४५
पायच्छिण्ण १८८
पायच्छिन्नग १६९

पायतल १००
पायत्त १११
पायत्ताणियाहिवइ २२, २३
पायपीढ १३, ३३, १५२
पायपु छण १४४
पायबद्ध ७७
पायरास १३४
पायसीसग ३३, ६८
पारसी २०७
पारिणामिया १३१
पारेकव्व २०८
पालियाय २९
पालव १३
पावसउण १४७
पासग २०८
पासावच्चिज्ज १३६, १३८, १४०, १४६, १५९
पाहुड १३३, १३४, १४५
पिअ १६७
पिउ १६३
पिच्छणघरग ८१
पिच्छाघर ३२
पिच्छाघरमण्डव ४७
पित्तजर २०३
पिहुणमिंजिया ३०
पीइदाण १५२, १६७
पीढ १४४, १४८, १४६, १५१, १६७
पीढमद्द १७५
पुक्खरगय २०८
पुक्खरिणी ७८, ६५, ९६, १०४, १२१
पुक्खरोदय १०८
पुग्गल १७
पुढवी १७७, १७८
पुढवीसिलापट्टग ७, ८२
पुत्त २०२
पुप्फचगेरी २०, १०७
पुप्फछज्जिय २०
पुप्फपडलग २०, १०१, १०७
पुप्फवद्दल २०
पुप्फारुहण ११७, ११६
पुर १३१, २०२
पुरिस १५६, १७९, १८०, १८१, १८२, १८५
पुरिसआसीविस ८
पुरिसलक्खण २०८
पुरिसवरगंधहत्थी ८, १३, ११८
पुरिसवरपु डरीअ ८, १३, ११८
पुरिससीह ८, १३, ११८
पुरोहिअ ८
पुलग १७
पुलिंदी २०७
पेच्छाघरमडव ६२, ९३, ११९, १२०
पोत्थयरयण १०३, ११६, १२१
पोसह १४४
पोसहसाला २०३
पोसहोववास २०१
पचकडग १७९, १८०
पचविहनाण १६०
पचाणुवइअ १४२
पडगवण ७७, १०८
पथ १६०
पथियपहिअ २०१
पु डरीय १०८
पोडरीय २७
फरसु १८५
फरिस ६, १३६, १६९
फलग २६, ७०, ९६, ६७, १४४, १४८, १४९, १५१, १६७
फलहसेज्जा २१२
फलिह ३, १७
फलिहरयण ९९
फलिहा ३
फालिअ १८४, १८५
फासपज्जव ८७

फुड १९४
बउसिया २०७
बत्तीसिया १६२
बब्बरा २०७
बल १३१, १४२, २०२
बलवाहण २०१
बलिपीढ १०४, १२१
बलिविसज्जण १२१
बहली २०७
बाल १८०
बावत्तरिकलापडिय २०६
बाहिरपरिसा ३५
बाहिरियपरिसा १२६
बाहुजुद्ध २०८
बिब्बोयण ९८
बिलपति ७८
बूर ३३, ८२, ९८
बोदि १६२
वध १४४
भइयदारअ १६, २०
भत्त २१२
भद्दसालवण ७७, १०८
भद्दासण २७, ३५, ३७, ८०
भमुहा १००
भरह १०८
भवण ३
भवणवइ १८
भवपच्चइय १६०
भवसिद्धित ४१
भाउयवयस १३१
भारहवास १५, १६, १७, ३९, १२८
भासमणपज्जत्ति १०४, २०४
भिक्खुअ १५३, २०१
भित्ति ६३
भित्तिगुलिता ६३
भिलु ग १४७
भुयग ६
भुसु ढि ३
भूमिचवेड ११२
भूमिसेज्जा २१२
भूयपडिमा १०१
भूयमह १३६
भेय १३१
भेरि १७६
भेसज्ज १४४
भोग १३९
भोम ७४
भड ७०
भिंगार ७०, १०१, १०७, ११६
मउड १३, ११५
मउदमह १३९
मगर २५, ३२, ६३
मगरासण ८०
मगरडग २७
मच्छ २७, ७८
मज्जणघरग ८१
मज्जणधाई २०७
मज्झिमपरिसा ३५, १२६
मट्टिय १०८
मडब १२७
मणपज्जवनाण १६०, १६१
मणाम १६७, १६४
मणिपाग २०८
मणिपेढिया ३३, ४७, ९३, ९४, ९५, ९७, ९८, ९९, १०२, ११६, १२१
मणिलक्खण २०८
मणुण्ण १६७
मणोगुलिया ७०, ६६, १०१
मणोमाणसिय २१२
मणोरहमाला १०
मणोसिलासमुग्ग ७१
मम्म २०२

मरीति ३२
मरुआपुड ३१
मल्ल ३, ६
मल्लइ १३९
मल्लारुहण ११७
मल्लियामडवग ८१
मसारगल्ल १७
मसी १०३
मसूरग ३३
महग्घ १०६, १३३
महत्थ १०६, १३३, १३४, १४५, १४६, १५०
महयर २०७
महरिह १०९, १३३
महाणई १०८
महाणदी १०८
महानई १०८
महापउमद्दह १०८
महापु डरीय ८७
महापु डरीयद्दह १०८
महापोडरीय २७
महामति १७५
महाविदेह १०८, २०५
महावीर १३, १५, १६, १८, १९, २१, २२, २३ ३९, ४०, ४१, ४४, ४५, ४६, ६०
महाहिमवत १०८
महिस ८
महिंदज्झय ३७, ३९, ९५, ९९, १२०
महोरग ७७, १९०
महोरगकठ ७१
महोरगसघाड ७०
मागह ६, १०८
मागहिय २०८
माडबिअ १३९, १७५
माण १६७
माणउम्माणपमाण ८
माणवग ९७, ९८
माणवय ९७, १०६, १२०
माणवार २०८
मार २७
मालवन्त १०८
मालागारदारअ २०
मालियघरग ८१
मालुयामडवग ८१, ८२
माहण १३९, १५३, १५४, २०१
माहणपरिसा १८७, १८८
मिगवण १२९
मिच्छादसणसल्ल २०४
मियवण १४९, १५१, १५७, १५८
मुइगपुक्खर २७
मुइगमत्थय १५०
मुट्ठिजुद्ध २०८
मुट्ठिय ३, ६
मुणिपरिसा ४१
मुत्तादाम ३४
मुद्दियामडवग ८१
मुद्धय १००
मुद्धाभिसित्त ८
मुरवि ११५
मुरडी २०७
मुहमडव ६१, ११९, १२०
मूढ १५८, १८५
मेढी १३१
मोक्ख १४४
मोहणघरग ८१
मख ३, ६
मगल ६, १७
मडणधाई २०७
मडल ७०
मत १३१
मतपओग २०२
मति १७५

मद	१११
मदरपव्वत	८
मदरपव्वय	१०८
मुंड	१५८
रज्ज	१३१, २०२
रज्जसिरि	२०२
रज्जु	६७
रट्ठ	१३१, २०२
रतिकरपव्वत	३९
रत्तवई	१०८
रत्ता	१०८
रमणिज्ज	१९९, २००, २०१
रम्मगवास	१०८
रयण	१७
रयणकरंडग	७१, १०१, १०७, १६८
रयणप्पभापुढवी	६१
रयणागर	१९५
रयत्ताण	३३
रयय	१७
रस	६, १३६, १६९
रसपज्जव	८७
रह	३, ७६, १५०, १५७, १५८
रहवाश्र	१५७
रहस्स	१३१, २०२
रहस्सभेग्र	२०२
रहोकम्म	२१२
राइण्ण	१३९
राई	१७५, १७७
रायकुल	८
रायनीति	१३३
रायमग्ग	३
रायववहार	१३३, १४४
रायहाणी	१२७
रिट्ठ	१७
रुइ	१६७
रुक्खमह	१३९
रुद्दमह	१३९
रुप्पकुलग्र	१०८
रुप्पागार	१९५
रुप्पि	१०८
रुरु	२५, ३२, ६३
रूव	९, ८६, १३६, १६९, २०८
रूवसघाडग	८६
रूवसपण्ण	१३६
रोइया(ता)वसाण	७७, १११
रोमराई	१००
रोहिग्र	१०८
रोहियस	१०८
लक्खण	९
लद्धावलद्ध	२१२
लयाघरग	८१
लयाजुद्ध	२०८
लाउसिया	२०७
लाला	६७
लावण्ण	६
लासग	३, ६
लासिया	२०७
लित्त	१७६
लिप्पासण	१०३
लेक्ख	१०३
लेच्छइ	१३९
लेणभोग	२११
लेह	२०८
लेहणी	१०३
लेहाइया	२०८
लोमहत्थ	६, ११७, ११९
लोमहत्थग	११९, १२०, १२१
लोमहत्थचगेरी	१०७
लोहियक्ख	१७
लख	३, ६
लबूसग	३४, ६६
वइर	२५

वइरागर १९५
वक्खारपव्वय १०८
वग्घारिय ६, ३२
वच्चघर १७२
वट्टखेड्ड २०८
वट्टवेयड्ढपव्वय १०८
वडभिया २०७
वडिसय ६२
वणत्थि १८४
वणसड ८८, ९६, १४७, १९९, २००, २०१
वणिच्छित्त ३
वणोवजीवी १८४
वत्थ १४४, २०३
वत्थविहि २०८
वत्थी १८३
वत्थुविज्जा २०८
वद्धमाण ९३
वद्धमाणग २७, ३७
वनलया ७०
वन्नपज्जव ८७
वन्नारुहण ११७
वप्पिण ३
वयणमाला १०
वयर १७
वयरविक्कणण १९५
वरदाम १०८
वरिसधर २०७
ववसाय ११६
ववसायसभा १०३, १०४, ११६, १२१
ववहारग १८९
ववहारी १८९
वाइअ १२, २०८
वाउकाय १९०
वाउयाय १९०
वाणमतर १८, ४०
वाम १८९, १९७, १९८
वामणिया २०७
वाय १६०
वायकरग ७१, १०१, १०७
वारिसेण ९३
वारुणिया २०७
वारुणोयग ७९
वालग २५, ३२, ६३
वालरूवय ११९
वालुया ७७
वाविया ७८
वासवद्दलग ६१
वासहरपव्वय १०८
वासतिमडवग ८१
वासतियलया ७०
वासिक्कछत्त ८७
वाहण १३१, १४२, २०२
विउलमई १६१
विच्च ९८
विजयदूस ३४
विज्जाहर २५, ३२, ६३
विडिमा ९४
विवत १११
वियडावाति १०८
वियालचारी २०९
विल्लास ९
विलेवणविहि २०८
विलबियनट्टविहि १११
विवच्चास १८६
विवणि ३
विवर २०२
विसप्पओग २०२
विसप्पजोग २०३
विससजुत्त २०३
विहग २५, ३२, ६३
विहगिया १८१
वूह २०८

वेइयपुडतर ८७
वेइयफलत ८७
वेइया ८७
वेइयाबाहा ८७
वेउव्वियसमुग्घाय १७, १९, २०, ४६, ४७, १०७
वेञ्च ३३
वेणतिया १३१
वेणुसलागिगा १९
वेमाणिअ १२, ४०
वेयण १६९
वेयप्पहाण १३६
वेयालियवीणा ७७
वेरमण २०१
वेरुलिय १७
वेलवग ३, ६
वेसमणमह १३९
वेसासिअ १६७
वजण ९
वस ६३, ८६
वसकवेल्लुया ६३, ८६
सउणरुय २०८
सउणरुयपज्जवसाणा २०८
सक्कर १६
सगडवूह २०८
सागरोवम ११४
सचित्त १९२
सज्जीवनिज्जीव २०८
सण्णा १६७, १९३
सतपत्त २७
सत्तवन्नवण ७५
सत्तसर ७७
सत्तसिक्खावइअ १४२
सत्थपओग २०२
सत्थवाह १३९, १७५
सद्द ९, १३६, १६९, १९०
सद्दावाति १०८
सन्निवेस १२७
सबरी २०७
समण १३, १५, १६, १७, १३८, १५३, १५४, १६७, २०१
समणोवासय १४४, २०२
समणोवासिआ १७१
समताल २०८
समयखेत्त १०८
समुग्गय ६३
समोसरण १६७, १९३
सयग्घी ३
सयणविहि २०८
सयवत्त ९७
सर १८५
सरगय २०८
सरपतिया ७८
सरभ २५, ३२, ६३
सरमह १३९
सरसरपतिया ७८
सरीर ६१, १५३, १५७, १६७
सरीरपज्जत्ती १०४, २०४
सलागाहत्थग १९
सवण १००
सव्वण्णू (न्नू) १४, ११८
सव्वदरिसी १४, ११८
सव्वोसहि १०८
सहस्सपत्त २७
सहस्सवत्त ८७
सागरमह १३९, १४०
साम १३१
सामलया ७०
सामाय २८
सामी १०
सायिसपओग १२९
सारहि १३१
सालघरग ८१

सालभजिया २५, ३२, ६३, ६६, ७०, ११९
सालि ३
सालितदुल ७०
सालिंगणवट्टिय ६८
सालीपिट्ठ ३०
सावत्थीनयरी १३३, १३४, १३६, १४०, १४१ १४९, १५१
सासया ८७
सिक्कग(य) ६६, ७०, ६६, ६७
सिग्घगमण २५
सिज्जा १६७
सिद्धत्थय १०८
सिद्धायतण ९९, १०१, ११६, ११७
सिद्धिगइनामधेय-ठाण १४
सिप्पायरिय १६७
सिप्पी ३
सिरिवच्छ २७, ३७, १००
सिरीसिव १२९, १४७
सिल १७७, १७८
सिलोग २०८
सिव ८, १४, ११८
सिवमह १३६
सिहर ३२
सिहरी १०८
सीता १०८
सीतोदा १०८
सीमकर ८
सीमधर ८
सीय ३, ७३
सीलव्वय २०१
सीसघडि १००
सीसच्छिण्ण १८०
सीसभारग १८८
सीहासण १३, १४, ३३, ४७, ७१, ७४, ८०, ९८, १०६, १०७, ११५, ११९, १२१
सुत्त २०८
सुत्तखेड्ड २०८
सुपइट्ठ ७०
सुपइट्ठाण १०१, १०७
सुभग २७, ८७
सुयनाण १६०, १६१
सुरभिगधकासाइय ११५
सुवण्णकूला १०८
सुवण्णजुत्ति २०८
सुवण्णपाग २०८
सुवण्णागार १९५
सुसरा २२, २३
सुहम्मा-सभा ११, २१, २२, ९१, ६७, १०२ १२०, १२१, १२५
सूई २६, ६३, ८७
सूईपुडतर ८७
सूईफलय ८७
सूईमुख ८७
सूणगलछण १८८
सूरियकत-कुमार १३१, २०२
सूरियकता-देवी १३१, १६६, २०२, २०३
सूरियाभदेव ११, २१ २२, ४०, १०६, २०४
सूरियाभविमाण ११, २१, २२, ६२, १०६, १११, २०४
सूरियाभाइ ४०
सूरिल्लियमडवग ८१
सूलभिन्नग १६९
सूलाइग १६६
सेयराया ८
सेज्जा १४४, १४८, १५१
सेट्ठि १३६, १७५
सेणावइ १३९, १७५
सेय १०४
सेयविया-नयरी १२८, १४५, १४६, १४७, १४९, १५०, १५१, १५७, १६७, १६८, १६६, १९७, १६९
सोगधिग्र १७, २७

सोत्थिय	२७, ३७
सोमणसचण	७७, १०८
सोलसिअ	१९२
सोहम्मकप्प	१०९, २०४
सकप्प	१६७
सकला	१०३
सखला	६७
सखवाणिअ	१६०
सखेज्जफालिअ	१८५
सडेय	३
सदमाणी	३, ७६
सथारअ	१४४, १४८, १५१, १९७
सधि	२६, ३३, ६३, ९८
सधिवाल	१७५
सपलद्ध	२०३
सपलियकनिसन्न	९३, २०३
सवाह	१२७
सभम	१३
समअ	१६७
समज्जण	१६७
सवच्छरपडिलेहणग	२०६
सवट्टयवाय	१९
सवर	१४४
सिंगार	९
सिंघाडग	३, १३८, १५१
सिंधु	१०८
सिंहली	२०७
सुक	१६०
हत्थ	२०७
हत्थच्छिणग्ग	१८८
हत्थच्छिणग	१६९
हत्थतल	१००
हत्थि	१९१, १९२
हयकंठ	७१, १०१
हयजोही	२०९
हयलक्खण	२०८
हयसघाड	७०, ८६
हरय	१०२, १०६
हरिकत	१०८
हरियाल	२९
हरियालसमुग्ग	७१
हरियालिया	२६
हरिवास	१०८
हल	३
हलधर	२८
हलिद्दा	३०
हिमवत	८, ७७
हियमाला	१०
हिरण्णजुत्ति	२०८
हिरण्णपाग	२०८
हेउ	१५४, १६७
हेमजाल	६५, ८६
हेमवय	१०८
हसगब्भ	१७
हसगब्भतुलिया	३१
हसासण	८०
हिंगुलयसमुग्ग	७१

□□

अनध्यायकाल

[स्व० आचार्यप्रवर श्री आत्मारामजी म० द्वारा सम्पादित नन्दीसूत्र से उद्धृत]

स्वाध्याय के लिए आगमो मे जो समय बताया गया है, उसी समय शास्त्रो का स्वाध्याय करना चाहिए। अनध्यायकाल मे स्वाध्याय वर्जित है।

मनुस्मृति आदि स्मृतियो मे भी अनध्यायकाल का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वैदिक लोग भी वेद के अनध्यायो का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार अन्य आर्ष ग्रन्थो का भी अनध्याय माना जाता है। जैनागम भी सर्वज्ञोक्त, देवाधिष्ठित तथा स्वरविद्या सयुक्त होने के कारण, इन का भी आगमो मे अनध्यायकाल वर्णित किया गया है, जैसे कि—

दसविधे अतलिक्खिते असज्झाए पण्णत्ते, त जहा—उक्कावाते, दिसिदाघे, गज्जिते, निग्घाते, जुवते, जक्खालित्ते, धूमिता, महिता, रयउग्घाते।

दसविहे ओरालिते असज्झातिते, त जहा—अट्ठी, मस, सोणिते, असुतिसामते, सुसाणसामते, चदोवराते, सूरोवराते, पडने, रायवुग्गहे, उवस्सयस्स अतो ओरालिए सरीरगे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान १०

नो कप्पति निग्गथाण वा, निग्गथीण वा चउहि महापाडिवएहि सज्झाय करित्तए, त जहा—आसाढपाडिवए, इदमहापाडिवए, कत्तअपाडिवए, सुगिम्हपाडिवए। नो कप्पइ निग्गथाण वा निग्गथीण वा, चउहि सझाहि सज्झाय करेत्तए, त जहा—पडिमाते, पच्छिमाते, मज्झण्हे, अड्ढरत्ते। कप्पइ निग्गथाणं वा निग्गथीण वा, चाउक्काल सज्झाय करेत्तए, त जहा—पुव्वण्हे, अवरण्हे, पओसे, पच्चूसे।

—स्थानाङ्ग सूत्र, स्थान ४, उद्देश २

उपरोक्त सूत्रपाठ के अनुसार, दस आकाश से सम्बन्धित, दस औदारिक शरीर से सम्बन्धित, चार महाप्रतिपदा, चार महाप्रतिपदा की पूर्णिमा और चार सन्ध्या, इस प्रकार बत्तीस अनध्याय माने गए हैं। जिनका सक्षेप मे निम्न प्रकार से वर्णन है, जैसे—

आकाश सम्बन्धी दस अनध्याय

१. **उल्कापात-तारापतन**—यदि महत् तारापतन हुआ है तो एक प्रहर पर्यन्त शास्त्र-स्वाध्याय नही करना चाहिए।

२. **दिग्दाह**—जब तक दिशा रक्तवर्ण की हो अर्थात् ऐसा मालूम पड़े कि दिशा मे आग सी लगी है, तब भी स्वाध्याय नही करना चाहिए।

गर्जन और विद्युत् प्राय: ऋतु स्वभाव से ही होता है। अत आर्द्रा से स्वाति नक्षत्र पर्यन्त अनध्याय नही माना जाता।

५. निर्घात—बिना बादल के आकाश मे व्यन्तरादिकृत घोर गर्जना होने पर, या बादलो सहित आकाश मे कडकने पर दो पहर तक अस्वाध्याय काल है।

६ यूपक– शुक्ल पक्ष मे प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया को सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रप्रभा के मिलने को यूपक कहा जाता है। इन दिनो प्रहर रात्रि पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

७. यक्षादीप्त—कभी किसी दिशा मे बिजली चमकने जैसा, थोडे थोडे समय पीछे जो प्रकाश होता है वह यक्षादीप्त कहलाता है। अत आकाश मे जब तक यक्षाकार दीखता रहे तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

८ धूमिकाकृष्ण—कार्तिक से लेकर माघ तक का समय मेघों का गर्भमास होता है। इसमे धूम्र वर्ण की सूक्ष्म जलरूप धु ध पडती है। वह धूमिका-कृष्ण कहलाती है। जब तक यह धु ध पडती रहे, तब तक स्वाध्याय नही करना चाहिए।

९ मिहिकाश्वेत—शीतकाल मे श्वेत वर्ण का सूक्ष्म जलरूप धुंध मिहिका कहलाती है। जब तक यह गिरती रहे, तब तक अस्वाध्याय काल है।

१०. रज-उद्घात—वायु के कारण आकाश मे चारो ओर धूलि छा जाती है। जब तक यह धूलि फैली रहती है, स्वाध्याय नही करना चाहिए।

उपरोक्त दस कारण आकाश सम्बन्धी अस्वाध्याय के हैं।

औदारिक सम्बन्धी दस अनध्याय

११-१२-१३ हड्डी मांस और रुधिर—पचेन्द्रिय तिर्यंच की हड्डी मास और रुधिर यदि सामने दिखाई दें, तो जब तक वहाँ से यह वस्तुएँ उठाई न जाएँ तब तक अस्वाध्याय है। वृत्तिकार आस-पास के ६० हाथ तक इन वस्तुओ के होने पर अस्वाध्याय मानते हैं।

इसी प्रकार मनुष्य सम्बन्धी अस्थि मास और रुधिर का भी अनध्याय माना जाता है। विशेषता इतनी है कि इनका अस्वाध्याय सौ हाथ तक तथा एक दिन-रात का होता है। स्त्री के मासिक धर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक। बालक एव बालिका के जन्म का अस्वाध्याय क्रमश. सात एवं आठ दिन पर्यन्त का माना जाता है।

१४. अशुचि—मल-मूत्र सामने दिखाई देने तक अस्वाध्याय है।

१५ श्मशान—श्मशानभूमि के चारो ओर सौ-सौ हाथ पर्यन्त अस्वाध्याय माना जाता है।

१६ चन्द्रग्रहण—चन्द्रग्रहण होने पर जघन्य आठ, मध्यम बारह और उत्कृष्ट सोलह प्रहर पर्यन्त स्वाध्याय नही करना चाहिए।

१७. सूर्यग्रहण—सूर्यग्रहण होने पर भी क्रमश· आठ, बारह और सोलह प्रहर पर्यन्त अस्वाध्यायकाल माना गया है।

१८. पतन—किसी बड़े मान्य राजा अथवा राष्ट्रपुरुष का निधन होने पर जब तक उसका दाहसस्कार न हो तब तक स्वाध्याय न करना चाहिए । अथवा जब तक दूसरा अधिकारी सत्तारूढ न हो तब तक शनै. शनै स्वाध्याय करना चाहिए ।

१६. राजव्युद्ग्रह—समीपस्थ राजाओ मे परस्पर युद्ध होने पर जब तक शान्ति न हो जाए, तब तक और उसके पश्चात् भी एक दिन-रात्रि स्वाध्याय नही करे ।

२०. औदारिक शरीर—उपाश्रय के भीतर पचेन्द्रिय जीव का वध हो जाने पर जब तक कलेवर पडा रहे, तब तक तथा १०० हाथ तक यदि निर्जीव कलेवर पडा हो तो स्वाध्याय नही करना चाहिए ।

अस्वाध्याय के उपरोक्त १० कारण औदारिक शरीर सम्बन्धी कहे गये हैं ।

२१-२८. चार महोत्सव और चार महाप्रतिपदा—आषाढपूर्णिमा, आश्विन-पूर्णिमा, कार्तिक-पूर्णिमा और चैत्र-पूर्णिमा ये चार महोत्सव हैं । इन पूर्णिमाओ के पश्चात् आने वाली प्रतिपदा को महाप्रतिपदा कहते हैं । इनमे स्वाध्याय करने का निषेध है ।

२६-३२ प्रातः, सायं, मध्याह्न और अर्धरात्रि—प्रात सूर्य उगने से एक घडी पहिले तथा एक घडी पीछे । सूर्यास्त होने से एक घडी पहले तथा एक घडी पीछे । मध्याह्न अर्थात् दोपहर मे एक घडी आगे और एक घडी पीछे एव अर्धरात्रि मे भी एक घडी आगे तथा एक घडी पीछे स्वाध्याय नही करना चाहिए ।

श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर

अर्थसहयोगी सदस्यों की शुभ नामावली

महास्तम्भ

१ श्री सेठ मोहनमलजी चोरडिया, मद्रास
२ श्री गुलाबचन्दजी मागीलालजी सुराणा, सिकन्दराबाद
३. श्री पुखराजजी शिशोदिया, ब्यावर
४ श्री सायरमलजी जेठमलजी चोरडिया, बैंगलोर
५ श्री प्रेमराजजी भवरलालजी श्रीश्रीमाल, दुर्ग
६ श्री एस किशनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
७ श्री कवरलालजी बेताला, गोहाटी
८ श्री सेठ खीवराजजी चोरडिया, मद्रास
९ श्री गुमानमलजी चोरड़िया, मद्रास
१०. श्री एस बादलचन्दजी चोरडिया, मद्रास
११ श्री जे दुलीचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१२ श्री एस रतनचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१३ श्री जे. अन्नराजजी चोरडिया, मद्रास
१४ श्री एस सायरचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१५ श्री आर शान्तिलालजी उत्तमचन्दजी चोरडिया, मद्रास
१६ श्री सिरेमलजी हीराचन्दजी चोरडिया, मद्रास

स्तम्भ सदस्य

१ श्री अगरचन्दजी फतेचन्दजी पारख, जोधपुर
२ श्री जसराजजी गणेशमलजी सचेती, जोधपुर
३ श्री तिलोकचदजी सागरमलजी सचेती, मद्रास
४. श्री पूषालालजी किस्तूरचदजी सुराणा, कटंगी
५ श्री आर. प्रसन्नचन्दजी चोरडिया, मद्रास
६. श्री दीपचन्दजी बोकडिया, मद्रास
७ श्री मूलचन्दजी चोरड़िया, कटगी
८ श्री वर्द्धमान इण्डस्ट्रीज, कानपुर
९ श्री मागीलालजी मिश्रीलालजी सचेती, दुर्ग

संरक्षक

१ श्री बिरदीचदजी प्रकाशचदजी तलेसरा, पाली
२ श्री ज्ञानराजजी केवलचन्दजी मूथा, पाली
३ श्री प्रेमराजजी जतनराजजी मेहता, मेडता सिटी
४ श्री शा० जडावमलजी माणकचन्दजी बेताला, बागलकोट
५ श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपडा, ब्यावर
६ श्री मोहनलालजी नेमीचदजी ललवाणी, चागाटोला
७ श्री दीपचदजी चन्दनमलजी चोरडिया, मद्रास
८ श्री पन्नालालजी भागचन्दजी बोथरा, चागाटोला
९ श्रीमती सिरेकुँवर बाई धर्मपत्नी स्व श्री सुगनचदजी झामड, मदुरान्तकम
१० श्री बस्तीमलजी मोहनलालजी बोहरा (KGF) जाडन
११ श्री थानचदजी मेहता, जोधपुर
१२ श्री भैरुदानजी लाभचदजी सुराणा, नागौर
१३ श्री खूबचन्दजी गादिया, ब्यावर
१४ श्री मिश्रीलालजी धनराजजी विनायकिया, ब्यावर
१५ श्री इन्द्रचदजी बैद, राजनादगाव
१६ श्री रावतमलजी भीकमचदजी पगारिया, बालाघाट
१७ श्री गणेशमलजी धर्मीचदजी काकरिया, टगला
१८ श्री सुगनचन्दजी बोकडिया, इन्दौर
१९ श्री हरकचदजी सागरमलजी बेताला, इन्दौर
२० श्री रघुनाथमलजी लिखमीचदजी लोढा, चागाटोला
२१ श्री सिद्धकरणजी शिखरचन्दजी बैद, चागाटोल

२२ श्री सागरमलजी नोरतमलजी पीचा, मद्रास
२३ श्री मोहनराजजी मुकनचन्दजी बालिया, ग्रहमदाबाद
२४ श्री केशरीमलजी जवरीलालजी तलेसरा, पाली
२५ श्री रतनचदजी उत्तमचदजी मोदी, ब्यावर
२६ श्री धर्मीचदजी भागचदजी बोहरा, झूंठा
२७ श्री छोगमलजी हेमराजजी लोढा, डोडीलोहारा
२८ श्री गुणचदजी दलीचदजी कटारिया, बेल्लारी
२९ श्री मूलचदजी सुजानमलजी सचेती, जोधपुर
३० श्री सी० ग्रमरचदजी बोथरा, मद्रास
३१ श्री भवरीलालजी मूलचदजी सुराणा, मद्रास
३२ श्री बादलचदजी जुगराजजी मेहता, इन्दौर
३३ श्री लालचदजी मोहनलालजी कोठारी, गोठन
३४ श्री हीरालालजी पन्नालालजी चौपडा, अजमेर
३५ श्री मोहनलालजी पारसमलजी पगारिया, बैंगलोर
३६ श्री भवरीमलजी चोरडिया, मद्रास
३७ श्री भवरलालजी गोठी, मद्रास
३८ श्री जालमचदजी रिखबचदजी बाफना, ग्रागरा
३९ श्री घेवरचदजी पुखराजजी भुरट, गोहाटी
४० श्री जवरचदजी गेलडा, मद्रास
४१ श्री जडावमलजी सुगनचदजी, मद्रास
४२ श्री पुखराजजी विजयराजजी, मद्रास
४३ श्री चेनमलजी सुराणा ट्रस्ट, मद्रास
४४ श्री लूणकरणजी रिखबचदजी लोढा, मद्रास
४५ श्री सूरजमलजी सज्जनराजजी महेता, कोप्पल

सहयोगी सदस्य

१ श्री देवकरणजी श्रीचन्दजी डोसी, मेडतासिटी
२ श्री छगनीबाई विनायकिया, ब्यावर
३ श्री पूनमचदजी नाहटा, जोधपुर
४ श्री भवरलालजी विजयराजजी काकरिया, विल्लीपुरम्
५ श्री भवरलालजी चौपडा, ब्यावर
६ श्री विजयराजजी रतनलालजी चतर, ब्यावर
७ श्री बी गजराजजी बोकडिया, सलेम
८ श्री फूलचन्दजी गौतमचन्दजी काठेड, पाली
९ श्री के पुखराजजी बाफणा, मद्रास
१० श्री रूपराजजी जोधराजजी मूथा, दिल्ली
११ श्री मोहनलालजी मगलचदजी पगारिया, रायपुर
१२. श्री नथमलजी मोहनलालजी लूणिया, चण्डावल
१३ श्री भवरलालजी गौतमचन्दजी पगारिया, कुशालपुरा
१४ श्री उत्तमचदजी मागीलालजी, जोधपुर
१५ श्री मूलचन्दजी पारख, जोधपुर
१६ श्री सुमेरमलजी मेड़तिया, जोधपुर
१७ श्री गणेशमलजी नेमीचन्दजी टाटिया, जोधपुर
१८ श्री उदयराजजी पुखराजजी सचेती, जोधपुर
१९ श्री बादरमलजी पुखराजजी बट, कानपुर
२०. श्रीमती सुन्दरबाई गोठी W/o श्री जवरीलालजी गोठी, जोधपुर
२१ श्री रायचदजी मोहनलालजी, जोधपुर
२२ श्री घेवरचदजी रूपराजजी, जोधपुर
२३ श्री भवरलालजी माणकचदजी सुराणा, मद्रास
२४ श्री जवरीलालजी ग्रमरचन्दजी कोठारी, ब्यावर
२५ श्री माणकचन्दजी किशनलालजी, मेडतासिटी
२६ श्री मोहनलालजी गुलाबचन्दजी चतर, ब्यावर
२७ श्री जसराजजी जवरीलालजी धारीवाल, जोधपुर
२८ श्री मोहनलालजी चम्पालालजी गोठी, जोधपुर
२९ श्री नेमीचदजी डाकलिया मेहता, जोधपुर
३० श्री ताराचदजी केवलचदजी कर्णावट, जोधपुर
३१ श्री ग्रासूमल एण्ड क०, जोधपुर
३२ श्री पुखराजजी लोढा, जोधपुर
३३ श्रीमती सुगनीबाई W/o श्री मिश्रीलालजी साड, जोधपुर
३४. श्री बच्छराजजी सुराणा, जोधपुर
३५ श्री हरकचन्दजी मेहता, जोधपुर
३६. श्री देवराजजी लाभचदजी मेडतिया, जोधपुर
३७ श्री कनकराजजी मदनराजजी गोलिया, जोधपुर
३८ श्री घेवरचन्दजी पारसमलजी टाटिया, जोधपुर
३९ श्री मागीलालजी चोरड़िया, कुचेरा

४० श्री सरदारमलजी सुराणा, भिलाई
४१ श्री ओकचंदजी हेमराज जी सोनी, दुर्ग
४२ श्री सूरजकरणजी सुराणा, मद्रास
४३ श्री घीसूलालजी लालचदजी पारख, दुर्ग
४४ श्री पुखराजजी वोहरा, (जैन ट्रान्सपोर्ट क) जोधपुर
४५ श्री चम्पालालजी सकलेचा, जालना
४६ श्री प्रेमराजजी मीठालालजी कामदार, वैंगलोर
४७ श्री भवरलालजी मूथा एण्ड सन्स, जयपुर
४८ श्री लालचदजी मोतीलालजी गादिया, वैंगलोर
४९ श्री भवरलालजी नवरत्नमलजी साखला, मेट्टूपालियम
५०. श्री पुखराजजी छल्लाणी, करणगुल्ली
५१ श्री आसकरणजी जसराज जी पारख, दुर्ग
५२ श्री गणेशमलजी हेमराजजी सोनी, भिलाई
५३ श्री अमृतराजजी जसवन्तराजजी मेहता, मेडतासिटी
५४ श्री घेवरचदजी किशोरमलजी पारख, जोधपुर
५५ श्री मागीलालजी रेखचदजी पारख, जोधपुर
५६ श्री मुन्नीलालजी मूलचदजी गुलेच्छा, जोधपुर
५७ श्री रतनलालजी लखपतराजजी, जोधपुर
५८ श्री जीवराजजी पारसमलजी कोठारी, मेडता सिटी
५९ श्री भवरलालजी रिखवचदजी नाहटा, नागौर
६० श्री मागीलालजी प्रकाशचन्दजी रुणवाल, मैसूर
६१ श्री पुखराजजी वोहरा, पीपलिया
६२ श्री हरकचदजी जुगराजजी वाफना, वैंगलोर
६३ श्री चन्दनमलजी प्रेमचदजी मोदी, भिलाई
६४ श्री भीवराजजी वाघमार, कुचेरा
६५ श्री तिलोकचदजी प्रेमप्रकाशजी, अजमेर
६६ श्री-विजयलालजी प्रेमचदजी गुलेच्छा, राजनादगाँव
६७. श्री रावतमलजी छाजेड, भिलाई
६८ श्री भवरलालजी डूगरमलजी काकरिया, भिलाई
६९ श्री हीरालालजी हस्तीमलजी देशलहरा, भिलाई
७० श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावकसघ, दल्ली-राजहरा
७१ श्री चम्पालालजी बुद्धराजजी बाफणा, ब्यावर
७२ श्री गगारामजी इन्द्रचदजी बोहरा, कुचेरा
७३ श्री फतेहराजजी नेमीचदजी कर्णावट, कलकत्ता
७४ श्री बालचदजी थानचन्दजी भुरट, कलकत्ता
७५ श्री सम्पतराजजी कटारिया, जोधपुर
७६. श्री जवरीलालजी शातिलालजी सुराणा, वोलारम
७७ श्री कानमलजी कोठारी, दादिया
७८ श्री पन्नालालजी मोतीलालजी सुराणा, पाली
७९ श्री माणकचदजी रतनलालजी मुणोत, टगला
८० श्री चिम्मनसिंहजी मोहनसिंहजी लोढा, ब्यावर
८१ श्री रिद्धकरणजी रावतमलजी भुरट, गौहाटी
८२ श्री पारसमलजी महावीरचदजी वाफना, गोठन
८३ श्री फकीरचदजी कमलचदजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
८४ श्री माँगीलालजी मदनलालजी चोरडिया भैरूद
८५ श्री सोहनलालजी लूणकरणजी सुराणा, कुचेरा
८६ श्री घीसूलालजी, पारसमलजी, जवरीलालजी कोठारी, गोठन
८७ श्री सरदारमलजी एन्ड कम्पनी, जोधपुर
८८ श्री चम्पालालजी हीरालालजी बागरेचा, जोधपुर
८९ श्री पुखराजजी कटारिया, जोधपुर
९०. श्री इन्द्रचन्दजी मुकन्दचन्दजी, इन्दौर
९१ श्री भवरलालजी बाफणा, इन्दौर
९२ श्री जेठमलजी मोदी, इन्दौर
९३ श्री बालचन्दजी अमरचन्दजी मोदी, ब्यावर
९४. श्री कुन्दनमलजी पारसमलजी भडारी
९५. श्री कमलाकवर ललवाणी धर्मपत्नी श्री स्व. पारसमलजी ललवाणी, गोठन
९६ श्री अखेचदजी लूणकरणजी भण्डारी, कलकत्ता
९७ श्री सुगनचन्दजी सचेती, राजनादगाँव

९८ श्री प्रकाशचदजी जैन, भरतपुर
९९ श्री कुशालचदजी रिखबचदजी सुराणा, बोलारम
१०० श्री लक्ष्मीचदजी अशोककुमारजी श्रीश्रीमाल, कुचेरा
१०१ श्री गूदडमलजी चम्पालालजी, गोठन
१०२ श्री तेजराज जी कोठारी, मागलियावास
१०३ श्री सम्पतराजजी चोरडिया, मद्रास
१०४ श्री अमरचदजी छाजेड, पादु बडी
१०५ श्री जुगराजजी धनराजजी बरमेचा, मद्रास
१०६ श्री पुखराजजी नाहरमलजी ललवाणी, मद्रास
१०७ श्रीमती कचनदेवी व निर्मलादेवी, मद्रास
१०८ श्री दुलेराजजी भवरलालजी कोठारी, कुशालपुरा
१०९ श्री भवरलालजी मागीलालजी बेताला, डेह
११० श्री जीवराजजी भवरलालजी, चोरडिया भैरूदा
१११. श्री माँगीलालजी शातिलालजी रुणवाल, हरसोलाव
११२ श्री चादमलजी धनराजजी मोदी, अजमेर
११३ श्री रामप्रसन्न ज्ञानप्रसार केन्द्र, चन्द्रपुर
११४ श्री भूरमलजी दुल्लीचदजी बोकडिया, मेड़ता सिटी
११५ श्री मोहनलालजी धारीवाल, पाली
११६ श्रीमती रामकुवरबाई धर्मपत्नी श्रीचादमलजी लोढ़ा, बम्बई
११७ श्री माँगीलालजी उत्तमचदजी बाफणा, बैंगलोर
११८ श्री साचालालजी बाफणा, औरगाबाद
११९ श्री भीकमचन्दजी माणकचन्दजी खाबिया, (कुडालोर), मद्रास
१२०. श्रीमती अनोपकुवर धर्मपत्नी श्री चम्पालालजी सघवी, कुचेरा
१२१ श्री सोहनलालजी सोजतिया, थावला
१२२ श्री चम्पालालजी भण्डारी, कलकत्ता
१२३. श्री भीकमचदजी गणेशमलजी चौधरी, धूलिया
१२४ श्री पुखराजजी किशनलालजी तातेड, सिकन्दराबाद
१२५ श्री मिश्रीलालजी सज्जनलालजी कटारिया, सिकन्दराबाद
१२६ श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ, बगडीनगर
१२७ श्री पुखराजजी पारसमलजी ललवाणी, बिलाडा
१२८ श्री टी पारसमलजी चोरडिया मद्रास
१२९. श्री मोतीलालजी आसूलालजी बोहरा एण्ड कं. बैंगलोर
१३०. श्री सम्पतराजजी सुराणा, मनमाड